दीपक बारा नाम का

भगवान श्री रजनीश

दीपक बारा नाम का

(प्रश्नोत्तर प्रवचनमाला)
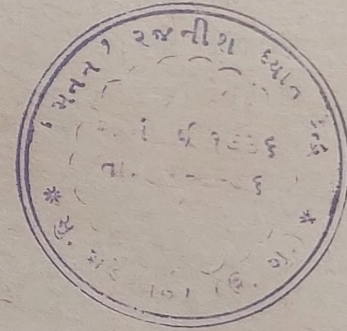
रजनीश फाउन्डेशन

नये प्रकाशन

साहेब मिल साहेब भये	(प्रश्नोत्तर)
जो बोलैं तो हरिकथा	(,,)
बहुरि न ऐसा दांव	(,,)
ज्यूं था त्यूं ठहराया	(,,)
ज्यूं मछली बिन नीर	(,,)
दीपक बारा नाम का	(,,)

पाकेट बुक्स

योग-दर्शन भाग : ५

योग-दर्शन भाग : ६

योग-दर्शन भाग : ७

योग-दर्शन भाग : ८
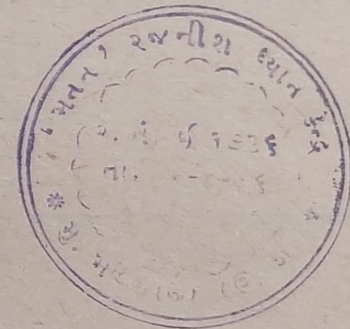
दीपक बारा नाम का

भगवान श्री रजनीश

संकलन
मा आनन्द दिव्या
परिरूप व सज्जा
मा देव योजना

सम्पादन
स्वामी योग प्रताप भारती
संयोजन
स्वामी नरेन्द्र बोधिसत्व

प्रकाशक
मा योग लक्ष्मी
रजनीश फाउन्डेशन
१७, कोरेगांव पार्क
पूना-४११ ००१

मुद्रक
शब्बीर कागलवाला
संगम प्रेस प्रा. लि.,
१७-ब, कोथरूड
पूना-४११ ०२९

प्रथम संस्करण : ११ दिसम्बर १९८०

प्रतियां : ५०० : डीलक्स : ६५ रुपये
२५०० : पेपरबैक : ३० रुपये : मूल्य
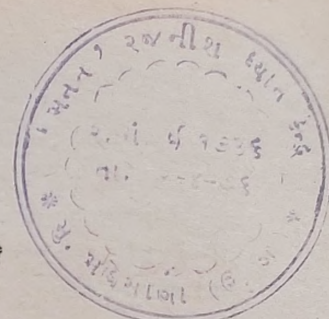
अभी भी नग्मा उठ सकता है

"मेरा काम तो मुश्किल है। क्योंकि मैं टूटी हुई पांजेब से झनकार मांग रहा हूं। पांच हजार साल से यह पांजेब टूटती ही चली गयी है। कुछ बचा नहीं है। इस देश से ज्यादा रिक्त, आत्महीन इस पृथ्वी पर आज कोई भी नहीं! बाईस सौ वर्ष की लंबी गुलामी, और पांच हजार वर्ष की दकियानूसी—पांजेब बुरी तरह टूट गयी है! मगर मैं उसी से झनकार मांग रहा हूं। कोशिश तो करनी है! आशा तो रखनी है!

उभरेगा न धड़कन से कभी अब कोई नग्मा
टूटी हुई पांजेब से झनकार न मांगो

लेकिन मैं आशा नहीं छोड़ता हूं। मुझे तो लगता है, अभी भी नग्मा उठ सकता है। अभी भी धड़कन वापिस लौट सकती है। अभी भी टूटी पांजेब से झनकार उठ सकती है। कठिन तो बहुत है!

ये भी है गनीमत जो मिले कोई खरीदार....

आज सत्य को लेने कौन राजी है! आज सत्य को खरीदने कौन राजी है!

ये भी है गनीमत जो मिले कोई खरीदार
मिट जाओ मगर कीमते-ईसार न मांगो

मैं मिटने को तैयार हूं। मेरे साथ जो मिटने को तैयार हैं, वे ही मेरे संन्यासी हैं। खरीदार को खोजना तो है! खोजा जा सकता है। मैं निराशा में भरोसा नहीं करता।

सच बात पै मिलता है सदा जहर का प्याला....
सच बात पै मिलता है सदा जहर का प्याला
जीना है तो फिर जुर्रते-इज़हार न मांगो

जहर का प्याला तो संभव है। मिलेगा! मगर सत्य के लिए जहर का प्याला भी पी लेना सौभाग्य है! वे धन्यभागी हैं, जिन्होंने सत्य के लिए जहर का प्याला पी लिया है!

उस चीज का क्या जिक्र जो मुमकिन ही नहीं है
सहरा में कभी सायाये-दीवार न मांगो

मगर मैं वही कर रहा हूं। मैं अंधविश्वासियों से, पाखंडियों से, धर्म के झूठे ठेकेदारों से यही आशा कर रहा हूं जैसे कोई सहरा में दीवार खोज रहा हो कि उसकी छाया में बैठ सके।

सहरा में कभी सायाये-दीवार न मांगो
उस चीज का क्या जिक्र जो मुमकिन ही नहीं है

लेकिन मैंने अभी ऐसा नहीं माना कि वह चीज मुमकिन नहीं। अभी भी मुमकिन

है। इस राष्ट्र की आत्मा पर कितनी ही राख जम गयी हो, मगर कहीं अंगारा अभी भी मौजूद है। राख झड़ा देने की जरूरत है--और अंगारा फिर प्रगट हो सकता है! और छोटी-सी चिनगारी भी हो तो पूरे जंगल में आग लगा दे सकती है। यह जंगल में आग लगाने का उपाय ही है मेरा संन्यास। ये वस्त्र वसंत के ही प्रतीक नहीं हैं, आग के भी प्रतीक हैं। ये अग्नि के भी प्रतीक हैं, ये आग्नेय हैं।

जब शीशमहल कोई तामीर हुआ होगा
दीवारों में दीवाने चुनवाये गये होंगे

तैयारी करनी जरूरी है। दीवाना होना है, दीवानगी का मजा लेना है, तो दीवारों में चुने जाने की तैयारी चाहिए।

जब इशरते-शाही को कुछ ठेस लगी होगी

और जब भी स्थापित स्वार्थों को कोई ठेस लगती है--

जब इशरते-शाही को कुछ ठेस लगी होगी
सूली पर कई सरमद लटकाये गये होंगे

तैयारी रखनी है, सरमद होने की,...गरदन कट सकती है! संन्यास एक अभियान है, एक अभीप्सा है इस देश को--और इस देश को ही नहीं, इस देश के माध्यम से सारे जगत को पुनरुज्जीवन देने की। कच्छ भी हमारा है, कैलिफोर्निया भी हमारा है; पंजाब भी हमारा है, और पाकिस्तान भी हमारा है--सारी पृथ्वी हमारी है। इसलिए, जगाना तो सबको है! मगर मुझे कहीं एक जगह तो बैठना होगा। लेकिन वहीं से किरणें फैलायी जा सकती हैं। सूरज को हर घर पर जाने की जरूरत भी नहीं है।"

—भगवान श्री रजनीश

अनुक्रम

महल भया उजियार
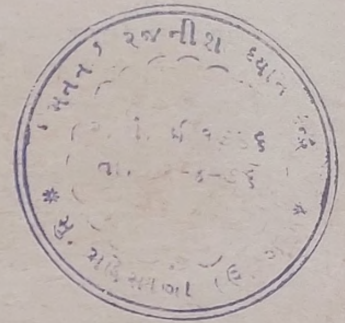
पहला प्रश्न : भगवान, 'दीपक बारा नाम का', संत पलटू के इस सूत्र से आज एक नयी प्रवचनमाला शुरू हो रही है। कृपया समझाएं कि यह नाम का दीपक क्या है और संत पलटू किस नाम का जिक्र कर रहे हैं ?

चैतन्य कीर्ति ! पूरा सूत्र इस प्रकार है--

पलटू अंधियारी मिटी, बाती दीन्हीं बार।
दीपक बारा नाम का, महल भया उजियार।।

मनुष्य जन्मता तो है, लेकिन जन्म के साथ जीवन नहीं मिलता। और जो जन्म को ही जीवन समझ लेते हैं, वे जीवन से चूक जाते हैं। जन्म केवल अवसर है जीवन को पाने का। बीज है, फूल नहीं। संभावना है, सत्य नहीं। एक अवसर है, चाहो तो जीवन मिल सकता है; न चाहो, तो खो जाएगा। प्रतिपल खोता ही है। जन्म एक पहलू, मृत्यु दूसरा पहलू। जीवन इन दोनों के पार है। जिसने जीवन को जाना, उसने यह भी जाना कि न तो कोई जन्म है और न कोई मृत्यु है।

साधारणतः लोग सोचते हैं, जीवन जन्म और मृत्यु के बीच जो है उसका नाम है। नहीं। जीवन उसका नाम है जिसके मध्य में जन्म और मृत्यु बहुत बार घट चुके हैं, बहुत बार घटते रहेंगे। तब तक घटते रहेंगे जब तक तुम जीवन को पहचान न लो। जिस दिन पहचाना, जिस दिन प्रकाश हुआ, जिस दिन भीतर का दीया जला, जिस दिन अपने से मुलाकात हुई, फिर उसके बाद न कोई लौटना है, न कहीं आना, न कहीं जाना। फिर विराट से सम्मिलन है।

बीज सुबह की धूप में भी पड़ा हो तो भी अंधकार में होता है। क्योंकि बीज तो बंद होता है। उसके भीतर तो सूरज की किरणें पहुंचतीं नहीं। हां, बीज में फूल छिपे हैं--अनंत फूल छिपे हैं। काश, बीज के फूल प्रगट हो जाएं तो फिर सूरज की

रोशनी से संबंध जुड़ जाता है। फिर फूल नाचते हैं धूप में, हवाओं में, वर्षा में; गाते हैं पक्षियों के साथ; गुफ़्तगू करते हैं सितारों से। साधारण मनुष्य बीज की तरह है, बंद, इसलिए अंधेरा है भीतर। खुलो तो उजियारा हो जाए। यह सूत्र प्यारा है—

पलटू अंधियारी मिटी, बाती दीन्हीं बार।
दीपक बारा नाम का, महल भया उजियार।।

वह महल तुम हो। कहीं और मत तलाशने निकल जाना। जो भी पाना है, भीतर पाना है। जो भी है जानने योग्य, पाने योग्य, वह तुम्हारे भीतर छिपा पड़ा है। उसे तलाशना है। वह उपलब्धि नहीं है, आविष्कार है। तुम्हारे भीतर कुछ पर्तें हैं, जो टूट जाएं तो जलधार बह निकले। जैसे दीये को किसी ने ढांक दिया हो, ऐसे तुम ढंके हो।

उपनिषद के ऋषि प्रार्थना करते हैं: हे प्रभु, इस स्वर्णपात्र को उघाड़ दे! यह प्रार्थना महत्त्वपूर्ण है। साधारण पात्र भी नहीं है जिसने तुम्हें ढांका है, यह स्वर्ण-पात्र है। और यही खतरा है। मिट्टी का होता, तो तुम लात मार देते। मगर यह सोने का है, इसे पकड़ रखने की आकांक्षा होती है। कैदी को अगर सोने की जंजीरें पहना दो, तो वह खुद ही नहीं चाहेगा कि जंजीरें टूटें। वह तो समझेगा, आभूषण हैं। और अगर हीरे-जवाहरात भी जड़ दो जंजीरों पर, तो फिर तो कहना क्या! फिर तो जो उसकी जंजीरें तोड़ने आएगा, उसका दुश्मन हो जाएगा।

जीसस को तुमने सूली लगायी इसीलिए कि तुम्हारी सोने, हीरे-जवाहरातों से जड़ी जंजीरों को तोड़ने के लिए यह आदमी तुम्हारे पीछे पड़ गया। इसे सजा देनी ही होगी। इसे क्षमा नहीं किया जा सकता। तुमने सुकरात को जहर पिलाया, यूं ही नहीं। इसने जिद ही कर ली कि तुम्हें जगा कर रहेगा। तुमने बुद्धों को पत्थर मारे, पागल हाथी छोड़े। तुमने किस तरह सताया है उनको जिनकी एकमात्र अभीप्सा थी कि तुम्हारे जीवन का अंधकार टूट जाए; जो तुम्हारे लिए जी रहे थे, क्योंकि जिनके अपने जीवन का कार्य तो पूरा हो चुका था; जो तुम्हारे लिए, सिर्फ तुम्हारे लिए शरीर में आबद्ध थे—उनका फूल तो खिल चुका था, अब उन्हें यहां एक क्षण भी और होने की कोई जरूरत न थी; जो तुम्हारे लिए बोल रहे थे—क्योंकि उनके भीतर तो मौन अवतरित हो गया था, उन्होंने तो शून्य का संगीत सुन लिया था, अब शब्दों से क्या लेना था; जो तुम्हारे लिए हर तरह की तकलीफ उठा रहे थे! तुमने उन्हें खूब पुरस्कार दिया! तुमने उनकी मुहब्बत का खूब सिला दिया!

मुट्ठियों में ख़ाक लेकर दोस्त आए बा'द दफ़्न
जिंदगी भर की मुहब्बत का सिला देने लगे

क्या सिला देते हैं हम! जिंदगी भर की मुहब्बत—

और किसी के मुंह से यह भी न निकला
कि इन पे ख़ाक न डालो

और किसी के मुंह से यह भी न निकला मेरे दफ़्न के वक्त—

कि इन पे ख़ाक न डालो
इन्होंने आज ही बदले हैं कपड़े
आज ही हैं ये नहाए हुए

आखिरी विदा हम देते हैं, मुट्ठियों में ख़ाक लेकर कब्र पर डाल देते हैं।

जिंदगी भर का सिला देने लगे

क्या सिला दिया! खूब सिला दिया! लेकिन कम-से-कम मर जाता है कोई तब तुम यह पुरस्कार देते हो, मगर तुम जीसस और सुकरात और मंसूर के लिए इतना भी न ठहर सके! आज नहीं कल मर ही जाएंगे, तुम इतने आतुर हो उठे कि तुमने उन्हें खुद ही मार डाला! जरूर उन्होंने कोई जघन्य अपराध किया होगा। यह था उनका जघन्य अपराध कि तुम अपने अंधेरे में मशगूल हो, तुमने अपने अंधेरे को ही जिंदगी का पर्याय समझ लिया—और वे तुम्हारा अंधेरा तोड़ने लगे, और वे तुम्हारे भीतर का दिया जलाने लगे, वे तुम्हारे खिड़की, द्वार-दरवाजे खोलने लगे! वे कहने लगे, ऊग आया है सूरज, उठो! कि पक्षियों ने गीत गाए, कि फूल खिल गये हैं, बाहर आओ! लेकिन तुम भीतर अपनी अंधेरी गुफाओं में रहने के इतने आदी हो गये हो, जन्मों-जन्मों से, कि बाहर आने में तुम डरते हो, घबड़ाते हो, भय-भीत होते हो। ऐसे अंधियारा मिटेगा नहीं।

'पलटू अंधियारी मिटी'। मिट सकती है। पलटू की मिटी, तुम्हारी मिट सकती है। मेरी मिटी, तुम्हारी मिट सकती है। किसी एक मनुष्य की भी मिटी तो सभी मनुष्यों की मिट सकती है। क्योंकि प्रत्येक मनुष्य परमात्मा के संबंध में समान अधिकारी है। जरा भी भेद नहीं। इसलिए भूल जाओ इस धारणा को कि कोई अवतार होते हैं, कोई तीर्थंकर होते हैं; कि कोई ईश्वरपुत्र होते हैं, कि कोई पैगम्बर होते हैं। यह तुम्हारी चालबाजी है। बचने का ढंग है यह भी। कह दिया कि कृष्ण तो अवतार, कि बुद्ध तो अवतार, कि महावीर तो तीर्थंकर, कि जीसस तो ईश्वर-पुत्र, कि मुहम्मद तो पैगम्बर, हम साधारणजन! इनके जीवन में हो गया होगा उजियाला, क्योंकि ये विशिष्ट थे, ये परमात्मा के घर से अलग ही ढंग से बन कर आए थे, हम तो साधारणजन, जो इनके जीवन में हुआ, हमारे जीवन में कैसे हो सकता है! इस बात को सीधा-सीधा न कह कर तुमने बड़ी तरकीब से कहा है कि ये हैं अवतारी पुरुष, ये हैं तीर्थंकर, ये हैं पैगम्बर, ये ईश्वरपुत्र—और हम साधारण लोग! हम तो पूजा ही करेंगे। तो बीज लाख पूजा करता रहे फूलों की, फूल नहीं हो जाएगा। आरती उतारता रहे फूलों की—'जय जगदीश हरे'! गाता रहे—

तो भी फूल नहीं हो जाएगा। फूल होने की प्रक्रिया से गुजरना होगा। बुझा दीया जले हुए दीयों की कितनी ही आरती उतारे, जलेगा नहीं। जले हुए दीये के करीब आना होगा। इतने करीब आना होगा कि ज्योति एक दीये से दूसरे दीये में छलांग लगा जाए। इस करीब होने का नाम ही सत्संग है। सत्संग का अर्थ है : हटा दो बीच की बाधाएं--संदेह, शक-शुबह, शिकायतें--रख दो हटा कर मन को एक तरफ, ताकि कोई दीवार न रहे। मन दीवार है, मौन सेतु बन जाता है। सत्संग का अर्थ : जिसका दीया जला हो, उसके पास चुप हो कर बैठ रहो। और चुप्पी में वह घट जाता है जो तुम शास्त्रों को रटते रहो, रटते रहो, जन्मों तक, नहीं घटेगा।

पलटू अंधियारी मिटी, बाती दीन्हीं बार।

जल गया दीया, अंधियारा मिट गया। और कैसे यह अंधियारा मिटा, कैसे यह दीया जला ? दीपक बारा नाम का !

इस शब्द को, 'नाम' को ठीक से समझ लेना। इससे बड़ी भ्रांति हो सकती है। सूफियों ने परमात्मा को सौ नाम दिये हैं। लेकिन जब तुम उनकी फेहरिस्त पढ़ोगे तो तुम चकित होओगे, फेहरिस्त में केवल निन्यानबे नाम हैं। कहते हैं कि सौ नाम दिये, मगर जब फेहरिस्त की गिनती करोगे तो हमेशा निन्यानबे पाओगे। क्यों ? क्योंकि सौवां 'नाम'। असली नाम तो बोला नहीं जा सकता। है वहां मौजूद, मगर उसे पढ़ना हो तो पंक्तियों के बीच में पढ़ना होगा, शब्दों के बीच में झांकना होगा। कोरे कागज पर पढ़ना होगा; लिखे कागज पर उसे नहीं पढ़ा जा सकता। निन्यानबे नाम उन्होंने दिये, वे कामचलाऊ हैं। मतलब बिना नाम कैसे चले, तो रहीम कहो, रहमान कहो ! ये सब परमात्मा के गुण हैं। करुणा, दया, प्रेम, सत्य, आनंद, चैतन्य--जो भी नाम देना चाहो, ये उसके गुण हैं; इससे एक पहलू जाहिर होता है मगर अनंत पहलू छिपे रह जाते हैं। अगर सारे परमात्मा को प्रगट करना हो तो वह सौवां नाम ही काम आता है, वह तो केवल शून्य है, निराकार है, कुछ कहा नहीं गया, कुछ लिखा नहीं गया। उसी को संतों ने 'नाम' कहा है। नाम दिया नहीं, सिर्फ 'नाम' कहा।

राम कहो तो यह नाम दे दिया, अल्लाह कहो तो यह नाम दे दिया, रहमान कहो तो यह नाम दे दिया, उस सौवें को सिर्फ नाम कहा है, कुछ नाम दिया नहीं। सिर्फ इशारा किया है उस सौवें की तरफ, शून्य की तरफ।

'दीपक बारा नाम का'। इसे यूं पढ़ना : शून्य का दीया जलाया। शब्दातीत, शास्त्रातीत, अनिर्वचनीय, समाधि का दीया जलाया। न वहां कुछ कहने को है, न कुछ समझने को है, न कुछ सुनने को है; वहां गहन मौन है, समग्र मौन है। जरा भी चहल-पहल नहीं। जरा भी शोरगुल नहीं। झेन फकीर उस अवस्था को कहते हैं : एक हाथ से बजायी गयी ताली। दो हाथ से बजाओगे तो आवाज होगी। एक हाथ

से ताली बजती है, मगर आवाज नहीं होती। एक हाथ से बजायी ताली।

या जैसा कि इस देश की परम्परा कहती है कि वहां अनाहत नाद सुना जाता है। यह अनाहत शब्द ठीक वही कहता है जो एक हाथ की ताली। अनाहत शब्द बना है आहत के विपरीत। आहत का अर्थ होता है : चोट। जैसे कोई सितार के तार पर चोट करता है, तो नाद पैदा होता है, यह आहत नाद है। जैसे कोई तबले को ठोंकता है, या मृदंग को बजाता है, तो चोट करता है--दो चीजें टकराती हैं; हाथ मृदंग से टकराता है, कि अंगुलियां सितार के तारों को छेड़ देती हैं--यह आहत नाद है। यह द्वंद्व है, इसमें दो हैं, इसमें संघर्ष है। अनाहत नाद का अर्थ है : जहां दो नहीं, जहां एक है; जहां संघर्ष होने का उपाय ही नहीं; जहां द्वंद्व की कोई संभावना नहीं। जहां एक ही रह गया, वहां कैसा शब्द, कैसा शोरगुल ?

झील पर तुमने लहरें देखी हैं। तो तुम शायद सोचते होओगे कि झील पर लहरें हैं। झील पर लहरें नहीं होतीं, लहरें तो हवाओं के कारण होती हैं। मगर हवाएं दिखायी नहीं पड़तीं, इसलिए तुम झील में सोच लेते हो, तुम झील को जिम्मेवार ठहरा देते हो। यह हवा चोट कर रही है झील पर, इसलिए झील पर लहरें हैं। यह आहत नाद है। अगर सारी हवाएं बंद हो जाएं, या खो जाएं, फिर झील पर अनाहत नाद होगा। फिर कोई लहर न उठेगी। जरा-सी भी लहर न उठेगी। झील फिर दर्पण हो जाएगी। और उस दर्पण में सारा आकाश झलकेगा। जो है, वैसा ही झलकेगा जैसा है। लहरों के कारण खंडित हो जाता है, टूट-फूट जाता है, विकृत हो जाता है।

तुम्हारे भीतर शून्य जब पैदा हो जाए तो दीया जलता है। रोशनी हो उठती है। सब अंधेरा द्वंद्व के कारण है। जब तुम निर्द्वंद्व हो जाओ, तो रोशनी पैदा हो जाती है। और फिर महल में उजियारा ही उजियारा है। और ऐसा उजियारा, जो शुरू तो होता है लेकिन समाप्त नहीं होता।

बुद्ध ने कहा है : संसार का कोई प्रारम्भ नहीं, अंत है और निर्वाण का प्रारम्भ है, अंत नहीं। अंधेरे का कोई प्रारम्भ नहीं, अंत है, प्रकाश का प्रारम्भ है, कोई अंत नहीं। एक बार जाना कि सदा के लिये तुम्हारा हुआ। और उस प्रकाश की घड़ी में तुम झोंपड़े के वासी नहीं रह जाते, महल भया उजियार, उस प्रकाश में तुम सम्राट हो जाते हो। उस प्रकाश में तुम्हें दिखायी पड़ती है अपनी भगवत्ता। उससे ऊपर तो कुछ और नहीं। 'अहं ब्रह्मास्मि' का उद्घोष हो उठता है। 'अनलहक' की टेर उठ आती है। उससे बड़ी न कोई सम्पदा है, न कोई साम्राज्य, न कोई शक्ति है।

यह कैसे जले दीया ?

सत्संग भूमिका है। जैसे बीज को भूमि में डालना होता है। बिना भूमि में डाले यह अंकुरित नहीं होगा। सत्संग भूमिका है, भूमि है। मगर अकेले भूमि में डाल

देने से कुछ न होगा। थोड़ी जलधार भी पहुंचानी होगी। थोड़ा रस भी देना होगा। क्योंकि सूखा बीज गीला हो, आर्द्र हो। सत्संग काफी नहीं है, श्रद्धा भी चाहिए, श्रद्धा आर्द्र करती है। सत्संग तो तार्किक भी कर सकता है; मगर दिखायी ही पड़ता है कि सत्संग कर रहा है, होता नहीं। क्योंकि उसके पास हृदय कहां, गीलापन कहां, प्रेम की स्निग्धता कहां? वह रूखा का रूखा रह जाता है।

तर्क बड़ी रूखी चीज है। तर्क ऐसे है जैसे रेत। और रेत से जैसे कोई तेल निचोड़ना चाहे। तब इसमें रेत का क्या कसूर है। तेल तो निचुड़ेगा नहीं, क्योंकि रेत में तेल है नहीं। तर्क तो रेत की भांति है, रेगिस्तान की भांति है। तुम लाख निचोड़ते रहो, कुछ भी न निकलेगा। श्रद्धा तुम्हें आर्द्र करती है, गीला करती है। जो बीज जनमों-जनमों से सूखा है, उसे गीला करना होगा।

इसलिए भूमिका हो सत्संग की, श्रद्धा की जलधार हो। और, बीज को थोड़ा साहस भी चाहिए। नहीं तो वह डर के मारे ही अपनी पुरानी खोल को पकड़े रहेगा। लोग अपनी पुरानी खोलों को क्यों पकड़े हुए हैं? भय के कारण कि पता नहीं अज्ञात कैसा हो! माना कि ज्ञात कुछ बहुत सुखपूर्ण नहीं है, मगर कम-से-कम ज्ञात तो है, परिचित तो है, जाना-माना तो है। अनजान रास्ते पर चल पड़ना....! और इससे ज्यादा अनजान क्या बात होगी कि जिस बीज में कभी अंकुरण नहीं हुआ है, वह अचानक अंकुरित हो उठे। और अंकुरित होने के लिए छाती चाहिए। क्योंकि बीज को टूटना पड़ेगा, तभी अंकुरित हो सकता है। फूटेगा तो ही अंकुरित होगा। और टूटने की हिम्मत मरने की हिम्मत है। इसलिए समर्पण चाहिए।

शिष्य को मरना होता है सद्गुरु के साथ, सद्गुरु में। पुराने शास्त्र कहते हैं: आचार्यो मृत्युः। वह जो गुरु है, मृत्यु जैसा है। है भी। बात सच है। गुरु के पास जो मरने को राजी नहीं है, जो फूटने को, टूटने को राजी नहीं है, जो अपनी जरा-जीर्ण परम्परा, मान्यताओं, अंधविश्वासों को तोड़ने को राजी नहीं है; जो कहता है, मैं तो चिपटूंगा अपनी धारणाओं से, कैसे छोड़ दूं, बड़ी पुरानी हैं, बाप-दादों की दी हुई हैं, सदियों से चली हैं, इनको मैं नहीं छोड़ सकता, मैं तो हिन्दू ही रहूंगा, मैं तो मुसलमान ही रहूंगा, मैं तो जैन ही रहूंगा--फिर बहुत कठिनाई है। वह टूटने को राजी नहीं है: वह अपनी खोल को जोर से पकड़े हुए है; उसके पास छाती नहीं, साहस नहीं।

श्रद्धा हो, साहस हो। इतना साहस कि अतीत के प्रति मर सके, तो ही भविष्य में अंकुरण होगा। जो अतीत को पकड़ता है, वह भविष्य को त्याग देता है। और भविष्य ही है जो होने वाला है। अतीत तो जा चुका, बह चुका, अब वहां कुछ भी नहीं है--सांप जा चुका, सिर्फ रेत पर सांप के सरकने के चिह्न रह गये हैं। अतीत तो जा चुका, रेत पर चरणचिह्न रह गये हैं। पूजते रहो चरणचिह्नों को जितना

पूजना हो! कुछ पाओगे नहीं, हाथ कुछ लगेगा नहीं। जाओ मंदिरों में, जाओ मस्जिदों में, जाओ गुरुद्वारों में, कुछ पाओगे नहीं। किसी जीवित बुद्ध के पास होना होगा। किसी जीवित नानक को तलाशो। गुरुद्वारे में नहीं मिलेगा नानक। किसी जीवित मुहम्मद के पास बैठो। मस्जिदों में नहीं, काबा में भी नहीं मिलेगा। किसी जीवित जीसस के साथ उठो, चलो। यह पोपों और पादरियों का बड़ा जाल, इसमें भटक जाओगे ऐसे जैसे कि कोई जंगलों में भटक जाता है। और शब्दों के जंगल जंगलों से भी बड़े जंगल हैं। इनमें जो खो जाता है, उसे निकलना मुश्किल हो जाता है।

जीवित सद्गुरु के पास ही साहस की कसौटी है। क्योंकि जो खुद मर चुके हैं, जो अब नहीं हैं, वे तुम्हें क्या मिटाएंगे! तुम्हें कैसे मिटाएंगे! असंभव। वे तो खुद तुम्हारे हाथ में पड़ गये अब। अब तुम जो चाहो उनके साथ करो। जैसा व्यवहार करना चाहो करो। कुछ कह सकते नहीं, कुछ बोल सकते नहीं, पत्थर की मूर्तियां रह गयी हैं। या कागजों की मूर्तियां। शास्त्र हैं, वे कागज की मूर्तियां हैं। मगर सब प्रतिमाएं रह गयीं। जीवित सद्गुरु के पास ही साहस की कसौटी है। लेकिन कायरों की यह दुनिया है, कायरों से भरी हुई यह पृथ्वी है, इसलिए यहां मुर्दे पूजे जाते हैं और जीवितों का अपमान किया जाता है। उन्हीं जीवितों का, जिनका तुम अपमान कर रहे हो, जब वे मर जाएंगे तो तुम पूजोगे। बड़े अचंभे से यह घटना घटती रही है और अब भी घट रही है।

जीसस जिंदा हों तो सूली! और जीसस मर जाएं तो आधी पृथ्वी ईसाई हो जाती है! मुर्दा जीसस के साथ अड़चन नहीं है। जैसा चाहो वैसा तुम कर सकते हो। जीसस अब तुम्हें रोक नहीं सकते। जिंदा जीसस के साथ बहुत अड़चन है। वे तुम्हारी तो मानेंगे नहीं--जो तुम्हारी मान ले, वह सद्गुरु नहीं है। जो तुम्हारी अपेक्षाएं पूरी करे, वह सद्गुरु नहीं है। सद्गुरु तो अपनी स्वतंत्रता और स्व-स्फुरणा से जीएगा और तुम्हारी सारी धारणाओं को तोड़ देगा और तुम्हारी सारी मान्यताओं को बिखेर देगा। यह उसे करना ही होगा, बेरहमी से, तो ही उसकी करुणा है। अगर उसने सांत्वना दी, तो वह तुम्हारा दुश्मन है। वह तुम्हें संक्रांति देगा, क्रांति देगा, सांत्वना नहीं। वह तुम्हें आग से गुजरने का बल देगा और धक्का देगा कि गुजर जाओ आग से--क्योंकि डरो मत, कचरा ही जलेगा, सोना तो बच रहेगा। और जिसको बचाना है, वह सोना है। और कचरा जल जाए, यह अच्छा है; ताकि तुम पहचान सको अपनी असलियत को, अपने स्वभाव को।

सत्संग चाहिए भूमिका के लिए, श्रद्धा चाहिए आर्द्रता के लिए, साहस चाहिए ताकि बीज टूट सके। बीज के टूटने का अर्थ है: अहंकार का टूटना। तुम बातें अच्छी-अच्छी करते हो, मगर छिपाते तुम अहंकार हो। जब तुम कहते हो, हिन्दू धर्म, ईसाई धर्म, बौद्ध धर्म, जैन धर्म, तो तुम असल में यह नहीं कह रहे हो कि

तुम्हें जैन धर्म से कुछ लेना-देना है,... तुम्हें क्या पड़ी जैन धर्म से ! तुम्हारी जिंदगी में तो कोई सबूत नहीं है। महावीर ने कहा : अपरिग्रह, और जितना परिग्रह जैनों के पास होता है उतना किसी के पास नहीं है। यह खूब मजा हुआ ! महावीर नग्न रहे और जितनी कपड़े की दुकानें जैनियों की उतनी किसी की नहीं। जैनी अक्सर कपड़े की ही दुकान करते हैं !

मेरे एक परिचित हैं, प्रियजन हैं, उनकी दुकान का नाम है : 'दिगम्बर क्लॉथ स्टोर'। मैंने उनसे कहा कि थोड़ी अकल भी तो लगाओ ! तुम्हें दिगम्बर शब्द का मतलब मालूम है ? दिगम्बर यानी नग्न। 'नंगों की कपड़ों की दुकान' ! कपड़े किसके लिए ? या तो दिगम्बर अलग करो, और या कपड़े की दुकान की जगह कुछ और दुकान करो !

लेकिन जैनों का सारा धंधा कपड़े की दुकान का है। और महावीर नग्न रहे ! और जैनों के पास जितना परिग्रह है, उतना किसी के पास नहीं है। और महावीर ने अपरिग्रह की बात कही।

और यह सारे लोगों के साथ यही घटना घटी है।

इस्लाम का अर्थ होता है : शांति का धर्म। इस्लाम शब्द का ही अर्थ है : शांति। और जितनी अशांति इस्लाम से फैली, किसी और से फैली ? जब देखो तब जेहाद की तैयारी चल रही है ! तलवारों पर धार रखी जा रही है। मरने-मारने के लिए आयोजन हो रहा है।

जीसस ने कहा है परमात्मा प्रेम है--और ईसाइयों ने जितनी हत्याएं कीं, किसने कीं ? कितने जिन्दा लोगों को जला दिया ! जिन्दा स्त्रियों को जलाया ! सारा इतिहास दो हजार वर्ष का ईसाइयों के द्वारा की गयी हत्याओं का इतिहास है। और ईश्वर प्रेम है ! और प्रेम का यह परिणाम है !

चकित होकर तुम जरा देखो तो, कि तुम्हारा इन धर्मों से कुछ प्रयोजन है, कुछ लेना-देना है !

हिन्दू कहते हैं : जगत माया। और जितने जोर से हिन्दू जगत से चिपटते हैं, शायद ही दुनिया में कोई चिपटता हो। जितने जोर से हिन्दू पैसे को, धन को, प्रतिष्ठा को पकड़ते हैं, उतना दुनिया में कोई भी नहीं पकड़ता। यह मेरा रोज का अनुभव है। यहां करीब-करीब दुनिया के सारे देशों से लोग मौजूद हैं। जितनी पकड़ हिन्दुओं की है, उतनी किसी की भी नहीं। क्या मामला है यह ? जगत को माया कहते हैं, सब माया, मगर पकड़ते हैं जगत को इतनी जोर से कि छूटे नहीं छूटता। कुछ भी नहीं छूटता।

धर्मों से किसी को कोई प्रयोजन नहीं है। फिर प्रयोजन क्या है ? प्रयोजन है अहंकार का। हिन्दू धर्म श्रेष्ठ है; क्योंकि हिन्दू धर्म की आड़ में मैं श्रेष्ठ हूं, क्योंकि मैं

हिन्दू हूं। जैन धर्म महान है; क्योंकि उसकी आड़ में मैं महान हूं। सीधे-सीधे यह भी साहस नहीं है कहने का कि मैं महान हूं। पाखंड ऐसा गहरा हो गया है। बेईमानी खून में, हड्डी-मांस-मज्जा में समा गयी है। सीधे ही कहो न बात कि मैं महान हूं ! मगर तुम जानते हो कि ऐसा कहोगे तो लोग हंसेंगे, कि अरे बड़े अहंकारी हो ! तो फिर अहंकार को घूंघट में छिपना पड़ता है। फिर अहंकार को परोक्षरूपेण बोलना पड़ता है।

पेरिस के विश्वविद्यालय के दर्शनशास्त्र के प्रधान ने एक दिन अपनी कक्षा में कहा कि मुझसे महान व्यक्ति इस संसार में दूसरा नहीं है। विद्यार्थी उसके चौंके।... दर्शनशास्त्र का प्रोफेसर विश्वविद्यालय में बड़ी दयनीय अवस्था में होता है; क्योंकि कौन पढ़ने जाता है दर्शनशास्त्र ! दर्शनशास्त्र के विभाग करीब-करीब खाली पड़ गये हैं। या तो लड़कियां पढ़ने जाती हैं, जिनको सिर्फ डिग्री चाहिए ताकि अच्छे घर में शादी हो सके। और या कुछ सिरफिरे लोग पढ़ने जाते हैं; जिनको जिंदगी में भूखा मरने का शौक है। नहीं तो कौन पढ़ने जाता है ! विज्ञान पढ़ते हैं लोग, डाक्टरी पढ़ते हैं लोग, इंजीनियरिंग पढ़ते हैं लोग, दर्शनशास्त्र पढ़ कर क्या करेंगे ? मक्खियां मारनी हैं !...विद्यार्थी चौंके, एक विद्यार्थी ने खड़े हो कर कहा कि आप और ऐसा कहते हैं ! और आप इतने बड़े तर्कशास्त्री और आप ऐसी भूल कर रहे हैं, अपने को दुनिया का सबसे महान व्यक्ति कह रहे हैं ! किस आधार पर ? क्या प्रमाण ?

उसने कहा, प्रमाण ! उसने अपनी डेस्क से दुनिया का नक्शा निकाला, बोर्ड पर टांगा, अपनी छड़ी उठायी और कहा कि मैं तुमसे पूछता हूं कुछ प्रश्न, उससे सिद्ध हो जाएगा। मैं तुमसे पूछता हूं, दुनिया में सबसे श्रेष्ठ देश कौन-सा है ? स्वभावतः सभी फ्रांस के रहने वाले थे, उन्होंने कहा, फ्रांस से श्रेष्ठ तो कोई भी नहीं। जैसे भारतीय होते तो वे कहते कि भारत तो पुण्यभूमि है, यहां तो देवता पैदा होने को तरसते हैं।...पता नहीं देवता भी कैसे नालायक हैं ! यहां किसलिए पैदा होने को तरसते होंगे ? यहां आदमी पैदा होने से पीड़ित हो रहा है, देवता और किसलिए तरस रहे हैं ? मगर बात शायद ठीक ही होगी, नहीं तो इतनी भीड़-भाड़ भी कैसे हो ! तैंतीस करोड़ देवता हिन्दुओं के ही पास हैं--और किसीके पास तो नहीं—मगर यहां तो मामला भी बढ़ गया है, देवता ही नहीं आ गये, उनके नौकर-चाकर भी सब आ गये हैं। सत्तर करोड़ तो संख्या हो गयी ! देवता अपने मित्रों इत्यादि को भी ले आए हैं; दिखता है दानवों इत्यादि को भी ले आए हैं। अकेले नहीं आए, भीड़-भड़क्के के साथ आ गये हैं।...अगर भारत होता तो कोई नहीं कहता कि फ्रांस दुनिया का सबसे श्रेष्ठ देश है। मगर फ्रांसीसी ही थे, तो यह उनके अहंकार का हिस्सा है, जैसे भारतीयों के अहंकार का हिस्सा है, जैसे चीनियों का...दुनिया में सबके अपने अहंकार हैं ! मगर वही बात, भेद कुछ भी नहीं ! उन्होंने कहा, फ्रांस

निश्चित ही सर्वश्रेष्ठ है। उस प्रोफेसर ने कहा, तो ठीक है, अब फ्रांस बचा, सारी दुनिया समाप्त करो। फ्रांस में सबसे ज्यादा श्रेष्ठ नगर कौन-सा है?

तब जरा विद्यार्थी चौंके कि यह बात तो कुछ बिगड़ने लगी। मगर करते भी क्या! पेरिस के ही सब निवासी थे, और पेरिस के निवासी तो मानते हैं दुनिया में पेरिस जैसा कोई नगर ही नहीं है--हो भी नहीं सकता--तो उन्होंने कहा, पेरिस। तब प्रोफेसर ने कहा, और पेरिस में सबसे ज्यादा पवित्र स्थल कौन-सा है? स्वभावत: विद्या-मंदिर ही तो पवित्र होगा, तो विश्वविद्यालय। और तब उसने कहा, विश्व-विद्यालय में सबसे श्रेष्ठ विषय कौन-सा है? निश्चित ही सभी दर्शनशास्त्र के विद्यार्थी, उन्होंने कहा, दर्शनशास्त्र। उसने कहा, अब मैं तुम्हें कुछ सिद्ध करूं कि हो गया सिद्ध? मैं दर्शनशास्त्र का प्रधान हूं, इसलिए मैं कहता हूं कि मैं दुनिया का सबसे श्रेष्ठ व्यक्ति हूं। किसी को कोई एतराज है? अब क्या एतराज हो! अब तो बात बड़े तर्क से सिद्ध हो गयी। मगर देखते हैं कितनी चालबाजी से मैं दुनिया का श्रेष्ठतम व्यक्ति हूं, यह सिद्ध किया गया!

सीधे-सीधे कहो, कोई राजी नहीं होगा; तो हमें कान को उलटे पकड़ना होता है। भारत महान है, क्योंकि तुम भारतीय हो। भारत महान राष्ट्र है। और फिर भारत में भी महाराष्ट्र का तो कहना ही क्या! राष्ट्र के भीतर महाराष्ट्र! सिर्फ एक ही है यह देश दुनिया में जहां राष्ट्र के भीतर महाराष्ट्र होते हैं? तुमने चीनी डिब्बों की कहानियां सुनी होंगी डिब्बे के भीतर डिब्बा, लेकिन यहां उससे भी गजब की बात है। यहां डिब्बे के भीतर उससे बड़ा डिब्बा! इसको कहते हैं जादू! इसको कहते हैं चमत्कार, आध्यात्मिक चमत्कार! राष्ट्र वगैरह में क्या रखा है, महाराष्ट्र!! बंगाली से पूछो, वह कहेगा कि सोनार बांगला! सोने का बंगाल। यह है पुण्यभूमि, धन्यभूमि। यहीं हुए रवीन्द्रनाथ! किसी से भी पूछ लो, जिससे पूछोगे, वह अपने दावे करेगा। हालांकि सीधा नहीं कहेगा कि मैं महान हूं, मगर तिरछी चाल चलेगा। मेरा धर्म महान, मेरा राष्ट्र महान, मेरा वर्ण महान, मेरा रंग महान, मेरी जाति महान, अगर पुरुष है तो पुरुष महान। और अगर धीरे-धीरे तुम खींचते ही जाओ बात को तो वहीं आ जाएगा जहां दर्शनशास्त्र का यह प्रोफेसर आ गया। अखीर में, तुम अगर उसको कुरेदते ही जाओ, तो आज नहीं कल, कल नहीं परसों उसे कहना ही पड़ेगा, अब सच्ची बात कह देता हूं कि मैं महान।

इस 'मैं' की महानता को, अहंकार को सिद्ध करने के लिए तुम न-मालूम किन-किन बातों को पकड़े हुए हो। ये सब छोड़नी होंगी, तो ही बीज टूटेगा। साहस चाहिए। ज्ञात को छोड़ने के लिए और अज्ञात में प्रवेश के लिए साहस चाहिए। और यह हमारा विक्षिप्त मन, यह हमारा पागल मन अतीत को ही पकड़ता है। इसके पीछे कारण हैं। क्योंकि मन अतीत से ही पोषण पाता है। मन है ही अतीत का संग्रह। मन के पास

अज्ञात में प्रवेश का कोई उपाय नहीं है। यह ज्ञात में ही जीता है। यह परिचित में ही जीता है। और इसलिए मन ही बाधा है। यही तुम्हारा दीया नहीं जलने देता। जिस दिन तुम्हारे और किसी जले हुए दीये के बीच कोई फासला न रह जाएगा--यह मन न खड़ा रह जाएगा--उस क्षण तुम्हारा दीया भी जल जाएगा। तत्क्षण जल जाएगा। मगर कुछ तुम्हें भी करना होगा। तुम्हें पास सरकते आना होगा। श्रद्धा ही पास सरका सकती है। और तुम्हें आर्द्र होना होगा, तुम्हें प्रेमपूर्ण होना होगा। और तुम्हें शून्य होना होगा, मौन होना होगा। मौन को मैं ध्यान कहता हूं। जिस को पलटू ने 'नाम' कहा है, उसको मैं 'ध्यान' कहता हूं। शब्द का ही भेद है। जब तुम निर्विचार हो जाओगे तो मन गया। और जहां मन गया, वहां ज्योति आयी। तत्क्षण आती है।

मगर यह पागल मन अतीत में भटकाता है।

> सर छुपाके मेरे दामन में खिज़ाओं ने कहा....
> सर छुपाके मेरे दामन में खिज़ाओं ने कहा
> हमें सताने दे गुलशन में बहार आई है....
> हमें सताने दे गुलशन में बहार आई है
> सर छुपाके मेरे दामन में खिज़ाओं ने कहा....
> जब बहार आई तो सहरा की तरफ चल निकला....
> जब बहार आई तो सहरा की तरफ चल निकला
> सहने-गुल छोड़ गया दिल मेरा पागल निकला

ये दिल बिलकुल पागल है। ये मन विक्षिप्त है।

विक्षिप्तता में और साधारण जिसको हम स्वस्थ मन का आदमी कहते हैं, जो अन्तर होता है, मात्रा का होता है, गुण का नहीं होता। तुम निन्यानबे डिग्री पर विक्षिप्त होओगे, कोई सौ डिग्री पर उबल गया। कोई एक सौ एक डिग्री पर, तो पागलखाने में चला गया। मगर जो भेद है, वह बस मात्रा का है। और मात्रा का भेद भी कोई भेद है! जरा-सी बात में मात्रा पूरी हो सकती है। जरा-सा तराजू पर और वजन पड़ गया कि बात खतम हो गयी। पत्नी मर जाए, बेटा मर जाए, घर में आग लग जाए, दिवाला निकल जाए--अरे और तो और, लाटरी मिल जाए!

मैंने सुना है, एक स्त्री घबड़ायी हुई अपने पादरी के पास गयी और उसने कहा कि मैं बड़ी मुश्किल में पड़ गयी हूं; मेरे पति दफ्तर गये हैं, आते ही होंगे, आप जल्दी कुछ करें, उनके नाम से लाटरी खुल गयी है! पादरी ने कहा, इसमें इतने घबड़ाने की क्या जरूरत है? अरे, उसने कहा, सात लाख रुपये हैं! मेरे पति ने कभी सात सौ रुपये भी हाथ में लेकर नहीं देखे। सात लाख! मैं जानती हूं, वे पगला जाएंगे। और मुझे डर है कि कहीं कोई हृदय का दौरा न पड़ जाए। इतना

बड़ा सुख वे न झेल सकेंगे। यह उनकी सामर्थ्य के बाहर है। आप जल्दी कुछ करें, वे दफ्तर से आते ही होंगे। अभी-अभी चिट्ठी आयी और मुझे खबर मिली कि सात लाख की लाटरी उनके नाम खुल गयी। पादरी ने कहा, चल, मैं तेरे घर आता हूं, मैं निपट लूंगा। कोई बात नहीं, आने दे तेरे पति को, धीरे-धीरे बात को खोलेंगे। आहिस्ता-आहिस्ता। देखते चलेंगे कि कितना सह सकता है, उतना खोलेंगे।

पति आया। पादरी ने कहा, अरे भई सुनते हो, तुम्हारे नाम से लाटरी खुल गयी! पचास हजार रुपये मिले हैं तुम्हें। उस आदमी ने सुना और उसने कहा, अगर यह बात सच है तो पच्चीस हजार मैंने तुम्हारे चर्च को दान दिये। और पादरी वहीं गिर पड़ा और उसका हार्ट फेल हो गया। पच्चीस हजार! यह तो सोचा भी न था। यह आदमी तो कम-से-कम लाटरी की टिकिट खरीदा था तो सोचता भी होगा कि मिल सकते हैं, कभी तो मिलेंगे—न-मालूम कब से खरीद रहा होगा; हर महीने खरीदता होगा टिकिट, जन्मों से खरीद रहा होगा तब तो कभी यह मौका आएगा, मगर यह तो कुछ तैयार भी रहा होगा, पादरी तो बिलकुल ही तैयार नहीं था। इसने तो सोचा भी नहीं था कि पच्चीस हजार एकदम से मिल जाएंगे, वह तो वहीं गिर पड़ा, वहीं ढेर हो गया।

इस मन को पागल होने में कितनी देर लगती है! यह पागल होने के करीब ही है, जरा-सा धक्का। बहाना ही खोज रहा है।

सर छुपाके मेरे दामन में खिज़ाओं ने कहा
हमें सताने दे गुलशन में बहार आई है
जब बहार आई तो सहरा की तरफ चल निकला....
जब बहार आई तो सहरा की तरफ चल निकला
सहने-गुल छोड़ गया दिल मेरा पागल निकला
जब बहार आई तो सहरा की तरफ चल निकला
जब बहार आई तो.

जब उसे ढूंढ़ने निकले तो निशां तक न मिला....
जब उसे ढूंढ़ने निकले तो निशां तक न मिला
दिल में मौजूद रहा आंख से ओझल निकला
जब बहार आई तो सहरा की तरफ चल निकला
सहने-गुल छोड़ गया दिल मेरा पागल निकला
जब बहार आई तो सहरा की तरफ चल निकला

इक मुलाकात भी जो दिल को सदा याद रही....
इक मुलाकात भी जो दिल को सदा याद रही

हम जिसे उम्र समझते थे वो इक पल निकला
जब बहार आई तो सहरा की तरफ चल निकला
सहने-गुल छोड़ गया दिल मेरा पागल निकला
जब बहार आई तो सहरा की तरफ चल निकला

वो जो अफसाना-ए-गम सुनके हंसा करते थे....
वो जो अफसाना-ए-गम सुनके हंसा करते थे
इतना रोये हैं कि सब आंख का काजल निकला
जब बहार आई तो सहरा की तरफ चल निकला
सहने-गुल छोड़ गया दिल मेरा पागल निकला
जब बहार आई तो सहरा की तरफ चल निकला

हम तो तुम्हें ढूंढ़ने निकले थे परेशान रहे....
हम तो तुम्हें ढूंढ़ने निकले थे परेशान रहे
शहर तो शहर है, जंगल भी न जंगल निकला
जब बहार आई तो सहरा की तरफ चल निकला
सहने-गुल छोड़ गया दिल मेरा पागल निकला
जब बहार आई तो सहरा की तरफ चल निकला

कौन अय्यूब परेशां नहीं तारीकी में....
कौन अय्यूब परेशां नहीं तारीकी में
चांद अपना चुके फिर भी दिल सीने में बेकल निकला
जब बहार आई तो सहरा की तरफ चल निकला
सहने-गुल छोड़ गया दिल मेरा पागल निकला
जब बहार आई तो सहरा की तरफ चल निकला
जब बहार आई तो.

यह दिल सच में ही पागल है। बहार तो रोज आती है, वसंत तो तुम्हारे द्वार पर रोज दस्तक देता है, परमात्मा तो रोज तुम्हें पुकारता है, मगर तुम रेगिस्तानों की तरफ चल पड़ते हो।

जब बहार आई तो सहरा की तरफ चल निकला
सहने-गुल छोड़ गया दिल मेरा पागल निकला

कुछ अजीब है आदमी! जहां बहार है, वहां से तो भाग खड़ा होता है; जहां वसंत का स्रोत है, वहां से तो भाग खड़ा होता है, फिर तड़फता है। जैसे मछली

तड़फे, सागर से निकल कर गिर पड़े रेत पर, तट पर, धूप में जले, भुने, तड़फे; ऐसे हम हैं। भीतर सागर है और हम बाहर। भीतर सच्चिदानंद मौजूद है और हम बाहर भागे हुए हैं। इस क्षण ही दीया जल सकता है, लेकिन हम अतीत को इतने जोर से पकड़े हुए हैं कि वर्तमान को हम होने नहीं देते। हम जीते हैं जो बीत गया उसमें, जिसकी धूल ही रह गयी, गुबार रह गयी है कारवां तो कब का निकल गया; हम ऐसे पागल हैं कि कार तो चला रहे हैं यहां, देखना चाहिए आगे, मगर देखते हैं आईने में पीछे, जहां से कार गुजर चुकी, जहां सिर्फ धूल उड़ती रह गयी है। दुर्घटना न होगी तो क्या होगा! और अंधेरा न होगा तो क्या होगा! और जिंदगी एक बोझ न बन जाएगी तो क्या होगा!

कैसे तुम्हारे पैरों में नृत्य आए? और कैसे तुम्हारे जीवन में रोशनी हो? मन को छोड़ो, ध्यान को पकड़ो--ध्यान यानी अ-मनी दशा; ध्यान अर्थात मनातीत, विचारातीत चैतन्य--और दीया जला। एक पल की देर नहीं होती। लोग कहते हैं कि परमात्मा के जगत में देर है, अंधेर नहीं, मैं तुमसे कहता हूं यह बात गलत है, यह कहावत गलत है। न देर है, न अंधेर है। क्योंकि देर हो गयी तो अंधेर हो गया। और क्या अंधेर होगा! अभी आग में हाथ डालो, अभी जलता है। कोई अगले जनम में जलेगा! अभी ध्यान करो, अभी परमात्मा उपलब्ध होता है। परमात्मा कोई वायदे थोड़े ही करता है कि आऊंगा कल, कि आऊंगा परसों। परमात्मा तो आया ही हुआ है। तुम जरा आंख खोलो, सूरज तो निकला ही हुआ है।

लेकिन तुम परदों में छिपे बैठे हो। आंखें बंद कर रखी हैं। और रो रहे हो। और इतना रो रहे हो कि सब आंख का काजल निकला। अंधे हो गये हो रोते-रोते। जरा आंख खोलो! जरा पुनर्विचार करो! एक बार फिर से निरीक्षण करो कि अगर तुम्हारी जिंदगी में दुख ही दुख है, तो तुमने कोई बुनियादी भूल की है। तुम वहां खोज रहे हो सुख, जहां सुख नहीं है। और वहां पीठ किये हो, जहां सुख है।

इसके पहले कि कोई संसार में यात्रा करने निकले, अपने भीतर तो खोज लेना चाहिए। हां, भीतर न मिले तो फिर संसार में यात्रा करो, फिर कहीं और खोजो--खोजना ही पड़ेगा। मगर जिसने भी भीतर झांका है, उसने पा ही लिया, उसे खोजने कहीं जाना न पड़ा। दुनिया में अगर कोई सिद्धांत ऐसा है जो निरपवाद रूप से सत्य है तो वह यह सिद्धांत है कि जिसने भी भीतर खोजा, उसने सदा पाया और जिसने बाहर खोजा, उसने कभी नहीं पाया। एक ऐसा उदाहरण नहीं है कि बाहर खोज कर किसी ने आनंद पाया हो, अमृत पाया हो और एक उदाहरण ऐसा नहीं कि किसी ने भीतर खोजा हो और न पाया हो। इससे बड़ा निरपवाद कोई नियम नहीं है। एस धम्मो सनंतनो! यही सनातन धर्म है। यही आधारभूत नियम है।

दूसरा प्रश्न : भगवान, यह एक प्रचलित प्रार्थना है :

न त्वहं कामये राज्यम् न स्वर्गं नापुनर्भवम्।
कामये दुःखतप्तानाम् प्राणिनाम् आर्तिनाशनम्।।

अर्थात मैं अपने लिए न राज्य चाहता हूं, न स्वर्ग और न मोक्ष ही। मैं तो यही चाहता हूं कि दुख से तपे हुए प्राणियों की पीड़ा का नाश हो।

भगवान, इस पर कुछ कहने की अनुकंपा करें।

पूर्णानंद! बात तो ऊपर से देखने पर प्यारी लगती है, मगर बस ऊपर से ही देखने पर! थोड़ी गहरी खुदाई करोगे तो बात को थोथा पाओगे। ऊपर से तो अच्छी लगती है बात कि मैं अपने लिए न राज्य चाहता हूं, न स्वर्ग, न मोक्ष। बिलकुल निरहंकारिता की बात है कि मुझे अपने लिए कुछ भी नहीं चाहिए। लेकिन एक बात पक्की है कि मैं अभी हूं। मुझे अपने लिए कुछ भी नहीं चाहिए, मगर मैं हूं। और जहां 'मैं' है, वहां तुम लाख कहो कि मुझे कुछ भी नहीं चाहिए, कहीं भीतर चाह बनी ही रहेगी। 'मैं' बिना चाह के हो ही नही सकता। असंभव। चाह तो 'मैं' की सांस है। वह तो अहंकार की श्वास-प्रश्वास।

शायद यह प्रार्थना करने वाले ने होशियारी की है। ऐसी होशियारी की है, सुना होगा, पढ़ा होगा, शास्त्र निरंतर दोहराते हैं कि अपने लिए कुछ न मांगना, अपने लिए मांगोगे तो न पाओगे, दूसरों के लिए मांगना, क्योंकि परोपकार ही पुण्य है, इससे ही मोक्ष मिलता है। अपने लिए मोक्ष भी मत मांगना, नहीं तो चूक जाओगे। तो आदमी होशियार है। वह सोचता है, मोक्ष पाना हो तो अपने लिए नहीं मांगना चाहिए, नहीं तो चूक जाएंगे।

मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, हम ध्यान करते हैं मगर लगता नहीं। मैंने कहा, किस लिए ध्यान करते हो? तो वे कहते हैं, इसलिए ध्यान करते हैं कि स्वास्थ्य मिले, आनंद मिले, सफलता मिले; इस लोक में भी, परलोक में भी यश मिले। उनको मैं कहता हूं, जब तक ये आकांक्षाएं हैं तब तक ध्यान नहीं हो सकेगा। क्योंकि आकांक्षाएं ही तो ध्यान में बाधा हैं। तो वे मुझसे क्या पूछते हैं, उसे गौर से सुन लेना; जाग कर सुन लेना। वे कहते हैं, अच्छी बात है, अगर आकांक्षाएं छोड़ दें, फिर तो ध्यान लगेगा। आकांक्षाएं छोड़ दें तो मैं उनसे कहता हूं, निश्चित ध्यान लगेगा। महीने-पन्द्रह दिन में वे फिर आ जाते हैं, वे कहते हैं कि आकांक्षाएं भी छोड़ दीं, ध्यान अभी भी नहीं लग रहा है। न ध्यान लग रहा है, न कोई लाभ हो रहा है! आकांक्षाएं छोड़ दीं, फिर भी कुछ लाभ नहीं हो रहा है! अब इनको कौन कहे कि अगर आकांक्षाएं ही छोड़ दीं तो अब लाभ की अपेक्षा क्या कर रहे हो? अब किस लाभ की अपेक्षा कर रहे हो? अब ध्यान हो तो ठीक, न हो तो ठीक, जब आकांक्षाएं ही

नहीं हैं, तो हो गया तो ठीक है, नहीं हुआ तो ठीक है। अब अड़चन क्या है? मगर आकांक्षाएं छोड़ी उन्होंने इसलिए हैं ताकि आकांक्षाएं पूरी हो जाएं। ऊपर-ऊपर छोड़ी हैं, भीतर-भीतर बहने लगी हैं। अंतर्गर्भ में छिप गयीं, इससे मिट नहीं गयीं।

यह प्रार्थना जिसने की है, उसने सुना होगा कि न अपने लिए मोक्ष चाहना न स्वर्ग। अपने लिए कुछ चाहना ही मत। नहीं तो कुछ भी न मिलेगा। अब पाना तो है, तो चलो, नहीं चाहेंगे। अगर यही शर्त है पाने की, तो यह शर्त भी पूरी करेंगे। तो वह कहता है, मैं अपने लिए न राज्य चाहता हूं, न स्वर्ग और न मोक्ष। फिर भी मैं कैसे बचा? मैं तो बिना चाह के बचता ही नहीं। तो ऊपर-ऊपर से लीपापोती कर ली, लेकिन भीतर मैं मौजूद और चाह भी मौजूद है। और जिन-जिन चीजों की चाह है, उन्हीं को इनकार किया है। यह भी तुम ख्याल रखना।

आदमी इनकार ही क्यों करता है किसी खास चीज को? अब जरा सोचो, यह कहता है, न मैं राज्य चाहता हूं, न स्वर्ग, न मोक्ष। ये तीन चीजें ही यह चाहता होगा—जाहिर है; यह अचेतन ने घोषणा कर दी। नहीं तो दुनिया में और बहुत चीजें हैं, इसने उनको इनकार नहीं किया। इसने नहीं कहा कि न पत्नी चाहता हूं, न बच्चे चाहता हूं, न धन चाहता हूं, न यश चाहता हूं––यह इसने नहीं कहा। ये इसकी आकांक्षाएं नहीं होंगी।

मनुष्य की इस बुनियादी दुविधा को तुम ठीक से समझ लेना––क्योंकि करीब-करीब सबकी भूल यही होती है।

जो आदमी जिस चीज को इनकार कर रहा हो, जरा गौर करना, कहीं भीतर उसी की चाह होगी। चेतन जो बोलता है, अचेतन उसके विपरीत होता है। चेतन एक बात कहता है, अचेतन के अर्थ बड़े और होते हैं।

न राज्य चाहता हूं। क्यों? राज्य को इनकार क्यों कर रहे हो, अगर चाहते ही नहीं? अगर कहीं कोई चाह ही नहीं है राज्य की, तो राज्य की बात ही क्यों उठी? न स्वर्ग चाहता हूं। जरूर चाह होगी। कहीं छुपी भीतर धारा बह रही होगी। कहीं दिल में यह भाव छुपा होगा कि कब स्वर्ग का मजा मिले! कब कल्प-वृक्ष के नीचे बैठें! कब अप्सराएं मिलें भोगने को! कहीं कोई चाह जरूर होगी। और मोक्ष भी नहीं चाहता, मुक्ति भी नहीं चाहता। बात तो इतनी बड़ी है कि अगर सच हो तो 'मैं' बचता ही नहीं। जहां 'मैं' नहीं बचता वहां न चाह बचती है, न चाह का विरोध बचता है।

और जहां 'मैं' नहीं बचता, वहां यह जो प्रार्थना का दूसरा हिस्सा है––'मैं तो यही चाहता हूं कि दुख से तपे हुए प्राणियों की पीड़ा का नाश हो,' जिसका 'मैं' मिट गया हो, उसे यह साफ दिखाई पड़ने लगता है कि लोग दुखी हैं अपने 'मैं' के कारण। और तो कोई दुख नहीं है जगत में। 'मैं' ही दुख है। 'मैं' ही पीड़ा है। 'मैं' ही है जो छाती में छुरी की तरह चुभा हुआ है। तो जिस व्यक्ति को यह दिखाई पड़ गया कि मेरा 'मैं' गया और जाते ही आनंदित हो गया, अब वह यह प्रार्थना नहीं कर सकता कि लोगों की पीड़ा का अंत हो। अब तो वह लोगों को यह समझाएगा कि तुम अपनी पीड़ा के लिए खुद जिम्मेवार हो, कोई इसका अंत नहीं कर सकता जब तक तुम इस 'मैं' को न छोड़ दो। इसलिए बुद्ध ऐसी बात नहीं कहेंगे कि प्रार्थना करो। बुद्ध कहेंगे, तुम्हें समझ में आ गया, औरों को समझाओ, प्रार्थना का सवाल नहीं उठता। कौन मिटाएगा? कोई है कहीं बैठा आकाश में जो इनके दुख मिटा दे? और अगर बैठा होता तो कितनी सदियों से तो तुम प्रार्थना कर रहे हो, हवन कर रहे हो, यज्ञ कर रहे हो––क्या-क्या मूढ़ताएं नहीं कर रहे हो––अभी तक उसने सुना नहीं? बहरा है तुम्हारा परमात्मा बिलकुल? तुम्हारे ऋषि-मुनि थक गये चिल्ला-चिल्ला कर, पंडित-पुरोहित मंदिरों के घंटे बजा-बजा कर मर गये, उसके कानों तक कोई खबर नहीं पहुंची, जूं भी नहीं रेंगी, दुनिया का दुख बढ़ता ही चला गया। जितनी प्रार्थना चली, उतना ही दुख बढ़ा। प्रार्थना में कहीं बुनियादी भूल है। यह सवाल प्रार्थना का नहीं है, बोध का है। और बोध तो प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं का होना होगा।

तुम उत्तरदायी हो अगर दुखी हो। कोई दूसरा जिम्मेवार नहीं है। इसमें तो यह भ्रांति छिपी हुई है कि जैसे परमात्मा लोगों को दुख दे रहा है। इसलिए प्रार्थना कर रहे हैं कि भैया, अब दुख मत दो! अब बहुत हो गया! अब दुख देना बंद करो! जैसे परमात्मा जिम्मेवार है। जिम्मेवार तुम हो, प्रार्थना किससे हो रही है? कि मैं तो यही चाहता हूं कि दुख से तपे हुए प्राणियों की पीड़ा का नाश हो। जैसे कोई और इनकी पीड़ा का नाश कर सकता है। इस भ्रांति को छोड़ो। तुम्हारी पीड़ा के जनक तुम हो, निर्माता तुम हो, सर्जक तुम हो, मिटा भी तुम्हीं सकते हो, कोई और नहीं मिटा सकता है। यह तुम्हारी काल्पनिक पीड़ा है। तुम सड़ रहे हो, गल रहे हो, तुम नर्क में पड़े हो, लेकिन नर्क तुम्हारा ही निर्माण है। नर्क कहीं और नहीं है, कोई भौगोलिक अवस्था नहीं है––न स्वर्ग कोई भौगोलिक अवस्था है––नर्क अहंकार से भरे हुए मन का नाम है। और स्वर्ग अहंकार से शून्य मन का नाम है। जहां अहंकार नहीं, वहां सुख की वर्षा हो जाती है। और जहां अहंकार है, वहां दुखों के अम्बार लग जाते हैं। कौन इसको दूर करेगा? प्रत्येक व्यक्ति को ही अपना मुक्ता होना है। प्रत्येक व्यक्ति को ही अपने को मुक्ति देनी है। क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति ने ही अपने हाथ से अपनी जंजीरें ढाली हैं। कोई दूसरा तुम्हारी जंजीरें तोड़ भी दे, तुम फिर ढाल लोगे जब तक कि तुम्हें ही इस बात का बोध न हो जाए।

मैं संन्यासी उस व्यक्ति को कहता हूं, जिसने यह स्वीकार किया कि मैं उत्तरदायी हूं अपने सारे दुखों के लिए। और जब यह कोई स्वीकार कर लेता है कि मैं

उत्तरदायी हूं, तो आधी समस्या तो हल हो ही गयी। कुछ न किया और आधी मंजिल आ गयी। जैसे ही तुमने यह स्वीकार कर लिया कि मैं जिम्मेवार हूं अपने दुखों का, तुम्हें दूसरी बात भी साफ हो गयी कि चाहूं तो अभी छोड़ दूं ये सारे दुख। और चाहूं तो जो ऊर्जा मैंने दुखों में नियोजित की है, वही ऊर्जा सुखों में नियोजित कर दूं। मेरे हाथ का खेल है।

एक सूफी फकीर जब मरा तो उसके शिष्यों ने पूछा कि हम वर्षों से आपको देख रहे हैं—कुछ तो ऐसे शिष्य थे जो पचास साल से उसके साथ थे—उन्होंने कहा कि एक बात हमें चकित करती रही है, बार-बार हम पूछते भी रहे, आप हंसते हैं और टाल जाते हैं, आपको हमने कभी दुखी नहीं देखा, कभी उदास भी नहीं देखा। जब देखा तब ताजा। जब देखा तब फूल की तरह खिले हुए। जब देखा तब आनंदित। क्या राज है इसका?! उस फकीर ने कहा, अब तो मैं मर ही रहा हूं, तुम्हें राज बता देता हूं। आज से पचास साल पहले मैं बहुत दुखी आदमी था। तुम कुछ भी नहीं हो। तुम क्या ख़ाक! मेरे दुख का कोई अंत नहीं था। मैं चौबीस घंटे दुख में सड़ रहा था। मेरा ढंग ही ऐसा था कि उसमें से दुख ही निकल सकता था। अगर मैं गुलाब के पास भी खड़ा होता तो कांटे गिनता था, फूल नहीं देखता था। और जो आदमी कांटे गिनेगा, उसके हाथ कांटों से बिंध जाएंगे; लहूलुहान हो जाएगा। और जिसके हाथ लहूलुहान हो जाएंगे, आंखें आंसुओं से भर जाएंगी; उसको क्या ख़ाक फूल दिखाई पड़ेंगे! उसे फूल दिखाई भी पड़ जाएं तो भरोसा न आएगा। क्योंकि सवाल यह उठेगा कि हजारों कांटों में फूल खिल कैसे सकता है? जरूर मुझे कुछ भ्रम हो रहा है।

उस फकीर ने कहा कि मैं, लोग तो कहते हैं कि हर काली बदली में भी एक रजत-रेखा होती है, 'एवरी क्लाउड हेज़ ए सिलवर लाइन', मगर मेरी अपनी और ही धारणा थी। मेरी धारणा यह थी कि जहां भी रजत-रेखा होती है, उसके आसपास एक महान काली बदली होती है। वह मेरे देखने का ढंग था। लोग कहते हैं कि दो दिनों के बीच एक रात होती है, अरे गुजर जाएगी! और मैं सोचता था कि यह किस मूरख ने दुनिया बनायी, कि दो रातों के बीच एक छोटा-सा दिन, जो आया और गया—और फिर अंधेरी रात है! मैं दुखों को ही खोजता था। मैं दुख ही चुनता था। इसलिए दुखी था।

फिर एक दिन सुबह मैं उठा और मैंने कहा, कब तक मैं दुखी रहूंगा? कब तक दुखी रहना है? और उस सुबह मुझे यह साफ हो गया कि यह मेरे हाथ में है। मेरा गणित गलत है। मेरा हिसाब गलत है। मैं नकारात्मक को ही सोचता हूं। मैं निराशा को ही चुनता हूं। निषेध ही मेरे चिन्तन का आधार है, विधेय नहीं। उस सुबह मुझे यह साफ हो गया कि अगर मुझे दुखी रहना है तो मैं दुखी रह सकता हूं

और अगर मुझे सुखी रहना है तो मैं सुखी रह सकता हूं। तो मैंने सोचा, आज प्रयोग करके देखूं, आज सुखी ही रहूंगा, जीवन को सुख के ढंग से देखूंगा। और वह आखिरी दिन था मेरे दुख का। उस दिन मैं पूरे चौबीस घंटे सुखी रहा। मैं हैरान हो गया। तब से हर रोज सुबह उठता हूं और अपने से कहता हूं कि बोल, क्या इरादा है? आज सुखी होना है कि दुखी? और हमेशा मैं सुख के पक्ष में ही निर्णय लेता हूं। किसको दुखी होना है! पचास साल हो गये उस बात को गये, अब तो दुख मुझे यूं लगता है जैसे कभी था ही नहीं। कोई दुखस्वप्न देखा हो, जो कब का खो गया। या जैसे किसी कहानी में बात पढ़ी हो, जिससे मेरा कुछ लेना-देना नहीं।

मैं तुमसे यही कहना चाहता हूं। कोई तुम्हारा दुख मिटाएगा नहीं। तुम इस भ्रांति को छोड़ दो। इसी भ्रांति के कारण तुम दुख में सड़ रहे हो। जा कर मंदिर में प्रार्थना करते हो कि हे प्रभु, हे तारणकर्ता, हरो मेरे दुख! तुम जरा गौर से तो सोचो, इसका मतलब यह हुआ कि उसने दिया होगा—तो ही हर सकता है। उसने बनाया होगा—तो ही मिटा सकता है। अगर बनाने वाला वह नहीं है तो मिटाने वाला वह कैसे हो सकेगा? और अगर तुम बनाने वाले हो तो वह लाख मिटाये, तुम फिर-फिर वही कर लोगे। क्या भेद पड़ेगा? तो लोग कह रहे हैं कि हम तो पापी हैं, हम तो दुखी हैं और तुम तो महान हो और तुम्हारी करुणा महान है, दया करो, अब दुख से छुटकारा दिलाओ। मगर ये प्रार्थनाएं चलती रहती हैं और दुख भी बनता रहता है; कहीं कोई प्रार्थना का परिणाम नहीं होता।

यह सवाल प्रार्थना का नहीं, बोध का है।

जो लोग दुखी हैं, वे स्वयं जिम्मेवार हैं। लेकिन आदमी ने हजार-हजार तरकीबों से अपनी जिम्मेवारी टालने की कोशिश की है। तरकीबें बदलती रहीं, आदमी वही-का-वही, दुख वही-का-वही। पहले आदमी कहता था, विधि का विधान है, क्या करें, किस्मत में लिखा है। यह तरकीब हुई। करते तुम हो और कहते हो, विधाता ने लिख दिया, अब हम करें क्या? खोपड़ी में लिख दिया! खोपड़ी में कुछ भी नहीं लिखा हुआ है। खोपड़ी बिलकुल खाली है। कोई लिखावट नहीं है। मैंने लाखों खोपड़ियां पढ़ी हैं, कोई लिखावट नहीं है। मगर तरकीब थी पुरानी कि विधि का विधान है, विधाता ने लिख दिया। विधाता क्यों लिखेगा? विधाता कोई पागल है, विक्षिप्त है कि तुम्हारा दुख लिख देगा कि प्रभु की मर्जी! प्रभु है यह? कि तुम्हें सताने में रस लेने वाला कोई पागल है? कि इसके कारण इतना सारा दुख हो रहा है।

फिर यह बात पुरानी पड़ गयी। तो कार्ल मार्क्स ने कहा कि समाज की व्यवस्था! क्या कर सकता है आदमी? आर्थिक व्यवस्था! राजनैतिक व्यवस्था! यह समाज है जो दुख पैदा कर रहा है। लोगों को यह बात जंची। लोगों को हमेशा यह बात

जंचती है कि कोई और जिम्मेवार हो। यह बात अखरती है कि कोई कहे कि तुम जिम्मेवार हो। बुद्ध पसंद नहीं पड़े, जीसस पसंद नहीं पड़े, सुकरात पसंद नहीं पड़ा, लेकिन कार्ल मार्क्स पसंद पड़े। आधी दुनिया कम्युनिस्ट हो गयी। और बाकी दुनिया भी कम्युनिस्ट होने के रास्ते पर है। देर-अबेर की बात है। आज नहीं कल, कल नहीं परसों। लेकिन रास्ता वही है। क्योंकि अब पुराना ढंग विधि-विधान का तो खतम हो गया, पुराना हिसाब कि कर्मों के कारण हम फल भोग रहे हैं, पिछले जन्मों में बुरे कर्म किये थे, इसलिए अब फल भोग रहे हैं। तो पिछले जन्मों में क्यों बुरे कर्म किये थे? वह उसके पिछले जन्म में, उसके कारण। और उस जन्म में क्यों किये थे? वह उसके पिछले जन्म में। तो जरा यह भी तो सोचो कि पहला जन्म कभी हुआ था, उसमें क्यों बुरे काम किये थे? उसके पहले तो कोई जन्म न था। मगर ये तरकीबें टालने की। अपने कंधे से किसी तरह बात दूसरे पर चली जाए। यह दुख को बचाने का उपाय है, यह सुरक्षा है, यह कवच है।

मार्क्स ने समझा दी नयी तरकीब। मार्क्स समझता है कि उसने कोई क्रांति ला दी! कुछ क्रांति नहीं लायी, सिर्फ शब्द बदल दिये। विधि-विधान न रहा, कर्म का सिद्धांत न रहा, समाज की आर्थिक और राजनैतिक व्यवस्था जिम्मेवार हो गयी। आदमी फिर वहीं-के-वहीं। तो रूस में तुम सोचते हो लोग सुखी हो गये हैं? चीन में सुखी हो गये हैं? जरा भी सुखी नहीं हो गये हैं। हां, इतना जरूर हो गया है कि अब अपने दुख की बात भी नहीं कर सकते हैं——इतने दुखी कर दिये गये हैं। कि अब दुख है, यह कहने की भी हिम्मत नहीं। अब दीवालों को कान हैं। अब जिसने कहा दुख है, उसका फैसला कर दिया जाएगा। उसका खातमा कर दिया जाएगा। अब तो कितने ही दुखी रहो, कहना तो यही कि सब सुख ही सुख है। अपनी पत्नी से भी पति डरता है कहने में, क्योंकि पत्नी भी स्त्रियों के कम्युनिस्ट दल की सदस्या है। अपने बच्चों से बाप डरते हैं कहने में, क्योंकि बच्चे बच्चों की कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्य हैं। वे जाकर खबर दे देंगे। और हर एक को समझाया जाता है, बच्चों को समझाया जाता है कि साम्यवाद सबसे ऊपर है, तुम्हारे माता-पिता अगर कोई खिलाफ बात करते हों, फौरन खबर करो। पत्नियों को समझाया जाता है कि पति तो सांयोगिक बात है, असली चीज साम्यवाद है, समाजवाद है; सर्वोपरि बात वही है। अगर पति कुछ खिलाफ बात करते हों, खबर करो। हर एक घर में जासूस बैठ गये। दुख भारी है। लेकिन कोई कुछ कह नहीं सकता, कोई कुछ बोल नहीं सकता।

मैंने सुना कि कुत्तों की एक प्रदर्शनी थी पेरिस में। रूसी कुत्ते भी भाग लेने आए थे। फ्रेंच कुत्तों ने पूछा कि भई, रूस के कुछ हालचाल कहो! बड़ी मुश्किल से रूसियों से मिलना होता है! तो कुत्तों ने कहा, आनंद ही आनंद है। सुख ही सुख है। स्वर्ग

है। लेकिन जब प्रदर्शनी खतम होने लगी तो रूसी कुत्तों ने फ्रेंच कुत्तों से कहा कि कोई तरकीब बताओ कि अब हमें रूस न जाना पड़े। उन्होंने कहा, अरे, स्वर्ग ही स्वर्ग है, सुख ही सुख है, रूस क्यों नहीं जाना चाहते? उन्होंने कहा, और सब तो ठीक है, भौंकने की आजादी बिलकुल नहीं। अब क्या खाक करें सुख का! जहां भौंक ही न सकते हों! और कुत्ते का सबसे बड़ा सुख कि भौंकने की आजादी होनी चाहिए। विचार-स्वतंत्रता! उसने कहा, और सब तो ठीक है——अरे, लाख मक्खन खिलाओ, मगर खा कर भी क्या करेंगे जब भौंक ही नहीं सकते! आत्मा को ही मारे डाल रहे हो। अब जाने की इच्छा नहीं है। यहां कम-से-कम भौंकने की आजादी तो है। वहां गले में सुरसुरी चलती रहती है, मगर दबाए बैठे रहो! संयम साधना पड़ता है। भौंक नहीं सकते।

रूस से लोग बाहर क्या निकल जाते हैं, फिर लौटना नहीं चाहते। कैसा सुख है यह? जो बाहर निकल गया, वह फिर पीछे नहीं लौटता।

इस तरह सुख हो नहीं सकता। यह बात फिर टाल दी गयी। सुख के लिए एक आधारभूत नियम ख्याल में लो, मैं जिम्मेवार हूं अपने दुख का, मैं निर्माता हूं, मैं स्रष्टा हूं। न कोई पिछला जन्म, न कोई भाग्य, न कोई भगवान, न कोई समाज, न कोई व्यवस्था। मैं, मेरा अहंकार, मेरी मूढ़ता, मेरा अज्ञान, मेरी मूर्च्छा! कष्ट होता है इस बात को स्वीकार करने में। पीड़ा होती है इस बात को स्वीकार करने में। मगर इस पीड़ा को जो स्वीकार कर लेता है, उसके जीवन में क्रांति की शुरुआत है। क्योंकि यह आधा पहलू। जैसे यह समझ में आ गया, तब तुम्हारे हाथ में है; बदल दो! बदल दो जिंदगी का ढंग फिर। मोड़ दो नाव। फिर कोई तुम्हें रोकने वाला नहीं है।

ऐसे ही मैंने आनंद जाना है।

जिंदगी के सब पहलू तुम्हारे हाथ में हैं, तुम मालिक हो। यह मैं अपने अनुभव से कहता हूं। यह मैं किसी शास्त्र की बात नहीं दोहरा रहा हूं, यह मेरे स्वयं का अनुभव है। और इसलिए मैं जरा भी स्वीकार नहीं कर सकता, कोई लाख कहे कि कोई और जिम्मेवार है। मैं भी दुखी था, जैसे तुम दुखी हो, जैसे कोई भी दुखी है; लेकिन जिस दिन यह बात समझ में आ गयी कि मैं ही जिम्मेवार हूं, उसी दिन से क्रांति हो गयी। उसी दिन से महल में उजाला हो गया। उसी दिन से दीया जल गया।

यह प्रार्थना ऊपर-ऊपर से तो अच्छी लगती है, पूर्णानंद——

न त्वहं कामये राज्यम् न स्वर्गं नापुनर्भवम्।
कामये दुखःतप्तानाम् प्राणिनाम् आर्तिनाशनम्॥

मैं अपने लिए राज्य नहीं चाहता, न स्वर्ग, न मोक्ष, मैं तो यही चाहता हूं कि दुख से तपे हुए प्राणियों की पीड़ा का नाश हो। यह किसी अज्ञानी की प्रार्थना है।

किसी ने भी कही हो, जो जानता नहीं, उसने कही है। नहीं तो प्रार्थना करने का सवाल नहीं है।

और दूसरी बात ख्याल रखो कि तुम अगर स्वयं अभी मुक्त नहीं हुए हो, तुमने अगर स्वयं अभी अपने भीतर का स्वर्ग नहीं जाना है, अगर तुमने अभी तक स्वयं के भीतर का राज्य नहीं पाया है, तो तुम क्या खाक किसी और को बोध दे सकोगे! जिसके पास आनंद है, वही आनंदित होने का सूत्र दे सकता है। और जिसके पास प्रकाश है, वही तुम्हें भी प्रकाशित होने का मार्ग सुझा सकता है। क्योंकि उसके जीवन में कैसे अंधकार प्रकाश बना, वह राज को जानता है; वह उस कीमिया को पहचानता है; वह तुम्हें भी कीमिया दे सकता है। प्रार्थनाएं सिर्फ अज्ञानी करते हैं। प्रार्थनाओं से कुछ भी नहीं होता।

मेरे जीवन-दर्शन में प्रार्थना का दूसरा ही अर्थ है। मेरे जीवन-दर्शन में प्रार्थना का अर्थ है, वह व्यक्ति प्रार्थना करने में समर्थ है जो परम आनंद को उपलब्ध हो गया है। उसकी प्रार्थना क्या होगी? उसकी प्रार्थना होगी : धन्यवाद, अनुग्रह का भाव; इस समस्त अस्तित्व के प्रति एक परम अनुग्रह। वह झुक जाएगा। इतना दिया है! चांद-तारों से उसकी झोली भर दी। सारा आकाश उसका हो गया। सब उसका है। प्रतिपल स्वर्णमय हो उठा है। हर घड़ी रहस्य के नये द्वार खुलते चले जाते हैं। उसकी प्रार्थना मांग नहीं होगी। हमारी प्रार्थनाएं तो मांग होती हैं!

प्रार्थना शब्द का मतलब ही मांगना हो गया। मांगने वाले को हम प्रार्थी कहते हैं। और ठीक ही, क्योंकि प्रार्थना लोग करते ही इसीलिए हैं कि कुछ मांगना है। अब यह आदमी भी यूं तो कह रहा है कि न मुझे राज्य चाहिए, न स्वर्ग, न मोक्ष, लेकिन दूसरों को दुखों से मुक्त करो! मांग तो जारी है। और इस भ्रांति में मांग कर रहा है दूसरों के लिए कि इस बहाने अपना मोक्ष तय हो जाएगा। न हुआ मोक्ष तय तो कम-से-कम स्वर्ग तो हो ही जाएगा। न हुआ स्वर्ग तो कम-से-कम राज्य तो पक्का ही है। क्योंकि कहा है कि परोपकार पुण्य है। परोपकार कर नहीं रहा, सिर्फ प्रार्थना कर रहा है परमात्मा से कि तुम परोपकार करो। परमात्मा को थोड़ी सलाह दे रहा! जैसे परमात्मा को खुद बोध न हो। जैसे इन सज्जन को परमात्मा को बोध देना आवश्यक हो। ये जरा परमात्मा को जगा रहे हैं कि कुछ करो! क्या सोए पड़े हो! उठो, लोग दुख से भरे हैं, इनको मुक्त करो! इनको दुख से छुटकारा दिलाओ! और फिर स्वभावतः जब मैंने तुम्हें इतनी कीमती सलाह दी, तो अब कहना क्या है, मतलब तुम खुद ही समझ लो! कि स्वर्ग, राज्य, मोक्ष, . . . जो मर्जी हो! भीतर छिपी हुई वासना है। तुम्हारी प्रार्थना वासना ही हो सकती है। सिर्फ बुद्धों की प्रार्थना वासना नहीं होती, वह धन्यवाद होती है। और जब प्रार्थना धन्यवाद होती है, तब उसमें सौंदर्य और, उसकी महिमा और!

तीसरा प्रश्न : भगवान, मैं एक पच्चीस वर्षीय अविवाहित युवक हूं। बचपन से मेरे मन में जीवन को महानता के शिखरों पर ले चलने के आदर्श उथल-पुथल मचाते रहे हैं। बाहु बांधे, सीना ताने, गेरुवा वस्त्रों में लिपटे स्वामी विवेकानंद की जगमगाती मूर्ति मेरे मानस-पटल पर सदा अंकित रहती है और उन जैसा बनने की तथा सम्पूर्ण जगत में धर्म-पताका फहराने की भावनाएं मेरे हृदय में हिलोरें लेती हैं। लेकिन जब मैं अपनी वस्तुस्थिति को देखता हूं तो निराश हो जाता हूं कि ऐसा कुछ भी सम्भव नहीं है। वे जन्मजात महान पुरुष थे, मैं उनके समकक्ष कभी खड़ा नहीं हो सकता।

अब मैं आपके यहां आया हूं। क्या मेरी मनोकामना पूरी होगी? मेरे जैसे अनेकों और भी मेरे मित्र हैं, जिनके यही भाव हैं और जो जीवन में कुछ सार्थक करना चाहते हैं। भगवान, आपकी क्या देशना है?

अखिलेश! एक उम्र होती जब आदमी का मन सपने देखने में बड़ा रस लेता है। तुम भी सपने देख रहे हो। विवाहित हो जाओ! सब चौकड़ी भूल जाओगे! विवाह अद्‌भुत औषधि है। इस औषधि ने किस-किस के छक्के नहीं छुड़ा दिये! सब भूल-भाल जाओगे।

प्रेमिका ने अपने प्रेमी के सीने पर सिर रखते हुए बड़े प्रेम से कहा, 'डार्लिंग, मैं शादी के बाद तुम्हारे सारे दुख अपना लूंगी।'

'पर मुझे तो कोई दुख है ही नहीं,' प्रेमी ने कहा।

'मैं अब की नहीं बल्कि शादी के बाद की बात कर रही हूं', प्रेमिका ने उत्तर दिया।

एक बार शादी तो हो जाए!

अविवाहित हो, इसलिए इस तरह की व्यर्थ की बातें मन में उठ रही हैं। और ये सब बातें व्यर्थ की हैं, बुनियादी रूप से गलत हैं। एक-एक बात गलत है।

तुम कहते हो, 'बचपन से मेरे मन में जीवन को महानता के शिखरों पर ले चलने के आदर्श उथल-पुथल मचाते रहे हैं।' यह सब अहंकार की भाषा है। यह महानता और यह आदर्श और शिखरों पर चढ़ना, यह सब अहंकार है! लेकिन जवानी में अहंकार बड़ी प्रगाढ़ता से पकड़ता है। और बचपन तो सपनों में बीतता ही है। बचकानेपन का नाम सपने देखने के सिवाय और कुछ भी नहीं। जवान होते-होते वे ही सपने तुम्हारे भीतर जोर से उथल-पुथल मचाने लगते हैं। अच्छे-अच्छे शब्द तुम उन्हें पहना देते हो : आदर्श! मगर शिखरों पर पहुंचने की इतनी आकांक्षा क्यों? घाटियों में क्या खराबी है? घाटियों का अपना सौंदर्य है।

महान बनने की इतनी आकांक्षा क्या है? दूसरों से श्रेष्ठ अपने को सिद्ध करना

है। और जो दूसरों से अपने को श्रेष्ठ करना चाहता, वह सिर्फ अभिमान से पीड़ित है और कुछ भी नहीं। लेकिन इसे स्मरण रखना कि हमारा सारा जीवन का जो-जो गलत है, वह भी बड़े-बड़े अच्छे सुंदर वस्त्रों में आता है, ताकि पहचान में न आ सके। मुखौटे लगा लेता है। हर युवक अहंकार की महत्त्वाकांक्षा से पीड़ित होता है। और उसको अच्छे वस्त्र पहना देता है।

तुम कहते हो, 'बाहु बांधे, सीना ताने, गेरुवा वस्त्रों में लिपटे स्वामी विवेकानंद की जगमगाती हुई मूर्ति मेरे मानस-पटल पर सदा अंकित रहती है और उन जैसा बनने की तथा सम्पूर्ण जगत में धर्म-पताका फहराने की भावनाएं मेरे हृदय में हिलोरें लेती हैं।' तुम्हें धर्म का कुछ पता है? कि तुम धर्म की पताका ही फहरा दोगे! तुम्हें यह भी मालूम है कि विवेकानंद को भी धर्म का कुछ पता था? कि पताका फहराते रहे! तुम्हें धर्म का पता नहीं, तुम कैसे पहचानोगे कि विवेकानंद को भी धर्म का पता था या नहीं? हां, सीना ताने, बाहुएं फैलाए, अकड़ कर खड़े हुए विवेकानंद की तस्वीर तुमने देखी होगी, वह प्रभावित की होगी। तो वैसा ही करना हो तो दंड-बैठक लगाओ, भैया! धर्म से क्यों? धर्म ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा? अंडा-मांस-मछली खाओ,... विवेकानंद मांसाहारी थे; और दंड-बैठक में भरोसा था।

और यह भी ख्याल रखना, तैंतीस साल की उम्र में मर गये। ज्यादा दंड-बैठक लगा ली, सो जल्दी खतम हो गये! पहलवान अक्सर गलत वक्त पर मरते हैं और बुरी बीमारियों से मरते हैं। तुमने गामा का नाम सुना? मरे क्षय रोग से। भयंकर सड़ कर मरे। दुनिया के सारे पहलवानों की दुर्गति होती है। होनी ही है। क्योंकि शरीर के साथ जबरदस्ती करने का ही नाम तो पहलवानी है। दंड-बैठक क्या है? मारो जबरदस्ती! भुजाओं को जबरदस्ती किसी भी तरह खींचतान करो। तस्वीरें तुम देखते हो? पंजाब-केसरी और मिस्टर यूनिवर्स, जरा उनकी तस्वीरें देखते हो? ये तुम्हें स्वाभाविक आदमी की तस्वीरें मालूम पड़ती हैं? ये आदमी की तस्वीरें मालूम पड़ती हैं कि जंगली जानवरों की? और इनकी बुद्धि का कभी तुम हिसाब रखते हो? अब जैसे मुहम्मद अली जैसे आदमी के पास बुद्धि जैसी भी कोई चीज होती है? अरे, बुद्धि ही हो तो घूंसेबाजी में जिंदगी कोई गंवाए! मारे और मार खाए! सार क्या है? मगर तुम्हें विवेकानंद की तस्वीर बहुत जंची। भारत के सारे युवकों को विवेकानंद की तस्वीर बहुत जंचती है। क्योंकि विवेकानंद ने भारत के अहंकार को खूब पोषित किया। बड़ी घोषणा कर दी सारे जगत में कि भारत महान है, भारत का धर्म महान है। और धर्म का विवेकानंद को कोई पता नहीं था! धर्म का पता रामकृष्ण को जरूर था। रामकृष्ण वहीं हैं जहां बुद्ध, जहां महावीर, जहां कृष्ण, जहां पतंजलि। विवेकानंद की कोई हैसियत नहीं है। मगर तुम रामकृष्ण से प्रभावित नहीं। क्योंकि यह बिचारा न तो पहलवान जैसा लगता; सीधा-सादा आदमी,

ग्रामीण, इससे कौन प्रभावित होने वाला है! यह विवेकानंद लट्ठ लिये खड़े हैं! धर्म की पताका फहरा रहे हैं! ये हिन्दू अहंकार के प्रतीक हो गये। ये हिन्दू दंभ के समर्थक हो गये। और इन्होंने जो कहा है, उसमें कुछ भी मूल्यवान नहीं है। उसमें कुछ भी अनुभव की बात नहीं है। हां, शास्त्रों की तोतारटंत बातें हैं। और शास्त्रों के लिए आधुनिक तर्क देने की कोशिश है। शास्त्रों को नया तार्किक लिबास पहनाने की चेष्टा है। मगर बचकानी। क्योंकि खुद का कोई अनुभव नहीं है।

विवेकानंद को मरने तक कोई परम अवस्था का बोध नहीं हो गया था। लेकिन अच्छे संगठक थे। और तुम जैसे युवकों की ही कतार इकट्ठी कर ली थी। न उन्हें पता था धर्म का, न उन युवकों को कोई पता था धर्म का। इसलिए रामकृष्ण की जो महिमापूर्ण देशना थी, वह विवेकानंद के कारण नष्ट हो गयी। रामकृष्ण को बहुत गलत आदमी मिल गया। इस दुनिया में बहुत बार ऐसा हुआ है--जीसस के साथ ऐसा हुआ, गलत आदमी मिल गये; मजबूरी थी, कोई और उपलब्ध न थे; जो मिले, उन्हीं से बात करनी पड़ी। और उन गलत लोगों ने ईसाइयत को जन्म दिया। जो कि जीसस से बिलकुल विपरीत है। जिसका जीसस से कोई भी संबंध नहीं है।

महावीर को गलत लोग मिल गये। महावीर थे क्षत्रिय--जैनों के चौबीस तीर्थंकर क्षत्रिय हैं। जैन धर्म मूलतः ब्राह्मणों की अकड़ और दंभ के खिलाफ क्षत्रियों की बगावत थी। लेकिन महावीर के जो ग्यारह गणधर हैं, उनके प्रमुख शिष्य, वे ग्यारह के ग्यारह ब्राह्मण पंडित हैं। उन्होंने महावीर की सब स्थिति पर पानी फेर दिया। महावीर ने क्रांति की, उन्होंने अंगारा बुझा दिया। वह वापिस पुराना ब्राह्मणवाद लौट आया। कुछ फर्क न पड़ा; महावीर को उन्होंने मटियामेट कर दिया।

कभी-कभी संयोग से ऐसा हुआ है कि ठीक व्यक्ति मिले। जैसे, लाओत्सू को च्वांगत्सू जैसा शिष्य मिला; जो उसी कोटि का है जिस कोटि के लाओत्सू। और च्वांगत्सू को लीहत्सू जैसा शिष्य मिला, जो उसी कोटि का है जैसा च्वांगत्सू। तो तीन पीढ़ियों तक ज्योति यूं जली जैसी जलनी चाहिए। बुद्ध को बड़े प्यारे शिष्य मिले। मंजुश्री, सारिपुत्त मौद्गलान, महाकाश्यप, अद्भुत शिष्य मिले! और इसके कारण कुछ सदियों तक--कम-से-कम पांच सौ वर्षों तक बुद्ध-धर्म एक जीवित धर्म बना रहा। बुद्ध के जाने के बाद भी कोई-न-कोई बुद्ध होता रहा। लेकिन उस बात को भी अब बहुत समय हो गया, दो हजार साल बीत गये--वह पांच सौ वर्ष को भी दो हजार साल बीत गये--अब तो सड़े-गले लोगों के हाथ में बुद्ध-धर्म भी पड़ा हुआ है। मगर रामकृष्ण को बिलकुल ही गलत लोग मिले। विवेकानंद उनके प्रधान बन गये। विवेकानंद मूलतः एक राजनैतिक व्यक्ति हो सकते थे। उनके पास राजनैतिक होने की क्षमता थी। कायस्थ थे।

कायस्थ शब्द बड़ा प्यारा है। काया में स्थित। सो निश्चित ही सीना ताने,

मुट्ठियां बांधे, गेरुवा वस्त्रों में लिपटे, डंडा पकड़े––कायस्थ का यह लक्षण ही होने वाला है ! यह कोई स्वस्थ आदमी नहीं थे, कायस्थ थे । शरीर में स्थित थे । मगर तुम शरीर से ही प्रभावित होते हो, क्योंकि तुम भी शरीर में स्थित हो । अखिलेश, तुम कायस्थ तो नहीं ?

लेकिन ध्यान रखना, कायस्थ ही शूद्र का दूसरा नाम है । जो भी शूद्र है, वह कायस्थ । और जो भी कायस्थ है, वह शूद्र । वह किसी जाति में पैदा हो, किसी वर्ग में पैदा हो, इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता । काया में स्थित आदमी का नाम शूद्र है। शूद्र का मतलब ही यह होता है कि जिसको अभी अपने भीतर के ब्रह्म का बोध नहीं हुआ ।

विवेकानंद को कोई बोध नहीं है । रामकृष्ण को बोध है । मगर मजा ऐसा है कि लोग रामकृष्ण से प्रभावित नहीं हैं । रामकृष्ण से प्रभावित होने के लिए तुम्हें ध्यानस्थ होना होगा, तब तुम्हें रामकृष्ण समझ में आएंगे । विवेकानंद से प्रभावित होने के लिए तुम्हें ध्यान में जाने की कोई जरूरत नहीं है; बस, तुम्हारे अहंकार में लपटें उठनी चाहिए, तुम विवेकानंद से प्रभावित हो जाओगे । और विवेकानंद की बातें दो कौड़ी की हैं, रामकृष्ण की बातें हीरों जैसी हैं––हीरों से भी तौलो तो हीरों से ज्यादा वजनी हैं ।

रामकृष्ण के जीवन का बड़ा दुर्भाग्य यह है कि विवेकानंद के हाथ में उनकी परम्परा पड़ गयी । और जो सत्य एक बार फिर उतरा था, वह खो गया । इसलिए अब रामकृष्ण के पीछे चलने वाले जो संन्यासी हैं, उनका रामकृष्ण से कुछ लेना-देना नहीं है, वह सब विवेकानंद से प्रभावित हैं। विवेकानंद का कोई भी मूल्य नहीं है । तर्कशास्त्री हैं । कहां रामकृष्ण––तर्कातीत, और कहां विवेकानंद––तर्कशास्त्री ! कहां रामकृष्ण––सारे धर्मों का अनुभव किये हुए !

रामकृष्ण ने बड़ा अनूठा प्रयोग किया इस पृथ्वी पर । सारे धर्मों का अनुभव किया । हिन्दू की तरह साधना की, मुसलमान की तरह साधना की, बौद्ध की तरह साधना की । ऐसा कभी किसी ने भी नहीं किया था । क्योंकि एक मार्ग से जो पहुंच गया, अब वह क्यों दूसरे मार्गों पर जाए ? लेकिन रामकृष्ण ने बड़ी अनुकंपा की । पहुंच कर भी वह फिर लौट-लौट कर घाटी में आए और दूसरे मार्गों से चढ़े, ताकि यह दुनिया से कह सकें अनुभव के आधार पर कि सभी रास्ते एक ही शिखर पर पहुंचा देते हैं । ऐसी बात महात्मा गांधी अधिकारी नहीं हैं कहने के, क्योंकि महात्मा गांधी किसी रास्ते से भी शिखर पर नहीं पहुंचे हैं अभी । रामकृष्ण अधिकारी हैं कहने के । और यह कोई सिर्फ बौद्धिक समन्वय की बात नहीं थी कि बैठ कर और सोच लिया कि सभी धर्म समान हैं । अच्छी बात लगती है कि सभी धर्म समान हैं, सभी धर्मों में सत्य है; उदारता मालूम होती है, सहिष्णुता मालूम होती है । रामकृष्ण का

यह निजी अनुभव था कि सभी धर्मों से व्यक्ति वहीं पहुंच जाता है । यह पहुंच कर, प्रयोग करके ।...कैसे-कैसे अनूठे प्रयोग किये !

बंगाल में सखी-सम्प्रदाय है, जिसके मानने वाले मानते हैं के हम सखियां हैं और परमात्मा कृष्ण । तो वे रात को जब सोते हैं, तो स्त्रियों के कपड़े पहन लेते हैं और पास में कृष्ण की मूर्ति रख कर सोते हैं, जैसे कोई पत्नी अपने पति को छाती से लगा कर सोए । रामकृष्ण ने उस पंथ की भी साधना की । और तब एक अनूठी घटना घटी, अकल्पनीय घटना घटी । क्योंकि रामकृष्ण जैसा व्यक्ति,...वे तो सब सखियां बनउव्वल थीं; वे जो सखी-सम्प्रदाय के मानने वाले थे, वे तो रात में अपना कपड़ा बदल कर––कोई देखे भी नहीं और धर्म की क्रिया भी पूरी हो गयी––और कृष्ण की मूर्ति लगा कर सो गये––मगर जानते तो वे भलीभांति हैं कि वे पुरुष हैं और यह मूर्ति ही है, मगर एक परम्परा है, बाप-दादे भी करते रहे तो वे भी कर रहे हैं । लेकिन रामकृष्ण ने तो जो भी किया, समग्रता से किया । वे तो दिन में भी फिर स्त्रियों के ही कपड़े पहनते थे । फिर क्या रात और दिन का फर्क ! फिर तो दिन में भी कृष्ण की मूर्ति को अपनी छाती से लगाए रखते थे ।

और एक अनूठा चमत्कार हुआ, जिसका चिकित्सकों ने भी अध्ययन किया ।... अभी रामकृष्ण को हुए बहुत दिन नहीं हुए, अंग्रेज चिकित्सकों ने भी जाकर अध्ययन किया ।...रामकृष्ण के स्तन बढ़ गये । स्त्रियों जैसे हो गये । तुमने कुछ तस्वीरें देखी होंगी रामकृष्ण की, जिनमें स्तन बिलकुल स्त्रियों जैसे हैं । ऐसी भाव की दशा थी कि जो सोचा वह होने लगा । इतना ही नहीं, रामकृष्ण को मासिक धर्म शुरू हो गया । जो कि बड़ी अपूर्व घटना है ! और रामकृष्ण चलते भी थे तो स्त्रियों जैसे चलने लगे । आसान नहीं है स्त्रियों जैसा चलना । बड़ा अभ्यास करना पड़े, तब भी मुश्किल है, क्योंकि शरीर की रचना अलग-अलग है । स्त्री के पेट में बच्चे के लिए गर्भ का एक विशेष स्थान है, उसके कारण उसकी हड्डियां, मांस-मज्जा पेट की अलग ढंग की हैं । पुरुष की अलग ढंग की हैं । इसलिए स्त्री जब चलती है तो वह पुरुष जैसा नहीं चल सकती । न पुरुष स्त्री जैसा चल सकता है । लाख स्त्री को पुरुष जैसे कपड़े पहना दो, मगर वह चलेगी तो स्त्री जैसी ही । और पुरुष को तुम स्त्रियों जैसे कपड़े पहना दो, वह चलेगा तो पुरुष जैसा ही । क्योंकि उसकी हड्डी, मांस-मज्जा की व्यवस्था तो नहीं बदल जाती । उसका अस्थि-पंजर अलग ढंग का है । दोनों को दौड़ा दो, फौरन पता चल जाएगा कौन स्त्री है, कौन पुरुष । स्त्री की दौड़ से ही पता चल जाएगा कि यह स्त्री है ।

लेकिन रामकृष्ण ऐसे चलने लगे, ऐसे दौड़ने लगे, जैसे स्त्रियां दौड़ती हैं । चाल से पहचानना मुश्किल हो गया । उनकी आवाज भी बदल गयी । वह जो पुरुष की आवाज है, उसमें भेद पड़ गया । स्त्रियों जैसी हो गयी । बारीक हो गयी । नाजुक

हो गयी। छह महीने उन्होंने साधना की और छह महीने बाद उन्होंने घोषणा की कि यह मार्ग भी सत्य है।

मार्ग छोड़ देने के बाद भी छह महीने तक उनके स्तन बड़े रहे, धीरे-धीरे-धीरे छोटे हुए; और धीरे-धीरे उनकी चाल बदली और धीरे-धीरे उनकी वाणी वापस आयी और धीरे-धीरे उनका मासिक धर्म बंद हुआ।

विवेकानंद के जीवन में कोई अनुभव नहीं है। हां, विवेकानंद ने सुंदर वक्तव्य दिये। मगर सुंदर वक्तव्य देने में क्या रखा है! कोई मूल्य नहीं। जरा-सी भी जिसके पास बुद्धि है, दे सकता है। असली सवाल है अनुभव का।

छोटा-सा अनुभव विवेकानंद को समाधि का हुआ था, इसका उल्लेख है। मगर उसका भी उन्होंने गलत उपयोग किया तत्क्षण।

रामकृष्ण के आश्रम में, दक्षिणेश्वर में कालू नाम का एक भक्त था। गरीब आदमी, देहाती आदमी। और भक्ति उसकी ऐसी थी कि बेचारे को दिन भर लग जाता था। क्योंकि उसने अपने कमरे में सब देवी-देवताओं की मूर्तियां रख छोड़ी थीं। जो मिल गयी मूर्ति, जिसने कह दिया कि यह देवता की मूर्ति है, वही ले आए और रखता जाए! उसके कमरे में खुद को सोने को जगह नहीं रही थी––बाहर सोता था। क्योंकि कमरे में तो देवी-देवताओं ने अड्डा जमा लिया था। और वह सबकी पूजा करता और भाव से पूजा करता! ऐसा नहीं था कि जल्दी-जल्दी ली थाली और इधर से उधर घुमा कर दो मिनिट में बाहर आ गये। नहीं तो तैंतीस करोड़ देवताओं की भी पूजा करनी होती तो पांच मिनिट में निपट जाती है। सबके सामने जरा-जरा सी थाली घुमायी––कोई रोक तो सकता नहीं कि ऐ, अब कहां जा रहे हो, पूरी पूजा करो! राम-राम कहते या मंत्र गुनगुनाते हुए सबके सामने थाली घुमा दी, जरा-सा, सबको सुगंध दे दी, सबके सामने जल्दी से प्रसाद लगा दिया, एक-एक फूल सबकी खोपड़ी पर रख दिया, निपटारा हो गया। मगर वह बड़े भाव से पूजा करता––एक-एक मूर्ति की। कभी-कभी शाम हो जाती, दिन भर पूजा में निकल जाता। और जब पूजा पूरी हो तभी तो भोजन करे बेचारा! और कभी-कभी ऐसा होता, क्योंकि कभी दिन छोटे होते हैं, कभी दिन बड़े होते; जब दिन छोटे होते तो पूजा में ही दिन निकल जाता, तो रात को वह भोजन न करता। विवेकानंद को बड़ी हंसी आती थी इस पर कि यह कैसा मूरख है! कई दफा उसको समझाया कि तू किस पागलपन में पड़ा है। अरे, इन पत्थरों में कुछ भी नहीं है। मगर उसकी आंखों से आंसुओं की धार बहने लगती। वह कहता, तुम्हें न होगा, मगर मुझे तो बड़ा आनंद आता है। विवेकानंद कहते, फेंक इनको गंगा में। अरे, बचाना ही है तो एक बचा ले! मगर वह कहता कि सबसे मेरा प्रेम है और सभी तो उसके रूप हैं, किसको फेंकूं, किसको बचाऊं? मैं निर्णय न कर पाऊंगा।

विवेकानंद को रामकृष्ण ने ध्यान की विधि दी थी कि साक्षीभाव से अपने विचारों को देखते रहो। वह उस ध्यान की विधि को कर रहे थे, एक दिन ऐसा घटा कि साक्षीभाव की थोड़ी-सी झलक आयी, विचार समाप्त हो गये। जरा-सी देर को पर्दा जैसे हटा। जैसे झरोखा खुला। एक किरण आयी। मगर देखते हो, उस किरण के आते ही उनको क्या ख्याल आया? उनको तत्क्षण ऐसा लगा कि इस समय अगर मैं कालू को विचार संप्रेषित कर दूं कि उठा अपनी सारी मूर्तियों को और बांध और फेंक दे गंगा में, तो जरूर वह फेंक देगा, क्योंकि यह समाधिस्थ व्यक्ति का विचार बड़ा बलशाली हो जाता है। सो उन्होंने तत्क्षण यह किया।...समाधि का यह उपयोग किया! शायद इससे ज्यादा मूढ़तापूर्ण उपयोग कभी किसी व्यक्ति ने ध्यान का नहीं किया है। होना तो यह चाहिए था कि इस किरण के देखने के क्षण में उनको कालू का अर्थ समझ में आ जाता।... कालू भक्त था! परम भक्त था! और उसके अनुभव की दुनिया थी! वह गद्गद था और आनंदित था! क्यों दूसरा उसमें बाधा दे? उसके जीवन में रसधार बह रही थी! मगर उनको बड़ी अड़चन थी। रामकृष्ण को कोई अड़चन न थी, उन्होंने कभी कालू को नहीं कहा था, बल्कि विवेकानंद को बहुत बार समझाया था कि कभी कालू को छेड़ना मत। वह सीधा-सादा आदमी है, वह अपनी मस्ती में मस्त है, उसके लिए यही रास्ता है। तुम उसके साथ तर्क-वितर्क मत करना। उसका नुकसान मत कर देना! मगर उनको जैसे ही यह पहला अनुभव हुआ, जरा-सा द्वार खुला समाधि का, कि उन्होंने तत्क्षण विचार-प्रेषण किया––यह उपयोग किया!–– कहा कि ऐ कालू, बांध पोटली अपने सब देवी-देवताओं की और फेंक गंगा में!

रामकृष्ण बाहर पंचवटी में बैठे थे। उन्होंने देखा यह सब हो रहा है, कि विवेकानंद के कमरे से यह विचार प्रेषित किया गया है। वह भागे! कालू ने सब पोटली बांध कर, जा ही रहा था गंगा की तरफ, रोका कि कहां जाता है? उसने कहा, सब बेकार है! कोई सार नहीं। आज बात समझ में आ गयी कि गंगा म फेंक आऊं। विवेकानंद ठीक कहते थे। आपने मुझे कभी नहीं कहा। रामकृष्ण ने कहा, तू जरा ठहर! यह तेरा विचार नहीं है। यह तू नहीं बोल रहा है। तू रुक, मैं अभी तुझे बताता हूं।

जा कर विवेकानंद के द्वार पर दस्तक दी, दरवाजा खुला और विवेकानंद को कहा कि यह तूने क्या किया? तूने क्यों कालू को यह विचार भेजा? यह विचार संप्रेषित क्यों किया? यह समाधि का उपयोग है! यह दुरुपयोग हो गया। तो बस, अब इससे आगे समाधि तेरी बढ़ेगी नहीं! मैं तेरी चाबी रखे लेता हूं।

तब कालू को समझ में आया कि यह उसका विचार नहीं था। वह बेचारा अपनी पूजा कर रहा था, सरलचित्त आदमी, यह विचार प्रेषित हो गया, संप्रेषित हो गया। उसके भीतर पहुंच गया। और चूंकि इसमें थोड़ा-सा समाधि का बल था, ध्यान का

बल था, वह एकदम आच्छादित हो गया। उससे कहा रामकृष्ण ने, जा, रख अपनी मूर्तियां, सजा ! यह देख विवेकानंद का विचार था। और विवेकानंद से कहा, क्षमा मांग कालू से। क्षमा मंगवायी। और विवेकानंद से कहा कि बस, यहीं तेरा ध्यान रुका रहेगा। अब आगे नहीं बढ़ेगा।

और वहीं विवेकानंद का ध्यान रुका रहा।

मरने के तीन दिन पहले अपने एक पत्र में उन्होंने लिखा है अपने भक्त को, कि मैं समाधि को अनुभव नहीं कर पाया हूं, अब तक अनुभव नहीं कर पाया हूं, उस दिन जो रामकृष्ण ने चाबी रख ली थी, वह फिर मुझे नहीं मिली। फिर कहां खो गयी है वह चाबी, मुझे पता नहीं चलता। लेकिन मैंने दुरुपयोग किया था, मुझे सजा उसकी मिलनी ही चाहिए !

तुम विवेकानंद से नहीं प्रभावित हो, तुम अपने अहंकार के लिए आभूषण चाहते हो, इसलिए विवेकानंद से प्रभावित हो। और तुम कहते हो, 'उन जैसा बनने की तथा सम्पूर्ण जगत में धर्म-पताका फहराने की भावनाएं हृदय में हिलोरें लेती हैं।' कृपा करो, इन हिलोरों को शांत करो ! कुछ वे पताका फहरा गये, कुछ तुम पताका फहरा देना ! उनके पताका फहराने से क्या हो गया ? और तुम्हारे पताका फहराने से क्या हो जाएगा ? ये सब राजनैतिक आकांक्षाएं हैं। ये नेता बनने की आकांक्षाएं हैं। इनका धर्म से कोई संबंध नहीं—तुम्हें धर्म का क्या पता ? बड़ा मजा यह है कि पताका फहराने का सुख है, मगर धर्म का पता नहीं है। पहले धर्म तो जानो ! फिर पताका अपने से फहर जाएगी फहरनी होगी। नहीं फहरनी होगी नहीं फहरेगी, तुम्हें क्या लेना-देना ! तुम्हारा धर्म तुम्हें अनुभव हो जाए।

अपने को पहचानो, इन व्यर्थ की बकवासों में न पड़ो। और अच्छा ही है कि तुम विवेकानंद नहीं बन सकते, नहीं तो नकली...असली भी कुछ कीमत के न थे, तो नकली तो किस कीमत के होंगे ! वह खुद ही कार्बन कापी थे, तुम कार्बन कापी की कार्बन कापी होओगे। मौलिक होना चाहिए व्यक्ति को। अपने को खोजो कि मैं कौन हूं। किसी और जैसे बनने की कोशिश न करो। और फिर इससे अपराध-भाव पैदा होता है। तुम कहते हो कि वे जन्मजात महान पुरुष थे। कोई दुनिया में जन्मजात महापुरुष नहीं होता। प्रत्येक व्यक्ति समान क्षमता लेकर पैदा होता है। परमात्मा के जगत में कोई अन्याय नहीं है। कोई असमानता नहीं है। तुम उतनी ही क्षमता लेकर पैदा होते हो, जितना बुद्ध, जितने महावीर, जितने कृष्ण। जरा भी कम नहीं, रत्ती भर कम नहीं। लेकिन अपनी संभावनाओं को खोजना होता है। ध्यान में लगो, धर्म की पताका वगैरह फहराने का उपद्रव न करो ! नहीं तो झंडा ऊंचा रहे हमारा, बस उसी तरह के आदमी हो जाओगे।

अब तुम कहते हो, 'अब आपके यहां आया हूं, क्या मेरी मनोकामना पूरी होगी ?'

कभी नहीं ! तुम तो गलत जगह आ गये। यहां मैं किसी के अहंकार को भरने के लिए किसी तरह का सहारा नहीं देता। यहां तो तुम्हारा अहंकार टूटेगा, यहां तो तुम्हारा झंडा बिलकुल गिरा दिया जाएगा—डंडे सहित। यह पागलपन छोड़ो ! नेता बनने का आग्रह छोड़ो !

नेता समझाने लगे, सुनो बुलाकी दास,
सूखा और अकाल से, मत हो कभी उदास।
मत हो कभी उदास, धैर्य रक्खो सुख-दुख में,
कुछ भी नहीं असम्भव, इस वैज्ञानिक युग में।
ले लो ऐनक हरे रंग के शीशे वाली,
जिधर देखिए उधर दिखाई दे हरियाली।

अब तुम्हें पताका ही फहरानी हो तो बात अलग। तो फिर नेता हो जाओगे। और नेता की क्या स्थिति बेचारों की ! यहां देखते तो हो झंडा उठाए कितने लोग घूमते फिरते थे, सब नेता हो गये और क्या परिणाम मुल्क को भोगना पड़ रहा है !

बंदर एक बता रहा, रख कर मुंह पर हाथ,
चुप्पी से बनते चतुर, औंधू-भौंधू नाथ।
औंधू-भौंधू नाथ, सुनो साहब-सरदारो,
एक चुप्प से हार जायं वाचाल हजारों।
'काका' करो इशारों से 'स्मग्लिंग' का धंधा,
गूंगा बनकर छूट, तोड़ कानूनी फन्दा।

दूजे बंदर ने कहा—जो अब तक था शांत,
हमने भी अपना सखे, बदल दिया सिद्धांत।
बदल दिया सिद्धांत, कान पर रखो हथेली,
करने दो निन्दा करते हैं चेला-चेली।
अवसरवादी बनो, परिस्थिति देखो जैसी
मंत्री-पद के आगे दल की ऐसी-तैसी।

बंदर बोला तीसरा—करके आंखें बन्द,
रिश्वत खाओ प्रेम से, भज राधे गोविन्द।
भज राधे गोविन्द, माल उनका सो अपना,

वेद-शास्त्र कह रहे, जगत को जानो सपना।
डूब गया परमार्थ, स्वार्थ से भरा समंदर,
समय देख कर बदल गये, 'बापू' के बंदर।

आज इतना ही।

१ अक्तूबर १९८०; श्री रजनीश आश्रम, पूना

यह मयक़दा है

पहला प्रश्न : भगवान, मुंडकोपनिषद में यह श्लोक आता है :

नायं आत्मा प्रवचनेन लभ्यो
न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यं एवैष वृणुते तेन लभ्यस्
तस्यैष आत्मा विवृणुते स्वाम्।।

अर्थात यह आत्मा वेदों के अध्ययन से नहीं मिलता, न मेधा की बारीकी या बहुत शास्त्र सुनने से मिलता है। यह आत्मा जिस व्यक्ति का वरण करता है उसीको इसकी प्राप्ति होती है--आत्मा उसीको अपना स्वरूप दिखाता है।

भगवान, उपनिषद के इस सूत्र को हमारे लिए बोधगम्य बनाने की अनुकम्पा करें।

सहजानन्द! यह सूत्र उन थोड़े-से सूत्रों में से एक है, जिनमें अमृत भरा है। जितना पिओ, उतना थोड़ा।

नायं आत्मा प्रवचनेन लभ्यो

यह आत्मा शब्दों से उपलब्ध नहीं। वे शब्द फिर वेद के हों कि कुरान के हों कि बाइबिल के, इससे कुछ भेद नहीं पड़ता। यह आत्मा सुनकर उपलब्ध नहीं। फिर चाहे वे वचन बुद्ध के हों, महावीर के, लाओत्सू के, इससे कुछ भेद नहीं पड़ता। क्यों? क्यों आत्मा प्रवचन सुनकर उपलब्ध नहीं हो सकता? क्योंकि आत्मा बाहर की कोई वस्तु नहीं, अन्तर्तम का अनुभव है। आत्मा अमृत का स्वाद है। जैसे अंधे को कोई लाख समझाए प्रकाश के संबंध में, अंधा कैसे समझेगा? उसने प्रकाश देखा नहीं; उसकी कोई प्रतीति नहीं, कोई साक्षात्कार नहीं। कुछ का कुछ समझ लेगा।

रामकृष्ण निरंतर यह प्यारी कथा कहते थे--कि एक अंधे मित्र को उसके साथियों ने भोजन पर आमंत्रित किया। गरीब था अंधा। खीर परोसी। उस अंधे

ने अपने पास में बैठे हुए मित्र को पूछा, बहुत स्वादिष्ट है, यह क्या है ? मित्र ने कहा, यह खीर है। दूध की बनी है। एक मिष्ठान्न है। अंधा पूछने लगा, दूध कैसा होता है ? मित्र ने कहा, दूध कैसा होता है ! शुभ्र होता है, श्वेत होता है। अंधे ने पूछा, उलझाओ मत पहेली को और। बात बनती नहीं, बिगड़ती चली जाती है। मुझे खीर का पता नहीं, तुमने दूध की बात कही। मुझे दूध का पता नहीं, तुमने श्वेत की बात कही। मुझे श्वेत का भी कुछ पता नहीं। यह श्वेत क्या ?

मित्र ने कहा, तुम समझे नहीं ? अरे, कभी बगुला देखा है ? जैसे बगुला होता है, शुभ्र, श्वेत।...पुरानी कहानी है, नहीं तो मित्र कहता, नेता देखा है ? सफेद, शुद्ध खद्दर। और बगुले और नेता में ऐसे भी बहुत संबंध है। बगुले ही नेता होते हैं। और बगुला पुराना नेता है, बड़ा अभ्यासी नेता है। बगुले को कभी खड़ा देखा है, सरोवर के तट पर, एक टांग पर ? ऐसा आसन साधता है ! पुराना योगी है। तपस्वी है। एक ही टांग पर खड़ा रहता है—बिना हिले, बिना डुले। एकाग्रचित्त से। क्योंकि हिले-डुले तो पानी हिल-डुल जाए। पानी हिल-डुल जाए तो मछलियां सजग हो जाएं। फिर उसके पास न आएं। यूं खड़ा रहता है कि जैसे है ही नहीं। तभी मछलियां फंसती हैं। यूं ही नेता भी खड़ा रहता है, तभी मछलियां फंसती हैं। वह धंधा एक ही है। मगर कहानी पुरानी है। रामकृष्ण के समय में अभी यह गांधीवादी नेता आया नहीं था। अब थोड़ी रद्दोबदल कर लेनी चाहिए कहानी में; थोड़ा आधुनिक बना लेना चाहिए।...उस मित्र ने कहा कि बगुले को देखा है ? जैसा बगुला होता है।

मित्र भी पंडित रहा होगा। पंडित यानी अंधे से भी गया-गुजरा। नहीं तो अंधे को कोई समझाने बैठे रंग की बात ! अंधे को जो रंग की बात समझाने बैठे, वह महा अंधा होना ही चाहिए। अंधे ने कहा, अब मैं कुछ और पूछूं, ठीक नहीं, क्योंकि बात दूर से दूर हुई चली जाती है। मैंने बगुला कभी देखा नहीं। कुछ इस ढंग से कहो कि मेरी भी समझ में आ सके। मैं अंधा हूं, यह देखकर कहो। तब उसे होश आया। उसने कहा, तो फिर ऐसा करो, यह मेरा हाथ है, मेरे हाथ पर हाथ फेरो। उसने अपने हाथ को इस ढंग से मोड़ा जैसे बगुले की गर्दन हो। अंधे ने हाथ पर हाथ फेरा और मित्र ने कहा, देखते हो, इस तरह बगुले की गर्दन होती है। वह अंधा प्रसन्न हो गया, आह्लादित हो गया, उसने कहा, धन्यवाद ! तुम्हारे कष्ट के लिए बहुत अनुगृहीत हूं। अब समझा कि खीर कैसी होती है। मुड़े हुए हाथ जैसी।

स्वाभाविक। अंधे पर हंसना उचित नहीं। अंधे की मजबूरी समझो। और जहां तक आत्मा का संबंध है, करीब-करीब सभी अंधे हैं। क्योंकि भीतर की आंख तो खुली नहीं है। तो जो भी आत्मा के संबंध में कहा जाएगा, वह गलत समझा जाएगा। तुम तक पहुंचते-पहुंचते बुद्धों के वचन कुछ के कुछ हो जाते हैं। बुद्ध कहते एक

बात, तुम सुनते दूसरी बात। और यह स्वाभाविक है। क्योंकि बुद्ध जो कहते हैं, वही समझने के लिए तुम्हें भी प्रबुद्ध होना होगा। उसी जीवन तल पर होना होगा। उसी चैतन्य की कोटि में होना होगा। वही बोध, वही समाधि, वही ध्यान। वही अंतराकाश—ज्योतिर्मय। वही आह्लाद। वही शून्यता। वही मौन। तभी तो बुद्ध अपने स्वाद को तुम तक पहुंचा सकेंगे। मगर जिसको ऐसी अवस्था हो गयी हो, उसे समझने को ही कुछ नहीं बचा।

एक बुद्ध को तो दूसरे बुद्ध से बोलने की कोई जरूरत नहीं होती। बिनबोले बात समझ में आ जाती है। क्योंकि दोनों ही एक जगह खड़े होते हैं, एक ही चैतन्य की अवस्था में। दो होते ही नहीं। जहां दो बुद्ध मिलते हैं, वहां एक ही रह जाता है। हजार बुद्ध भी मिलें तो वहां बुद्धत्व तो एक ही होता है। जैसे हजार नदियां गिर जाएं सागर में, क्या फर्क पड़ता है ! सब जाकर सागर के साथ एक हो जाती हैं। सब खारी हो जाती हैं। सबका स्वाद सागर का स्वाद हो जाता है। हजार बुद्ध इकट्ठे हों तो वहां हजार बुद्ध नहीं होते। जैसे हजार दीये तुम जला दो तो रोशनी एक होती है—दीये हजार होंगे ! हजार देहों में बुद्धत्व का दीया जलेगा, मगर रोशनी एक होगी। और सबकी रोशनी एक है। किससे कहना ? क्या कहना ? दो बुद्धों के पास एक-दूसरे से कहने को कुछ भी नहीं होता।

जो बोल सकते थे, जो एक दूसरे को समझ सकते थे, वे बोलते नहीं—बोलने को कुछ नहीं बचता। और दो बुद्धुओं के पास बहुत बोलने को होता है, मगर समझने को कोई भी नहीं होता वहां। दोनों बुद्धू हैं, समझने वाला वहां कौन ? इस दुनिया में कितनी बकवास चलती है ! जानें चली जाती हैं, तलवारें खिंच जाती हैं। दो बुद्धू बहुत बोलते हैं, समझ में किसी के कुछ नहीं आता। दो बुद्ध बोलते नहीं, समझ में सब आ जाता है।

तो न तो बुद्धों के बीच संवाद होता है और न बुद्धुओं के बीच संवाद होता है। बुद्धुओं के बीच विवाद होता है, बुद्धों के बीच मौन होता है।

फिर बोलना कहां सार्थक है ? जब कोई बुद्धपुरुष अबुद्धों से बोलता है, बस, वहीं केवल बोलने की कोई सार्थकता है; थोड़ी-बहुत; वह भी बहुत ज्यादा नहीं। क्योंकि यह सूत्र बहुत स्पष्ट है।

नायं आत्मा प्रवचनेन लभ्यो

नहीं मिलेगी यह आत्मा प्रवचन से। फिर बुद्ध क्यों बोलते हैं ? फिर उपनिषद का यह ऋषि भी क्यों बोला ? इतना भी कहने की क्या बात थी ? बुद्ध बोलते हैं इस आशा में—इस आशा में नहीं कि तुम समझ पाओगे वरन इस आशा में कि शायद तुम्हारे भीतर जानने की प्यास जग जाए, अभीप्सा पैदा हो जाए। तुम्हारे भीतर सोयी पड़ी है अभीप्सा। आग दबी पड़ी है, जरा उकसाने की बात है। जरा राख

झाड़ देने की बात है और ज्योति प्रज्वलित हो सकती है।

बुद्ध इसलिए नहीं बोलते तुमसे, इस आशा में नहीं बोलते कि तुम समझ लोगे, इस आशा में बोलते हैं कि शायद समझने की यात्रा पर निकल जाओ; शायद तुम्हारे जीवन में खोज पैदा हो जाए; एक अभीप्सा जग जाए जानने की कि यह क्या है? क्या है आत्मा? क्या है हमारे जीवन का सत्य? हम कौन हैं, कहां से हैं, कहां जा रहे हैं? यह कौन है जो हमारे भीतर है; बोलता है, देखता है, सुनता है, जीता है? यह जीवन क्या है?

देखना भी तो उन्हें दूर से देखा करना
शेवए इश्क नहीं हुस्न को रुसवा करना
देखना भी तो.

उनको यां वादे पै आ लेने दे ऐ अब्रे बहार
जिस तरह चाहना फिर बाद में बरसा करना
देखना भी तो उन्हें दूर से देखा करना
शेवए इश्क नहीं हुस्न को रुसवा करना
देखना भी तो.

शाम हो या कि सहर याद उन्हीं की रखनी
दिन हो या रात हमें जिक्र उन्हीं का करना
देखना भी तो उन्हें दूर से देखा करना
शेवए इश्क नहीं हुस्न को रुसवा करना
देखना भी तो.

कुछ समझ में नहीं आता कि ये क्या है हसरत
उनसे मिलकर भी न इज़हारे तमन्ना करना
देखना भी तो उन्हें दूर से देखा करना
शेवए इश्क नहीं हुस्न को रुसवा करना
देखना भी तो.

बुद्ध बोलते हैं इसलिए कि तुम्हारे भीतर पड़ी कोई सोयी याद जग जाए। अभी तो दूर से ही देखोगे। जैसे आकाश मेघाच्छादित न हो और कोई सैकड़ों मील दूर से हिमालय के उत्तुंग शिखरों को देखे। उन पर जमी हुई क्वांरी बर्फ को देखे। देखना भी तो उन्हें दूर से देखा करना।

शाम हो या कि सहर याद उन्हीं की रखनी
दिन हो या रात हमें जिक्र उन्हीं का करना

देखना भी तो उन्हें दूर से देखा करना
देखना भी तो.

बुद्धों के बोलने का प्रयोजन यह नहीं है कि तुमने सुन लिये शब्द और तुम्हें ज्ञान हो जाएगा। इतना ही है कि शायद शब्द तुम्हारे भीतर किसी भूली-बिसरी प्यास को जगा दें। शायद बुद्धों की मौजूदगी तुम्हारे भीतर कुतूहल बने, जिज्ञासा बने, मुमुक्षा बने। वे बोलते हैं इसलिए कि शायद उनके वचनों की चोट तुम्हारे हृदय की वीणा को छेड़ दे। नहीं कि तुम सत्य को जान लोगे, लेकिन सत्य को जानना है, इतना स्मरण आ जाए तो बहुत। बस, इतना ही स्मरण आ सकता है। जागे हुए व्यक्तियों ने सिर्फ इसीलिए बात की है गैर-जागे हुए व्यक्तियों से कि देखो, हम जाग गये; देखो, हमारे दुख मिट गये; देखो, हमारा संताप झड़ गया; देखो, हमारे जीवन में फूल खिल गये; देखो ये सुगंध, यह तुम्हारी भी सुगंध है! यह तुम्हारे भी भीतर छिपा हुआ खजाना है। यह तुम्हारी भी सम्पदा है। जरा खोदो और पा लोगे।

लेकिन जो मूढ़ हैं, वे केवल शब्दों को पकड़कर बैठ जाते हैं। जैसे तोते राम-राम दोहराते रहते हैं, ऐसे ही वे भी वेदों को दोहराते हैं, उपनिषदों को दोहराते हैं। अब यह बड़े मजे की बात है, मुंडकोपनिषद में यह श्लोक है, और मैं ऐसे लोगों को जानता हूं जो जीवन भर से मुंडकोपनिषद पढ़ रहे हैं, जिनको उसका शब्द-शब्द याद है और जिनको जरा भी बेचैनी नहीं होती इस श्लोक को उद्धरण करने में और जिन्होंने जाना नहीं और जिनकी आंखें खुलीं नहीं।

नायं आत्मा प्रवचनेन लभ्यो। थोड़े-से शब्दों में कितनी बात कह दी। बूंद में जैसे सागर को समा दिया। नहीं, प्रवचन से यह उपलब्ध नहीं है। सुनना जरूर उनको जो जानते हैं, लेकिन उनके शब्दों को मत पकड़ लेना। बुद्ध ने कहा है: मैं जो कहता हूं, उस पर ज्यादा ध्यान मत दो, मैं जो हूं, उस पर ध्यान दो। मैं जो कहता हूं, वह उतना महत्त्वपूर्ण नहीं, मैं जहां से कहता हूं, वह स्रोत महत्त्वपूर्ण है। और, मैं कहूं, इसलिए मत मानना। मैं कहूं, इसलिए तो केवल प्रयोग करना जानने का। हां, जिस दिन जान लो, उस दिन मानना।

न मेधया न बहुना श्रुतेन।

न तो बड़ी मेधा से, प्रतिभा से, तर्क से, बुद्धि से यह आत्मा मिलती है। तर्क के हाथ बहुत छोटे हैं। आकाश के तारों को तर्क से नहीं छुआ जा सकता। तर्क के लिए तो आत्मा वैसे ही है जैसे तुमने ईसप की कहानी में पढ़ा है कि लोमड़ी उछली, कूदी, अंगूरों तक पहुंची नहीं। फिर चारों तरफ उसने देखा कि कोई देखता तो नहीं है। और फिर यह कहती हुई कि अगर किसीने देख भी लिया हो तो सुन ले कि अभी अंगूर कच्चे हैं, अभी अंगूर खट्टे हैं, चल पड़ी। एक खरगोश छिपा यह देख रहा था झाड़ी में से; उसने कहा, चाची, आप पहुंच नहीं पायीं। लेकिन लोमड़ी ने कहा,

चुप, बदतमीज, पहुंच कर करूंगी क्या, अभी अंगूर कच्चे हैं, अभी अंगूर खट्टे हैं। पक जाने दे, फिर पहुंचूंगी, अभी तोड़ने से सार क्या है ! उछल कर मैंने देख लिया कि अंगूर अभी कच्चे हैं और खट्टे हैं। अभी चखा नहीं, छुआ भी नहीं और जान लिया कि अंगूर खट्टे हैं !

तर्क की छलांग बहुत छोटी है। इतनी छोटी। लेकिन तर्क का अहंकार बहुत बड़ा है। तो तर्क के पास एक ही उपाय है कि वह कह दे, आत्मा होती ही नहीं। अंगूर कच्चे, अंगूर खट्टे। तर्क की पकड़ में नहीं आती आत्मा तो आत्मा हो कैसे सकती है; इसलिए नहीं है। ऐसा इनकार करके तर्क अपने अहंकार को बचा लेता है।

जरूर तर्क के हाथ कुछ चीजों तक पहुंचते हैं--विज्ञान में सार्थक है तर्क, क्योंकि वस्तुओं को पकड़ लेता है, खोज लेता है। लेकिन आत्मा कोई वस्तु नहीं। आत्मा तो तर्क के पीछे है, तर्कातीत है। तर्क के आगे जो है, उसको तर्क छू सकता है, लेकिन तर्क के पीछे जो है, उसके लिए तर्क क्या करे ! दर्पण के सामने जो है, वह दर्पण में दिखायी पड़ जाएगा, लेकिन दर्पण के पीछे जो है, वह दर्पण में कैसे दिखायी पड़ेगा ! लेकिन अगर दर्पण का भी अहंकार हो तो दर्पण भी कहेगा कि जो मेरे पीछे है, वह है ही नहीं। अगर होता तो दिखायी पड़ता। जो मुझमें दिखायी न पड़े, वह है ही नहीं।

तर्क के सामने संसार है और पीछे तुम हो। और तुम्हारा होना आत्मा है। तर्क में तुम्हारा कोई प्रतिफलन नहीं बनता। इसलिए तर्क निश्चित रूप से नास्तिक होता है।

'न मेधया'। बुद्धि से नहीं पाया जा सकता। और बुद्धि है क्या ? विचार की श्रृंखला। और विचार से कभी किसीने अज्ञेय को जाना है ? विचार की तो सीमा है, ज्ञात। जो जाना है, विचार उसी की जुगाली करता है। तुमने भैंसों को जुगाली करते देखा ? बस, विचार उतना ही करता है, जुगाली करता है। जो सुना है, जो पढ़ा है, उसीकी जुगाली करता है। लेकिन आत्मा को न तो जाना जा सकता है, न सुना जा सकता है, न पढ़ा जा सकता है, उसकी जुगाली कैसे करोगे ? उसके लिए तर्कातीत होना जरूरी है। आत्मा को जानने के लिए विचार के पार जाना जरूरी है। निर्विचार होना जरूरी है।

तर्क है विकल्प : यह ठीक या वह ठीक; और आत्मा को जानना हो तो निर्विकल्प होना जरूरी है। यही तो समाधि की परिभाषा है, निर्विचार, निर्विकल्प, मनातीत। वह जो मनातीत अवस्था है समाधि की, उसमें ही जाना जाता है आत्मा।

न मेधया न बहुना श्रुतेन।

और बहुत सुन लोगे तुम, बहुत जानकारी भी इकट्ठी कर लोगे, सारे शास्त्र तुम्हें कंठस्थ हो जाएं, तो भी तुम्हारे अनुभव में कुछ न आएगा। गीता कंठस्थ है लोगों

को, लेकिन इससे वे कृष्ण नहीं हो गये हैं। धम्मपद कंठस्थ है लोगों को, इससे वे बुद्ध नहीं हो गये हैं। कितने लोग कुरान की आयतों को दोहराते हैं, मगर इससे वे मुहम्मद नहीं हो गये हैं। काश, इतना आसान होता ! कि हम शास्त्रों को दोहरा देते यंत्रवत और शास्त्रों में जो छिपा पड़ा है, वह हमारी सम्पदा हो जाता। तब तो हम विश्वविद्यालयों में धर्म सिखा सकते थे।

मैं तुमसे कहता हूं, धर्म की कोई शिक्षा नहीं हो सकती। लेकिन मैं हैरान होता हूं, जो लोग मुंडकोपनिषद के इस सूत्र को उद्धरण देते हैं, वे भी धार्मिक शिक्षा की बात करते हैं। तब मैं देखता हूं कि चूक गये वे, यह सूत्र भी उनकी पकड़ में नहीं आया। आत्मा तो बहुत दूर, आत्मा के संबंध में यह सूत्र भी उनकी समझ में नहीं आया। धार्मिक शिक्षा होनी चाहिए ! पंडित, पुरोहित, मौलवी, पादरी, सबकी एक इच्छा है; संत, महात्मा, मुनि, सबकी एक इच्छा है : धार्मिक शिक्षा होनी चाहिए। धर्म की शिक्षा हो सकती है--सवाल यह है !

मैं विश्वविद्यालय में जब प्रोफेसर था तो दिल्ली में मंत्रालय ने भारत से कोई बीस प्रोफेसरों को आमंत्रित किया था--धार्मिक शिक्षा के ऊपर एक संगोष्ठी आयोजित थी--भूल-चूक से वे मुझे भी बुला बैठे। भूल-चूक से ही कहूंगा, क्योंकि उन्होंने आशा की होगी कि मैं धार्मिक शिक्षा के संबंध में कुछ सुझाव दूंगा कि कैसे धार्मिक शिक्षा दी जाए और मैंने मुंडकोपनिषद का यह सूत्र ही कहा--

नायं आत्मा प्रवचनेन लभ्यो
न मेधया न बहुना श्रुतेन।

धर्म की शिक्षा हो ही नहीं सकती। और जिसकी शिक्षा हो सकती है, वह धर्म नहीं है। इसलिए कोई विश्वविद्यालय कभी धर्म की शिक्षा नहीं दे सकेगा। धर्म के संबंध में शिक्षा दे सकता है, कि हिन्दू क्या कहते हैं, मुसलमान क्या कहते हैं, ईसाई क्या कहते हैं, लेकिन कोई विश्वविद्यालय जीसस को, महावीर को, जरथुस्त्र को पैदा नहीं कर सकेगा। हां, गणित की शिक्षा हो सकती है। विज्ञान की शिक्षा हो सकती है, भूगोल की, इतिहास की शिक्षा हो सकती है, लेकिन धर्म की कोई शिक्षा नहीं हो सकती है। धर्म के संबंध में शिक्षा हो सकती है, लेकिन स्मरण रखना भेद को : प्रेम के संबंध में जानना प्रेम को जानना नहीं है। प्रेम के संबंध तो वह भी जान सकता है जिसने कभी प्रेम नहीं किया। पुस्तकालयों में हजारों किताबें हैं। और ईश्वर के संबंध में जानना ईश्वर को जानना नहीं है। ईश्वर के संबंध में तो कोई भी जान सकता है। लेकिन संबंध में जानना और सत्य को जानना दो भिन्न बातें हैं। खतरा यही है कि कहीं सूचनाओं में ही न भटक जाना, कहीं सूचनाओं में ही न अटक जाना। बहुत लोग अटके हैं। जिनको तुम पंडित कहते हो, वे इसी तरह के अटके हुए लोग हैं।

न मेधया न बहुना श्रुतेन।

कितना ही श्रुति को पढ़ो, कितना ही स्मृतियों को पढ़ो, कितने ही सुंदर-सुंदर शब्दों के संग्रह बना लो, कितने ही सुभाषित कंठस्थ कर लो, इससे कुछ भी न होगा। तुम जितने अज्ञानी थे, उतने ही रहोगे। हां, एक खतरा है कि तुम्हें यह भ्रांति पैदा हो सकती है कि तुम ज्ञानी हो गये। और यह सबसे बड़ा खतरा है। अज्ञानी को भ्रांति हो जाए कि ज्ञानी हो गया, अब इसकी जीवनस्थिति बड़ी दयनीय हो गयी। अब इसके सुधार का उपाय भी न रहा।

सद्‌गुरु तुम्हें यह नहीं सिखाता कि आत्मा क्या है, सद्‌गुरु तुम्हें यह नहीं बताता कि परमात्मा क्या है। सद्‌गुरु तुम्हें ज्ञान नहीं देता, सद्‌गुरु तुम्हें ध्यान देता है। और ध्यान का अर्थ है : निर्विचार होना, निर्विकल्प होना; शास्त्र से मुक्त होना, शब्द से मुक्त होना, सिद्धांत से मुक्त होना, सूचना से मुक्त होना। ध्यान का पहला अर्थ है : अपने अज्ञान को स्वीकार करना, अंगीकार करना। सुकरात सही है। सुकरात कहता है, मैं बस इतना ही जानता हूं कि कुछ भी नहीं जानता। यह ज्ञान की तरफ पहला कदम है। और जिसको यह भ्रांति है मैं जानता हूं--और भ्रांति पैदा हो जाती है सुंदर वचनों से--वह तो भटक गया। ज्ञान जितने लोगों को डुबाता है, अज्ञान नहीं डुबाता। अज्ञान से ज्ञान ज्यादा खतरनाक है। उपनिषद का प्रसिद्ध वचन है कि अज्ञानी तो अंधेरे में भटकते ही हैं, ज्ञानी महा अंधकार में भटक जाते हैं। मगर मजा यह है, इस सूत्र को भी पंडित याद कर लेते हैं। इस सूत्र का भी तोतों की तरह उद्धरण देते हैं।

यं एवैष वृणुते तेन लभ्यस्

यह आत्मा तो जिसका वरण करता है, उसीको मिलता है। यह महत्त्वपूर्ण सूचना है, मगर इसके बड़े गलत अर्थ किये गये हैं--होने ही थे गलत अर्थ। जितनी महत्त्वपूर्ण बात हो उतने गलत अर्थ होंगे। क्योंकि जितनी महत्त्वपूर्ण बात हो, तुम्हारे अनुभव से उतनी ही दूर हो जाती है। तुम्हारे और उसके बीच फासला बड़ा होता जाता है। तुम्हें वे ही बातें समझ में आती हैं जो तुम्हारे अनुभव के करीब पड़ती हैं। और सत्य तो बहुत दूर। तुम्हारे और उसके बीच तो कोई नाता ही नहीं रहा है। जन्मों से कोई नाता नहीं है। फासला बढ़ता ही गया है।

इस सूत्र का यह अर्थ किया गया है अब तक और मैं तुमसे कहना चाहता हूं, वह अर्थ बुनियादी रूप से गलत है। अर्थ किया गया है कि यह तो परमात्मा की जिस पर कृपा होती है, उसको आत्मा का बोध होता है। न तो प्रवचन से मिलती, न बुद्धि से मिलती, न जानकारी से मिलती। तो फिर कैसे मिलती है? परमात्मा की जिस पर कृपा होती है। यह सरल अर्थ निकाल लिया लोगों ने। तो करना क्या है? फिर करने को कुछ बचा नहीं। फिर तो परमात्मा की जब कृपा होगी तब होगी। इस देश की काहिलता इसी तरह के अर्थों पर निर्भर है। इस देश की सुस्ती,

मुर्दगी, इस देश का मरा-मरा होना, इस देश की दयनीयता, दीनता, इस देश की बाईस सौ वर्ष पुरानी गुलामी इसी तरह के अर्थों पर आधारित है। इसी तरह की हमने बेवकूफियां कर ली हैं। जब पत्ता भी उसकी मर्जी के बिना नहीं हिलता तो गुलामी कैसे आ जाएगी? और जब उसकी ही मर्जी है, तो हम क्या कर सकते हैं? इसलिए अब गुलाम होना ही ठीक है। उसकी मर्जी से राजी होना ही ठीक है।

उसकी बिना मर्जी के पत्ता नहीं हिलता तो बीमारी कैसे हो जाएगी? तो अब क्या कर सकते हैं? इसलिए बीमारी को अंगीकार कर लेना ठीक है। घसीटते रहो बीमारियों को। जीते रहो किसी तरह, सड़ते रहो, कुछ करो मत--क्या कर सकते हैं हम! जब उसकी इच्छा होगी।

यं एवैष वृणुते तेन लभ्यस्। आत्मा को भी हम तो पा नहीं सकते--शास्त्र में है नहीं, वचनों में है नहीं, ज्ञान में है नहीं, बुद्धि में है नहीं; अब क्या करें? अब तो प्रतीक्षा के सिवाय कोई रास्ता न रहा। अब तो जब उसकी कृपा होगी!

इसका तो यह भी मतलब हुआ कि किसी पर उसकी कृपा होती है और किसी पर उसकी कृपा नहीं होती। ज्यादातर तो कृपा होती ही नहीं; कभी किसी पर हो जाती है कृपा। मतलब यह हुआ कि परमात्मा की तरफ से भी बड़ा अन्याय चल रहा है। किसी बुद्ध पर हो गयी कृपा, किसी महावीर पर हो गयी कृपा, किसी याज्ञवल्क्य पर हो गयी कृपा, किसी कबीर पर हो गयी कृपा, ठीक! बाकी लोग क्या कर सकते हैं! वे राह देखेंगे, जब जन्मों-जन्मों में कभी उन पर भी कृपा होगी, कभी उन पर भी नजर पड़ेगी, तो ठीक। और नहीं पड़ी तो यूं ही घसिटना है। यूं ही मरना है, यूं ही गलना है।

नहीं, ऐसा इसका अर्थ नहीं है। ये भाग्यवादी अर्थ इस पर थोप दिया गया। मगर अज्ञानियों के हाथ में अमृत भी पड़ जाए तो जहर हो जाता है। इस सूत्र का बड़ा और अर्थ है: यह तो जिसका वरण करता है, उसीको मिलता है। लेकिन किसका वरण करता है? परमात्मा की कृपा तो सभी पर बराबर बरसती है--बरसनी ही चाहिए। अगर परमात्मा भी भेदभाव करता हो कि किसी पर थोड़ा ज्यादा बरसे और किसी पर थोड़ा कम बरसे; ब्राह्मण पर थोड़ा ज्यादा और शूद्र पर थोड़ा कम; जनेऊ पहन लो तो थोड़ा ज्यादा और जनेऊ न पहनो तो थोड़ा कम; चुटैया बढ़ा लो तो थोड़ा ज्यादा और चुटैया कटा लो तो थोड़ा कम; अगर ऐसी मूढ़ताएं ईश्वर को भी हों--उपवास कर लो तो थोड़ा ज्यादा और भरे पेट होओ तो थोड़ा कम; सिर के बल खड़े हो जाओ तो थोड़ा ज्यादा और पैर पर चलो, आदमी की तरह, भले आदमी की तरह तो कम। यह क्या पागलपन हुआ कि मंदिरों में घंटियां बजाओ तो थोड़ा ज्यादा और घंटियां न बजाओ तो बस, नाराज हो गये! परमात्मा की कृपा तो सभी पर बराबर बरसती है। लेकिन कुछ पात्र हैं जो उलटे

रखे हैं। वर्षा तो होती रहती है अमृत की लेकिन पात्र खाली के खाली रह जाते हैं।

वर्षा में कुछ भेद नहीं। तुम देखो रखकर, एक मटके को उलटा रख दो, वर्षा हो रही हो, धुआंधार वर्षा हो रही हो, मूसलाधार वर्षा हो रही हो और बर्तन को उलटा रख दो, कैसे भरेगा ! वर्षा क्या करे ! वर्षा की तरफ से कोई कंजूसी नहीं है, मगर पात्र तो सीधा होना चाहिए ! फिर पात्र भी सीधा हो, लेकिन फूटा हो, तो भरता हुआ मालूम पड़ेगा लेकिन भर कभी पाएगा नहीं। इधर भरेगा उधर खाली हो जाएगा। फिर यूं समझो कि पात्र सीधा भी हो, छिद्रवाला भी न हो, लेकिन जमाने भर की गंदगी से भरा हो, तो वर्षा तो हो भी जाए, भर भी जाए, मगर वह जल पीने योग्य नहीं होगा। वह तुम्हारी तृषा को मिटा न सकेगा।

तो ये तीन बातें ख्याल रखनी जरूरी हैं।

पहली बात, पात्र सीधा हो। पात्र सीधा हो, इसका अर्थ है : तुम्हारा हृदय अंगीकार करने को राजी हो। इसीको श्रद्धा कहा है। श्रद्धा का अर्थ है : अंगीकार करने की तत्परता। स्वागत, अभिनन्दन, वंदनवार। जैसे कोई मेहमान आता है और तुम द्वार पर खड़े होकर पलक-पांवड़े बिछाए प्रतीक्षा करते हो, राह देखते हो। दरवाजा बंद करके नहीं बैठते, दरवाजा खुला रखते हो कि कहीं मेहमान लौट न जाए। द्वार पर ही खड़े रहते हो कि आए तो स्वागत की आरती उतारनी है। श्रद्धा का इतना ही अर्थ है कि तुम आओगे तो मेरे द्वार बंद न पाओगे।

पात्र सीधा हो।

संदेह से भरा हुआ व्यक्ति उलटा पात्र है। बंद। अंगीकार करने को राजी नहीं, इनकार करने को तत्पर।

फिर, छिद्र नहीं होने चाहिए। पात्र सीधा हो और छिद्र न हों। तुम्हारे जीवन में कितने छिद्र हैं ! तुम्हारी ऊर्जा कितने छेदों से बही जा रही है ! क्रोध से तुम कितनी ऊर्जा को बहाते हो ! पाते क्या हो ? पाते कुछ भी नहीं, गंवाते बहुत हो। कमाते क्या हो ? क्रोध करके कभी किसीने कुछ कमाया है ? हजार तरह की वासनाएं तुम्हारे छिद्र हैं। कोई धन के पीछे दौड़ रहा है, कोई पद के पीछे दौड़ रहा है, सभी मृगमरीचिकाओं के पीछे दौड़ रहे हैं, लेकिन दौड़ने में ऊर्जा समाप्त होती है। दौड़ने में तुम्हारी शक्ति क्षीण होती है। और जिन चीजों के पीछे भाग रहे हो वहां कुछ पाने को नहीं; सिर्फ मौत मिलेगी। हर आदमी अपनी कब्र में गिर जाता है जाकर। कहीं से जाओ, किसी दिशा में भागो——पद चाहो कि यश चाहो कि धन चाहो——एक दिन पहुंच जाओगे कब्र में। और कहीं तो पहुंचने को नहीं है।

इसके पहले कि कब्र तुम्हें अपने में समा ले, इन छिद्रों को बंद करो। ये आपाधापी छोड़ो। किसने धन को पाकर पाया है ? बड़े से बड़े धनी से भी पूछो तो वह निर्धन है। भीतर अभी रो रहा है। बाहर तो अंबार लग गया धन का, लेकिन

भीतर ? भीतर तो सब खाली का खाली है। बाहर का धन भीतर के खालीपन को नहीं भर सकता। और बाहर का धन तो मौत छीन लेगी। तुम खाली हाथ आए और खाली हाथ जाओगे। आए थे तब कम से कम मुट्ठी बंधी थी, जाओगे तब मुट्ठी भी खुल जाएगी।...बच्चे आते हैं तो मुट्ठी बंधी होती है, और बूढ़े मरते हैं तो मुट्ठी भी खुल गयी होती है। और भद्द हो गयी होती है ! मुट्ठी कम-से-कम बंद होती है तो पता तो लगता है कि कुछ होगा भीतर। हो या न हो। बंधी मुट्ठी लाख की——समझदार लोग कहते हैं——खुली तो खाक की। बच्चा कम से कम आशाएं लेकर तो आता है, संभावनाएं लेकर आता है, इसलिए मुट्ठी बंद होती है। अभी जिंदगी में हीरे बरस सकते हैं, इसलिए मुट्ठी बंद होती है। बूढ़ा तो सब गंवाकर जाता है, कुछ बरसा नहीं; कुछ हाथ न लगा; उसके हाथ खाली होते हैं; उसके हाथ उसके जीवन की कथा कहते हैं, उसके जीवन की व्यथा कहते हैं।

छिद्र नहीं होने चाहिए। वासनाएं छिद्र हैं।

और फिर छिद्र भी न हों और भीतर अगर गंदगी भरी हो——घड़ा खाली होना चाहिए; घड़ा पहले ही से भरा हो, कूड़ा-करकट से भरा हो, तो भी फिर जलधार बरसती रहेगी मगर तुम खाली के खाली रह जाओगे। और तुम्हारे भीतर कितना कूड़ा-करकट भरा है !——कभी सोचो तो, कभी विचारो तो, कभी एकांत में बैठकर एक खाली कागज लेकर सिर्फ लिखते चले जाओ जो भी तुम्हारे मन में उठ रहा हो——जो भी। किसीको बताना तो है नहीं, दरवाजा बंद कर देना, ताला लगा देना, कि कोई झांक न ले; किसीको बताना नहीं है, इसलिए ईमानदारी बरतना; ईमान से लिख डालना, और फिर आग लगाकर जला देना ताकि किसी को पता भी न चले, मगर तुम्हें तो कम-से-कम साफ हो जाएगा; दस मिनट लिखने बैठोगे और तुम चकित हो जाओगे कि कौन-सा कचरा तुम्हारी खोपड़ी में भरा हुआ है ! क्या-क्या चल रहा है ! और कहां-कहां से चला आ रहा है ! संगत-असंगत, प्रासंगिक-अप्रासंगिक; एक कड़ी भजन की आती है, दूसरी कड़ी किसी फिल्मी गीत की आ जाती है; पड़ोस में कुत्ता भौंकता है, उसके भौंकने को सुनकर तुम्हें अपनी प्रेयसी की याद आ जाती है जिसके पास एक कुत्ता था। अब चले ! और प्रेयसी की याद आती है तो पत्नी की याद आ जाती है, कि इसी दुष्ट ने तो सब गड़बड़ करवा दिया ! अब लगे कोसने अपने को कि किस दुर्दिन में....

मैंने मुल्ला नसरुद्दीन से पूछा कि स्त्रियां आपको नमस्कार करती हैं, आप जवाब क्यों नहीं देते ? उन्होंने कहा, बीस साल पहले एक स्त्री को जवाब दिया था, उसका फल तो अभी तक भोग रहा हूं। अब नहीं ! अब जवाब नहीं देता ! एक दफा भूल कर ली, वही बहुत है ! अब उसीसे तो किसी तरह बच जाऊं तो काफी है ! दिखती

नहीं, कोई आशा नहीं ! यह मेरी पत्नी मुझे मारकर ही मरेगी !

स्त्रियां जीती भी पुरुषों से पांच साल ज्यादा हैं। उनकी औसत उम्र ज्यादा है—सारी दुनिया में। परमात्मा ने भी क्या इंतजाम किया है ! कि तुम आशा ही करते रहो, आशा ही करते रहो !

मुल्ला नसरुद्दीन रास्ते पर कोई भी ट्रक देखता, बस देखता, एकदम कंपने लगता। पसीना-पसीना हो जाता, चाहे सर्द सुबह ही क्यों न हो ! मैंने उससे पूछा कि क्या बात है, कुछ दिन से तुम जब भी कोई बस निकलती है या ट्रक निकलता है, एकदम पसीना-पसीना हो जाते हो, तुम्हें घबड़ाहट किस बात की होती है ? तुम अपने रास्ते चल रहे हो, ट्रक बीच में जा रहा है—अलग, तुमसे इतने दूर, तुम्हें क्या घबड़ाहट है ! उसने कहा, घबड़ाहट की बात यह है कि मेरी पत्नी एक ट्रक ड्राइवर के साथ भाग गयी है, तो मुझे डर लगता है कहीं लौट न आ रही हो ! बस, ट्रक देखता हूं कि बस, फिर मैं होश में नहीं रह जाता, हे प्रभु, कहीं फिर न आ जाए ! आती ही होगी !

जरा बैठो दस मिनट और तुम्हारे मन में क्या-क्या आएगा, उसे लिखते जाना। और जैसा आए वैसा ही लिखना, सुधारना मत ! बनावट न लाना, पाखंड मत करना ! नहीं तो बैठकर अच्छे-अच्छे सूत्र लिखने लगो ! यदा यदा हि धर्मस्य....! क्योंकि लोग दूसरों को ही धोखा नहीं देते, अपने को भी धोखा देते हैं। अल्लाह ईश्वर तेरे नाम, सबको सन्मति दे भगवान—ऐसे कुछ सूत्र मत लिखने लगना ! जो सच्चा-सच्चा आए, वही लिखना। जैसा आए वैसा ही लिखना, भेद ही न करना। और तब तुम देखोगे कि भीतर कैसा कचरा भरा है ! क्या-क्या उपद्रव भीतर चल रहा है !

इस कचरे से भरे हुए मन में तुम चाहते हो, परमात्मा का प्रवेश हो जाए, उसका अमृत आ जाए ! तुम किस आशा पर बैठे हो ? इस सारे कचरे को बाहर फेंक देना जरूरी है। इसको बाहर फेंकने की प्रक्रिया, इसको उलीचने की प्रक्रिया का नाम ही ध्यान है। मगर ध्यान के नाम से लोग और कचरा भरते हैं। कोई नमोकार मंत्र पढ़ रहा है, कोई गायत्री मंत्र पढ़ रहा है—ध्यान के नाम से !—कोई जय जगदीश हरे घोंटे चला जा रहा है ! कोई हनुमान चालीसा ही दोहरा रहा है। इससे कुछ भी न होगा। कचरा वैसे ही काफी है, उसमें और कचरा बढ़ा रहे हो—धार्मिक कचरा सही ! मगर कचरा कचरा है, धार्मिक हो कि गैरधार्मिक, इससे कुछ भेद नहीं पड़ता। खाली करना है। ध्यान है : रिक्त होना। सब कचरा बाहर फेंक दो।

बाहर फेंकने की प्रक्रिया सुगम है, सरल है—साक्षीभाव। जो भी भीतर कचरा चल रहा है, उसको देखते रहो। मात्र देखते रहो। तादात्म्य तोड़ लो। मेरा है, यह भाव छोड़ दो। मैं तो द्रष्टा हूं और जो भी मेरे आमने-सामने आ-जा रहा है, वह सब

दृश्य है। मैं दृश्य नहीं हूं। बस, इस भाव में अपने को थिर करते जाओ और तुम धीरे-धीरे पाओगे, कचरा अपने से जा चुका। जिस दिन तुम बिलकुल खाली हो जाओगे, उस दिन—

यं एवैष वृणुते तेन लभ्यस्

—उसी क्षण तुम वर लिये गये; वरण कर लिये गये। परमात्मा तुम्हारा आलिंगन कर लेगा। आत्मा का अनुभव तुम्हारे भीतर सुलग उठेगा।

तस्यैष आत्मा विवृणुते स्वाम्।

और तभी तुम जान सकोगे आत्मा के रहस्य; उद्घाटित होंगे वे सारे रहस्य। जान सकोगे आत्मा का स्वरूप।

यह सूत्र प्यारा है। विचारना ही मत, इसे जीने की कोशिश करना।

सहजानंद ! ऐसे प्यारे-प्यारे सूत्र बिखरे पड़े हैं ! हीरे-जवाहरात इनके सामने कुछ भी नहीं ! मगर गलत लोगों के हाथ में तो हीरे-जवाहरात भी पड़ जाएं तो क्या होगा। क्या करेंगे वे ? कैसे पहचानेंगे ? वे तो इन सूत्रों पर भी अपनी धारणाएं थोप देते हैं। जो सूत्र उनके लिए मुक्तिदायी हो सकते थे, वे उनसे भी अपने लिए नयी जंजीरें खड़ी कर लेते हैं। ऐसी ही जंजीरों में तो हिन्दू बंधे हैं, मुसलमान बंधे हैं, ईसाई बंधे हैं, जैन बंधे हैं। अगर इनमें से किसीने भी अपने ही सूत्रों को समझा होता, तो उसे दूसरों के सूत्र भी समझ में आ गये होते।

मैं तुम्हें अनुभव से अपने कह रहा हूं कि जिसने भी किसी एक धर्म की मूल आधारशिला को समझ लिया, उसने सारे धर्मों की मूल आधारशिला को समझ लिया। क्योंकि वह आधारशिला एक ही है, अलग हो ही नहीं सकती। इसलिए जो सच में हिन्दू है, वह हिन्दू नहीं रह जाएगा। जो झूठा है, वही हिन्दू रहेगा। जो सच में मुसलमान है, मुसलमान नहीं रह जाएगा। कैसे मुसलमान रहेगा ? जो सच में जैन है, जैन नहीं रह जाएगा ! जो झूठे हैं, थोथे हैं, पाखंडी हैं, वे ही जैन होंगे। जिसने सच में महावीर या बुद्ध या कृष्ण को पी लिया, एक को तुमने क्या पिआ—किस घाट से पिआ, क्या फर्क पड़ता है—तुम्हें स्वाद मिल गया ! और स्वाद तो सारे सागर का एक है। बुद्ध ने कहा है, तुम सागर को कहीं से भी चखो, उसका स्वाद एक है। किस घाट से चखते हो, कुछ फर्क नहीं पड़ता है। कुछ घाटों के कारण सागर का स्वाद नहीं बदलता है।

धार्मिक व्यक्ति तो सिर्फ धार्मिक होगा, न हिन्दू होगा, न मुसलमान, न ईसाई, न बौद्ध, न सिक्ख, न पारसी। सिर्फ धार्मिक होगा। और मैं उसी धार्मिक व्यक्ति की तलाश में हूं। उसी धार्मिक व्यक्ति को यहां आमंत्रित कर रहा हूं। इसलिए मुझसे हिन्दू नाराज होंगे, ईसाई नाराज होंगे, जैन नाराज होंगे, मुसलमान नाराज होंगे। स्वभावतः। उनकी नाराजगी मैं समझ सकता हूं। लेकिन जिनको सच में धर्म की

प्यास है, वे आह्लादित होंगे। वे यहां आकर मस्त होंगे, सरोबोर होंगे। वे यहां आकर गीले हो उठेंगे। उनकी आंखें आनंद के आंसुओं से भर जाएंगी; उनके प्राणों में गीत उठेंगे, गंध उठेगी; उनका जीवन एक तीर्थ; काबा और कैलाश फीके पड़ जाएंगे उनके जीवन के सामने। वे जहां बैठेंगे वहां काबा है, जहां उठेंगे वहां कैलाश है। जहां चलेंगे वहां तीर्थ बन जाएंगे।

स्वभावतः बहुत अधिक लोग मेरे पास नहीं आ सकते हैं। क्योंकि लोग तो पिटी-पिटायी धारणाओं में बंधे हुए हैं। और मैं तुम्हें सारी धारणाओं से मुक्त करना चाहता हूं। सारे शास्त्रों से।

दूसरा प्रश्न : भगवान, भारत धर्मप्राण देश है। इसका एक सबूत यह है कि यहां के अदना गुरु भी अपनी शिष्य-संख्या लाख से नीची नहीं रखते हैं। लेकिन आश्चर्य है कि आपके जैसे सूर्य के समान तेजस्वी गुरु के भारतीय शिष्य इतने थोड़े हैं। इस बात पर कुछ प्रकाश डालने की कृपा करें।

रामानन्द अग्निहोत्री, कोई देश धर्मप्राण नहीं है! न भारत, न चीन, न जापान, न ईरान, न पाकिस्तान—कोई देश धर्मप्राण नहीं है। देश धर्मप्राण हो ही नहीं सकते। देश तो राजनैतिक इकाइयां हैं, इनका क्या धर्मप्राण होने से संबंध हो सकता है! देश के पास कोई प्राण होते हैं! जब प्राण ही नहीं होते तो धर्मप्राण कैसे हो जाएगा!

व्यक्ति धर्मप्राण होते हैं, देश नहीं। जातियां नहीं, समूह नहीं, संगठन नहीं, सिर्फ व्यक्ति। यह तो व्यक्ति की ही गरिमा है। तुमको कभी विचार नहीं उठा कि पहले प्राण तो होने ही चाहिए। कम-से-कम प्राण तो हों, धार्मिक हों, अधार्मिक हों मगर प्राण तो हों। देशों के पास कोई प्राण होते हैं! ये तो राजनैतिक झूठ हैं। ये तो राजनीति की चालें हैं। पाकिस्तान कुछ दिन पहले, उन्नीस सौ सैंतालीस के पहले भारत था, अब भारत नहीं है। क्या कहते हो तुम? अब पाकिस्तान धर्मप्राण है या नहीं? उन्नीस सौ सैंतालीस के पहले था। अब? अब धर्मप्राण नहीं है। बंगलादेश पहले धर्मप्राण था, क्योंकि भारत का हिस्सा था, अब धर्मप्राण नहीं है।

ये तो नक्शे पर खींची गयी लकीरें हैं। ये तो राजनेताओं की चालबाजियां हैं। ये तो राजनीति चलाए रखने के नुस्खे हैं। क्योंकि दुनिया से राष्ट्र मिट जाएं तो राजनीति मिट जाए। दुनिया अगर एक हो जाए तो राजनेताओं की क्या जगह बचती है! न झगड़ा होगा, न फसाद होगा, तो ये राजनैतिक गुंडे और दादाओं की क्या जरूरत रह जाएगी! इनकी कौन कीमत रह जाएगी? इनकी कीमत इसीलिए है कि

हमेशा खतरा है—ये हमेशा खतरा बनाए रखते हैं युद्ध का। ये कभी तुम्हें शांति से नहीं बैठने देंगे, क्योंकि तुम शांति से अगर बैठ गये तो इनकी मौत हो जाएगी। ये तुमको भड़काए ही रखते हैं। कभी हिंदू-मुस्लिम दंगा है, कभी गुजराती और मराठी लड़ रहे हैं और कभी हिंदी बोलनेवाले-गैरहिंदी बोलनेवाले लड़ रहे हैं। ये तुम्हें लड़ाए ही रखेंगे। लड़ाने पर इनकी सारी दारोमदार है। भारत को पाकिस्तान से लड़ाए रखेंगे; ईराक को ईरान से लड़ाकर रखेंगे; ...अब दोनों मुसलमान देश हैं—दोनों धर्मप्राण देश हैं—क्या हो गया इनको! राजनीति इस सबकी फिकर नहीं करती। राजनीति तो एक फिकर रखती है कि किसी तरह दुनिया में झगड़े बने रहें। झगड़े न मिट जाएं।

तुम कहते हो, 'भारत धर्मप्राण देश है'। इस भ्रांति को छोड़ो! कोई देश धर्म-प्राण नहीं है। न कभी था, न कभी होगा। हो ही नहीं सकता। व्यक्ति धर्मप्राण होते हैं। और उसी के कारण हमको भ्रांति हो जाती है। हम व्यक्तियों की आभा में सोचने लगते हैं कि हमारी आभा है।

सूफियों की एक कहानी है।

एक सूफी फकीर रात के अंधेरे में लालटेन लिए चल रहा है। रास्ते पर किसी और आदमी से उसका मिलना हो गया, दोनों एक ही तरफ जा रहे हैं तो दोनों साथ हो लिए। जो आदमी साथ चलने लगा, वह यह भूल गया कि मेरे हाथ में लालटेन नहीं है। क्योंकि जिसके हाथ में लालटेन थी, उसकी रोशनी दोनों को काम दे रही थी। दो मील तक दोनों साथ चले, फिर वह जगह आ गयी जहां उनको अलग-अलग हो जाना था; चौराहा आ गया, जहां सूफी फकीर को एक रास्ते पर जाना था और दूसरे को दूसरे रास्ते पर। जैसे ही रास्ते मुड़े वैसे ही उस आदमी को पता चला कि अरे, एकदम अंधकार हो गया! तब उसे याद आयी कि मेरे हाथ में तो लालटेन है ही नहीं। वह तो लालटेन दूसरे की थी। उसकी उधार ज्योति को मैं अपनी समझता रहा। यह दो मील तक तो मैं भूल ही गया था कि अमावस की रात है।

यह उधार ज्योति से भ्रांति में मत पड़ो! हां, बुद्ध धार्मिक थे, महावीर धार्मिक थे, कृष्ण धार्मिक थे, कबीर धार्मिक थे, नानक धार्मिक थे, मीरा धार्मिक थी, सहजो धार्मिक थी—कुछ धार्मिक लोग हुए इस देश में! और ऐसे धार्मिक लोग हर देश में हुए। यह अहंकार भी मत पालो कि तुम्हारे ही देश में हुए। ऐसा कोई देश नहीं है जहां कुछ धार्मिक लोग नहीं हुए। बस, उनकी गिनती लेकिन अंगुलियों पर की जा सकती है। लेकिन कठिनाई क्या है कि तुम्हें अपने देश में हुए धार्मिक व्यक्तियों के नाम तो पता होते हैं और दूसरे देशों में पैदा हुए धार्मिक व्यक्तियों के नाम पता नहीं होते। जैसे चीन में तुम किसीसे पूछो दादू के संबंध में, रैदास के संबंध में, गोरा

कुम्हार के संबंध में, किसी को कुछ पता नहीं होगा। वे कहेंगे, किनकी बातें कर रहे हो! या तुमसे कोई पूछे, लीहत्ज़ू, कोसुआन, तो तुम भी चौंकोगे कि यह कौन की बातें कर रहे हैं आप! तुमसे कोई पूछे, रिंझाई, बोकोजू, तो तुम कहोगे——किसकी बातें कर रहे हैं आप? ये जापानी नाम तुम्हें पहचाने हुए नहीं हैं। ये चीनी नाम तुम्हारे पहचाने हुए नहीं हैं। मगर यही हालत चीन में है। चीन को अपने नाम पता हैं, तुमको अपने नाम पता हैं, जापानियों को अपने नाम पता हैं। दुनिया में ऐसा कोई देश नहीं हुआ जहां कुछ धार्मिक लोग न हुए हों। और दुनिया में कोई ऐसा देश नहीं है जिसको यह भ्रांति न हो कि हम श्रेष्ठ हैं। फिर वह भ्रांति किसी ढंग से भी पाली जाए। सभी यह सोचते हैं कि हमसे ज्यादा पवित्र और कोई भी नहीं; हमसे ज्यादा महान और कोई भी नहीं।

यह सिर्फ भारतीय अहंकार है कि भारत धर्मप्राण देश है। ऐसा कुछ भी नहीं है। कभी कोई एकाध आदमी धार्मिक होता है, उसके कारण तुम अपने को धार्मिक मत समझ लो। क्योंकि तुमने अगर ऐसे अपने को धार्मिक समझ लिया तो फिर तुम कभी धार्मिक हो न पाओगे। धार्मिक होना हो तो पहली तो बात समझ लो कि तुम धार्मिक नहीं हो। मैं भारत का सबसे बड़ा दुर्भाग्य यही पाता हूं कि भारत को यह भ्रांति ऐसी गहन हो गयी है धार्मिक होने की कि अब किसीको धार्मिक होने की जरूरत ही नहीं रही है। करना ही क्या है, जब हम धार्मिक हैं ही——हम तो पैदाइश से ही धार्मिक हैं। हमारा तो खून, हड्डी, मांस-मज्जा धार्मिक है।

और तुम्हारी धार्मिकता क्या है! किस आधार पर तुम धार्मिक हो! मैं तो कोई कारण नहीं देखता तुम्हारे धार्मिक होने का। धन पर तुम्हारी वैसी ही पकड़ है जैसी किसी और की होगी। सच पूछो तो ज्यादा पकड़ है। होनी भी चाहिए ज्यादा। क्योंकि जब धन है ही नहीं, तो पकड़ बहुत होती है।

ख्याल रखना, जिसका अभाव होता है, उसी को हम पकड़ते हैं। अमरीका की धन पर सबसे कम पकड़ है, क्योंकि धन बहुत है; पकड़ हो क्यों; पकड़ की क्या जरूरत है! पकड़ का कोई कारण नहीं है। यहां एक-एक पैसे की पकड़ है। और बातें धर्म की हैं! और बातें हैं अपरिग्रह की, अलोभ की। मगर तुमसे ज्यादा लोभी और कोई भी नहीं है। यह और बात है कि तुम्हारे पास परिग्रह करने योग्य कुछ नहीं है। इससे अंगूर खट्टे वाली कहानी में मत पड़ जाना। यह मत समझ लेना कि तुम अपरिग्रही हो। तुम सिर्फ गरीब हो। गरीब होने से कोई अपरिग्रही नहीं होता। अपरिग्रही होने के लिए कुछ परिग्रह तो हो! यह मत सोच लेना कि तुम त्यागी हो, तुम व्रती हो। त्याग करने के लिए भी तो कुछ होना चाहिए। वह भी नहीं है। तो फिर हम भ्रांतियां पालने लगते हैं।

अजीब-अजीब भ्रांतियां हैं इस देश में। इस देश में लोगों को ख्याल है कि लोग

बड़े ब्रह्मचर्य, संयम इत्यादि को पालते हैं। सरासर झूठी बकवास है। यहां भारतीय मित्र आते हैं, तो यहां पश्चिम से आयी हुई संन्यासिनियों की रोज मुझे शिकायत होती है कि भारतीयों को यहां भीतर न आने दिया जाए। क्योंकि वे धक्के मारते हैं; च्यूंटी ले देते हैं। और ऐसा नहीं कि गैरपढ़े-लिखे लोग।....

अभी बम्बई की एम्बेसेडर हॉटल के तीन मैनेजर आश्रम देखने आए। और उनका जो खास मैनेजर था, उसने पद्मा को, जो आश्रम की वस्त्रों की डिजाइन करती है, वह अपने कमरे में बैठी डिजाइन कर रही थी, उसकी डिजाइन दिखाने ले जाया गया था तीनों को, जब डिजाइन वह दिखा चुकी तो दो तो बाहर हो गये, तीसरा धीरे-धीरे बाहर निकलता था, दो तो बाहर हो गये और जैसे ही उसने पाया कि पद्मा अकेली है, तत्क्षण उसके स्तन पकड़ लिये। और यही आदमी आकर आश्रम में पहली बात यही पूछा कि यहां भारतीय लोग कम क्यों दिखायी पड़ते हैं? फिर उसको पकड़ा गया और शीला से, जिससे उसने पूछा था कि यहां भारतीय लोग कम क्यों दिखायी पड़ते हैं, उसने कहा, अब कहिये? समझे आप कि भारतीय लोग यहां क्यों कम दिखायी पड़ते हैं? अब हमें मजबूरी में आपको बाहर फेंकना पड़ रहा है। तब सिर झुका कर खड़ा हो गया।

एक पुलिस अफसर ने, जिनसे आशा की जानी चाहिए कि वह लोगों के जीवन की रक्षा करेंगे, एक लड़की, सोलह साल की लड़की को, वह अपना पासपोर्ट बदलवाने गयी थी, उसके साथ बलात्कार करने की कोशिश की। रंगे हाथ वे पकड़े गये।

एक एस. डी. ओ. आश्रम को देखने आया था। उसको जो महिला आश्रम दिखाने ले गयी, एकांत पाकर बस उसने जल्दी से उसके शरीर को दबोच लिया।

बम्बई के एक उद्योगपति, रंजन उन्हें आश्रम दिखाकर लौटने लगी, तो उससे उन्होंने कहा, एक 'किस' चाहिए। रंजन ने कहा, क्या?! तो बिचारे एकदम घबड़ा गये, बोले, एक कैसेट चाहिए। सो रंजन ने उन्हें एक कैसेट बेच दिया। मैंने कहा, तू ख्याल रखना, जब भी 'किस' कहे, फौरन पूछना——क्या?! और एक कैसेट बेचना। यह तो तूने कैसेट बेचने की तरकीब खोज ली।

और तुम कहते हो यह बड़ा धर्मप्राण देश है! जितने बलात्कार यहां होते हैं, जितनी आगजनी यहां होती है, जितने उपद्रव यहां होते हैं, कहीं दुनिया के किसी देश में होते हैं! हरिजनों के साथ तुम क्या कर रहे हो पांच हजार सालों से? और फिर भी शर्म नहीं आती यह कहते हुए कि तुम धर्मप्राण हो! स्त्रियों के साथ तुमने क्या किया है हज्जारों साल से? और फिर भी संकोच नहीं लगता यह कहते कि तुम धर्मप्राण हो!

रामानन्द अग्निहोत्री, यह देश धर्मप्राण नहीं है।

और तुम पूछते हो, 'इसका सबूत यह है कि यहां के अदना गुरु भी अपनी शिष्य-संख्या लाख के नीचे नहीं रखते हैं।' अगर लाखों में संख्या चाहिए हो शिष्यों की, तो अदना होना बिलकुल जरूरी है। अदना गुरुओं की ही लाखों में संख्या हो सकती है शिष्यों की। क्योंकि अदना गुरु तुम्हारी अपेक्षा के अनुसार होता है। मुक्तानंद, अखंडानंद, साईं बाबा, इनकी संख्या लाखों में होगी। क्योंकि ये तुम्हारे अनुकूल हैं।

मेरे पास सैकड़ों पत्र आते हैं, किसी को कैंसर है, किसी को टी. बी. है, किसी को कोई और बीमारी है, किसी की आंखें खराब हो गयी हैं, आप ठीक कर दें। मैं कोई डाक्टर नहीं हूं! मैं भीतर की आंख ठीक कर सकता हूं, बाहर की आंख ठीक करने का मेरा कोई ठेका नहीं है, न कोई जुम्मा है। न मैं बाहर की आंख के संबंध में कुछ जानता हूं। बाहर की तो मेरी भी आंख बिगड़ जाए तो मुझे आंख के चिकित्सक को ही पूछना होगा।

लेकिन इस तरह के लोग कैसे मेरे पास आएं? जब उनको यह जवाब मिलता है कि चिकित्सक को दिखाओ! यह तुम्हारी शारीरिक बीमारी है, इसके लिए तुम मेरे पास किसलिए आना चाहते हो? अगर तुम्हारी कोई आत्मिक परेशानी हो तो जरूर मेरे पास आओ।

लेकिन इस देश में किसी की आत्मिक परेशानी तो है ही नहीं, आत्मा को तो सभी जानते हैं, सवाल है शारीरिक परेशानियों का। तो सत्य साईं बाबा के पास भीड़ इकट्ठी हो सकती है। इसलिए भीड़ इकट्ठी हो सकती है कि यह भ्रांति पैदा की जा रही है, मदारीगीरी से, कि हाथ से राख झाड़ कर दिखा दी––जो कि कोई भी मदारी, सड़क-छाप मदारी कर देता है, जिसमें कोई कीमत की बात नहीं है––मगर मूढ़ों को यह बात जंचती है कि जो आदमी हाथ से राख निकाल देता है, स्विसमेड घड़ियां निकालता है, जरूर इस आदमी के पास कुछ ताकत है! और यह चाहेगा तो हमारा कैंसर भी ठीक हो जाएगा। और हमारी टी. बी. ठीक हो जाएगी।

न इनका कैंसर ठीक होता है, न इनकी टी. बी. ठीक होती है, ये सड़ते हैं, मरते हैं। इलाज से शायद कुछ हो भी सकता था। मैं तो सत्य साईं बाबा जैसे लोगों को महान अपराधी मानता हूं, क्योंकि इन्होंने इन लोगों को इलाज करवाने से वंचित करवा दिया। शायद इलाज से इनको कुछ लाभ भी हो सकता, लेकिन ये राख के भरोसे बैठे हैं! और सत्य साईं बाबा बीमार पड़ते हैं तो अपेंडिक्स का आपरेशन करवाने के लिए चोरी से गोवा के अस्पताल में भर्ती होते हैं। मुक्तानंद बीमार पड़ते हैं तो बम्बई के एक चोरी-छिपे अस्पताल में भर्ती होते हैं। और किसीको पता लग जाता है तो वह वहां पहुंचता है, तो उनके शिष्य कहते हैं कि देश पर एक बड़ी मुसीबत आ रही थी, बाबा ने उसे अपने ऊपर ले लिया। तो देश की मुसीबत टालने के लिए बाबा कष्ट झेल रहे हैं।

क्या-क्या बेईमानियां हैं!

मगर ये बेईमानियां तुम्हारी बुद्धि के अनुकूल पड़ती हैं; ये बातें तुम्हें जंचती हैं कि वाह, अहह, क्या धर्मप्राण देश है! और अकाल पड़ते हैं और बाबा कुछ नहीं करते; और भूकम्प आते हैं, बाबा कुछ नहीं करते; और बाढ़ आती है तब बाबा कुछ नहीं करते। एक-एक बाबा एक-एक बाढ़ भी बचाकर मर जाए तो झंझट मिटे! बाढ़ भी जाए, बाबा भी जाएं! तब ये किसी काम नहीं आते।

ये पहले खुद की बीमारियां तो ठीक कर लें! और बीमारियां ठीक करने के लिए तो अब पूरा विज्ञान मौजूद है, क्या जरूरत है इन मूढ़ताओं में पड़ने की? लेकिन भारत इन्हीं मूढ़ताओं में जीता है।

मेरे पास कैसे लोग इकट्ठे हो सकते हैं! मैं तुम्हारी किसी मूढ़ता को अंगीकार नहीं करता। मैं तो जितनी गहरी चोट कर सकता हूं, करता हूं। लोग तिलमिला जाते हैं। मेरे पास तो केवल वे ही लोग इकट्ठे हो सकते हैं––चाहे भारत के हों, चाहे भारत के बाहर के हों––जिनमें इतना साहस है समझने का, चिंतन का, मनन का; जिनमें सुनने की क्षमता है; जिनके पास छाती है सत्य को अंगीकार करने की––और सत्य कड़वा होगा! क्योंकि तुम झूठ की मिठाइयां खाते-खाते ऐसे आदी हो गये हो कि सत्य कड़वा होगा। और सत्य की कड़वाहट झेलने की क्षमता सभी की नहीं होती।

मेरे पास तो सिर्फ प्रतिभाशाली लोगों का ही जमघट हो सकता है। यहां भीड़भाड़ इकट्ठी नहीं हो सकती। भेड़चाल चलनेवाले लोगों की यहां कोई जगह नहीं है। मेरी शिष्य-संख्या भारत में लाखों नहीं हो सकती। सारी दुनिया में लाखों होगी, मगर भारत में लाखों नहीं हो सकती। भारत तो प्रतिभा की दृष्टि से बहुत दयनीय हो गया है। और कारण हैं तुम्हारे धार्मिक गुरु। वे ही गुरु जिनकी शिष्य-संख्या लाखों में है। क्योंकि वे तुम्हें ऐसी-ऐसी मूढ़तापूर्ण बातें सिखा रहे हैं कि जिसका चुकता परिणाम तुम भोग रहे हो मगर फिर भी बोध नहीं है। तुम्हें उन्होंने सिखाया है कि भाग्य से सब होता है। इसलिए पुरुषार्थ क्या करना; प्रारब्ध असली चीज है! हवन करो, यज्ञ करो, ताकि प्रारब्ध कटे।

बीसवीं सदी और लोग हवन में लाखों रुपये फूंक रहे हैं! करोड़ों रुपये फूंक रहे हैं! कि वायुमंडल शुद्ध हो जाएगा। वर्षा हो जाएगी। न वर्षा होती है––या होती है तो इतनी होती है कि बाढ़ आती है। लगता है हवन कुछ ज्यादा हो गया! जंतर-मंतर कुछ ज्यादा हो गये! कि पुरोहितों ने कुछ जोर से पुकार मचा दी और परमात्मा ने एकदम से घबड़ाहट में ज्यादा पानी गिरा दिया।

और तुम कितनी सदियों से यज्ञ-हवन कर रहे हो!

यहां कोई यज्ञ नहीं हो रहा है, कोई हवन नहीं हो रहा है।...अब तुम्हारा तो नाम ही अग्निहोत्री है!

ब्राह्मणों का एक जाल है इस देश पर। खूब चूसा है उन्होंने इस देश को। धर्म के नाम पर इस देश की मिट्टी पलीद कर दी है। तो मुझसे तो वे कैसे.... न ब्राह्मण राजी हो सकते, न साधु-महात्मा राजी हो सकते, न जैन मुनि राजी हो सकते; वे तो सब मुझसे घबड़ाएंगे, परेशान होंगे। उनकी सारी धारणाओं पर मैं चोट कर रहा हूं। अगर मैं सच हूं तो वे सब गलत हैं।

मेरे पास तो सिर्फ प्रतिभाशाली लोग आ सकते हैं। मगर उनकी ही जरूरत है। क्योंकि वे ही नमक हैं। अगर उनको बदला जा सका तो हम सारे मुल्क के मूल आधार बदलने में सफल हो जाएंगे। और मुल्क पर ही मेरी दृष्टि नहीं है, मेरी दृष्टि पूरी मनुष्यता पर है। क्योंकि मैं कोई भारतीय नहीं हूं। यह संयोग की बात है कि यहां पैदा हुआ। यह संयोग की बात होती कि यूनान में पैदा होता। यूनान में पैदा होता तो यूनानी नहीं होता। और रूस में पैदा होता तो रूसी नहीं होता। भारत में पैदा हुआ हूं इसलिए भारतीय नहीं हूं। यह सारी पृथ्वी मेरी है। मैं कोई राजनैतिक सीमा नहीं मानता। मैं चाहता हूं सारी पृथ्वी एक हो, सारी मनुष्यता एक हो।

इसलिए न पंडित मुझसे राजी होगा, न पुरोहित, न राजनेता।

तुम कहते हो, अदना गुरु भी अपनी शिष्य-संख्या लाख से नीचे नहीं रखते। करोड़ भी रख सकते हैं। कोई अड़चन नहीं है। जितना मूढ़ गुरु होगा इस देश में, उतनी ही भीड़-भाड़ उसके पास इकट्ठी होगी।

मूढ़ों की भीड़ को मूढ़ों की भाषा समझ में आती है। उनके बीच तालमेल बैठ जाता है।

और, इस देश में प्रत्येक की अपनी अपेक्षा है। वह अपेक्षा पूरी होनी चाहिए। जैसे अगर कोई जैन स्थानकवासी या तेरापंथी यहां आए, तो उसकी अपेक्षा है कि मेरे मुंह पर मुंहपट्टी होनी चाहिए। अगर मुंहपट्टी नहीं तो मैं संत नहीं। उसकी अपेक्षा मैं पूरी करूं तो जरूर उसके लिए संत हूं। फिर वह मेरे चरण छूने को राजी है। फिर दूसरे लोग हैं, उन सबकी अपनी अपेक्षाएं हैं। अगर दिगम्बर जैन आए, तो मुझे नग्न होना चाहिए। अगर नग्न हूं, तो, तो ही मुझे ज्ञान हुआ।

मैं चांदा में एक घर में मेहमान था। एक वृद्धजन, कोई अस्सी वर्ष की उम्र, जैन, वे मुझे मिलने आए। उन्होंने मेरी एक किताब 'साधना-पथ' पढ़ी थी। और बहुत प्रभावित थे। और मुझसे कहने लगे कि आप तो ऐसे हैं जैसे बीसवीं सदी के तीर्थंकर। यूं बात चलती रही, तभी घर की गृहिणी ने आकर कहा कि अब आप भोजन कर लें, सांझ का वक्त हो गया। मैंने कहा कि ये वृद्ध दूर से चल कर आए हैं, पहले इनसे बात कर लूं, भोजन पीछे हो जाएगा। सूरज डूब रहा था। वृद्ध ने कहा, पीछे हो जाएगा! अरे, सूर्यास्त हो रहा है! क्या आप सूरज के डूबने के बाद भोजन

करेंगे? मैंने कहा कि यह ज्यादा महत्त्वपूर्ण है कि आप कोई बीस मील से चलकर आए हैं, वृद्ध हैं, और मुझे पता है कि आप वर्षों से कहीं नहीं गये, मुझे मिलने आए हैं, तो पहले आप से बात हो ले, भोजन का क्या है, घंटे भर बाद हो जाएगा। और फिर बिजली की रोशनी में क्या चिंता है? और यह जो घर में मैं ठहरा हुआ हूं, पूरा एअरकंडीशंड है, न यहां कोई मक्खी है, न कोई मच्छर है; तो आप चिंता न करें, न मक्खी मरेंगी, न मच्छर मरेगा।

बस, वह तो उठकर खड़े हो गये। कहा, तो फिर मुझे क्षमा करें! तो मैंने जो शब्द आपसे कहे कि आप तीर्थंकर जैसे हैं, मैं वापिस लेता हूं। अरे, आपको अभी इतना भी बोध नहीं कि रात्रि भोजन नहीं करना चाहिए। मैंने कहा, अच्छा ही हुआ कि बात साफ हो गयी। नहीं तो आप इस भ्रांति में रहते कि मैं तीर्थंकर हूं। मैं तीर्थंकर नहीं हूं, मैं तो रात्रि भोजन करता हूं।

वे तो फिर मुझसे बात ही नहीं किये। एकदम भन्नाए और वापिस चले गये।

अपेक्षा उनकी पूरी होनी चाहिए थी, तो मैं तीर्थंकर था। जरा-सी में बात खतम हो गयी। जरा-सी बात में तीर्थंकर गैर-तीर्थंकर हो गया! घंटे भर के फासले में। सूरज की रोशनी में भोजन कर लेता तो तीर्थंकर था। और यह मैंने जानकर कहा उस गृहिणी को कि रुक जा, जल्दी मत कर। इन सज्जन को याद दिलानी थी कि तुम भ्रांति में न पड़ो, मैं कोई तीर्थंकर नहीं हूं; तुम मेरे ऊपर कोई अपेक्षाएं न लादो।

मैं किसी की अपेक्षाएं पूरी नहीं करूंगा। मैं अपने ढंग से जीयूंगा। जो मेरे साथ राजी होने को है राजी, बस, वही मेरे साथ हो सकता है। मैं किसीकी अपेक्षाएं पूरी करके किसीको साथ करना नहीं चाहता। और इस देश में हर एक की अपेक्षाएं हैं। इस देश में ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है जिसकी अपेक्षाएं न हों।

कल ही एक मित्र ने पत्र लिखा कि मध्य प्रदेश के भूतपूर्व मुख्यमंत्री गोविंद नारायण सिंह से मैं मिला, तो उन्होंने कहा कि तुम अपने गुरु को भगवान कहते हो; शास्त्रों में भगवान के छह लक्षण हैं, क्या वे लक्षण पूरे करते हैं? तो उन मित्र ने कहा कि मुझे पता नहीं कौन से छह लक्षण हैं, और मुझे पता नहीं कि शास्त्र क्या कहते हैं, लेकिन मैं छह हजार लक्षण गिना सकता हूं––शास्त्र में हों या न हों। उन्होंने कहा, छह हजार का सवाल नहीं है, छह लक्षण होने चाहिए। जब तक छह लक्षण न हों, कोई भगवान नहीं।

उनके छह लक्षण मैं पूरे कर दूं तो वे भगवान मानने को राजी हैं। मगर किसको पड़ी है कि तुम मुझे भगवान मानो! गोविंद नारायण सिंह को भगवान मनवाकर मैं करूंगा भी क्या! बुद्धुओं की भीड़ मुझे यहां इकट्ठी करनी नहीं है।

फिर मैं किस-किसकी अपेक्षाएं पूरी करूं? उनके छह लक्षण तो पूरे हो जाएं, तो

जैन नाराज हो जाएं। अगर जैनों के तीर्थंकर के लक्षण पूरे कर दूं तो बौद्ध नाराज हो जाएं। अगर बुद्ध के लक्षण पूरे कर दूं तो मुसलमान नाराज हो जाएं।

और मैं क्यों किसी के लक्षण पूरे करूं? मुझे किसीका वोट लेना है, मत लेना है! मैं अपनी सहजता से जी रहा हूं, अगर तुम्हारे शास्त्र से मेल खा जाए मेरी सहजता तो तुम्हारे शास्त्र का सौभाग्य, न खाए तो तुम्हारे शास्त्र की बदकिस्मती, मैं क्या कर सकता हूं!

इसलिए मेरे पास भीड़ नहीं हो सकती। मेरे पास तो बस चुनिंदा लोग हो सकते हैं। और धर्म सदा से चुनिंदा लोगों की बात है, भीड़ की बात नहीं। भीड़ क्या ख़ाक धार्मिक होगी!

और क्या करूंगा इकट्ठा करके इन लोगों को जो गणेश जी के जुलूस में लाखों की तरह इकट्ठे होते हैं—इनको इकट्ठा करके करूंगा क्या? मैं कोई गणेश जी हूं! ये जो हनुमान के मंदिर में बैठकर आरती उतारते हैं, इनको यहां करूंगा क्या!—मैं कोई हनुमान जी हूं! किस-किस की अपेक्षाएं यहां पूरी करोगे? मैं इनमें से कोई भी नहीं हूं। मैं तो मैं ही हूं।

और मेरी यह अनुभूति है कि प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं होना है, किसीकी अनुकृति नहीं। जो अनुकृति होता है, वह कार्बन कापी है, उसने अपनी आत्मा को गंवा दिया, बेच दिया, सस्ते में बेच दिया। मैं अपनी आत्माको किसी कीमत पर बेचने को राजी नहीं हूं। एक भी भारतीय यहां न हो तो चलेगा। मेरा क्या बिगड़ता है! लेकिन जो थोड़े-से लोग यहां होंगे, उनके जीवन में धन्यता आ सकती है।

मेरे पास जिन्हें आना हो वे यह सोचकर आएं कि मेरे साथ उन्हें राजी होना है, मैं उनके साथ राजी नहीं होऊंगा। और जो तुम्हारे साथ राजी हो रहे हैं वे क्या खाक तुम्हारा मार्गदर्शन करेंगे! तुम्हीं उनका मार्गदर्शन कर रहे हो। तुम्हीं उनको बताते हो, कैसे उठो, कैसे बैठो। मैंने धीरे-धीरे उन सारे लोगों का साथ छोड़ दिया है। वे शायद यही सोचते हैं कि उन्होंने मेरा साथ छोड़ दिया। वे गलती में हैं। वे भ्रांति में हैं। मैं इस ढंग से साथ छोड़ता हूं कि तुम्हें यह पता नहीं चलता कि मैं साथ छोड़ रहा हूं या तुम साथ छोड़ रहे हो। तुम्हें मैं यही भ्रांति रहने देता हूं कि तुम्हीं साथ छोड़ रहे हो। क्योंकि तुम्हें क्या कष्ट देना! मारे को क्या मारना! तुम जाओ! मगर मैं इस तरकीब से तुम्हें विदा कर देता हूं। मैं तुम्हारी अपेक्षा पूरी नहीं करता।

जिन्होंने भी मुझे कभी सलाह दी है, उनसे मेरा साथ तत्क्षण छूट गया। क्योंकि दो बातों में से एक तय हो जाना चाहिए कि तुम मुझसे यहां कुछ सीखने आए हो या मुझे कुछ सिखाने आए हो। अगर तुम मुझे कुछ सिखाने आए हो तो व्यर्थ समय खराब न करो। मुझे कुछ सीखना नहीं है। मेरा काम पूरा हो चुका। जो मुझे

सीखना था सीख लिया, जो जानना था जान लिया। मुझे यहां दुबारा लौटकर नहीं आना है, मेरा मामला पूरा हो गया। यह पाठ पूरा हो गया। मुझे सिखाने की फिकिर न करो। हां, जो मुझे सलाह देने आएगा, वह गल्ती में पड़ रहा है। उस तरह के लोगों को मैंने छांट दिया है।

ऐसे-ऐसे लोग हैं वे मुझे सलाह देते हैं: आप क्या बोलें, क्या न बोलें! किस तरह बोलें कि किसीको चोट न लग जाए। इस बात को तो आप न ही कहते तो अच्छा था। क्योंकि इससे उपद्रव खड़ा हो जाएगा। वे समझते हैं कि मेरे बड़े हिताकांक्षी हैं। मगर तुम अपने अज्ञान में, अपनी मूढ़ता में, अपनी बेहोशी में क्या मेरी हिताकांक्षा करोगे!

अगर जीसस ने इन लोगों की बातें मान ली होतीं तो सूली न लगती, यह पक्का था। क्योंकि उन्होंने कुछ बातें न कही होतीं जिनकी वजह से खतरा पैदा हुआ। मगर बिना सूली के जीसस के जीवन में कुछ अधूरा रह जाता। कुछ कमी रह जाती। जो इन दो कौड़ी के लोगों की बात मान लेते, उनके जीवन में क्या सार हो सकता था! जरूर इन्होंने अगर बुद्ध को समझाया होता और बुद्ध ने इनकी बात मान ली होती, तो शायद भीड़-भाड़ उनके पास इकट्ठी होती। लेकिन उन्होंने नहीं माना। नहीं माना, अच्छा किया। बुद्ध-धर्म भारत से उखड़ गया, कोई हर्ज नहीं, लेकिन बुद्ध को जैसे जीना था वैसे जीए, जो कहना था वह कहा। उससे सारे जगत की प्रतिभा को रोशनी मिली।

तुम यह ख्याल रखना कि तुम्हारे राम, तुम्हारे कृष्ण, तुम्हारे परशुराम, तुम्हारे और जितने ईश्वर के अवतार हैं, दुनिया की नजरों में बुद्ध के मुकाबले उनमें से किसी की कोई कीमत नहीं है। तुमने भला बुद्ध को उखाड़ फेंका हो, क्योंकि तुम्हारी अपेक्षाएं बुद्ध ने पूरी नहीं कीं, लेकिन बुद्ध के कारण ही सारे जगत में एक रोशनी है। और बुद्ध ने तुम्हारी बात नहीं मानी, अच्छा किया। तुम्हारी बात मानता ही वह है जो तुमसे भी गया-बीता है। जिससे तुम अपनी बात मनवा लेते हो, जाहिर है कि उसकी कोई आकांक्षा है तुमसे पूरा करवा लेने की। यह सौदा है। मैं कोई सौदा करने को राजी नहीं।

इसलिए यहां तो भारतीय लोगों की भीड़ नहीं हो सकती—किसीकी भीड़ नहीं हो सकती। यहां दुनिया के सारे देशों से लोग इकट्ठे हैं, किसी देश की भीड़ नहीं है। और जरूर भारत में वे लोग जिनको जीवन में क्रांति का आनंद लेना है, आ रहे हैं।

और भीड़-भाड़ इकट्ठी करके काम खराब करना है! यह जीवन का नाजुक से नाजुक काम है—ध्यान—इससे नाजुक कोई सर्जरी नहीं, इससे ज्यादा कीमती और बहुमूल्य कोई अन्वेषण नहीं, यहां तमाशा करना है! यहां भीड़ इकट्ठी करनी है—

काहिलों की, सुस्तों की, आलसियों की ! क्या करेंगे ? यहां कोई कुंभ का मेला भरना है !

मुझे कोई उत्सुकता नहीं है लाखों में। मुझे तो गिनती के लोगों में उत्सुकता है, जिनमें प्रखर प्रतिभा हो और जिनमें क्षमता हो चुनौती स्वीकार करने की। सत्य का निमंत्रण जो लेने को तैयार हैं, बस उनमें मेरी उत्सुकता है। वे भारतीय हों, अभारतीय हों, हिन्दू हों, मुसलमान हों, ईसाई हों, मुझे कुछ भेद नहीं पड़ता। मैं तो एक ही तरह के आदमी में रस लेता हूं—जिसको परमात्मा की तलाश है।

तीसरा प्रश्न : भगवान,
मयकदे में साकी को हमने रोते देखा।
रिन्दों को जबसे रजनीशी होते देखा।।

दिनेश भारती ! मयकदे तो खाली हो जाएंगे ! क्योंकि असली पियक्कड़ यहां इकट्ठे हो रहे हैं। यह मयकदा है। यहां शराब ही पी जा रही है। मगर साधारण शराब नहीं।

रात को पी दिन को तौबा कर ली
रिन्द के रिन्द रहे हाथ से जन्नत न गयी
मैंने नजरों से पी, पी नहीं जाम से
ये नशा वो नहीं जो उतर जाएगा
आज नजरों से नजरें अगर न मिलीं
तेरा आशिक तेरे दर पै मर जाएगा
मैंने नजरों से पी, पी नहीं जाम से
ये नशा वो नहीं जो उतर जाएगा
केश उलझा के आओ जरा बाम पर
जान-ओ-सर भी कुर्बां हैं इस जाम पर
रुखे मेहताब की इक झलक देख लूं
वक्त बाकी नशे में गुजर जाएगा
मैंने नजरों से पी, पी नहीं जाम से
ये नशा वो नहीं जो उतर जाएगा
तौबा की, फिर तौबा की, फिर तौबा की, फिर तोड़ दी
मेरी तौबा पर तो तौबा, तौबा तौबा कर उठी
ये वो मय है जिसमें कुदूरत नहीं

और मय की रही अब जुरूरत नहीं
इक नजर देख तेरा बिगड़ता है क्या
मेरा बिगड़ा मुकद्दर सम्हल जाएगा
मैंने नजरों से पी, पी नहीं जाम से
ये नशा वो नहीं जो उतर जाएगा
सर पै साइल खड़ा कर रहा है सदा
कुछ तो खैरात दे दे सलामते खुदा

मयक़दा तेरा साकी सलामत रहे
नाम लेगा ये दीवाना जिधर जाएगा
मैंने नजरों से पी, पी नहीं जाम से
ये नशा वो नहीं जो उतर जाएगा
जो पीनेवाले हैं आते हैं होश में पीकर....
जो पीनेवाले हैं आते हैं होश में पीकर
मय हराम नहीं सब कुसूर अपना है
तेरे गम में अगर हम हो जाएं खतम
साथ मेरे दर्दे-जिगर जाएगा
आज नजरों से नजरें अगर न मिलीं
तेरा आशिक तेरे दर पै मर जाएगा
मैंने नजरों से पी, पी नहीं जाम से
ये नशा वो नहीं जो उतर जाएगा

जरूर यहां भी पीना और पिलाना चल रहा है। मयक़दे खाली हो ही जाने चाहिए। मयक़दों के साक़ियों को रोना ही होगा। जब कोई भीतर की शराब पीने लगता है तो बाहर की शराब अपने से व्यर्थ हो जाती है। यह मेरा अनेक-अनेक लोगों के निरीक्षण से लिया गया निष्कर्ष है।

मेरे पास शराबी आ जाते हैं और वे बिचारे संकोच करते हैं। वे कहते हैं कि हम शराबी हैं, क्या हम भी संन्यास के पात्र हैं ? मैं कहता हूं, फिकिर छोड़ो ! शराब ही किसलिए पीते हो ? वह भी संन्यास की ही कोई छिपी हुई आकांक्षा है। अपने को भूल जाना चाहते हो। संन्यास अपने को मिटा देना है। यह और एक कदम आगे की बात है। भूलने से कोई भूला है ? फिर याद आएगी। अरे, मिटा ही दो ! बात ही खतम कर दो ! न रहेगा बांस न बजेगी बांसुरी।

ऋग्वेद से लेकर आज तक लाख उपाय किये गये हैं कि दुनिया में शराब बंद हो जाए, नशे बंद हो जाएं, लेकिन बंद नहीं हो सके—बंद नहीं होंगे, जब तक कि जिस

शराब की मैं बात कर रहा हूं, अधिकतम लोग उसे न पीने लगें। क्योंकि शराब की तलाश वस्तुतः अहंकार से छुटकारे के लिए ही है। अहंकार इतना भारी हो जाता है, मस्तिष्क इतना बोझिल हो जाता है, व्यर्थ की धारणाएं चित्त को इस तरह चिंतित करने लगती हैं--मथ डालती हैं--कि आदमी चाहता है थोड़ी देर के लिए छुटकारा हो जाए। थोड़ी देर के लिए ही सही कम-से-कम आज तो विश्राम मिल जाए, कल की कल देखेंगे। मगर कल आता है, फिर वही चिंताएं हैं, फिर वही संताप हैं—और भी ज्यादा बड़े होकर। क्योंकि तुम जब शराब पिए पड़े रहे तब चिताएं बड़ी होती रहीं, बढ़ती रहीं। जैसे पौधे बढ़ते हैं ऐसे चिंताएं बढ़ती हैं। तुम तो सोते रहे, इससे कुछ चिंताएं कम नहीं हो जाएंगी! दूसरे दिन फिर चिंताएं खड़ी हैं।

चिंताओं से मुक्त होने का उपाय एक है और वह है : ऐसी शराब पिओ कि जिसे पीकर होश आ जाए!

जो पीने वाले हैं आते हैं होश में पीकर....

ऐसी शराब ही तुम्हें पिला रहा हूं। और जहां होश आया, वहां अहंकार गया। जहां होश आया वहां मन गया। और जहां मन नहीं है, वहां कैसी चिंता! भुलाने को ही कुछ नहीं बचता।

तो मैं शराबियों को भी संन्यास देता हूं। और उनसे कहता हूं, बेफिक्री से लो! पंडितों से तो तुम बेहतर हो। कम-से-कम विनम्र तो हो। कम-से-कम यह तो पूछते हो सिर झुकाकर कि क्या मैं भी पात्र हूं? क्या मेरी भी योग्यता है? क्या आप मुझे भी अंगीकार करेंगे? वह जो तिलकधारी पंडित है, वह सिर नहीं झुकाता, वह अकड़ कर खड़ा है। वह तो पात्र है ही! वह तो सुपात्र है! वह तो ब्राह्मण के घर में पैदा हुआ है! वह तो जन्म से ही ब्रह्म को जानता पैदा हुआ है!

शराबी उससे लाख दर्जा बेहतर है। कम-से-कम सिर तो झुकाए है, विनम्र तो है। अपनी पात्रता का दावा तो नहीं कर रहा है। अहंकार तो नहीं है, अस्मिता तो नहीं है। मैं उसे अंगीकार करता हूं। और यह मेरे अनुभव में आया है कि जैसे ही व्यक्ति ध्यान में उतरना शुरू करता है, शराब छूटनी शुरू हो जाती है।

मैं शराबबंदी का पक्षपाती नहीं हूं। मैं तो चाहता हूं कि लोगों को असली शराब पिलायी जाए तो वे अपने-आप झूठी शराब पीना बंद कर देंगे। ऐसी शराब पिलायी जाए कि एक दफा पी ली तो पी ली, फिर जिसका नशा उतरता नहीं।

और यह रोज-रोज हो रहा है। आनंद स्वभाव ने लिखा है--

अज़ां हो चुकी है, पिला जल्द साकी
अज़ां हो रही है, पिला जल्द साकी
इबादत करूंगा मैं आज मख़मूर होकर

और स्वामी अक्षय विवेक ने लिखा है--

भगवान,

चलते चलते मुसकरा कर थम गये।
होशमंदो लो सम्हालो हम गये।
तुमने दी जो बख़शीशों की शुक्रिया
मेरे सर से वो जहां के गम गये।
बेखबर मुझको न जाने क्या हुआ
मुसकराते आए थे पर जम गये।
आह! तूने कैसी नजरें डाल दीं
दोनों आलम चलते-चलते थम गये।

और आनंद ऊषा ने लिखा है--

भगवान,

तेरी मय वो मय--जिसने मैं को भुला दिया
तेरी निगाहों में डूबकर खुद को पा लिया
है क्या गजब की निगाह तेरी कि कब्र में दिल हिला दिया
चैन से सो रही थी मैं तुमने मुझे जगा दिया।

और स्वामी आनंद मुहम्मद ने लिखा है--

मौत से यारी न थी
जिंदगी से बेज़ारी न थी
उस सफर पर चल दिये हम,
जिसकी तैयारी न थी।
अब तो यूं लगता है
सदियों की तनावें खिंच गईं
इससे पहले तो ये
वक्त की तेज रफ्तारी न थी।
अब शिकस्ता दिल है
बाइसे तस्कीने दिल
इससे पहले तो ये
कैफियत तारी न थी
इससे पहले तो ये
कैफियत तारी न थी

यह बेहोशी, यह अद्‌भुत बेहोशी इसके पहले तो नहीं थी। तारी शब्द बड़ा महत्त्वपूर्ण है। यह उस बेहोशी का नाम है जो परमात्मा को पीकर ही उपलब्ध होती है। तारी लग जाती है। तार जुड़ जाते हैं। फिर टूटते ही नहीं। फिर एक अनाहत संगीत भीतर बजने लगता है। यह वह शराब नहीं है जो अंगूरों से ढलती है, यह वह शराब है जो आत्मा में ढलती है। उस आत्मा में, जिस को पाने के लिए--

नायं आत्मा प्रवचनेन लभ्यो

जिसे पाने के लिए प्रवचन किसी काम नहीं आते।

न मेधया न बहुना श्रुतेन।

और न बुद्धि काम आती, न शास्त्र काम आते।

यं एवैष वृणुते तेन लभ्यस्

उन्हें मिलती है यह, जिन्हें परमात्मा वरण करता है।

तस्यैष आत्मा विवृणुते स्वाम्॥

और यह आत्मा अपने रहस्य उनके सामने खोल देती है।

मगर परमात्मा किसको वरण करता है? पियक्कड़ों को, रिन्दों को।

तोड़ दो तौबा और जी भर कर पिओ।

आज इतना ही।

२ अक्तूबर १९८०; श्री रजनीश आश्रम, पूना

स्वयं का सत्य ही मुक्त करता है
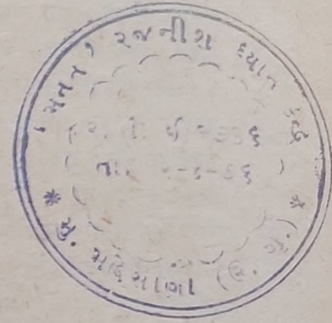
पहला प्रश्न : भगवान, यह श्लोक मुंडकोपनिषद का है :

सत्यं एव जयते नानृतम्
सत्येन पन्था विततो देवयानः।
येनाक्रमन्ति ऋषयो ह्याप्तकामा
यत्र तत्र सत्यस्य परमं निधानम्॥

अर्थात सत्य की जय होती है, असत्य की नहीं। जिस मार्ग से आप्तकाम ऋषिगण जाते हैं और जहां उस सत्य का परम निधान है, ऐसा देवों का वह मार्ग हमारे लिए सत्य के द्वारा ही खुलता है।

भगवान, क्या सत्य साध्य और साधन दोनों है? हमें दिशाबोध देने की अनुकंपा करें!

सहजानन्द! धर्म के सूत्रों के संबंध में एक प्राथमिक बात सदा स्मरण रखना : वे अन्तर्यात्रा के सूत्र हैं, बहिर्यात्रा के नहीं। यह भूल जाए तो फिर सूत्रों की व्याख्या गलत हो जाती है। यह सूत्र धर्म का प्राण है, लेकिन राजनीति का नहीं। धर्म में तो निश्चित ही सत्य जीतता है और असत्य हारता है, राजनीति में बात बहुत भिन्न है। वहां जो जीते, वह सत्य, जो हारे, वह असत्य। वहां निर्णय जीत और हार से होता है, सत्य और असत्य से नहीं। राम अगर हार गये होते रावण से, तो तुम दशहरे पर राम की होली जलाते, रावण की नहीं। रावण अगर जीत गया होता, तो तुम्हारे तुलसीदासों ने रावण की स्तुति और प्रशंसा में गीत लिखे होते।

राजनीति का जगत अर्थात बहिर्यात्रा। वहां बेईमानी जीतती है, असत्य जीतता है, पाखंड जीतता है, चालबाजी जीतती है, कपट जीतता है। और फिर जो जीतता है, वह सत्य मालूम होता है। वहां सरलता हारती है। वहां सत्य पराजित होता है।

वहां ईमानदारी की कोई गति नहीं है। वहां सीधा, साफ-सुथरा होना हारने के लिए पर्याप्त कारण है। वहां धोखेबाज, उनकी गति है।

यह सूत्र अंतर्यात्रा का सूत्र है। लेकिन राजनीतिज्ञ भी इसका उपयोग करते हैं। भारत ने तो अपना राष्ट्रीय घोषणापत्र ही इस सूत्र को बना लिया है : सत्यमेव जयते। सत्य की सदा विजय होती है। मगर जिसके पास भी आंखें हैं, वह देख सकता है। क्या तुम सोचते हो स्टेलिन सत्य था, इसलिए हिटलर से जीत गया ? दोनों एक-दूसरे से बढ़ कर असत्य थे। हिटलर इसलिए नहीं हारा कि असत्य था और चर्चिल, रूजवेल्ट और स्टेलिन इसलिए नहीं जीते कि सत्य थे। इसलिए जीते कि ये सारे असत्य इकट्ठे हो गये थे एक असत्य के खिलाफ। एक असत्य कमजोर पड़ गया इन सारे असत्यों के मुकाबले। असत्य ही जीता।

एडोल्फ हिटलर जीत सकता था। तो सारा इतिहास और ढंग से लिखा जाता। यही इतिहासविद जो अभी उसकी निंदा में लिख रहे हैं, उसकी प्रशंसा में लिखते।

इतिहास तुम्हारा सरासर झूठ है। इतिहास का कोई संबंध तथ्यों से नहीं है। इतिहास का संबंध है लिखने वालों से। और लिखने वाले उसकी खुशामद में लिखते हैं जो जीता है। हारे को तो पूछता कौन ? डूबते सूरज को तो कौन नमस्कार करता है ? ऊगते सूर्यों को नमस्कार किया जाता है। अंग्रेजों ने एक ढंग का इतिहास लिखा था और जब हिन्दुओं ने इतिहास लिखना शुरू किया, उन्होंने दूसरे ढंग का इतिहास लिखा। मुसलमान तीसरे ढंग का इतिहास लिखेंगे।

पश्चिम का एक बहुत बड़ा इतिहासज्ञ एडमंड बर्क मनुष्यजाति का इतिहास लिख रहा था—पूरी मनुष्यजाति का। उसने कोई बीस वर्ष अपने जीवन के इस महान कार्य में संलग्न किये थे। और उसकी किताब करीब होने को आ रही थी, बस आखिरी अध्याय लिख रहा था और एक दिन यूं घटना घटी कि उसने अपनी बीस साल की मेहनत को आग लगा दी। बात ऐसी हुई, उसके घर के पिछवाड़े ही एक हत्या हो गयी। दो आदमियों में झगड़ा हुआ और एक आदमी मार डाला गया—उसको गोली मार दी गयी। यह गोली कोई रात के अंधेरे में एकांत में नहीं मारी गयी थी। भरी दोपहरी में, भीड़ खड़ी थी, सारा मोहल्ला इकट्ठा था, सैकड़ों लोग मौजूद थे जब यह झगड़ा हुआ। जब एडमंड बर्क को गोली की आवाज सुनायी पड़ी, वह भागा हुआ पहुंचा। वहां भीड़ इकट्ठी थी, आदमी मरने के करीब था—लहूलुहान था—जिसने मारा था, वह भी मौजूद था। उसने अलग-अलग लोगों से पूछा, क्या हुआ ? और जितने मुंह उतनी बातें। घर के पिछवाड़े हत्या हुई, अभी मरने वाला मरा भी नहीं है—मर रहा है—अभी मारने वाला भाग भी नहीं गया है—मौजूद है—चश्मदीद गवाह मौजूद हैं—एक नहीं, अनेक—सबने देखा है, लेकिन सबकी व्याख्या अलग है। जो मरने वाले के पक्षपाती हैं, वे कुछ और कह रहे हैं। जो मारने वाले

के पक्षपाती हैं, वे कुछ और कह रहे हैं। जो तटस्थ हैं, वे कुछ और कह रहे हैं। एडमंड बर्क ने बहुत कोशिश की जानने की कि तथ्य क्या है, नहीं जान पाया। लौट कर उसने अपने बीस वर्षों का जो श्रम था उसमें आग लगा दी। उसने कहा, जब मैं अपने घर के पिछवाड़े अभी-अभी घटी ताजी घटना को तय नहीं कर पाता कि तथ्य क्या है, और मैं मनुष्यजाति का इतिहास लिखने चला हूं ! कि पांच हजार वर्ष पहले क्या हुआ ? मैंने ये बीस वर्ष व्यर्थ ही गंवाए। मैं पानी पर लकीरें खींचता रहा।

इतिहास कौन लिखता है; कौन लिखवाता है ? और फिर सदियों तक जो बात लिखी गयी, उसे हम दोहराते चले जाते हैं।

राजनीति बहिर्यात्रा है। राजनीति का अर्थ है : दूसरे पर विजय पाना। और जहां दूसरे पर विजय पाना है, वहां सत्य का क्या प्रयोजन ! सत्य का कोई उपयोग भी नहीं किया जा सकता दूसरे पर विजय पाने के लिए। यह बात ही गलत है। दूसरे पर विजय पाने की आकांक्षा ही गलत है। इसके लिए सत्य का साधन की तरह उपयोग नहीं किया जा सकता। सत्य और दूसरे पर विजय पाना, इन दोनों के बीच क्या संबंध हो सकता है ! हां, अंतर्यात्रा के जगत में यह सूत्र जरूर सत्य है। वहां सत्य ही जीतता है। सत्य ही जीत सकता है। वहां असत्य की हार सुनिश्चित है। वहां असत्य को हारना ही होगा। अंतर्जगत में असत्य वह है, जो है ही नहीं। जो है ही नहीं, वह जीतेगा कैसे ? मगर वह जीत और है। वह आत्म-विजय है। अपने पर विजय है। और अपने पर विजय में किसको धोखा देना है ? और क्या सार है धोखा देने का ? खुद को ही धोखा देने से मिलेगा भी क्या ? और धोखा देना भी चाहोगे तो कैसे दोगे ? तुम तो जानते ही रहोगे कि धोखा दे रहे हो।

तो इस भेद को ख्याल में ले लेना। इस सूत्र की व्याख्या तो बहुत बार की गयी, क्योंकि प्यारा सूत्र है, मगर यह बुनियादी भेद कभी साफ नहीं किया गया कि यह सूत्र बाहर के जगत में लागू नहीं होता। वहां सब तरह की तिकड़म, चालबाजी, पाखंड, मुखौटे उपयोगी हैं। वहां सत्य तुम्हें हरा देगा। वहां तुम सत्य बोले कि गये। राजनीति में कहीं सत्य चल सकता है ! राजनीति में तो चाणक्य का शास्त्र चलता है, मुंडकोपनिषद नहीं चलते। राजनीति में तो मेक्यावेली चलता है, बुद्ध और महावीर की वहां कोई गति नहीं है। फिर चाणक्य हों कि मेक्यावेली, इनकी आधारशिला एक है; धोखा देने की कुशलता। हां, जरूर सत्य को तो नहीं जिताया जा सकता बाहर के जगत में, लेकिन असत्य को भी जिताना हो तो सत्य की तरह प्रतिपादित करना होता है। असत्य को भी चलाना हो तो सत्य का रंग-रोगन करना होता है। सत्य की कम-से-कम झूठी प्रतीति खड़ी करनी पड़ती है। क्योंकि लोग सत्य से प्रभावित होते हैं। फिर सत्य हो या न हो, यह और बात है। भ्रम काफी

है। झूठ को भी यूं सजाना होता है कि वह सच जैसा मालूम पड़े। कम-से-कम मालूम पड़े। जैसे खेत में हम पशु-पक्षियों को डराने के लिए एक झूठा आदमी बना कर खड़ा कर देते हैं; एक डंडे पर हंडी रख देते हैं, दूसरा डंडा बांध कर हाथ बना देते हैं, फिर कुर्ता पहना दो और गांधी टोपी लगा दो; चाहो चूड़ीदार पाजामा—और मोरारजी देसाई तैयार! और चाहिए क्या? पशु-पक्षियों को भगाने के काम में कम-से-कम आ ही जाएंगे। और तो किसी काम के हैं भी नहीं!

खलील जिब्रान की एक प्रसिद्ध कथा है, कि मैं निकलता था एक खेत के करीब से और मैंने वहां एक धोखे के आदमी को खड़ा देखा। वर्षा हो, धूप हो, सर्दी हो, यह बेचारा सतत पहरी की तरह खड़ा रहता। न थकता, न ऊबता, न बैठता, न सुस्ताता, न लेटता। अथक इसकी साधना है। महायोगी है। तो मैंने पूछा कि कभी थक नहीं जाते हो? कि भाई, कभी सुस्ताते भी नहीं! कि मैं पूछता हूं, ऊबते नहीं हो? यही जगह, वही काम रोज सुबह-शाम, दिन और रात, कभी तो ऊब पैदा हो जाती होगी? वह खेत में खड़ा झूठा आदमी हंसने लगा और उसने कहा कि पशु-पक्षियों को भगाने में ऐसा मजा आता है, डराने में ऐसा मजा आता है, कि ऊब का सवाल कहां उठता है?

दूसरों को डराने का एक मजा है! राजनीति वही मजा है। दूसरों पर हावी होने का एक मजा है! इससे तुम राजनीतिज्ञ को देखो, हमेशा प्रफुल्लित मालूम होता है। हजार उपद्रवों के बीच, झंझटों के बीच ताजा लगता है। राजनीतिज्ञ लम्बे जीते हैं। किसी और कारण से नहीं, दूसरों को डराने का मजा, धमकाने का मजा! मरना ही नहीं चाहते। जीते ही रहना चाहते हैं। छोड़ते नहीं बनता यह मजा! जैसे ही कोई राजनीतिज्ञ पद से उतरता है कि बस, जीवनऊर्जा क्षीण होने लगती है। जब तक पद पर होता है, तब तक जीवनऊर्जा बड़ी अभिव्यक्त होती है। ये सब झूठे आदमी हैं, खेत के आदमी हैं। अब खेत में डराने के लिए कोई असली आदमी थोड़े ही खड़ा करना जरूरी है। लेकिन असली आदमी का धोखा होना चाहिए। पशु-पक्षियों को ऐसा लगना चाहिए कि है असली। तो गांधी टोपी, खादी का कुरता, शेरवानी, चमचमाते जूते—इतना पर्याप्त है।

राजनीति में सत्य नहीं जीता, कभी नहीं जीता। कभी जीतेगा भी नहीं। जिस दिन राजनीति में सत्य जीतने लगेगा, उस दिन राजनीति राजनीति न रह जाएगी। उस दिन नीति हो जाएगी। सिर्फ नीति, शुद्ध नीति। उस दिन जगत से राजनीति विदा हो जाएगी। उस दिन धर्म ही होगा। लेकिन तब राजनीति की व्याख्या और होगी, उसकी गुणवत्ता और होगी—उसमें भगवत्ता होगी। आशा करना करीब-करीब दुराशा है; ऐसा हो नहीं पाएगा।

लेकिन भीतर के जगत में यह सूत्र बिलकुल सत्य है, सौ प्रतिशत—

सत्यं एव जयते नानृतम्
सत्य जीतता है, असत्य नहीं।

असत्य का अर्थ समझ लो। जो नहीं है। जैसे अंधेरा। अब दीया जलाओगे तो क्या अंधेरा जीत सकता है? कितना ही पुराना हो, सदियों पुराना हो, तो भी यह नहीं कह सकता दीये से कि छोकरे, तू तो अभी-अभी जला, अभी घड़ी भी नहीं हुई तुझे और इतनी अकड़ दिखला रहा है! और हम सदियों से यहां हैं, यूं हम मिट जाएंगे क्या? इतनी पुरानी हमारी परम्परा, इस घर में हमारा अड्डा पुराना और तू अभी-अभी आया, मेहमान की तरह, और यूं इतरा रहा है! अभी तुझे बुझा कर रख देंगे! नहीं, अंधेरा एक छोटे-से दीये को भी नहीं बुझा सकता। क्योंकि अंधेरा है नहीं, असत्य है।

असत्य शब्द का अर्थ है: जो नहीं है, जिसका अस्तित्व नहीं है; जो सिर्फ प्रतीत होता है; जो वस्तुतः अभाव है, अनुपस्थिति है। प्रकाश के अभाव का नाम अंधकार है। और सत्य के अभाव का नाम असत्य है। तो जैसे ही प्रकाश आया, फिर अभाव कैसे रह जाएगा? . . . मैं जब तक नहीं आया था, यह कुर्सी खाली थी। अब मैं इस कुर्सी पर आ गया, अब यह कुर्सी खाली नहीं है। मैं इस कुर्सी पर बैठा हूं, तो यह कुर्सी खाली कैसे हो सकती है? यह दोनों बातें एकसाथ नहीं हो सकतीं। वह जो खालीपन था, वह सिर्फ अभाव था। ऐसा अंधकार है। ऐसा असत्य है। दीया जला कि—अंधकार मिटता है ऐसा कहना भी ठीक नहीं, क्योंकि जब हम कहते हैं मिटता है, तो यह भ्रांति होती है कि रहा होगा। यह भाषा की मजबूरी है। मिटता कहना ठीक नहीं है। युक्तियुक्त नहीं है। सत्य के अनुकूल नहीं है। क्योंकि मिटती तो वह चीज है जो रही हो। और अंधकार तो था ही नहीं, तो मिटेगा कैसे? जो नहीं था, वह मिट नहीं सकता। यह कहना भी कि अंधकार चला गया, ठीक नहीं है। क्योंकि जो था ही नहीं, वह जाएगा चल कर कहां? क्या उसके पैर हो सकते हैं? तुम दरवाजे पर खड़े हो जाओ, भीतर कोई दीया जलाए, क्या तुम सोचते हो अंधेरा दरवाजे से भागता हुआ दिखाई पड़ेगा? तुम द्वार-दरवाजे बंद कर दो, रंध्र-रंध्र बंद कर दो, जरा-सी संध न छोड़ो, तब दीया जलाओगे तो अंधकार कहां से भागेगा, कहां जाएगा भाग कर? संध भी तो नहीं है जाने को।

तो अंधकार कहीं जाता नहीं। है ही नहीं तो जाएगा कैसे? मिटता नहीं। है ही नहीं तो मिटेगा कैसे? फिर क्या हो जाता है? प्रकाश की अनुपस्थिति थी, प्रकाश आ गया, अनुपस्थिति समाप्त हो गयी। उपस्थिति अनुपस्थिति को पोंछ डाली।

बस, ऐसा ही सत्य और असत्य का संबंध है। असत्य अर्थात जो नहीं है। सत्य आ जाए, तो असत्य तत्क्षण तिरोहित हो जाता है।

सत्य कैसे आ जाए, इसलिए महत्त्वपूर्ण सवाल यह है। दीया कैसे जले, महत्त्वपूर्ण सवाल यह है।

इस सूत्र से गलती हो सकती है, वह गलती होती रही है। तुमसे न हो जाए, इसलिए सावधान करना चाहता हूं। लोग सोचते हैं, सत्य को शास्त्रों से सीखा जा सकता है। यह यूं हुआ जैसे कि कोई दीये की तस्वीर बना ले और अंधेरे में ले जाए और दीये की तस्वीर रख दे। क्या तुम सोचते हो दीये की तस्वीर से अंधेरा मिटेगा? शास्त्रों में सिर्फ दीये की तस्वीरें हैं। दीये की तस्वीरों से अंधकार नहीं मिटेगा। या कोई दीये की खूब चर्चा करने लगे, गुणगान करने लगे, दीये की स्तुति में गीत गुन-गुनाए, तो भी अंधकार नहीं मिटेगा। दीया ही लाना होगा। ज्योति ही जलानी होगी।

इस सूत्र से यह भ्रांति भी पैदा होती है कि चूंकि असत्य जीतता नहीं, इसलिए असत्य को निकाल बाहर करो। असत्य को त्यागो। यह वैसा ही हुआ जैसे कोई अंधकार को त्यागने की बात करे। कैसे त्यागोगे अंधकार को? धक्के देकर निकालोगे अंधकार को? लड़ोगे अंधकार से? संघर्ष करोगे? क्योंकि यह विजय शब्द खतरनाक है। इससे ऐसा लगता है, लड़ना पड़ेगा, घूंसेबाजी होगी, पहलवानी होगी, दांवपेंच लगेंगे, तलवारें चलेंगी, कृपाणें उठेंगी—'बोलै सो निहाल, सत श्री अकाल'—कुछ उपद्रव होने वाला है; कि याऽ-अली—या बजरंगबली, कुछ-न-कुछ—लंगोट कस कर और जूझ पड़ना है! कि दंड-बैठक लगाने होंगे! कि हाथ-पैर मजबूत करने होंगे! अंधकार से लड़ना जो है! असत्य से लड़ना जो है!

यह सब पागलपन की बातें हैं।

मगर इन बातों का बड़ा आकर्षण है। लोग असत्य से लड़ रहे हैं। अनाचरण से लड़ रहे हैं, दुराचरण से लड़ रहे हैं, बुराइयों से लड़ रहे हैं, अनीति से लड़ रहे हैं, दुष्चरित्रता से लड़ रहे हैं। लड़ कर खुद ही टूट जाएंगे और कुछ भी नहीं होगा। लड़ने में खुद ही आतमघात कर लेंगे, अपनी ही शक्ति को व्यर्थ व्यय कर देंगे। यह सवाल लड़ाई का नहीं है। अंधकार के साथ कुछ भी नहीं किया जा सकता। न तो तुम लड़ सकते हो, न तलवार से उसे काट सकते हो, न फौजें ला कर उसे हटा सकते हो। जो नहीं है, उसके साथ कुछ भी नहीं किया जा सकता। हां, अगर उसके साथ कुछ करना हो, तो प्रत्यक्ष मार्ग नहीं है, परोक्ष मार्ग है। अंधकार के साथ कुछ करना हो तो प्रकाश के साथ कुछ करो। अगर चाहते हो अंधकार हटे, तो प्रकाश जलाओ। और अगर चाहते हो अंधकार रहे, तो प्रकाश बुझाओ। करना होगा प्रकाश के साथ। क्योंकि जो है, उसी के साथ कुछ किया जा सकता है।

इसलिए मेरा जोर आचरण पर नहीं है, मेरा जोर ध्यान पर है। ध्यान है प्रक्रिया स्वयं के भीतर प्रकाश को जला लेने की। ध्यान है प्रक्रिया स्वयं के भीतर सत्य को

आमंत्रित कर लेने की। सत्य में उत्सुक हो गये तो शास्त्रों में उलझ जाओगे। ध्यान में उत्सुक होना। नहीं तो तस्वीरों में पड़े रह जाओगे। और तस्वीरें काम नहीं आतीं। दीये की चर्चा से कुछ नहीं होता, दीया चाहिए।

सत्यं एव जयते नानृतम्

निश्चय ही सत्य जीतता है, असत्य नहीं। मगर सत्य लाओगे कहां से? ध्यान के अतिरिक्त न कभी सत्य आया है, न आ सकता है। शास्त्र से नहीं आता, सिद्धांतों से नहीं आता, सिर्फ अपने भीतर परम मौन, पूर्ण शून्यता में उतरता है। निर्विचार अवस्था में सत्य का बोध होता है। लेकिन लोग अजीब हैं! लोग सत्य के संबंध में विचार करने में लगे हैं कि सत्य क्या है! यूं वे दर्शनशास्त्र में भटक जाते हैं।

इसी जगह से दर्शन और धर्म का रास्ता अलग होता है। दर्शनशास्त्र सोचने लगता है: सत्य क्या है, सत्य को कैसे पाएं, सत्य की रूपरेखा क्या है, व्याख्या क्या है, परिभाषा क्या है, सत्य है या नहीं? और धर्म ध्यान की यात्रा पर निकल जाता है। निर्विचार की यात्रा पर। और दर्शनशास्त्र कहीं भी नहीं पहुंचा, किसी निष्पत्ति पर नहीं।

दर्शनशास्त्र से ज्यादा असफल पृथ्वी पर कोई प्रयोग नहीं हुआ है। और कितनी प्रतिभाएं डूब गयीं इस प्रयोग में! कितने अद्भुत लोग नष्ट हो गये! और ध्यानियों के पास भी बैठ कर लोग दर्शन की यात्रा पर निकल जाते हैं। सुकरात ध्यानी है, लेकिन उसका शिष्य प्लेटो भटक गया। बैठा सुकरात के पास, सुना सुकरात को, लेकिन सुन-सुन कर सोचने-विचारने में लग गया। और जब सुकरात के पास बैठ कर प्लेटो भटक गया, तो प्लेटो का शिष्य अरस्तू तो और भी भटक गया! बात ही गड़बड़ हो गयी। अगर सुकरात और अरस्तू का मिलन हो जाए तो दोनों को एक-दूसरे की बात ही समझ में न आएगी। जमीन-आसमान का फर्क हो गया।

और यह करीब-करीब पृथ्वी के हर देश में हुआ है, हर परंपरा में हुआ है।

बुद्ध के मरते ही उनके संघ में बत्तीस दार्शनिकों के सम्प्रदाय पैदा हो गये। लोग चल पड़े सोचने की दुनिया में अलग-अलग। और सोचने में विवाद है। सोचने में कोई निष्कर्ष तो मिलता नहीं, लेकिन भारी आपाधापी, ऊहापोह मच जाता है। अंधे सोचने लगते हैं हाथी के संबंध में।

पांच अंधों की कहानी तुमने सुनी ही है पंचतंत्र में, कि गये थे अंधे हाथी को देखने। जिसने कान छुआ, उसने कहा कि हाथी सूप की भांति है। और जिसने पैर छुआ था, उसने कहा,... अंधा क्या समझेगा और,... उसने सोचा, हाथी खम्बे की भांति है, स्तम्भ की भांति है। और पांचों अंधों ने अलग-अलग वक्तव्य दिये। उनमें भारी विवाद मच गया। अंधे अक्सर दार्शनिक होते हैं। दार्शनिक अक्सर अंधे होते हैं। इनमें कुछ बहुत भेद नहीं होता। अंधे ही दार्शनिक हो सकते हैं।

जिनके पास आंखें नहीं हैं, वे ही सोचते हैं प्रकाश क्या है ? नहीं तो सोचेंगे क्यों ? जिसके पास आंख है, वह देखता है, सोचेगा क्यों ?

ख्याल रखना, दार्शनिक और द्रष्टा में बड़ा भेद है। यह सूत्र द्रष्टा के लिए है, दार्शनिक के लिए नहीं। सोचने मत बैठ जाना कि सत्य क्या है। निर्विचार होना है। सोचने से मुक्त होना है। वही भूमिका है। जब तुम परिपूर्ण शून्य होते हो, तुम मंदिर हो जाते हो। तुम तीर्थ बन जाते हो। सत्य अपने से अवतरित होता है, उतरता है। क्योंकि तुम जब शून्य होते हो, तुम्हारे द्वार-दरवाजे सब खुले होते हैं--अस्तित्व तुम्हारे भीतर प्रवेश कर सकता है।

सत्यं एव जयते नानृतम्

सत्य जीतता है, असत्य नहीं।

सत्येन पन्था विततो देवयानः।

और यह सत्य का जो पंथ है, यही है देवयान, यही है दिव्यमार्ग। विचार का नहीं, शास्त्र का नहीं, दिव्यता का।

सत्येन पन्था विततो देवयानः।

सत्य मार्ग है। वही देवयान है।

दो यानों को समझ लो। एक को कहा है परम्परा में : पितृयान और दूसरे को कहा है : देवयान। यान का अर्थ होता है : नाव। पितृयान का अर्थ होता है : हमारे बुजुर्ग, हमारे बाप-दादे जो करते रहे, वही हम करें। पितृयान यानी परम्परा। जिससे सदियों से लोग चलते रहे, उन्हीं लकीरों पर हम भी फकीर बने रहें। और देवयान का अर्थ होता है : क्रांति। परम्परा से मुक्ति। अपनी दिव्यता की खोज। औरों के पीछे न चलना। उद्घोषणा। बगावत। विद्रोह।

मैं तुम्हें देवयान दे रहा हूं। संन्यास का अर्थ है : देवयान। तुम हिन्दू नहीं हो, मुसलमान नहीं हो, ईसाई नहीं हो, जैन नहीं हो, बौद्ध नहीं हो, तुम सिर्फ धार्मिक हो। मैं अपने संन्यासी को चाहता हूं वह सारे विशेषणों से मुक्त हो जाए। क्योंकि वह सब पितृयान है। तुम्हारे पिता हिन्दू थे, इसलिए तुम हिन्दू हो। और तो तुम्हारे हिन्दू होने का कोई कारण नहीं है। अगर बचपन से ही तुम्हें मुसलमान घर में बड़ा किया गया होता, तुम मुसलमान होते। चाहे हिन्दू घर में ही पैदा हुए होते, लेकिन अगर मुसलमान मां-बाप ने बड़ा किया होता, तो मस्जिद जाते, मंदिर नहीं; कुरान पढ़ते, गीता नहीं; जरूरत पड़ जाती तो मंदिर को आग लगाते, और मस्जिद को बचाने के लिए प्राण दे देते।

यह तुम नहीं हो, यह तुम्हारे भीतर से सड़ा-गला अतीत बोल रहा है।

जो व्यक्ति अपने को हिन्दू या मुसलमान या ईसाई या जैन कहता है, वह अपने व्यक्तित्व को नकार रहा है, अपनी आत्मा को इनकार कर रहा है। वह कह रहा

है : मेरा कोई मूल्य नहीं है; कब्रों का मूल्य है, मुर्दों का मूल्य है।

देवयान का अर्थ होता है : अपनी दिव्यता की अनुभूति और घोषणा; परम्परा से मुक्ति; अतीत से मुक्ति और वर्तमान में जीने की कला। 'सत्येन पन्था विततो देवयानः'। यह जो सत्य का मार्ग है, यह देवयान है; यह बगावत का रास्ता है; यह विद्रोह है। यह पितृयान नहीं है। तुम यह नहीं कह सकते कि मेरे पिता मानते थे, इसलिए मैं मानता हूं। नहीं, तुम्हें जानना होगा। जानना पहले। और जिसने जान लिया उसे मानने की जरूरत ही नहीं आती। और जिसने माना, उसके जीवन में जानने का सौभाग्य कभी पैदा नहीं होता। जिसने माना, वह तो मर ही गया। जिस दिन माना, उसी दिन मर गया। क्योंकि उसी दिन खोज समाप्त हो गयी, अन्वेषण बंद हो गया। मानने का अर्थ ही होता है कि अब क्या करना है, मैंने तो मान लिया। और तुम्हें यही सिखाया गया है कि मानो, विश्वास करो। और इस भांति सारी पृथ्वी पर थोथे धार्मिक लोग पैदा किये गये हैं। विश्वासी हैं, मगर धार्मिक नहीं।

विश्वास थोथा ही होगा। जो तुम्हारा अपना अनुभव नहीं है, वह कैसे सत्य हो सकता है ? मैं कहूं, वह मेरा अनुभव है, तुम उसे दोहराओ, तुम्हारे लिये असत्य हो गया। जिस दिन तुम भी जानोगे, अपनी निजता में, उस दिन तुम्हारे लिये सत्य होगा। और स्वयं का सत्य ही मुक्त करता है। दूसरों के सत्य बंधन बन जाते हैं, जंजीरें बन जाते हैं।

इसलिए मेरा कोई संन्यासी मेरा अनुयायी नहीं है। मेरा संगी है, मेरा साथी है, लेकिन मेरा अनुयायी नहीं है। मैं कोई सिद्धांत दे भी नहीं रहा। तुम चाहो भी मेरा अनुगमन करना तो न कर सकोगे। मैं तुम्हें सिर्फ इशारे दे रहा हूं। इशारे अंतर्यात्रा के। मैं तुम्हें कुछ सिद्धांत नहीं दे रहा कि तुम पकड़ लो और मान लो। मैं तुमसे सारे सिद्धांत छीन रहा हूं। यह देवयान की प्रक्रिया है।

सत्येन पन्था विततो देवयानः।

येनाक्रमन्ति ऋषयो ह्याप्तकामा

इस सत्यमार्ग से जो जाते हैं, वे हैं आप्तकाम। जिसने सत्य को जाना, उसकी कामना मर जाती है। कामना बाहर कुछ पाने की दौड़ है। कामना राजनीति है। कामना का अर्थ है : धन मिले, पद मिले, प्रतिष्ठा मिले, यश मिले। कामना का अर्थ है : दूसरों पर मैं हावी हो जाऊं; दूसरों के सिरों पर बैठ जाऊं। आप्तकाम का अर्थ है : जिसने देख ली मूढ़ता इस दौड़ की; जो इस दौड़ से मुक्त हो गया; जिसकी भ्रांति टूट गयी, जिसको यह बात समझ में आ गयी कि मैं अपना मालिक नहीं हूं, किसी और का मालिक कैसे हो सकूंगा ? यह असंभव है। अपना ही मालिक हो जाऊं, इतना ही काफी है। काफी से ज्यादा है। क्योंकि जो अपना मालिक हुआ, उसके जीवन में भीतर के खजानों के द्वार खुल जाते हैं। इस सत्यमार्ग से जो जाते

हैं, वे ही आप्तकाम हैं। वे ही ऋषि हैं, वे ही द्रष्टा हैं।

ऋषि शब्द बड़ा प्यारा है। दुनिया की किसी भाषा में ऐसा शब्द नहीं। ऋषि का यूं तो अर्थ होता है : कवि। लेकिन, एक गुणात्मक भेद है कवि और ऋषि में। दुनिया की सभी भाषाओं में कवि के लिए शब्द हैं, लेकिन ऋषि के लिए नहीं।

कारण है।

हमने इस देश में कोई पांच हजार वर्षों से निरन्तर भीतर की शोध की है। जैसे आज पश्चिम विज्ञान के शिखर पर है, ऐसे हमने धर्म के शिखर पर पहुंचने का सतत अभियान किया है। जरूर कोई सारा पश्चिम वैज्ञानिक नहीं है, लेकिन विज्ञान की एक खूबी है; अगर एक व्यक्ति ने बिजली खोज ली और बिजली का बल्ब बना लिया—जैसे एडीसन ने—तो एक दफा बिजली का बल्ब बन गया और बिजली खोज ली गयी, तो सभी उसके हकदार हो जाते हैं। फिर घर-घर में बिजली जलती है। फिर ऐसा नहीं है कि एडीसन के घर में ही बिजली जलेगी। एक दफा बात जान ली गयी, तो बाहर के जगत की सारी बातें एक बार जान ली गयीं तो सबकी हो जाती हैं।

इससे विज्ञान में एक भ्रांति बड़े स्वाभाविक रूप से पैदा हो जाती है, वैज्ञानिक तो थोड़े ही होते हैं—कोई एडीसन, कोई आइंस्टीन, कोई रदरफोर्ड, थोड़े-से वैज्ञानिक—लेकिन एक वैज्ञानिक जो भी खोजता है, जैसे एडीसन ने एक हजार आविष्कार किये, लेकिन वे सारे आविष्कार सबके हो गये।

धर्म के संबंध में एक अड़चन है। धर्म भी थोड़े लोगों ने ही अनुभव किया—बुद्ध ने, महावीर ने, कृष्ण ने, पतंजलि ने, गोरख ने, नानक ने, कबीर ने, मीरा ने, थोड़े-से लोगों ने—मगर धर्म के साथ एक अड़चन है, जो अनुभव करता है, बस उसके ही भीतर ज्योति जगती है। इसको हर घर में नहीं जलाया जा सकता। बुद्ध ने जाना तो बुद्ध मुक्त होते हैं। और मीरा ने पाया, तो मीरा नाचती है मग्न होकर; पद घुंघरू बांध मीरा नाची रे! मगर तुम कैसे पद में घुंघरू बांधोगे? और तुम कैसे नाचोगे? तुमने तो पाया नहीं। और तुम नाचे तो नकल करोगे। तुम नकलची हो जाओगे। तुम कार्बन कापी हो जाओगे। और इस दुनिया में इससे बड़ा कोई पाप नहीं है : कार्बन कापी हो जाना। अपनी मौलिकता को भूल जाना जघन्य अपराध है, आत्मघात है।

थोड़े-से लोगों ने धर्म के शिखर को छुआ। लेकिन जिन्होंने धर्म के शिखर को छुआ, उन्होंने हमारी भाषा पर भी छाप छोड़ दी। हमारी भाषा को उन्होंने नया शृंगार दे दिया। हमारी भाषा को नये अर्थ, नयी अभिव्यंजनाएं दे दीं। जैसे ऋषि शब्द दिया।

कवि का अर्थ होता है : जिसके पास बाहर की आंखें हैं, जो बाहर के सौन्दर्य को

देखने में समर्थ है, जिसके पास बाहर के सौन्दर्य को अनुभव करने की संवेदनशीलता है। सूर्योदय के सौन्दर्य को देखता है, सूर्यास्त के सौन्दर्य को देखता है; पक्षियों के गीत, फूलों के रंग, रात तारों से भरा हुआ आकाश, किसी की आंखों का सौन्दर्य, किसी के चेहरे का सौन्दर्य, लेकिन उसकी आंख बाहर के सौन्दर्य को देखती है, वह कवि। वह इस सौन्दर्य के गीत गाता है। लेकिन यह सौन्दर्य कुछ भी नहीं है उस सौन्दर्य के मुकाबले जो भीतर है। जिसकी भीतर की आंख खुल जाती है—प्रतीकात्मक रूप से हमने उसको तृतीय नेत्र कहा है। यह भी थोड़ा सोचने जैसा है। बाहर देखने वाली दो आंखें हैं और भीतर देखने वाली एक आंख है।

क्यों?

क्योंकि बाहर देखने का जो ढंग है वह द्वंद्व का है, द्वैत का है। वह हर चीज को दो में तोड़ देने का है। और भीतर जो देखने का ढंग है, वह हर चीज को एक में जोड़ देने का है। बाहर विश्लेषण है और भीतर संश्लेषण।

विज्ञान विश्लेषण है, क्योंकि वह बाहर की आंख है। और धर्म संश्लेषण है, क्योंकि वह भीतर की आंख है। वहां दो आंखें मिल कर एक आंख हो जाती है। वहां एक ही दृष्टि रह जाती है। वहां कोई द्वैत नहीं बचता। इसलिए हमने उसे तीसरा नेत्र कहा है। वह भीतर की आंख है। और जिसे भीतर का सौन्दर्य दिखाई पड़ता है, वह ऋषि।

लेकिन भीतर का सौन्दर्य तो तब दिखाई पड़ेगा जब भीतर का दीया जले। बाहर का सौन्दर्य दिखाई पड़ता है, क्योंकि बाहर रोशनी है। रात के अंधेरे में तो फूलों के रंग दिखाई नहीं पड़ते! दिन के प्रकाश में फूलों के रंग दिखाई पड़ते हैं। रात में इन्द्रधनुष दिखाई नहीं पड़ता—बन ही नहीं सकता, दिखाई कैसे पड़ेगा! उसके लिए सूरज तो चाहिए ही चाहिए। हां, दिन की रोशनी में कभी इन्द्रधनुष बनता है। सारे रंग! अपूर्व सौन्दर्य के साथ पृथ्वी और आकाश को जोड़ देता है, सेतु बन जाता है। तुम्हारे कमरे में कितनी ही सुंदर तस्वीरें टंगी हों, बड़े-से-बड़े चित्रकारों की—पिकासो की, डाली की, वानगाग की—मगर रात के अंधेरे में तुम उन्हें देख न पाओगे। रोशनी चाहिए। सुबह जब सूरज ऊगेगा और खिड़कियों से किरणें झांकेंगी तब तुम अचानक चकित होओगे कि कितनी अद्‌भुत कलात्मक कृतियां कमरे में मौजूद हैं। हो सकता है बुद्ध की मूर्ति रखी हो। किसी अद्‌भुत मूर्तिकार का सृजन हो! हो सकता है माइकेल एंजिलो की जीसस की प्रतिमा रखी हो! मगर रात के अंधेरे में कैसे देखोगे?

भीतर अंधेरा है, इसलिए भीतर के सौन्दर्य का तुम्हें पता नहीं। भीतर भी फूल खिलते हैं। हमने कहा कि भीतर सहस्त्रदल कमल खिलता है। बाहर के फूलों में क्या रखा है! क्षण भर को होते हैं; अभी हैं, अभी नहीं; आ भी नहीं पाते कि जाने की

तैयारी शुरू हो जाती है; झूले में और अर्थी में बहुत भेद नहीं होता; सुबह खिला फूल, सांझ मर जाता है; सुबह झूले में था, सांझ अर्थी बंध जाती है, राम नाम सत्य हो जाता है; सुबह किस शान से उठा था, किस गरिमा और गौरव से, किस दंभ से घोषणा की थी और सांझ पखुड़ियां बिखर गयी हैं। कैसी हताशा है ! मिट्टी में गिर गया है ! सुबह सोचा भी न होगा कि यह अंत होगा, कि यूं ख़ाक में पड़ जाना होगा !

बाहर का सौन्दर्य क्षणभंगुर है, पानी में बने बबूले जैसा है। कवि उसी सौन्दर्य की चर्चा करता है। ऋषि उस सौन्दर्य की चर्चा करता है, जो शाश्वत है। जिसे एक बार जाना तो सदा के लिए जाना। वही सौन्दर्य तृप्ति दे सकता है। कवि भी गीत गाता है। लेकिन कवि के गीत भी क्षणभंगुर की ही छाया होते हैं। ऋषि भी गीत गाता है। लेकिन ऋषि के गीत शाश्वत की अनुगूंज होते हैं, अनाहत का नाद होते हैं।

सूफी फकीर स्त्री हुई राबिया। उसके घर मेहमान था हसन। सुबह हुई, हसन बाहर गया, सूरज ऊगता था, पक्षी गीत गाते थे, दूर अमराई से कोई कोयल कूकती थी, बड़ी प्यारी सुबह थी, अभी ओस की बूंदें घास पर जमी थीं, मोतियों जैसी चमकती थीं, फूलों की गंध हवा को भर रही थी, उसने आवाज दी राबिया को कि राबिया, तू भीतर झोपड़े में बैठी क्या कर रही है ? बाहर आ, परमात्मा ने एक बहुत सुंदर सुबह को जन्म दिया है, इसे देखने से चूकना उचित नहीं। तू जल्दी बाहर आ ! राबिया खिलखिला कर हंसी और उसने कहा, हसन, कब तक बाहर के सौंदर्य में उलझे रहोगे ? मैं तुमसे कहती हूं, भीतर आओ ! क्योंकि जिसने उस बाहर की सुबह को बनाया है, मैं उसे देख रही हूं। तुम सिर्फ चित्र देख रहे हो, मैं चित्रकार को देख रही हूं। तुम्हीं भीतर आ जाओ ! सुनो मेरी, मानो मेरी, तुम्हीं भीतर आ जाओ !

हसन ने यह न सोचा था कि बात यूं हो जाएगी। मगर ऋषियों के हाथ में कंकड़ भी पड़ जाएं तो हीरे हो जाते हैं। हसन ने तो यूं ही कहा था कि राबिया, बाहर आ ! सोचा भी न था कि इसमें कुछ आध्यात्मिक संदेश राबिया दे देगी। मगर राबिया जैसे अनुभूति से भरे व्यक्तियों के जीवन में तुम कुछ भी कहो, वे उसमें से कुछ-न-कुछ शाश्वत का इशारा खोज लेंगे।

कल कृष्णतीर्थ ने मुझसे पूछा था कि आप जब उत्तर देते हैं किसी के प्रश्न का तो प्रश्नकर्त्ता महत्त्वपूर्ण होता है या प्रश्न महत्त्वपूर्ण होता है ?

कृष्णतीर्थ, न तो प्रश्न महत्त्वपूर्ण होता है, न प्रश्नकर्त्ता महत्त्वपूर्ण होता है, महत्त्वपूर्ण तो हमेशा उत्तर देने वाला होता है, उत्तर होता है। उत्तर से भी ज्यादा उत्तर देने वाला होता है। अब हसन ने क्या पूछा था ? हसन ने यह बात ही न की थी, हसन तो कुछ और ही पूछ रहा था, साधारण-सी बात कर रहा था। राबिया ने

क्या मोड़ दे दिया ! हालात बदल दिये ! हसन को चौंका दिया ! हसन के प्रश्न में तो कुछ भी न था, तुमसे अगर यह बात किसी ने कही होती तो तुम यह उत्तर नहीं दे सकते थे जो राबिया ने दिया। और अगर राबिया का उत्तर सुन कर देते भी तो झूठा होता। और जहां झूठ है, वहां बल नहीं होता। लचर-पचर तुमने कहा होता, हकलाते हुए कहा होता। तुम्हारी बात में प्राण न होते, श्वास न होती। लेकिन राबिया ने जिस ढंग से बात कही, हसन को भीतर खिंच कर आ जाना पड़ा। पड़ी रह गयी सुबह बाहर। पड़े रह गये फूल और कोयल की पुकार। और पड़ा रह गया सूरज और ओस की चमकती हुई बूंदें——सब पड़ा रहा गया।

हसन भीतर आया और हसन ने कहा, राबिया, यह तूने क्या कहा ! राबिया ने कहा, जो कहना उचित था वही मैंने कहा। कब तक उलझे रहोगे, हसन ? बहुत दिन हो गये मुझे देखते, तुम बाहर ही उलझे हो। माना कि बाहर सुंदर है जगत, मगर बनाने वाले को देखो; उस मूलस्रोत को देखो जहां से यह सारा सौन्दर्य निकलता है, यह सौन्दर्य उसके सामने कुछ भी नहीं है, बूंद भी नहीं है ! जब सागर भीतर मौजूद है, तो क्यों बूंदों में अटके हो ?

और हसन के जीवन में यह घटना क्रांति की हो गयी। उस दिन से हसन की आंखें बंद हो गयीं। अब तक हसन एक कवि था, अब उसके जीवन में ऋषि की यात्रा शुरू हुई।

ऋषि का अर्थ है : जो बाहर विजय करनी है, इस बात की मूढ़ता को पहचान लिया और अंतर्विजय के लिए निकल पड़ा है। और ऋषि का अर्थ है : जिसने भीतर के सौन्दर्य को देखा है और उसे गाया है। वह भी कवि है, लेकिन आंख वाला; अंधा नहीं। भीतर की आंख वाला। वह भी कवि है, लेकिन उसके भीतर दीया जल रहा है। और इसलिए उसके प्रत्येक शब्द में ज्योति है। उसके शब्द-शब्द में आग है। उसके शब्द-शब्द आग्नेय हैं। और जिनके भीतर थोड़ी भी क्षमता है जागने की, वे उसके शब्दों को सुन कर जाग ही जाएंगे।

येनाक्रमन्ति ऋषयो ह्याप्तकामा
यत्र तत्र सत्यस्य परमं निधानम् ।।

जहां सत्य है, वहीं परम द्वार है। और एक बार तुमने अपने सत्य को जाना कि परमात्मा दूर नहीं, निकट से भी निकट है। एक बार तुमने अपने सत्य को जाना कि उसी सत्य के केन्द्र पर विराजमान तुम परमात्मा को पाओगे। सत्य परमात्मा का द्वार है। और जिसने परमात्मा को जाना, वही विजयी है। उसको हमने जिन कहा है। जैन दो कौड़ी के हैं, लेकिन जिन ! महावीर को हमने जिन कहा। महावीर जैन नहीं हैं, ख्याल रखना, कोई भूल कर यह दावा न करे कि महावीर जैन हैं; महावीर जिन हैं।

जिन का अर्थ है : जिसने जीता, जिसने जाना। और जैन कौन है? जैन वह है, जिसने जीते हुए लोगों के शब्द तोतों की तरह रट लिये हैं, जो उनको दोहरा रहा है यंत्रवत, लेकिन उन शब्दों पर उसके हस्ताक्षर नहीं हैं, उन शब्दों पर उसके प्राणों की कोई छाप नहीं है। वे शब्द उधार हैं, बासे हैं, झूठे हैं। और गंदे हो गये हैं, क्योंकि हजारों ओठों से चल चुके हैं।

सहजानंद, यह सूत्र तो प्यारा है। मगर इतनी सारी बातों को ख्याल में रखना तो ही तुम इस सूत्र में छिपे अमृत का स्वाद ले पाओगे। सोचने-विचारने में मत पड़ जाना। जागो! भीतर का दीया जलाओ! ध्यान की थोड़ी-सी ज्योति पर्याप्त है।

दूसरा प्रश्न : भगवान, क्या मैं बिना संन्यास के आपका शिष्य नहीं हो सकता हूं?

नारायणदास तिवारी, विद्यार्थी हो सकते हो, शिष्य नहीं हो सकते हो। और विद्यार्थी और शिष्य में उतना ही अन्तर है, जितना कवि में और ऋषि में। उससे कम नहीं। विद्यार्थी का मतलब है : जो कुछ सूचनाएं लेकर चला जाएगा। जो थोड़ा-सा ज्ञान का कचरा इकट्ठा कर लेगा। जिसकी स्मृति थोड़ी और भर जाएगी। जो कुछ और अच्छी-अच्छी बातें दोहराना सीख लेगा। शिष्य नहीं हो सकते हो बिना संन्यस्त हुए। क्योंकि शिष्य की पहली शर्त है : कुतूहल को छोड़ना। कुतूहल को ही नहीं छोड़ना, जिज्ञासा को भी छोड़ना। मुमुक्षा को धारण करना।

मुमुक्षा क्या है?

कुतूहल बचकानी चीज है, छोटे-छोटे बच्चों में होता है, पूछे ही चले जाते हैं। ऐसा क्यों है, वैसा क्यों है? खोपड़ी खा जाते हैं। जिसके पीछे पड़ जाएं, उसकी मुसीबत खड़ी कर देते हैं। क्योंकि एक प्रश्न खतम नहीं होता कि वे दूसरा प्रश्न खड़ा कर देते हैं। उनको सुनने की कोई बहुत इच्छा भी नहीं होती कि प्रश्न का तुम उत्तर दो, वे तुम्हारे उत्तर को सुनते भी नहीं, उनको मजा पूछने का होता है। वह पूछे ही चले जाते हैं। तुमने क्या उत्तर दिया, इससे भी प्रयोजन नहीं है। तुमने दिया या नहीं, इससे भी प्रयोजन नहीं है। तुम जब उत्तर दे रहे हो तब वे दूसरा प्रश्न तैयार कर रहे हैं। फुर्सत किसको है तुम्हारा उत्तर सुनने की? कुतूहल बचकानी चीज है।

जिज्ञासा व्यक्ति को विद्यार्थी बनाती है। विद्यार्थी का मतलब यह है, मैं अपने को बदलने को राजी नहीं हूं, लेकिन हां, कुछ ज्ञान की बातें अगर मिल जाएं तो जरूर संगृहीत कर लूंगा, संजो कर रख लूंगा अपनी मंजूषा में। वक्त पड़े शायद काम आएं। और अपने काम न आयीं तो कोई हर्ज नहीं, दूसरों को सलाह देने के काम आएंगी।

इस तरह पंडित पैदा होता है। पंडित विद्यार्थी का चरम निष्कर्ष है।

मुमुक्षा का अर्थ है : जानकारी से क्या करूंगा? जीवन चाहिए! अनुभव चाहिए! नहीं जानना चाहता हूं परमात्मा के संबंध में, परमात्मा को ही पीना चाहता हूं। बिना पीये यह नहीं हो सकता है। और पीने के लिए, नदी बह रही हो और तुम प्यासे अगर खड़े रहो तट पर तो भी प्यास नहीं बुझेगी। तुम नदी के तट पर खड़े हो कर सोच-विचार करते रहो कि पानी कैसे बनता है, इसका रासायनिक फार्मूला क्या है—एच. टू. ओ.—तो भी प्यास नहीं बुझेगी। तुम्हें नदी में उतरना पड़ेगा। उतर जाने से भी प्यास नहीं बुझेगी, तुम्हें दोनों हाथों को बांध कर अंजुली बनानी होगी। अंजुली बना लेने से भी प्यास नहीं बुझेगी, तुम्हें फिर झुकना होगा ताकि तुम अपनी अंजुली में नदी के जल को भर सको। बिना झुके तुम अंजुली को भर न पाओगे। और झुकोगे तो पी सकोगे। और पीओगे तो तृप्ति है।

संन्यास का कुछ और अर्थ नहीं है। झुकना! समर्पण! अंजुली बांधना! प्रेम से पीने की तैयारी!

> कोई समझेगा क्या राजे-गुलशन ....
> कोई समझेगा क्या राजे-गुलशन
> जब तक उलझे न कांटों से दामन
> कोई समझेगा क्या राजे-गुलशन
> कोई समझेगा क्या राजे-गुलशन
> अज्मते आशियाना बनाये
> बर्क को दोस्त समझूं या दुश्मन
> कोई समझेगा क्या राजे-गुलशन
>
> हुस्न यूं है परीशां-परीशां. . . .
> हुस्न यूं है परीशां-परीशां
> लुट गया हो कोई जैसे रहजन
> कोई समझेगा क्या राजे-गुलशन
> जब तक उलझे न कांटों से दामन
> कोई समझेगा क्या राजे-गुलशन
>
> इक-ब-इक सामने आना-जाना. . . .
> इक-ब-इक. . . .
> इक-ब-इक सामने आना-जाना
> रुक न जाये कहीं दिल की धड़कन

रुक न जाये कहीं दिल की धड़कन. . . .
कोई समझेगा क्या राजे-गुलशन
जब तक उलझे न कांटों से दामन
कोई समझेगा क्या राजे-गुलशन

गुल तो क्या खार तक चुन लिये हैं. . . .
गुल तो क्या. . . .
गुल तो क्या खार तक चुन लिये हैं
फिर भी खाली है गुलचीं का दामन
फिर भी खाली है गुलचीं का दामन. . . .
कोई समझेगा क्या राजे-गुलशन
जब तक उलझे न कांटों से दामन
कोई समझेगा क्या राजे-गुलशन

ऐ फना. . . .
ए फना इश्क में मिट के तूने. . . .
ऐ फना इश्क में मिट के तूने
कर दिया हुस्न का नाम रोशन. . . .
ऐ फना इश्क में मिट के तूने
कर दिया हुस्न का नाम रोशन
कोई समझेगा क्या राजे-गुलशन
जब तक उलझे न कांटों से दामन
कोई समझेगा क्या राजे-गुलशन. . . .
कोई समझेगा क्या. . . .
कोई समझेगा क्या राजे-गुलशन
जब तक उलझे न कांटों से दामन
कोई समझेगा क्या राजे-गुलशन

यह राज समझ में न आएगा। तुम बचना चाहते हो, नारायणदास तिवारी, कि कहीं कांटे न चुभ जाएं। कहीं दामन में कुछ कांटे न चुभ जाएं। मगर बिना कांटे चुभे कुछ समझ में आने वाला नहीं। उतना साहस तो करना ही होगा। मिटने की तैयारी है संन्यास।

ऐ फना इश्क में मिट के तूने
कर दिया हुस्न का नाम रोशन

संन्यास मृत्यु है अहंकार की। और जहां अहंकार मरा, वहां एक नये जन्म की

शुरुआत है, एक नये जीवन का प्रारम्भ है। संन्यास है द्विज बनने की प्रक्रिया, दुबारा जन्म लेने की प्रक्रिया। और तुम पूछते हो, भगवान, क्या मैं बिना संन्यास के आपका शिष्य नहीं हो सकता हूं? विद्यार्थी हो सकते हो, शिष्य नहीं हो सकते हो! और तुम विद्यार्थी रहे, तो मैं शिक्षक रह जाऊंगा तुम्हारे लिए। तुम्हारे लिए शिक्षक रह जाऊंगा। तुम शिष्य हुए, तो तुम्हारे लिए मैं गुरु हूं। तुम जितने करीब आओगे, उतना ही तुम मुझे समझ पाओगे। संन्यास बिना लिये तुम दूर-दूर खड़े रहोगे, किनारे-किनारे, पानी में उतरोगे ही नहीं। तो दूर-दूर से देख सकते हो, सुन सकते हो, कुछ शब्द इकट्ठे कर लोगे, मगर इससे कुछ बात बनेगी नहीं। इससे कुछ जीवन में मुक्ति का द्वार खुलेगा नहीं।

संन्यस्त हुए बिना कोई मार्ग नहीं है!

मगर ख्याल रख लेना, संन्यास का मतलब क्या होता है? इतना ही मतलब होता है कि तुम झुकने को तैयार हो; तुम मिटने को तैयार हो; तुम दांव पर सब लगाने को तैयार हो। यह जुआरी का रास्ता है। यह शराबी का रास्ता है। यह कमजोरों के लिए नहीं है। यह सिर्फ हिम्मतवरों के लिए है। यह उनके लिए है जिनके पास छाती है।

तीसरा प्रश्न : भगवान, मैंने सुना है कि बचपन में आप छड़ी लेकर नेताओं की टोपियां उछाला करते थे।

सुभाष! वही तो अभी भी कर रहा हूं! कुछ फर्क तो पड़ा नहीं! असल में गांधी टोपी देख कर किसको उछालने की तबियत नहीं होती? और गांधी टोपी उछालने का मजा इतना है कि अगर एक बार बुद्धत्व भी छोड़ना पड़े तो मैं छोड़ने को राजी! क्योंकि बुद्धत्व कहां जाता है, शाश्वत है; पहले टोपी उछालना है, बुद्धत्व तो अपना है ही। उसे तो खोया ही नहीं जा सकता। लेकिन यह टोपी वाला आदमी फिर मिले, न मिले।

और तो नेताओं का कोई उपयोग भी नहीं है। इतना ही तो उपयोग है। थोड़ा-सा मनोरंजन।

एक नता की पुस्तक छपी। तो उसने दूसरे नेता से पूछा, 'तुम्हें मेरी पुस्तक कैसी लगी?'

'बहुत अच्छी थी। तुमने किससे लिखवायी थी?'

पहले ने कहा, 'पहले तुम यह बताओ कि तुमने किससे पढ़वायी थी?'

एक नेता ने बड़े जोश से अपने भाषण में कहा, 'पूंजीवाद में एक आदमी दूसरे

आदमी का खून पीता है, परन्तु साम्यवाद में ठीक इसका उलटा होता है। '

एक नेता जी बस में यात्रा कर रहे थे। पास बैठी एक सुन्दर महिला निहायत उम्दा सेंट लगाये महक रही थी। अब महिला का सेंट और उसका सौन्दर्य और तुम नेता की तकलीफ समझ सकते हो! नेता धीरे-धीरे पास सरकने लगे।... अरे, नेता ही क्या जो धीरे-धीरे पास न सरके और ऐसा अवसर खो दे! नेता तो वही जो अवसर न खोये। इसीलिए तो नेता को अवसरवादी होना पड़ता है। अवसर खोता ही नहीं!... सरकता आया, सरकता आया, महिला को करीब-करीब दबोच ही दिया। मगर नेता था तो महिला भी क्या करे! फिर गांधीवादी नेता था। चरखा भी रखे हुए था बगल में। और गांधी टोपी और शुद्ध खद्दर, कहे भी तो क्या कहे! जब बिलकुल महिला के शरीर को पिचकाने ही लगा और महिला घबड़ाने लगी, तब बात को थोड़ा आसान बनाने के लिए नेता ने कहा, 'क्षमा करें, यह कौन-सा सेंट है? मैं अपनी पत्नी के लिए खरीदना चाहता हूं।' ऐसा कह कर नेता जी ने उस स्त्री का हाथ भी अपने हाथ में ले लिया। उस स्त्री ने कहा, 'जो गलती मैंने की है, उसे दोहराना ठीक नहीं। क्या आप पसंद करेंगे कि अन्य लोग आपकी पत्नी के इतने करीब सरक आएं, शरीर सटा कर हाथ में हाथ ले कर पूछें कि आपने यह सेंट कौन-सा उपयोग किया है; मैं भी अपनी पत्नी के लिए खरीदना चाहता हूं?'

इन नेताओं का करो भी क्या? किसी मतलब के नहीं, किसी मकसद के नहीं; दो कौड़ी के हैं।

एक नेता जी भाषण दे रहे थे--'मित्रो, सिर्फ परिवार का रिश्ता ही रिश्ता नहीं होता, धर्म तथा समाज का रिश्ता उससे भी बड़ा होता है। सभी भाई मेरे धर्म-भाई हैं, सभी बहनें मेरी धर्म-बहनें हैं।' तभी सभापति ने कहा, 'बस, बात यहीं समाप्त कर दो, आगे मत बढ़ना! गनीमत है कि तुम यह नहीं कह रहे कि सभी पत्नियां मेरी धर्म-पत्नियां हैं।'

एक साहब ने अपने होने वाले राजनेता दामाद से पूछा, 'शराब पीते हो?' राजनेता ने कुछ देर सोचने के बाद कहा, 'पहले यह बताइये कि यह प्रश्न है या निमंत्रण?'

बिन तिकड़म नेता नहीं, बिन पत्नी नहिं सास,
बिन चमचा मंत्री नहीं, बिना क्लर्क नहीं बास।

सज्जन बनि-बनि जग मुआ नेता भया न कोय
बस दो आखर 'झूठ' के पढ़े सो नेता होय।

नेता चमचा राखिये बिन चमचा सब सून
बिन चमचा नहिं मिल सकै कुर्सी, बंगला, फून।

नेता जग में आय के कर लीजे दो काम
देने को भाषण भल्यो, लीज्यो वोट तमाम।

जब एक मंत्री ने समाचार सुना
कि सूखाग्रस्त क्षेत्र की
एक औरत.
आठ आने में अपनी अस्मत
बेच आयी.
तो उन्होंने आह भर कर कहा--
हे भगवान!
इतना सस्तापन!
और यह जनता चिल्लाती है--
महंगाई, महंगाई, महंगाई!

विद्यालय में आ गये इंस्पेक्टर-स्कूल,
छठी क्लास में पढ़ रहा विद्यार्थी हरफूल।
विद्यार्थी हरफूल, प्रश्न उससे कर बैठे,
किसने तोड़ा शिव का धनुष बताओ बेटे!
छात्र सिटपिटा गया बिचारा, धीरज छोड़ा,
हाथ जोड़ कर बोला, सर! मैंने ना तोड़ा।
यह उत्तर सुन आ गया सर के सर को ताव,
फौरन बुलवाए गये हेडमास्टर सा'ब।
हेडमास्टर सा'ब, पढ़ाते हो क्या इनको,
किसने तोड़ा धनुष नहीं मालूम है जिनको।
हेडमास्टर भन्नाया--फिर तोड़ा किसने?
झूठ बोलता है, जरूर तोड़ा है इसने।
इंस्पेक्टर अब क्या कहे, मन ही मन मुसकात,
आफिस में आकर हुई मैनेजर से बात।
मैनेजर से बात, छात्र में जितनी भी है,
उससे दुगनी बुद्धि हेडमास्टर जी की है।
मैनेजर बोला, जी हम चंदा कर लेंगे,
नया धनुष उससे भी अच्छा बनवा देंगे।
शिक्षा-मंत्री तक गये जब उनके जज़बात,
माननीय गद्गद हुए, बहुत खुशी की बात।

बहुत खुशी की बात, धन्य हैं ऐसे बच्चे,
अध्यापक, मैनेजर भी हैं कितने सच्चे।
कह दो उनसे, चंदा कुछ ज्यादा कर लेना,
जो बैलेन्स बचे वह हमको भिजवा देना।

इन नेताओं का करो भी क्या, सुभाष ! किसी और उपयोग के नहीं हैं। जैसे सर्कस में जोकर होता है न, वही अवस्था तुम्हारे इन नेताओं की है। थोड़ा मनोरंजन कर जाते, बस।

तो जब भी मैं गांधीवादी टोपी देखता हूं, तो उछालने का मन होता है। तुम भी ऐसा अवसर चूका मत करो ! इससे अच्छी कोई फुटबाल नहीं। और वालीबाल की नहीं कह रहा हूं, फुटबाल कह रहा हूं, ख्याल रखना !

आखिरी प्रश्न : भगवान, परमात्मा मेरी पुकार कब सुनेगा ?

साधना ! परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं है जो तुम्हारी पुकार सुने, तुम्हारी पुकार पूरी करे। यह परमात्मा के संबंध में व्यक्ति होने की धारणा बिलकुल छोड़ दो ! इसी मूढ़तापूर्ण धारणा के कारण जमाने भर के अंधविश्वास पैदा हुए हैं। मनुष्य-जाति की सारी अंधविश्वासी परम्पराओं की बुनियाद में यह धारणा है कि परमात्मा एक व्यक्ति है। इसलिए मूर्तियां बनीं और मूर्तियों के सामने लोग बैठे हैं, आरती के थाल सजाए, दीये जलाये, आरती उतार रहे हैं, भोग लगा रहे हैं। समय बर्बाद कर रहे हैं। खुद की बनायी हुई मूर्तियों के सामने आदमी आरती उतार रहा है ! इससे तो अच्छा हो कि एक आईना रख लो और उसमें अपनी तस्वीर देखो, उसकी आरती उतारो। क्योंकि तुम्हारी प्रतिमाएं तुम्हारी ही तस्वीरें हैं।

बाइबिल कहती है : ईश्वर ने मनुष्य को अपनी शक्ल में बनाया। बात कुछ उलटी है। मनुष्यों ने ईश्वर को अपनी शक्ल में बनाया हुआ है। और मैं हेरोडोटस से राजी हूं। वह यूनान का एक बहुत महत्त्वपूर्ण विचारक और इतिहासविद हुआ। उसने लिखा है, अगर गधे परमात्मा की तस्वीर बनाएं, तो निश्चित ही वह तस्वीर गधों की होगी। सुंदरतम गधे की होगी, मगर वह गधे की होने वाली है। इतना तो पक्का है कि गधे अगर परमात्मा की तस्वीर बनाएंगे तो आदमी की तस्वीर नहीं बना सकते। आदमी ने गधों के साथ जो सलूक किया है, वह कुछ ऐसा नहीं है कि इनकी तस्वीर वे परमात्मा की तरह पूजें। ये गधों पर कब से सवार हैं ! गधों को इन्होंने मौका ही नहीं दिया कि कभी वे भी सवारी कर लें। कभी छुट्टी भी दे दें, कि चलो रविवार के दिन तुम सवारी करो, छह दिन हम। इनकी क्या पूजा गधे करेंगे ?

और अगर पूजा करेंगे तो पूजा के दूसरे अर्थ में। अगर मौका मिल जाए गधों को तो ठीक से पूजा कर देंगे ! मराठी भाषा में जिसको 'शिक्षा' कहते हैं। ऐसी 'शिक्षा' देंगे कि छठी का दूध याद आ जाए ! गधे क्या आदमी की तस्वीर बना कर उसकी पूजा करेंगे !

और आदमी ने भी जो तस्वीरें बनायी हैं, वे गौर करो। नीग्रो जो प्रतिमा बनाता है, उसके ओठ नीग्रो के होते हैं। उसके बाल घुंघराले, नीग्रो के बाल होते हैं। चीनी जो परमात्मा की प्रतिमा बनाता है, उसमें जो दाढ़ी होती है, उसमें बस पांच-सात बाल होते हैं। जैसे चीनियों के होते हैं। मूंछ भी बिलकुल पतली, दो-चार बाल। आंख की भौंहें नदारद। आंख भी जरा-सी खुली ! ...बड़ी मुश्किल से देखते होंगे। कैसे देख लेते हैं ! मगर चीनी चेहरे का ढंग वह है। गाल की हड्डियां निकली हुई। और अगर कोई चपटी नाक वाले लोग परमात्मा की प्रतिमा बनाते हैं तो चपटी नाक होती है।

तुमने राम की और कृष्ण की जो प्रतिमाएं बनायी हैं, वह तुम्हारी धारणा है कि आदमी कैसा होना चाहिए सुंदरतम। इस भ्रांति में मत पड़ना कि राम ऐसे थे। यह तुम्हारी कल्पना है कि आदमी को कैसा होना चाहिए सुंदरतम। भारतीय कल्पना के अनुसार। इसलिए बुद्ध की प्रतिमा अलग-अलग देशों में बनी, अलग-अलग ढंग से बनी।

भारतीय प्रतिमा जो बुद्ध की है, वह बनी है यूनानी प्रभाव में। बुद्ध के मरने के बाद एकदम प्रतिमाएं नहीं बनीं। बुद्ध के मरने के पांच सौ साल बाद प्रतिमाएं बनीं। और बुद्ध के मरने के तीन सौ साल बाद अलेक्जेंडर भारत आया। और उसके साथ यूनानी सैनिक आए, सेनापति आए। और यूनानी सौन्दर्य भारत के मन को भा गया, खूब भा गया। तो जब पांच सौ साल बाद बुद्ध की प्रतिमाएं बननी शुरू हुईं, तो उनमें यूनानी सौन्दर्य की छाप पड़ गयी। वह बुद्ध की प्रतिमा नहीं है। सच तो यह है कि बुद्ध नेपाली थे। और कहां नेपाली और कहां यूनानी !

बुद्ध पैदा हुए भारत और नेपाल की सीमा पर। असल में वह नेपाल का ही हिस्सा था, जहां बुद्ध पैदा हुए। वह नेपाली थे--भारतीय से ज्यादा। शायद चपटी नाक रही हो। ठिगने रहे होंगे। जैसा नेपाली होता है--गोरखा। सिकन्दर जैसे तो नहीं हो सकते। कोई उपाय नहीं वैसा होने का। लेकिन जब प्रतिमा भारतीयों ने बनायी, तो उस समय सिकन्दर की छाप बड़ी गहरी थी। और सिकन्दर अपने पीछे सेनापति छोड़ गया था भारत में हुकूमत करने को, मीनांदर, उस समय मौजूद था जब बुद्ध की पहली प्रतिमाएं बनीं। उसमें मीनांदर की छाप भी है। और खुद मीनांदर भी बुद्ध से प्रभावित हुआ था। उसने बुद्ध के बहुत प्रसिद्ध भिक्षु नागसेन को बुला कर अपने राजदरबार में स्वागत किया था और उनसे प्रश्न किये थे।

'मिलिंद प्रश्न' नाम की अद्भुत किताब है बौद्धों की, जिसमें मिलिंद--मीनांदर का भारतीय रूपांतरण है मिलिंद--प्रश्न पूछता और नागसेन जवाब देते हैं। बुद्ध की जो प्रतिमा बनी, वह प्रतिमा अलेक्जेंडर से अनुप्राणित है। और बुद्ध के बाद फिर महावीर की प्रतिमाएं बनीं, उन पर भी वही छाप है। इसलिए तो कोई भी जैन-मुनि महावीर जैसा शरीर नहीं बता पाता। कहां से बताएगा ? कोई बौद्ध भिक्षु बुद्ध जैसा दिखाई नहीं पड़ता है। कैसे दिखाई पड़ेगा ?

चीन में भी बुद्ध की प्रतिमाएं हैं। वहां हालत बदल गयी। वहां चीनियों ने अपने ढंग से बनायी उनको। और जापान में भी बुद्ध की प्रतिमाएं हैं। और तब तो और हालत बदल गयी। क्योंकि जापानियों ने अपने ढंग से बनायी हैं।

जापान में सदियों से श्वास की जो प्रक्रिया है, वह पतंजलि के योग से बिलकुल उलटी है। और मेरे हिसाब में ज्यादा वैज्ञानिक है। पतंजलि से कहीं ज्यादा वैज्ञानिक है। और पतंजलि से कहीं ज्यादा विश्राम में ले जाने वाली है और ध्यान में ले जाने वाली है। जापान की जो प्रक्रिया है, वह ताओ-परम्परा से आयी हुई है। लाओत्सू उसका जन्मदाता है। उस प्रक्रिया में श्वास को सीने से नहीं लेना है, पेट से लेना है। तो जब श्वास भीतर जाए, पेट ऊपर उठे और जब श्वास बाहर जाए तो पेट नीचे गिरे। ध्यान पेट पर होना चाहिए। उस प्रक्रिया को जो भी करेगा, उसकी छाती तो भीतर बैठ जाएगी और पेट बड़ा हो जाएगा। स्वभावतः।

बुद्ध की जो प्रतिमा हमने बनायी है, वह पतंजलि के अनुपात से बनायी है। उसमें छाती बड़ी है, पेट बिलकुल भीतर सिकुड़ा हुआ है। क्योंकि पतंजलि के प्रयोग में श्वास लेनी है छाती से, फेफड़ों को भर लेना है श्वास से। और जब श्वास लो, तो पेट को भीतर खींच लेना है, ताकि पेट अनुपात में बना रहे। पेट भीतर हो। तो बुद्ध या महावीर की प्रतिमाएं ऐसी लगती हैं जैसे गामा की हों, पहलवानों की हों। यह बात जापानियों को नहीं जंची। यह बात ही गलत है उनके हिसाब से। तो जापान में जो बुद्ध की प्रतिमाएं हैं, वे तुम्हें न जंचेंगी। उसमें बुद्ध का पेट बड़ा है। जैसे गर्भवती स्त्री का पेट। और छाती छोटी है। भारतीय जो प्रतिमा है बुद्ध की, उसमें चेहरा बड़ा गम्भीर है--गुरुगंभीर है। और जापानी जो प्रतिमा है, चेहरा मुसकुराता हुआ है। अब जिसकी तोंद बड़ी हो, वह मुसकुराए नहीं तो क्या करे ! और जिसने पेट को भीतर खींचा हो, वह मुसकराए कैसे ? अगर मुसकराए तो कहीं पेट न छूट जाए।

प्रत्येक जाति ने अपने ढंग से प्रतिमाएं बनायी हैं। वह उनका परमात्मा से कुछ लेना-देना नहीं है।

अब राम की तुमने प्रतिमा बनायी है--धनुर्धारी राम। उस समय धनुष-बाण ही एकमात्र औजार था। उस समय वही बड़ी भारी बात थी। अब तो सिर्फ कोल-भील

धनुर्धारी होते हैं। और वे भी हमेशा धनुष धारण नहीं करते। जब गणतंत्र-दिवस आता है तो दिल्ली पहुंच जाते हैं धनुष-बाण धारण करके। सिर्फ प्रदर्शन करने। उनको भी अब कोई धनुष-बाण को क्या करेंगे ? खाएंगे ? पीएंगे ? चाटेंगे ? क्या करेंगे धनुष-बाण को ? कोई शक्कर का शिकार करेंगे ? कि घासलेट के तेल को मारेंगे ? क्या करेंगे धनुष-बाण का ? और धनुष-बाण टांग कर क्या शक्कर की दुकान पर 'क्यू' लगा कर खड़े होओगे ? बेचारे आदिवासी की फिक्र यह है कि नमक कहां से मिले ? घासलेट का तेल कहां से मिले ? यह उसकी दो खास जरूरतें हैं।

धनुष-बाण क्या करेगा ! गये वे दिन, लद गये वे दिन। उन दिनों बात महत्त्वपूर्ण थी, वही सबसे बड़ी बात थी। अब आज तो अगर कोई राम की प्रतिमा बनाए तो कम-से-कम उनको संगीन तो पकड़ा ही दो--बंदूक। बंदूकधारी राम। वे जरा जंचेंगे। आधुनिक मालूम होंगे कम-से-कम। समय बदलता है, हमारी धारणा बदलती चली जाती है, परमात्मा का रूप बदलता चला जाता है।

उसके पहले, राम के भी पहले परशुराम हो गये। फरसा वाले राम। वे फरसा लिये रहते थे। उन्होंने इतनी हत्या की जितनी दुनिया में किसी आदमी ने नहीं की। कहते हैं उन्होंने पृथ्वी को अट्ठारह बार क्षत्रियों से शून्य कर दिया। सारे क्षत्रिय मार डाले। वह तो कृपा हो ऋषियों की,...क्योंकि उन दिनों ऋषियों का वही उपयोग था, जो आजकल सांडों का है। ऋषि-मुनियों को लोग पालते इसलिए थे कि जब जरूरत पड़ जाए। प्रक्रिया थी उन दिनों एक धार्मिक, जिसका नाम है : निरोध। अब तो निरोध नाम है संतति-निग्रह का। अजीब लोग हैं, इतने प्यारे शब्द को खराब कर दिया। मैं गुजरात जब भी जाता था तो 'निरोध वापरो', 'निरोध वापरो'--हर बस के पीछे लगा है : 'निरोध वापरो' ! उन दिनों, आज से तीन हजार साल पहले निरोध का अर्थ था कि कोई भी स्त्री जा कर किसी ऋषि-मुनि से कह सकती है कि चूंकि मेरा पति मर गया और मुझे बच्चे की आकांक्षा है, इसलिए निरोध वापरो। मतलब मेरे साथ संभोग करो, बच्चा पैदा करो। निरोध का वह मतलब होता था। उलटा ही हो गया अब मामला सब !

निरोध का मतलब था : संतति पैदा करवा लेना। और ऋषि-मुनि से ही करवायी जा सकती है, क्योंकि वे गऊ-भक्त होते थे, दूध ही दूध पीते। सांड हो गये थे ! और तो उनका कोई उपयोग भी नहीं था। और उनको पालता था समाज तो काम भी लेता था।

यह परशुराम खाली करते रहे पृथ्वी को क्षत्रियों से--लेकिन स्त्रियों को तो मार नहीं सकते थे।...स्त्रियों को क्या मारना मर्द बच्चा होकर !...सो पुरुषों को मार आते थे और स्त्रियां ऋषि-मुनियों से जाकर निरोध करवा आती थीं। फिर बच्चे पैदा

हो जाते। ऐसे अट्ठारह बार—एकाध बार नहीं, अट्ठारह बार उन्होंने पृथ्वी को क्षत्रियों से खाली कर दिया। फिर भी क्षत्रिय वहीं के वहीं मौजूद हैं।

इसीलिए तो कहते है: ऋषि-मुनियों की संतान। जरा सोच-समझ कर कहा करें कि हम भारतवासी ऋषि-मुनियों की संतान हैं। इसमें जरा सोच-समझ लिया करें कि इसका मतलब क्या होता है: ऋषि-मुनियों की संतान!

समय जब बदल जाता है,...आज तुम यह कल्पना नहीं कर सकते किसी की कि वह लाखों लोगों को मार डाले और उसको तुम भगवान का अवतार कहो। नहीं तो एडोल्फ हिटलर में फिर भगवान के अवतार होने की क्षमता आ जाती है। और जोसेफ स्टेलिन तो और भी एक कदम आगे है। अंदाजन एक करोड़ आदमी जोसेफ स्टेलिन ने रूस में मारे हैं। इससे कम नहीं। पक्के आंकड़े तो बहुत मुश्किल हैं मिलने, लेकिन इतने करीब-करीब मारे हैं। ज्यादा मारे हों भला। माओत्से तुंग ने लाखों लोग मारे हैं।

परशुराम! यह लाखों लोगों को मारने वाला व्यक्ति और अवतार बन गया! उन दिनों जिसकी लाठी उसकी भैंस, इसका बड़ा बल था। और परशुराम ने दिखा दिया लोगों को कि मैं कौन हूं! मेरे पास ईश्वरीय शक्ति है। यह देखो, इतने लोग काट डाले! आज अगर ऐसा कोई करे तो वह जघन्य अपराधी होगा। आज एडोल्फ हिटलर या जोसेफ स्टेलिन को सम्मान देने वाली बात समाप्त हो गयी। आज आदमी कहीं ज्यादा प्रौढ़ हो गया है।

ईश्वर की कल्पना बदलती चली जाती है। तुम जैसे विकसित होते हो वैसे तुम्हारी ईश्वर की धारणा बदलती चली जाती है।

पहली बात, साधना, ख्याल रखो, परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं है। परमात्मा उस परम ऊर्जा का नाम है, जो सबमें व्याप्त है। उसे पुकारने की जरूरत नहीं है, उसे अपने भीतर अनुभव करने की जरूरत है। पुकार का मतलब: प्रार्थना और अनुभव करने का अर्थ है: ध्यान। और लोग पुकार ही रहे हैं! गुम्बजों पर चढ़-चढ़ कर पुकार रहे हैं! मीनारों पर चढ़-चढ़ कर पुकार रहे हैं! कि शायद मीनार ऊंची है! मस्जिदों के किनारे मीनारें खड़ी हैं, वहां से चढ़-चढ़ कर पुकार रहे हैं कि शायद यहां से सुनायी पड़ जाए। इन सबको न्यूयार्क चले जाना चाहिए, जहां सौ, सवा सौ मंजिल ऊंचा मकान होता है, उसके ऊपर छत पर खड़े हो कर पुकारो, वहां से शायद सुनायी पड़ जाए। क्योंकि परमात्मा निश्चित वहां से करीब होगा—थोड़ा करीब तो होगा ही! और खुश भी होगा कि वाह रे भक्त, इतने करीब आ गया, बिलकुल बादलों के करीब!...कभी-कभी तो बादल इन मकानों के नीचे पड़ जाते हैं। बरसात के दिनों में जब बादल घने होते हैं तो मकानों के नीचे पड़ जाते हैं। हवाई जहाज जा कर इन मकानों से टकरा जाते हैं।

ईश्वर कोई व्यक्ति नहीं है, पुकारना व्यर्थ है, साधना! और तेरा इतना प्यारा नाम है: 'साधना'! साधना में पुकार वगैरह नहीं होती। साधना में तो जागरण की प्रक्रिया है, ध्यान है। जागो! तू कहती है, 'परमात्मा मेरी पुकार कब सुनेगा'!

और ध्यान से भी प्रार्थना उठती है निश्चित, लेकिन वह प्रार्थना सिर्फ धन्यवाद की होती है। और धन्यवाद भी किसी के प्रति नहीं होता, समस्त के प्रति होता है। वृक्षों के प्रति, चांद-तारों के प्रति, बदलियों के प्रति, सूरज के प्रति, लोगों के प्रति, पृथ्वी के प्रति, पशुओं के, पक्षियों के प्रति; यह जो सारा अस्तित्व है, यह जो अखण्ड विस्तार है, इस सबके प्रति धन्यवाद होता है। इस सबने कितना दिया है! सूरज ने किरणें दी हैं, उसके बिना जी न सकोगे। हवा ने श्वास दी है, उसके बिना जी न सकोगे। जमीन ने भोजन दिया है, उसके बिना जी न सकोगे। सबका अनुदान है।

एक छोटे-से घास के फूल को भी सारे अस्तित्व ने मिल कर बनाया है। कहीं से रंग, कहीं से प्राण, कहीं से आकृति—सारे जगत का अनुदान है।

इसलिए महाकवि टेनिसन का यह वचन ठीक है कि अगर मैं एक फूल को भी पूरा-पूरा समझ लूं, तो सारा अस्तित्व मेरी समझ में आ जाएगा। आ ही जाएगा। क्योंकि एक फूल को पूरा-पूरा समझने का अर्थ होगा, इसके सारे उन स्रोतों को भी समझ लेना जहां से इस फूल को जीवन मिला है।

सारा अस्तित्व संयुक्त है। इस संयुक्तता का नाम परमात्मा है। पुकारो मत, ध्याओ! ध्यान में डूबो! मौन, पुकार तो तुम्हारा उपद्रव ही रहेगी। पुकार कौन करेगा? मन ही करेगा। और मन शोरगुल से भरा है। मांगेगा क्या? धन मांगेगा, पद मांगेगा, प्रतिष्ठा मांगेगा। मन तो भिखमंगा है, मांगना ही उसका धंधा है। और परमात्मा भिखमंगों से नहीं संबंधित हो पाता। उससे संबंधित होना हो, सम्राट होना चाहिए।

मांग छोड़ो! और अपने भीतर के आनंद में मस्त होओ, लीन होओ, तल्लीन होओ! उसी मस्ती में अचानक तुम पाओगे, जिसे इतने दिन पुकारा और नहीं मिला, वह बिना पुकारे आ गया है। व्यक्ति की तरह नहीं आता, एक ऊर्जा की तरह आता है। एक विस्फोट की तरह आता है। तुम्हारे भीतर एक क्रांति की तरह आता है, एक झंझावात की तरह। झाड़ ले जाता है सब कूड़ा-करकट। एक बाढ़ की तरह आता है। स्वच्छ कर जाता है तुम्हारे तटों को, कूल-किनारों को। और तुम्हारे प्राणों को एक नयी ताजगी से भर जाता है। ऐसी ताजगी जो फिर खोती नहीं। फिर धन्यवाद उठ सकता है, फिर प्रार्थना उठ सकती है। मगर उस प्रार्थना में कोई मांग नहीं होगी। यह भी सवाल नहीं होगा कि वह कब सुनेगा! किसी को सुनानी थोड़ी है!

यह आग्रह भी वासना है कि परमात्मा सुने। यह तो परमात्मा को भी अपने काबू

में लाने की कोशिश है। तो भक्तगण रो रहे हैं मंदिरों में, छाती पीट रहे हैं, हुसेन-हुसेन चिल्ला रहे हैं कोई, कोई कुछ और कर रहे हैं, इस आशा में कि इस भांति मजबूर कर देंगे उसको सुनने के लिए। यह तो चालबाजी हुई, राजनीति हुई; तुम परमात्मा के भी मालिक होना चाहते हो। क्या करना है सुना कर उसको? और वहां कोई सुनने वाला है भी नहीं।

जरूर एक प्रार्थना है, मगर वह ध्यान की सुरभि है। ध्यान में जब आनंद फलता है और जब रस झरता है और जब अमृत का स्वाद प्राणों में फैलता है, तो स्वभावत: उस मौन में एक धन्यवाद होता है। कहा भी नहीं जाता, बस होता है। आंसू भी बह सकते हैं, मगर बहाए नहीं जाते। छाती पीटी नहीं जाती। सहज, स्व-स्फूर्त।

मैंने खामोश निगाहों से तुम्हें पूजा है....
मैंने खामोश निगाहों से तुम्हें पूजा है
अपने अरमानों की खुशबू को बिखेरा भी नहीं....
अपने अरमानों की खुशबू को बिखेरा भी नहीं
दिल में जज़्बात का तूफान छिपाने के लिए
तजकरा प्यार का मैंने कभी छेड़ा भी नहीं
मैंने खामोश निगाहों से तुम्हें पूजा है

मैंने वो ख़्वाब तुम्हारे जो कभी देखे थे....
मैंने वो ख़्वाब तुम्हारे जो कभी देखे थे
उनकी ताबीर मेरे दिल की तकदीर नहीं
मेरी चाहत का तो अंदाज जुदागाना था....
मेरी चाहत का तो अंदाज जुदागाना था
गर मिलन हो न सका प्यार की तहकीर नहीं
मैंने खामोश निगाहों से तुम्हें पूजा है

दिल में गुजरे हुए लम्हों की कसम बाकी है....
दिल में गुजरे हुए लम्हों की कसम बाकी है
जिंदगी के लिए इक यह भी सहारा होगा
तुमको पाने की तमन्ना ने तो दम तोड़ दिया
तुमको पाने की तमन्ना ने तो दम तोड़ दिया
तुमसे पाया जो ये गम तो हमारा होगा
मैंने खामोश निगाहों से तुझे पूजा है

अपने अरमानों की खुशबू को बिखेरा भी नहीं
दिल में जज़्बात का तूफान छिपाने के लिए
तजकरा प्यार का मैंने कभी छेड़ा भी नहीं
मैंने खामोश निगाहों से तुम्हें पूजा है.

ध्यान से एक खामोश प्रार्थना उठती है। कुछ कहा नहीं जाता, कुछ बोला नहीं जाता, बस चुपचाप ही एक निवेदन हो जाता है। निःशब्द। और तभी प्रार्थना सत्य है। और तब प्रार्थना में अपूर्व प्रसाद है। अनहद नाद है। असीम आनंद है।

आज इतना ही।

३ अक्तूबर १९८०; श्री रजनीश आश्रम, पूना।

संन्यास बोध की एक अवस्था है
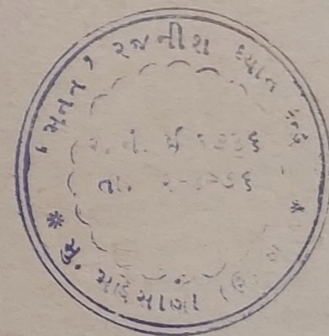
पहला प्रश्न : भगवान, यह श्लोक भी मुंडकोपनिषद में है :

वेदान्त विज्ञान सुनिश्चितार्था :
संन्यास योगाद् यतयः शुद्ध-सत्वाः ।
ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले
परामृताः परिमुच्यन्ति सर्वे ।।

अर्थात वेदांत और विज्ञान (प्रकृति का ज्ञान) के द्वारा जिन्होंने अच्छी तरह अर्थ का निश्चय कर लिया है और साथ ही संन्यास और योग के द्वारा जो शुद्ध स्वत्व-वाले हो गये हैं, वे प्रयत्नवान ब्रह्मपरायण लोग मरने पर ब्रह्मलोक में पहुंच कर मुक्त हो जाते हैं।

भगवान, हमें इस सूत्र को समझाने की अनुकंपा करें।

सहजानंद ! यह सूत्र तो मूल्यवान है, लेकिन इसकी जो व्याख्याएं की गयी हैं अब तक, बड़ी मूल्यहीन हैं। तुमने भी हिन्दी में इसका जो अर्थ किया है, वह उन्हीं व्याख्याओं पर आधारित है जो गलत हैं। और गलत व्याख्या बहुत दिनों तक चलती रहे तो ठीक मालूम होने लगती है। पुनरुक्ति का एक सम्मोहन है, जादू है। एडोल्फ हिटलर ने अपनी आत्मकथा 'मेनकेंम्फ' में लिखा है कि झूठ को अगर बार-बार दोहराया जाए तो वह सत्य हो जाता है। और उसने ऐसा लिखा ही नहीं, उसने बड़े से बड़े झूठों को सत्य करके दिखा भी दिया। सिर्फ पुनरुक्ति के बल पर। दोहराए गया, दोहराए गया, पहले लोग हंसे, फिर लोग सोचने लगे, फिर धीरे-धीरे लोग स्वीकार करने लगे।

विज्ञापन की सारी कला ही इस बात पर आधारित है : दोहराए जाओ। फिर चाहे हेमामालिनी का सौन्दर्य हो और चाहे परवीन बाबी का, सबका राज लक्स

टायलेट साबुन में है। दोहराए जाओ--अखबारों में, फिल्मों में, रेडियो पर, टेलीविजन पर--और धीरे-धीरे लोग मानने लगेंगे। और एक अचेतन छाप पड़ जाती है। और फिर तुम जब बाजार में साबुन खरीदने जाओगे और दुकानदार पूछेगा, कौन-सा साबुन ? तो तुम सोचते हो कि तुम लक्स टायलेट खरीद रहे हो ! तुमसे खरीदवाया जा रहा है। वह जो तुमने पढ़ा है बार-बार ! तुम कहते हो, लक्स टायलेट दे दो। तुम यही सोचते हो, यही मानते हो कि तुमने खरीदा, मगर तुम भ्रांति में हो। पुनरुक्ति ने तुम्हें सम्मोहित कर दिया।

नये-नये जब पहली दफा विद्युत के विज्ञापन बने तो वे थिर होते थे। फिर वैज्ञानिकों ने कहा कि थिर का वह परिणाम नहीं होता। जैसे लक्स टायलेट लिखा हो बिजली के अक्षरों में और थिर रहें अक्षर, तो आदमी एक ही बार पढ़ेगा। लेकिन अक्षर जलें, बुझें, जलें, बुझें, तो जितनी बार जलेंगे, बुझेंगे, उतनी बार पढ़ने को मजबूर होना पड़ेगा। तुम चाहे कार में ही क्यों न बैठ कर गुजर रहे होओ, जितनी देर तुम्हें बोर्ड के पास से गुजरने में लगेगी, उतनी देर में कम-से-कम दस-पन्द्रह दफा अक्षर जलेंगे, बुझेंगे, उतनी बार पुनरुक्ति हो गयी। उतनी पुनरुक्ति तुम्हारे भीतर बैठ गयी।

इस तरह के बहुमूल्य सूत्र भी कूड़ा-कचरा हो गये हैं, क्योंकि उनके जो अर्थ किये गये ! एक-दो दिन की पुनरुक्ति नहीं है, हजारों वर्षों की पुनरुक्ति है। इसलिए तुम्हें मेरे साथ एक-एक शब्द को पुनः समझना होगा।

'वेदांत'। इसका अर्थ किया गया है सदा से : वेदों की पराकाष्ठा, जो कि नितांत झूठ है। क्योंकि उपनिषद वेदों की पराकाष्ठा नहीं हैं, वेदों से बगावत हैं, विद्रोह हैं। उपनिषद यानी वेदांत। लेकिन इस झूठ को इतना दोहराया गया कि उपनिषदों में वेदों की पराकाष्ठा है; जैसे फूलों की गंध होती है ऐसे वेदों के वृक्षों पर उपनिषदों के फूल लगे हैं, इन फूलों में जो गंध उठ रही है, उसकी जड़ें वेदों में हैं। यह बात सच नहीं है। वेदांत का अर्थ होता है : जहां वेद समाप्त हो गये, जहां वेदों का अंत हो गया। उसके बाद जो यात्रा है, उसके बाद जो आयाम है, शास्त्रों के पार, वेदों के पार, शब्दों के पार, सिद्धांतों के पार, वह वेदांत है।

वेद बहुत लौकिक हैं। कहीं भूले-चूके कोई सूत्र आ जाता है जो प्यारा है, निन्यानबे प्रतिशत तो कचरा है। उपनिषद उस कचरे की पराकाष्ठा नहीं हैं। उपनिषदों में वेदों का स्पष्ट विरोध है। कृष्ण ने भी गीता में वेदों का स्पष्ट विरोध किया है। लेकिन विरोध करने का ढंग और फिर उस ढंग पर की गयी लीपा-पोती, सदियों-सदियों में पंडितों के चढ़ाए गये रंग, तुम्हें झूठ को मानने को मजबूर कर दिये हैं। तुम्हारे अचेतन में झूठ बैठ गया है। कृष्ण ने गीता में स्पष्ट कहा है कि वेद लौकिक हैं, सांसारिक हैं। जो सांसारिक बुद्धि के लोग हैं, उनके लिए हैं। और जिन्हें अध्यात्म

की खोज करनी है, उन्हें वेदों के पार जाना होगा।

यही बात महावीर ने कही। लेकिन बहुत साफ ढंग से कही। कृष्ण की बात को लीपा-पोता गया था। महावीर के समय तक आते-आते, बुद्ध के समय तक आते-आते समाधिस्थ व्यक्ति सजग हो गये थे कि पंडितों ने क्या दुर्व्यवहार किया है। अब दुबारा वैसा दुर्व्यवहार न हो सके, इसलिए महावीर और बुद्ध ने वेदों का स्पष्ट विरोध किया, सतत विरोध किया। परिणाम यह हुआ कि बुद्ध और महावीर को हिन्दू समाज स्वीकार न कर सका, पचा न सका, इनकार कर दिया। उनको भी पचा लिया होता, अगर उन्होंने भी जरा-सा अवसर दिया होता अपने शब्दों को तोड़े-मरोड़े जाने का, तो उनको भी पचा लिया होता। लेकिन वे सजग थे कि जो कृष्ण के साथ हुआ, जो उपनिषद के ऋषियों के साथ हुआ, उनके साथ न हो जाए। उनकी सजगता का यह परिणाम था कि उन पर वेद नहीं थोपे जा सके। नहीं थोपे जा सके तो हिन्दुओं के पास एक ही उपाय था कि बुद्ध और महावीर की निंदा करें, उनको उखाड़ फेंकें।

बुद्ध को तो बिलकुल उखाड़ फेंका भारत से। भारत में उनकी कोई रूपरेखा न बची, कोई नामलेवा न बचा। महावीर को इस बुरी तरह से नहीं उखाड़ा और उसका भी कारण था, क्योंकि महावीर की बात बहुत लोगों तक पहुंच नहीं सकती थी। महावीर की बात इतनी दार्शनिक थी कि बहुत थोड़े-से लोगों तक पहुंच सकती थी--उनसे कुछ डर न था। पहुंच-पहुंच कर भी क्या होगा ? बहुत थोड़े-से लोग ही उसको समझ पाएंगे। बुद्ध की बात बड़ी सीधी थी, साफ थी। वह करोड़ों लोगों तक पहुंच सकती थी। उसमें खतरा था।

वेदांत का अर्थ तुम समझ लो, वेदों की पराकाष्ठा नहीं, वेदांत का अर्थ सीधा है : जहां वेदों का अंत हो जाता है। वेदों की जहां मृत्यु हो जाती है। वेदों की राख से जो उठता है, वह वेदांत है। वेदों की पराकाष्ठा नहीं है, वेदों से बगावत, विद्रोह।

और होगी भी यह बगावत, क्योंकि वेद हैं क्या ? अगर तुम वेदों के पन्ने उलटाओ --कहीं से भी खोल लो वेद को--तो तुम चकित होओगे कि क्यों इन शब्दों को, इन सूत्रों को धर्म का नाम दिया गया है। साधारण आकांक्षाएं हैं। कोई मांग रहा है : फसल ज्यादा हो जाए; कोई मांग रहा है इन्द्र से कि वर्षा ज्यादा हो जाए; कोई मांग रहा है धन-धान्य; कोई मांग रहा है--उसके गउओं के थनों में दूध ही दूध भर जाए। और इतना ही नहीं, उसके दुश्मन की गउओं के थन बिलकुल सूख जाएं। मेरे खेत में वर्षा हो, इतना ही नहीं, पड़ोसी के खेत में वर्षा हो ही न। यह, इसको अध्यात्म कहोगे ? यह तो बड़ी निम्न वृत्तियां हुईं। मेरे शत्रुओं को नष्ट कर दे, हे इन्द्र देवता, उन पर बिजली गिरा दे, उनको राख कर दे। इसको अध्यात्म और धर्म कहोगे ? यह तो मनुष्य की सामान्य ईर्ष्याएं, शत्रुताएं, हिंसाएं, वैमनस्य, उसके ही

प्रतीक हैं। जरूर कहीं-कहीं वेद में कोई सूत्र आ जाता है जो बड़ा प्यारा है। लेकिन सौ में एक बार। निन्यानबे बार तो कचरा ही हाथ लगेगा। और उस कचरे में वे हीरे भी खो गये।

उपनिषद हीरे ही हीरे हैं। वहां कचरा नहीं है।

उपनिषद शब्द भी बड़ा प्यारा है। उसे समझो तो वेदांत भी समझ में आ जाएगा। उपनिषद का अर्थ होता है : गुरु के पास बैठना। उप निषद। पास बैठना। बस, इतना ही अर्थ है उपनिषद का। गुरु के पास मौन होकर बैठना; जिसने जाना है, उसके पास शून्य होकर बैठना। और उस बैठने में ही हृदय से हृदय आंदोलित हो जाते हैं। उस बैठने में ही सत्संग फल जाता है। जो नहीं कहा जा सकता, वह कहा जाता है। जो नहीं सुना जा सकता, वह सुना जाता है। हृदय की वीणा बज उठती है। जिसने जाना है, उसकी वीणा बज रही है। जिसने नहीं जाना है, वह अगर पास सरक आए तो उसके तारों में भी टंकार हो जाती है।

संगीतज्ञों का यह अनुभव है, अगर एक ही कमरे में––खाली कमरे में––सिर्फ दो वीणाएं रखी जाएं, द्वार-दरवाजे बंद हों और एक वीणा पर वीणावादक तार छेड़ दे, संगीत उठा दे, तो दूसरी वीणा जो कोने में रखी है, जिसको उसने छुआ भी नहीं, उस वीणा के तार भी झंकृत होने लगते हैं। एक वीणा बजती है तो हवाओं में आंदोलन हो जाता है, हवाओं में संगीत-लहरी फैल जाती है, स्पंदन हो जाता है। वह स्पंदन जिस वीणा को छुआ भी नहीं है, उसके भीतर भी सोए संगीत में हलचल मचा देता है। उसके तार भी जैसे नींद से जाग आते हैं, जैसे सुबह हो गयी।

आज से डेढ़ सौ वर्ष पहले एक वैज्ञानिक ने पहली दफा इस सिद्धांत को खोजा। वह इसे कोई नाम न दे सका। फिर अभी कुछ वर्षों पहले, कोई चालीस वर्ष पहले कार्ल गुस्ताव जुंग नाम के बहुत बड़े मनोवैज्ञानिक ने इसे नाम दिया : 'सिंक्रानिसिटी'। जिस वैज्ञानिक ने पहली दफा यह खोज की थी, वह एक पुराने किले में मेहमान था, एक राजा के घर मेहमान था। और जिस कमरे में वह था, दो घड़ियां उस कमरे में एक ही दीवाल पर लटकी हुई थीं। पुराने ढब की घड़ियां। मगर वह हैरान हुआ यह बात जान कर कि उनका पेंडुलम एक साथ घूमता है। मिनिट और सेकंड भी भिन्न नहीं। सेकंड सेकंड वे एक साथ चलतीं। इन दो घड़ियों के बीच उसे कुछ ऐसा तालमेल दिखायी पड़ा––वैज्ञानिक था, सोच में पड़ गया! कि इस तरह की दो घड़ियां उसने देखी नहीं जिनमें सेकंड का भी फर्क न हो। तो उसने एक काम किया, कि यह संयोग हो सकता है, उसने एक घड़ी बंद कर दी रात को। और दूसरे दिन सुबह शुरू की और दोनों के बीच कोई तीन-चार मिनिट का फासला रखा। चौबीस घंटे पूरे होते-होते दोनों घड़ियां फिर साथ-साथ डोल रही थीं। बराबर, सेकंड-सेकंड करीब आ गये थे, पेंडुलम फिर साथ-साथ लयबद्ध हो गये थे। तब तो वह चमत्कृत

हो गया। राज क्या है ? आया था दिन-दो दिन के लिए, लेकिन सप्ताहों रुका––जब तक राज न खोज लिया।

राज यह था कि वह जिस दीवाल पर लटकी थीं, उस पर कान लगा-लगा कर वह सुनता रहा कि क्या हो रहा है, तब उसे समझ में आया कि एक घड़ी की टिक्-टिक्, जो बड़ी घड़ी थी उसकी टिक्-टिक् दीवाल के द्वारा दूसरी घड़ी के पेंडुलम को भी संचालित कर रही है, उनमें एक लयबद्धता पैदा कर रही है। और बड़ी घड़ी इतनी बलशाली है कि छोटी घड़ी करे भी तो क्या करे! वह छोटी घड़ी सहज ही उसके साथ लयबद्ध हो जाती है।

उसने इसको सिर्फ लयबद्धता कहा था। लेकिन जुंग ने इसे पूरा वैज्ञानिक आधार दिया और 'सिंक्रानिसिटी' कहा; और सिर्फ घड़ियों के लिए नहीं, जीवन के समस्त आयामों में इस लयबद्धता के सिद्धांत को स्वीकार किया।

रहस्यवादी तो इस सिद्धांत से हजारों वर्षों से परिचित हैं। सत्संग का यही राज है, 'सिंक्रानिसिटी'। सद्गुरु यूं समझो कि बड़ी घड़ी, कि बड़ा सितार। शिष्य यूं समझो कि छोटी घड़ी, छोटा सितार। और शिष्य अगर राजी हो, श्रद्धा से भरा हो और बड़े सितार के पास सिर्फ बैठ रहे, कुछ न करे, तो भी उसके तार झंकृत हो जाएंगे।

उपनिषद का अर्थ है : लयबद्धता। उप का अर्थ होता है : पास, निषद का अर्थ होता है : बैठना। यही उपासना का अर्थ है। उप आसन। पास बैठना। यही उपवास का अर्थ है : पास बैठना। मगर कैसे अर्थ विकृत हो गये! उपवास का अर्थ हो गया : अनशन। भूखे मरना। उपवास का अर्थ होता है : पास वास करना। इतने निकट हो जाना गुरु के––हां, कभी-कभी यह होगा कि गुरु की निकटता में ऐसा पेट भर जाएगा कि शायद भूख की याद भी न आए। इसी कारण अनशन की विकृति पैदा हुई। गुरु के आनंद में डूब कर अगर भोजन की याद न आए, तो उपवास; और जबरदस्ती भोजन न किया जाए, तो अनशन। अनशन हिंसा है, उपवास प्रेम है। उनमें जमीन-आसमान का भेद है।

इधर सोहन बैठी है, उससे पूछो। मैं उससे पूछता था जब उसके घर मेहमान होता था, पूना आता था, कि तू तुझे खिलाती है––और मेरे कारण न-मालूम कितने मेहमान दिन भर उसके घर आते, उन सबको खिलाती है, और तू कुछ खाती-पीती दिखायी नहीं पड़ती! तो वह मुझसे कहने लगी, जब आप यहां होते हैं, मुझे भूख ही नहीं लगती। मैं खुद ही चकित हूं कि भूख कहां खो जाती है? मैं इतनी भरी-भरी हो जाती हूं कि भीतर जगह ही नहीं रहती।

प्रेम भोजन से भी बड़ा भोजन है। और जरूर भरता है, बहुत भर देता है। शायद भोजन की याद भी न आए। इस कारण एक गलत अर्थ हो गया उपवास का : अनशन।

उपासना का अर्थ है : पास बैठना। उसका भी गलत अर्थ हो गया। अब तुम मूर्ति की आराधना कर रहे हो। थाली सजायी हुई है, आरती बनायी हुई है, दीये जलाए हुए हैं, धूप जलायी हुई है और इसको तुम उपासना कह रहे हो। नहीं, उपासना तो केवल सद्गुरु के पास बैठना होता है। और उसके पास बैठना ही आरती है, आराधना है। उसके पास बैठना ही तुम्हारे भीतर के दीये का जलना है। उसके पास बैठते ही तुम्हारे भीतर धूप जल उठती है, सुगंध उठने लगती है।

वेदांत पैदा हुआ उपनिषदों में; गुरु-शिष्यों के अंतरंग सान्निध्य में।

वेदांत का अर्थ है : जहां शब्द नहीं हैं; जहां शास्त्र नहीं, सिद्धांत नहीं, जहां वेदों का तो अंत हो गया, जहां सब शास्त्र बहुत पीछे छोड़ दिये गये--मन ही पीछे छोड़ दिया गया! मन में ही शास्त्र हो सकते हैं; मन के पार तो शास्त्र नहीं हो सकते। वेदांत है मन के पार उड़ान; अ-मनी दशा। वेदांत है : ध्यान, समाधि।

तो पहले तो वेदांत का अर्थ ठीक से समझ लो, नहीं तो भूल हो जाएगी। फिर मेरा अर्थ पकड़ में नहीं आएगा।

दूसरा शब्द है : 'विज्ञान'। तुमने, सहजानंद, विज्ञान का अर्थ किया : प्रकृति का ज्ञान। क्योंकि अब हम साइंस के अर्थों में विज्ञान शब्द का प्रयोग करते हैं। यह हमारी नयी बात है। हमारे पास साइंस के लिए कोई शब्द न था, हमने विज्ञान शब्द का उपयोग करना शुरू कर दिया। मगर तुम उपनिषदों पर इस अर्थ को मत थोपो! उपनिषदों में तो विज्ञान का बहुत सीधा अर्थ है, वह है : विशेष ज्ञान। विज्ञान यानी विशेष ज्ञान। ज्ञान वह है जो दूसरों से मिलता है और विशेष ज्ञान वह है जो अपने भीतर ही आविर्भूत होता है। उसका कोई साइंस से लेना-देना नहीं है। विज्ञान का अर्थ प्रकृति का ज्ञान नहीं है। विज्ञान का अर्थ है : विशेष; उधार नहीं, निज का। वही उसकी विशिष्टता है, उसकी अद्वितीयता है।

वेदांत और विज्ञान एक ही सिक्के के दो पहलू हुए। वेदांत है : शास्त्र के पार जाना--वह है मार्ग--और विज्ञान है उपलब्धि; विशेष ज्ञान की प्रतीति, अनुभूति, साक्षात्कार। विश्वास नहीं, अपना अनुभव। और तभी जीवन का सुनिश्चित अर्थ पता चलता है।

अब इस वचन को तुम समझो--

वेदान्त विज्ञान सुनिश्चितार्थाः

जिसने वेदांत के साधन से विज्ञान को उपलब्ध किया है, उसे जीवन का अर्थ और अभिप्राय पता चलता है। उसके बिना जीवन का अर्थ पता नहीं चलता है। मगर इस पर कितना कचरा थोपा गया है! ऐसी ही घटना और शब्दों के साथ भी हुई।

संन्यास योगाद् यतयः शुद्ध-सत्वाः।

संन्यास का अर्थ पकड़ गया, जड़ हो गया; संसार को छोड़ दे जो, वह संन्यासी।

तो फिर जनक संन्यासी नहीं हैं। लेकिन जनक से ज्यादा किसने जाना? और अगर जनक संसार में रह कर जान सकते हैं, तो संन्यास फिर अपरिहार्य न रहा। और संन्यास निश्चित ही अपरिहार्य है, अनिवार्य है। संन्यास के बिना कोई भी नहीं जान सकता। तो हमें संन्यास को कुछ पुनः आविष्कार करना होगा इसके छिप गये अर्थ को।

संन्यास का अर्थ संसार को छोड़ देना नहीं है। संन्यास का अर्थ है : असार, व्यर्थ जो हम पकड़े हुए हैं, उसका छूट जाना--छोड़ना नहीं, छूट जाना। भेद स्पष्ट कर लेना। वहीं भूल हो गयी है। जैसे महावीर से तो साम्राज्य छूटा, लेकिन देखने वालों ने समझा कि छोड़ा। देखने वालों का भी कसूर नहीं, देखने वालों की अपनी मुसीबत है। देखने वालों की यह तकलीफ है कि वे तो पकड़े हुए हैं धन को, वे कैसे मानें कि धन अपने से छूट जाता है। उनका अपने जीवन का--एक जीवन का नहीं, अनंत जीवन का--अनुभव यह है कि वे तो और-और पकड़ना चाहते हैं। तो जब वे देखते हैं कि कोई व्यक्ति छोड़ कर चला गया, तो स्वभावतः वे सोचते हैं, धन्य है, कैसा त्याग किया! कैसा महात्यागी! छोड़ दिया! हमसे तो छूटती नहीं एक कौड़ी और इसने हीरे-जवाहरात छोड़ दिये! हमसे नहीं छूटता कुछ भी और इसने सब छोड़ दिया, साम्राज्य छोड़ दिया! लेकिन यह दर्शकों की दृष्टि है, यह महावीर की अंतरंग दृष्टि नहीं है। महावीर से पूछो। महावीर ने छोड़ा नहीं है, छूटा है।

और भेद तो बहुत बड़ा है।

छोड़ने का मतलब ही यह होता है : अभी लगाव कायम था, अभी आसक्ति बनी थी, जबरदस्ती करनी पड़ी है, जैसे कोई कच्चे फल को तोड़ता है। कच्चे फल को तोड़ना पड़ता है, पका फल अपने से गिर जाता है। और जब पक कर कोई फल गिरता है, तो न तो वृक्ष को कोई घाव लगता, न कोई पीड़ा होती, सिर्फ वृक्ष निर्भार होता है। और जब पका फल गिरता है तो पके फल को भी कोई पीड़ा नहीं होती। क्योंकि पक गया, अब पीड़ा का कोई सवाल नहीं था। अब यह गिरना बिलकुल नैसर्गिक है, स्वाभाविक है, आवश्यक है, प्रकृति के अनुकूल है। एस धम्मो सनंतनो। यही धर्म है। लेकिन जब कोई कच्चे फल को तोड़ता है, तो तोड़ना पड़ता है। फल को भी चोट लगती है, क्योंकि फल अभी कच्चा है, अभी पका ही नहीं, तुमने उसके पूरे जीवन को विकसित होने का अवसर न दिया; जैसे किसी ने कली को तोड़ लिया, फूल भी न होने दिया। तो निश्चित ही तुमने हिंसा की। और कच्चे फल को तुम जब तोड़ते हो, वृक्ष को भी पीड़ा होती है।

एक ज्योतिषी के जीवन में उल्लेख है, अकबर ने उसे बुलाया था, बड़ी उसकी ख्याति सुनी थी। बहुत दिन से ख्याति सुन रहा था, लेकिन बुलाने में डरता भी था। यूं अकबर ने देश के सारे-सारे रत्न इकट्ठे कर लिये थे--तानसेन था वहां, इस देश का बड़े से बड़ा संगीतज्ञ, उन दिनों का ही नहीं, सारे-सारे दिनों का; बीरबल था

वहां; और तरह-तरह के रत्न थे, नौ रत्न थे--इस ज्योतिषी के लिए भी बहुत खबरें आयी थीं कि इसे भी अपने दरबार में बुला लो। लेकिन एक खतरा था कि ज्योतिषी बहुत मुंहफट है। दो और दो चार, तो दो और दो चार ही कहता है। मगर बात इतनी आती रही, आती रही कि अकबर उत्सुक होता गया, आखिर उसने कहा कि क्या कहेगा आखिर, बुला ही लो! एक दफा तो देखें कि वह क्या, किस तरह का आदमी है!

ज्योतिषी आया। अकबर ने पूछा कि कुछ मेरे संबंध में कहें। ज्योतिषी ने हाथ देखा और कहा कि पहले तुम मरोगे, फिर तुम्हारे बेटे मरेंगे, फिर उनके बेटे मरेंगे। अकबर ने कहा, यह भी कोई बात हुई! तो लोग ठीक ही कहते थे। कुछ और तुम्हें नहीं सूझता? मैं मरूंगा, मेरे बेटे मरेंगे, उनके बेटे मरेंगे--यही कहने तुम इतनी दूर आए! और मेरे दरबार में और भी ज्योतिषी हैं, किसी ने कभी यह नहीं कहा। उसने कहा, वे ज्योतिषी भी यही कह रहे होंगे, सिर्फ लीपपोत कर कहते होंगे। लेकिन मैं सच कह रहा हूं। और न केवल मैं यह कह रहा हूं यह भविष्यवाणी है, यह मेरा आशीर्वाद भी कि पहले तुम मरो, फिर बेटे मरें, फिर उनके बेटे मरें। क्योंकि यही प्रकृति का नियम है। बेटे तुम्हारे बाद मरें, तुमसे पहले न मर जाएं। नहीं तो कच्चे होंगे। तुम पहले मरो। बेटे पहले मर जाएं तो दुर्घटना। बाप पहले मरे तो कोई दुर्घटना नहीं है। मैं इतना ही कह रहा हूं: बाप का मरना पहले बेटों से बिलकुल ही स्वाभाविक है; तब तक बेटे बाप हो जाएंगे, फिर वे मरेंगे, फिर उनके बेटे मरेंगे--ऐसा मरते ही रहेंगे। मैं तो सीधी-सीधी बात कह रहा हूं।

अकबर को चोट तो लगी, क्योंकि कोई ज्योतिषी को हाथ नहीं दिखाता कि सिर्फ वह मृत्यु की ही बात करे, मगर ज्योतिषी ने कहा, यही एकमात्र सुनिश्चित चीज है। बाकी तो सब चीजें अनिश्चित हैं। हो भी सकती हैं, न भी हों, मगर यह पक्का ही होगा। और मैं पक्के की ही बात करने का आदी हूं। कच्चे की मैं बात नहीं करता। जो होना ही है, वही मैं कहता हूं।

पका फल जब गिरता है तो दुर्घटना नहीं है। लेकिन कच्चे फल जो वृक्ष से लटके हुए हैं, पके फल को गिरते देख कर सोचते होंगे, अहह, कैसा अद्‌भुत फल है! हम तो छोड़ना नहीं चाहते, पकड़ना चाहते हैं--और रस पी लें, और रस पी लें; और दो दिन जी लें, अभी-अभी तो आए हैं, अभी क्या टूटना; और क्या अद्‌भुत त्यागी है यह फल भी कि चल दिया, मार दी लात वृक्ष को! यह कच्चे फलों की प्रतीति है। और कच्चे फल क्या ख़ाक कहेंगे पके फलों के संबंध में!

रामकृष्ण के पास एक आदमी आया। बहुत से रुपये लाया था एक थैली में भर कर। रामकृष्ण के चरणों पर चढ़ाने लगा। रामकृष्ण ने कहा कि क्यों, किसलिए? तो उसने कहा, आप महात्यागी हैं; और हम किसी तरह तो आपका सम्मान करें!

रामकृष्ण ने कहा, शब्द वापिस ले लो! मैं महाभोगी। महात्यागी तुम हो! कैसी उलटी बातें करते हो, रामकृष्ण ने कहा, मुझ भोगी को त्यागी कहते! और तुम हो त्यागी और अपने को भोगी कहते; क्या विनम्रता है तुम्हारी भी! वह आदमी तो बहुत चौंका। उसने कहा, आप क्या कह रहे हैं? परमहंसदेव, आप होश में हैं? आप और भोगी! और मैं और त्यागी! रामकृष्ण ने कहा, मैं बिलकुल ठीक कह रहा हूं। क्योंकि मैंने व्यर्थ को छोड़ दिया और सार्थक को भोग रहा हूं। और तुम व्यर्थ को पकड़े हो और सार्थक को त्यागा हुआ है। किसको भोगी कहें? किसको त्यागी कहें?

रामकृष्ण जैसे लोग शब्दों को आत्मा देते हैं, अर्थ देते हैं, क्योंकि ये कोई पंडित नहीं हैं।

मैं भी मानता हूं कि संन्यास परम भोग है। और जिनको तुम भोगी कहते हो, वे सच में समझो तो तुम्हारे अर्थों में संन्यासी हैं। कंकड़-पत्थर तो उन्होंने छाती से लगा रखे हैं, हीरे-जवाहरात छोड़ दिये हैं। हीरे और जवाहरात छोड़ने की उनकी तैयारी है, लेकिन कंकड़-पत्थर छोड़ने की नहीं। कागज के नोटों पर बैठे हुए हैं, फन मार कर। लोग कहते हैं, मर जाते हैं इस तरह के लोग तो सांप हो जाते हैं; क्या ख़ाक मर कर होंगे, वे अभी ही सांप हैं। जरा उनके नोट पर नजर तो करो, ऐसा फ़ुफकारेंगे! कागज के नोटों पर मरे जा रहे हैं! और जीवन की परम निधि भीतर पड़ी है, उस तरफ आंख भी नहीं उठाते। दौड़ रहे हैं बाहर, पद और प्रतिष्ठा में।

तो इन सारे पागलों के बीच जब कोई महावीर या बुद्ध जैसा व्यक्ति पैदा होता है, तो उसके संबंध में गलत धारणा बनेगी ही। महावीर और बुद्ध को ये कहेंगे: कैसा महान त्याग किया! लेकिन महावीर और बुद्ध से पूछो। महावीर-बुद्ध रामकृष्ण से राजी होंगे, मुझसे राजी होंगे।

संन्यास का अर्थ है: जो व्यर्थ है, जो असार है, उसका छूट जाना। संसार का छूट जाना नहीं, क्योंकि संसार न तो व्यर्थ है न असार है। संसार तो दोनों है। संन्यासी इस ढंग से रहता है, इस कला से रहता है कि सार को भोगता है, असार को छोड़ देता है। और भोगी इस मूढ़ता से रहता है कि असार को तो पकड़ लेता है, सार से चूक जाता है। संन्यास संसार के छोड़ने का नाम नहीं, सार और असार के विवेक का नाम है। सार सार की तरह दिखायी पड़े, असार असार की तरह।

यह फिर एक पहलू हुआ।

संन्यास योगाद् यतयः शुद्ध-सत्वाः।

और इसका दूसरा पहलू है: योग। संन्यास का अर्थ हुआ: असार का छूट जाना; योग का अर्थ हुआ: सार से जुड़ जाना। योग का अर्थ होता है। जुड़ना। असार से छूटना और सार से जुड़ना, यह दो पहलू हुए। संन्यास नकारात्मक है। कचरे को

छोड़ दिया, खाली कर लिया अपने को कचरे से--विचारों से, वासनाओं से, इच्छाओं से--और जैसे ही तुम खाली हुए कि परमात्मा से जुड़े। जैसे ही तुम खाली हुए कि तुम मिटे और परमात्मा ही बचा। उस परम मिलन का नाम योग है। योग का मतलब शीर्षासन नहीं है। योग का मतलब पद्मासन नहीं है। योग का मतलब कोई शारीरिक सर्कस नहीं है। कि शरीर को तोड़ रहे हो, मरोड़ रहे हो, उल्टा-सीधा कर रहे हो। योग का अर्थ है: जोड़, मिलन, परम मिलन। योग परम घटना है जीवन की, जहां बूंद सागर से मिल जाती है और मिल कर सागर हो जाती है।

संन्यास पहलू का एक हिस्सा और योग पहलू का दूसरा हिस्सा। संन्यास नकारात्मक, योग विधायक। जैसे वेदांत नकारात्मक--शब्द को छोड़ो, शास्त्र को छोड़ो, सिद्धांत को छोड़ो--और विज्ञान विधायक--ताकि तुम उस विशेष अनुभूति, उस विशेष ज्ञान को उपलब्ध हो जाओ जो जीवन को धन्य कर देती है। ऐसे व्यक्ति शुद्ध होता है, शुद्ध सत्व को उपलब्ध होता है।

ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले

मगर हम तो जब पंडित की व्याख्या में पड़ जाते हैं तो पंडित तो जो भी व्याख्या करेगा वह गलत होगी। क्योंकि उसे तो अनुभव नहीं है। वह क्या व्याख्या करेगा?

ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले

मृत्यु के बाद ऐसा व्यक्ति ब्रह्मलोक में प्रवेश करता है।

परामृताः परिमुच्यन्ति सर्वे ।।

और वहां पहुंच कर, ब्रह्मलोक में पहुंच कर--मरने के बाद--वह सर्वरूपेण मुक्त हो जाता है।

यह व्याख्या एकदम ही भ्रांत है। अगर तुम्हें मेरे पहले दो वचनों की व्याख्या समझ में आयी हो, तो फिर अर्थ बदलना होगा।

ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले

ब्रह्मलोक कोई भौगोलिक स्थान नहीं है कहीं। ब्रह्मलोक है तुम्हारे भीतर उस अनुभूति का नाम जब बूंद सागर में मिल कर सागर हो जाती है; वेदांत से विज्ञान, संन्यास से योग, और इन सबको एक शब्द में कहा जा सकता है: ब्रह्मसाक्षात्कार, ब्रह्मानुभूति, ब्रह्मलोक में प्रवेश। इसको तुम भूगोल मत समझना कि कहीं ऊपर सात आकाशों के पार कोई ब्रह्मलोक है। तुम्हारे भीतर ब्रह्मलोक है। तुम्हारा अन्तर्तम अभी भी ब्रह्मलोक में ही स्थापित है। तुम बाहर कितने ही भागो-दौड़ो, लेकिन तुम अभी भी उसी कील पर ठहरे हुए हो। तुमने गाड़ी को चलते देखा? चाक चलता है, कील ठहरी रहती है। कील है ब्रह्मलोक। और चाक है तुम्हारा मन। चाक तो चलता चला जाता है, लेकिन कील सदा ठहरी रहती है। ऐसे ही तुम्हारे भीतर एक कील है जो सदा ठहरी हुई है, जो कभी नहीं चलती, जो शाश्वत है, नित्य है। और

मन का चाक घूमता रहता है, घूमता रहता है। जिस दिन मन का चाक भी रुक जाता है, उस क्षण तत्क्षण तुम उस कील को देखने में समर्थ हो जाते हो जो कभी हिली नहीं, डुली नहीं, कभी बदली नहीं, बदल सकती नहीं।

और मृत्यु के बाद यह घटना नहीं घटती, जीवन में ही घटती है। लेकिन जीवन में भी मरने की एक कला है। जहां अहंकार मिट गया, वहां मृत्यु घट गयी। अहंकार की मृत्यु पर घटती है यह बात। शरीर की मृत्यु से इसका कोई संबंध नहीं है। क्योंकि शरीर मर भी जाए और अहंकार बना रहे तो तुम फिर दूसरा शरीर ग्रहण करोगे। और अहंकार मिट जाए, शरीर बना रहे, शरीर से क्या लेना-देना है! जब अहंकार मिट गया तो तुम शरीर से मुक्त हो गये--शरीर में रहते हुए भी मुक्त हो गये। इसलिए हमने जनक को विदेह कहा है। देह में रहते हुए, संसार में रहते हुए विमुक्त कहा है।

यह मृत्यु की धारणा कि मरने के बाद ब्रह्ममिलन होगा, बड़ी खतरनाक है। क्योंकि इससे हमें उस परम क्रांति को स्थगित करने के लिए सुविधा मिल जाती है कि अब जो होना है वह तो मृत्यु के बाद होना है, तो जल्दी क्या! बुढ़ापे में साध लेंगे। मरते वक्त साध लेंगे। मरणशैय्या पर साध लेंगे। और कोई मौत खबर देकर तो आती नहीं, पूर्व सूचना तो देती नहीं कि अब मैं आ रही हूं, अचानक आ जाती है, सो साधने का अवसर ही नहीं आता। जिंदगी भर सोचते रहे कि स्मरण करना है, प्रभु का, खुद तो नहीं कर पाये, फिर लोग अर्थी बांध कर उठाते हैं और 'राम-नाम सत्य' बोलते हैं। जो इनको बोलना था, वह दूसरे बोल रहे हैं। दूसरे भी इनके लिए बोल रहे हैं, अपने लिए नहीं बोल रहे हैं। अपने लिए तो वे प्रतीक्षा करेंगे दूसरों की कि भैया, हम तुम्हारे लिए बोल दिये, अब कोई हमारे लिए बोल देना!

मैं जबलपुर बहुत वर्षों तक रहा। मेरे पड़ोस में एक सज्जन थे, जो हर एक की अर्थी में सम्मिलित होते थे। मैंने उनसे पूछा कि बात क्या है, कोई भी मरे....! इतने तुम्हारे दोस्त और प्रियजन मुझे दिखाई नहीं पड़ते। कभी मैं देखता नहीं तुम्हारे घर कोई भोजन करने आया हो, कि तुम किसी के घर भोजन करने गये हो, लेकिन हर अर्थी में तुम जरूर सम्मिलित होते हो। शादी-विवाह का निमंत्रण तुम्हें मिले न मिले, मगर अर्थी में तुम जरूर सम्मिलित होते हो। तो उन्होंने कहा, ऐसा है कि मरना तो मुझको भी पड़ेगा, तो सबकी अर्थियों में सम्मिलित होता रहूंगा तो मेरी अर्थी में भी लोग सम्मिलित होंगे। क्या तुम मुझे चाहते हो कुत्ते की मौत मरूं, कि मैं मरूं और कोई सम्मिलित भी न हो। उनके कोई बच्चे नहीं थे, शादी उन्होंने की नहीं थी, सो वे बड़े भयभीत थे इस बात से कि मर जाऊं तो कम-से-कम मरघट तो पहुंचाने वाले लोग होने चाहिए। मैंने कहा, तुम मर ही गये तो अब मरघट

पहुंचे कि नहीं, इससे क्या फर्क पड़ता है ! और चार आदमी गये मरघट पहुंचाने, कि चार हजार आदमी गये, इससे भी क्या फर्क पड़ता है ! तुम तो गये ही ! मगर वे बोले कि नहीं, फर्क पड़ता है। कोई तो राम-नाम दोहराने वाला हो। अरे, कोई तो मरते वक्त कान में कम-से-कम गायत्री मंत्र पढ़ दे।

जिंदगी भर टालते रहते हैं, मरते वक्त लोग मुंह में गंगाजल डालते हैं, कान में गीता सुनाते हैं। वह आदमी मर रहा है, कुछ तो शर्म खाओ, कुछ तो संकोच करो ! इस मरते आदमी का अपमान तो न करो ! अरे, जिसने जिंदगी भर यह काम नहीं किया, मरते वक्त तो न करवाओ ! जो जिंदगी भर बचा, उसको अब तो भ्रष्ट न करो ! और यह क्या ख़ाक सुनेगा; जो जब जिंदा था तब नहीं सुना, अब यह मरते समय सुनेगा ! अब यह होश में है ! इसको कुछ सुनायी नहीं पड़ रहा है, यह तो डूब रहा है। यूं समझो जैसे कोई पानी में डूब रहा हो और तुम घाट पर खड़े हुए 'राम-नाम सत्य' की हुंकार मचा रहे हो, गायत्री-मंत्र पढ़ रहे हो, कि भैया डूब जा, सुन ले, आखिरी वक्त सुन ले, काम पड़ेगा !

इस तरह की सूत्रों की व्याख्या ने यह परिणाम हाथ में ला दिया कि मरने के लिए हम टालने लगे। संन्यास यानी बुढ़ापे में पचहत्तर साल के बाद ! अब आमतौर से पचहत्तर साल के बाद कितने लोग जिंदा रहते हैं ? सत्तर स्वाभाविक उम्र है। पचहत्तर साल के बाद जिंदा कौन रहता है ! दो-चार-दस आदमी जिंदा रह जाते होंगे। मगर जो पचहत्तर साल तक संन्यास न लेने का अभ्यास जिसने किया है, वह क्या पचहत्तर साल की आदत को इतनी आसानी से छोड़ देगा !

हर चीज का अभ्यास मजबूत होता चला जाता है।

एक मित्र मेरे शराब पीते हैं। उनकी पत्नी तीस साल से उनके पीछे पड़ी है कि शराब छोड़ो ! वह मेरे पास भी बार-बार आ कर कहती है कि आपकी ये मानते हैं, आप अगर एक दफा कह दो, ये जरूर छोड़ेंगे ! मगर आप चुप बैठे हो, आप कहते ही नहीं ! मैंने कहा, तू तीस साल से कह रही है, कुछ परिणाम न हुआ, तू मेरे शब्द भी खराब क्यों करवाना चाहती है; व्यर्थ जाएंगे। उसने कहा कि नहीं जाएंगे, वे भी कहते हैं कि अगर भगवान कह दें तो मैं छोड़ दूंगा; क्योंकि उनको पक्का भरोसा है कि आप कहोगे ही नहीं। आप एक दफा कह दो, देख तो लें, एक यह भी प्रयोग हो ले !

मैंने उससे कहा, तो एक काम कर, तू तीस साल से कह रही है कि शराब छोड़ दो। उसने कहा, हां। तो मैंने कहा, पहले तू यह कर कि तू यह कहना छोड़ दे—सात दिन के लिए सिर्फ। अगर सात दिन तूने यह बात नहीं उठायी अपने पति से, तो आठवें दिन मैं तेरे पति से कहूंगा। उसने कहा, राजी। अरे, यह कोई बड़ी कठिन बात है ! सात ही दिन की बात है न, आठवें दिन आप कहोगे ? आठवें दिन बिलकुल

पक्का है; सात दिन तू कहना ही मत, बात ही मत उठाना।

और पति को बुला कर मैंने कहा कि यह वायदा हुआ है। यह सात दिन का सौदा हुआ है। सात दिन में अगर यह एक बार भी वचन तोड़ दे, तुम फौरन मुझे खबर करना। और नोट करते जाना कितनी दफे वचन तोड़ा। उनकी पत्नी बोली कि अरे, सात दिन का सवाल है, सम्हाल लूंगी। मगर जिस ढंग से वह कह रही थी, 'सम्हाल लूंगी', और उसके चेहरे पर पसीना दिखायी पड़ रहा था, मैंने कहा कि तू देख, सोच-समझ करे बात कर ! अरे, उसने कहा, मेरा क्या बिगड़ता है, नहीं कहूंगी ! फायदा भी क्या है, तीस साल तो कह कर देख लिया, चलो सात दिन का ही तो सवाल है ! कुल सात दिन की ही तो बात है।

मगर वह तीसरे दिन मेरे पास आ गयी। उसने कहा कि न मैं सो सकती, न मैं खाना खा सकती, मेरा सब गड़बड़ हो गया है, बिना कहे मैं नहीं रह सकती ! मैं तो कहूंगी ! ! मैंने कहा, अब तू जरा सोच; जो आदमी तीस साल से शराब पी रहा है, उसको तू छुड़वाने की कोशिश कर रही है और तूने तो शराब पी ही नहीं, सिर्फ शराब छुड़वाने का अभ्यास तुझे हो गया है—हालांकि फायदा भी कुछ नहीं हुआ है तील साल में; उस अनुभव से भी तुझे कुछ सीख नहीं आयी; और मैंने कुछ ज्यादा मांग न की थी, सिर्फ सात दिन की—और तू चाहती है कि तेरा पति जिंदगी भर के लिए शराब छोड़ दे ! अब जरा होश की बात कर ! तेरा तो कुल इतना ही,....तेरा क्या जाता है ? तू कोई शराब तो पीती नहीं ! तेरे कोई शरीर में तो शराब घुस नहीं गयी है ! तेरे शरीर की कोई जरूरत तो हो नहीं गयी है ! तू तो सिर्फ कहती है, बकवास ही करती है—और तीस साल का अनुभव यह है कि उससे कुछ फायदा भी नहीं है। फिर भी तू सात दिन चुप नहीं रहती। तू कहती है कि मैं सो भी नहीं सकती। बस, मुझे एक ही धुन सवार रहती है और मैं डरी रहती हूं कहीं निकल न जाए मुंह से। खाना खाने बैठते हैं ये, तो मैं अपने को सम्हाले ! इतना तनाव मुझसे नहीं सहा जाता। मैं तो कहूंगी ! मैंने कहा, तू कहेगी तो तू कह ! लेकिन फिर इतना पक्का समझ ले कि जब तू कहना नहीं छोड़ सकती, तो यह बिचारा शराब कैसे छोड़ेगा ! और इसीलिए तो मैं नहीं कह रहा हूं।

आदमी हर चीज का अभ्यासी हो जाता है। पचहत्तर साल तक जिसने टाला है, पचहत्तर साल तक जिसने टालने का अभ्यास किया है, तुम सोचते हो पचहत्तर साल के बाद एकदम से तो वह संन्यस्त हो जाएगा ? वह पचहत्तर जन्मों तक टालेगा। मगर इन सूत्रों ने भ्रांति दे दी—इनके अर्थों ने, व्याख्याओं ने—कि मरने के बाद ब्रह्मलोक उपलब्ध होता है। जिन्दगी में तो कुछ होने वाला नहीं है। जब जिन्दगी में कुछ होने वाला नहीं है, तो क्यों व्यर्थ परेशान होओ ! अरे, अभी तो खा लो, पी लो, मजा कर लो, यह चार दिन की चांदनी है, फिर देखेंगे, निपट लेंगे बाद में !

और कोई हम अकेले थोड़े ही हैं, इतने लोग हैं, जो सब पर गुजरेगी वह हम पर भी गुजरेगी। और हम से भी बड़े-बड़े पापी पड़े हैं। अगर कतार भी लगेगी, 'क्यू' भी लगेगा कयामत के दिन निर्णय का, तो हमारा नम्बर तो न-मालूम कब आएगा!

मुल्ला नसरुद्दीन अपने मौलवी से पूछ रहा था कि बिलकुल सच बताओ, कयामत के दिन में निर्णय हो जाएगा? उसने कहा, बिलकुल हो जाएगा! नसरुद्दीन ने पूछा, कयामत के दिन में घंटे कितने होंगे? मौलवी ने कहा, चौबीस ही घंटे होते हैं दिन में तो! चौबीस घंटे में निर्णय हो जाएगा—मुल्ला ने कहा। वह बड़ा प्रफुल्लित हुआ जा रहा था। मौलवी ने पूछा, तुम इतने प्रफुल्लित किसलिए हो रहे हो? अरे, निर्णय होगा! और मुल्ला ने कहा कि जितने लोग जमीन पर पैदा हुए हैं अब तक, वे सब मौजूद होंगे? क्योंकि सभी को—मुसलमानों में तो यही हिसाब है: कयामत के दिन एक दफा निर्णय होने वाला है। चौबीस घंटे में सबका। अरबों-खरबों लोग। और मुल्ला ने कहा, एक बात और, स्त्रियां भी मौजूद रहेंगी? और वह प्रसन्न होता जा रहा! मौलवी पूछने लगा कि तुम इतने क्यों प्रसन्न हो? उसने कहा, मैं इसलिए प्रसन्न हो रहा हूं कि अगर इतनी स्त्रियां मौजूद रहीं तो ऐसा शोरगुल मचने वाला है कि क्या खाक निर्णय होगा! कौन निर्णय करेगा! कौन सुनेगा! अरे, कौन किसकी सुनेगा! इतनी स्त्रियां, अरबों-खरबों, क्या चर्चा छिड़ेगी!! और जन्मों-जन्मों के बाद मिली हुई सहेलियां और क्या-क्या नहीं घट चुका होगा इस बीच! कितने फैशन बदल गये होंगे, कितनी साड़ियां....उसने कहा, फिर मुझे फिकर ही नहीं है! यही मुझे डर था। और इतने आदमी, और मुझ गरीब की कौन पूछ होगी वहां! वहां बड़े-बड़े पापी होंगे, अपना तो नम्बर शायद ही लगे! और भीड़-भाड़ में अपन कहीं भी छिप कर खड़े रहेंगे। चौबीस ही घंटे का मामला है।

ये भ्रांतियां आदमी को स्थगित करने के लिए सुविधा बना देती हैं।

मैं तुमसे कहना चाहता हूं, इस सूत्र का मृत्यु से कोई संबंध नहीं है। इस सूत्र का अहंकार की मृत्यु से संबंध है—और वही असली मृत्यु है। शरीर की मृत्यु तो कोई मृत्यु नहीं, फिर आ जाओगे। हां, अहंकार मरा, तो मर गये। फिर लौटना नहीं है। वही निर्वाण है।

ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले
परामृताः परिमुच्यन्ति सर्वे ।।

और जो अहंकार में मर गया, जिसने अहंकार को मर जाने दिया, वह सब भांति मुक्त हो गया, क्योंकि सारी बीमारियां अहंकार की हैं, सारे बंधन अहंकार के हैं। यह कारागृह तुम्हारे अहंकार का है, जिसमें तुम बंद हो। कोई तुम्हें रोक नहीं रहा है, अभी तुम चाहो तो इसी क्षण कारागृह के बाहर आ सकते हो। न कोई पहरे पर है, न कोई जेलर है, न कोई चौकीदार है, न दरवाजे पर कोई ताला है। यह

कारागृह तुम्हारा निर्माण किया हुआ है। और तुम जिस क्षण चाहो, इससे छलांग लगा कर बाहर आ सकते हो।

एक छोटा बच्चा, मकान बन रहा था किसी का तो ईंटों का ढेर लगा था, रेत का ढेर लगा था, वह उसी रेत के ढेर में खेल रहा था। खेलते-खेलते उसने अपने चारों तरफ ईंटें जमानी शुरू कर दीं। खेल ही खेल में बीच में बैठ गया रेत में, उसने ईंटें जमानी शुरू कर दीं—ईंट के ऊपर ईंट रखता गया। जब ईंटें उसके गले तक आ गयीं तब उसको समझ में आया कि अब निकलूंगा कैसे? एकदम घबड़ाहट में चिल्लाया कि बचाओ मुझे, मैं तो बिलकुल बंद हो गया! मैं तो कैदी हो गया, बचाओ मुझे! घबड़ाहट उसकी स्वाभाविक थी। ईंटें गले तक आ गयीं, अब निक-लूंगा कैसे? मगर एक बात भूल गया कि ईंटें मैंने ही जमायी हैं, जिस तरह जमायी हैं, उससे उलटा चल पड़ूं, अलग कर दूं। एक-एक ईंट को हटा दूं।

बुद्ध एक दिन सुबह-सुबह प्रवचन देने आए और हाथ में एक रूमाल ले कर आए। लोग बहुत चकित थे, क्योंकि वे कभी कुछ ले कर आते न थे, हाथ में रूमाल आज क्यों था? रेशमी रूमाल था, और बैठ कर इसके पहले कि प्रवचन दें, उन्होंने, रूमाल पर एक गांठ के बाद दूसरी, दूसरी के बाद तीसरी, चौथी, पांचवीं—पांच गांठें लगायीं। लोग बिलकुल देखते रहे टकटकी बांध के कि क्या हो रहा है? क्या कर रहे हैं वे? क्या आज कोई जादू का खेल दिखाने वाले हैं? और पांचों गांठें लगाने के बाद बुद्ध ने पूछा कि भिक्षुओ, मैं एक प्रश्न पूछता हूं। अभी-अभी तुमने देखा था, यह रूमाल बिना गांठों के था, अब गांठों से भर गया। क्या यह रूमाल वही है जो बिना गांठों का था या दूसरा है? उनके शिष्य आनंद ने कहा कि भगवान, आप हमें व्यर्थ की झंझट में डाल रहे हैं। क्योंकि अगर हम कहें यह रूमाल वही है, तो आप कहेंगे, उसमें गांठें नहीं थीं, इसमें गांठें हैं। अगर हम कहें यह रूमाल दूसरा है, तो आप कहेंगे, यह वही है। अरे, गांठों से क्या फर्क पड़ता है, रूमाल तो बिलकुल वही का वही है। यह रूमाल एक अर्थ में वही है जो आप लाए थे, क्योंकि कोई बुनियादी फर्क नहीं पड़ा है और दूसरे अर्थ में वही नहीं है, क्योंकि सांयोगिक फर्क पड़ गया है, इसमें पांच गांठें लग गयी हैं।

बुद्ध ने कहा, तुम में और मुझमें बस, इतना ही फर्क है। सांयोगिक। मैं गांठ-रहित रूमाल हूं और तुममें गांठें लग गयी हैं—और लगाने वाले तुम हो। फिर बुद्ध ने कहा, दूसरा प्रश्न मुझे यह पूछना है कि मैं यह गांठें खोलना चाहता हूं, जैसे कि तुम सब अपनी-अपनी गांठें खोलना चाहते हो। ...गांठ शब्द प्यारा है। बुद्ध ने तो जो शब्दप्रयोग किया, वह ग्रंथि था। वह और भी प्यारा शब्द है। इसलिए हमने बुद्ध को, महावीर को निर्ग्रंथ कहा है। जिनकी ग्रंथियां टूट गयीं, जिनकी गांठें खुल गयीं। और है ही क्या? सबसे बड़ी गांठ यह अहंकार की है। यह सबसे बड़ी ग्रंथि

है। तो बुद्ध ने कहा, मुझे यह गांठें खोलनी हैं, जैसा कि तुम सब मेरे पास इकट्ठे हुए हो गांठें खोलने के लिए, तो मैं कैसे खोलूं ? और बुद्ध ने उस रूमाल के दोनों छोर पकड़ कर खींचना शुरू किया।

आनंद ने कहा कि भगवन, आप क्या कर रहे हैं ? इस तरह तो गांठें और बंध जाएंगी। आप रूमाल खींच रहे हैं, गांठें छोटी होती जा रही हैं, खोलना मुश्किल हो जाएगा। खींचने से नहीं खुल सकती हैं गांठें। रूमाल को ढीला छोड़िए, खींचिए मत।

बुद्ध ने कहा, यह दूसरी बात भी तुम समझ लो कि जो भी खींचेगा, उसकी गांठें और बंध जाएंगी। ढीला छोड़ना होगा। विराम चाहिए, विश्राम चाहिए, तनाव नहीं। और तुम्हारे तथाकथित धार्मिक लोग बड़े तनावग्रस्त हो जाते हैं। गांठें खोलने के लिए ऐसे दीवाने हो जाते हैं कि ये खींचते ही चले जाते हैं रूमाल। कोई उपवास कर रहा है, कोई सिर के बल खड़ा है, कोई धूनी रमाए हुए है, ये क्या हैं ? ये गांठें खींच रहे हैं। ये खींचते ही चले जा रहे हैं। इनका अहंकार और मजबूत होता जा रहा है—सूक्ष्म जरूर हो रहा है; पहले मोटा दिखायी पड़ता था, क्योंकि गांठ पोली थी, अब खिंच गयी है तो छोटा हो गया है, दिखायी भी नहीं पड़ता—गांठ इतनी छोटी हो सकती है कि दिखायी भी न पड़े। और वही खतरा है, कि जब गांठ दिखायी न पड़े तो बहुत मुश्किल हो जाती है। उसका खोलना मुश्किल हो जाता है। खोलोगे भी कैसे ?

तो बुद्ध ने कहा, मैं क्या करूं, आनंद, तुम्हीं कहो ! तो आनंद ने कहा, पहली तो बात यह है कि आप रूमाल को ढीला छोड़ दें, इसी वक्त ढीला छोड़ दें। जितना आप खींचेंगे उतना मुश्किल हो जाएगा। दूसरी बात, इसके पहले कि हम सोचें कैसे गांठें खोली जाएं, मैं आपसे पूछना चाहता हूं : आपने कैसे गांठें बांधी ? क्योंकि जब तक हम यह न जानें कि कैसे गांठें बांधीं, तब तक कैसे खुलेंगी, यह नहीं जाना जा सकता।

कैसे गांठें बांधीं, बस इतना ही तो सारा सार है। तुमने कैसे गांठ बांध ली है, इसको समझ लो, तो खोलने में कुछ देर नहीं। तुमने कैसे ईंटें रख कर अपने चारों तरफ कारागृह बना लिया है ? पैदा होते से ही जो पहली गांठ समाज, परिवार, शिक्षा, धर्म, राज्य व्यक्ति पर बांधना शुरू कर देते हैं, वह अहंकार की गांठ है। हम बच्चे को कहने लगते हैं : प्रथम आना स्कूल में, गोल्ड मेडल लाना, प्रतियोगिता में जीतना, हारना कभी नहीं, टूट जाना मगर झुकना नहीं, कुल-मर्यादा की प्रतिष्ठा! हम अहंकार थोप रहे हैं। हम उसको गांठ बांध रहे हैं। फिर हम उससे कहते हैं, आगे बढ़ो ! महत्त्वाकांक्षी बनो ! धन कमाओ ! यश कमाओ ! पद-प्रतिष्ठा लाओ! तुम जैसा चमकता हुआ कोई भी न हो ! तुम सबको मात कर दो, सबको फीका कर दो ! और सब भी यही करने में लगे हैं। ऐसे राजनीति पैदा होती है।

राजनीति अहंकार के संघर्ष का नाम है। और धर्म अहंकार का विसर्जन है।

किस तरह तुम पर गांठ बंधी है, जरा उसे ठीक से देख लो, खोलने में कोई कठिनाई न होगी। महत्त्वाकांक्षा ने गांठ बांधी है। और महत्त्वाकांक्षा में क्या रखा है! धन भी पा लिया, पद भी पा लिया, तो क्या होगा ! सब पड़ा रह जाएगा—जब बांध चलेगा बंजारा, सब ठाठ पड़ा रह जाएगा। तुम बड़े पद पर भी पहुंच गये तो क्या होगा ? होना क्या है ? क्या पा लोगे ? पा कर भी क्या पा लोगे ? सिकंदर ने क्या पा लिया ? तुम क्या पा लोगे ? लेकिन हमें होश ही नहीं, दौड़े जा रहे हैं। और भी बेहोश लोग दौड़ रहे हैं, हम भी उन्हीं के साथ दौड़े जा रहे हैं। रुको, थोड़ा विश्राम, थोड़ा बैठ जाओ किनारे पर, थोड़े हलके हो लो, थोड़े शांत हो कर देखो—यह गांठ कैसे बंध रही है ? प्रतिस्पर्धा कि कोई दूसरा आगे न निकल जाए। ईर्ष्या, जलन, ये सब गांठ को बांध रहे हैं। बस, यह अहंकार की गांठ न बंधे, यह अहंकार की गांठ तुम खोल लो कि मृत्यु हो गयी। और ऐसे जो मरता है, वह द्विज हो जाता है। उसका दूसरा जन्म हो गया। शरीर तो वही रहा, लेकिन मौत भी हो गयी, जन्म भी हो गया। इसी मृत्यु की चर्चा है इस सूत्र में।

और जिसने अहंकार को मर जाने दिया, वह ब्रह्म में प्रविष्ट हो जाता है। अहंकार के अतिरिक्त और कोई बाधा ही नहीं है। यह मैं अलग हूं अस्तित्व से, यही मुझे रोक रहा है। मैं एक हूं अस्तित्व के साथ, बस इतना बोध, फिर न कोई संघर्ष है, न कोई तनाव है, न कोई विषाद है, न कोई हार है, न कोई असफलता है; फिर बूंद सागर में एक हो गयी, उसकी अलग कोई यात्रा ही न रही। और जहां सागर के साथ मिलन है, वहीं ब्रह्मलोक है। और वह सागर तुम्हारे भीतर लहरा रहा है। मगर तुम गांठ बांधे बाहर खड़े हो। तुम अपने भीतर नहीं जाते हो।

यह सूत्र प्यारा है। मगर अर्थ मेरी दृष्टि से समझना। अब तक जो इसकी व्याख्याएं की गयी हैं, बुनियादी रूप से गलत हैं।

दूसरा प्रश्न : भगवान, मैं संन्यास तो लेना चाहता हूं, लेकिन अभी बस आधा ही तैयार हूं। अर्थात संन्यास की तो तैयारी है, किन्तु गैरिक वस्त्रों और माला पहनने की नहीं। क्या आप मुझे संन्यास देंगे ?

वीरसिंह, क्या गजब का नाम ! न लाज, न संकोच। और जब लाज ही नहीं, संकोच ही नहीं, तो कम-से-कम महावीरसिंह तो कर ही लो ! क्या वीरसिंह में अटके हुए हो ! यह कैसी कायरता ! आधा-आधा भी कोई संन्यास होता है ? फिर बचा

ही क्या, फिर तो सभी संन्यासी हैं। न तुम्हें गैरिक वस्त्र पहनने हैं, न माला पहननी है, तो फिर संन्यास का प्रयोजन क्या है? तो तुम संन्यासी हो ही फिर, मुझसे क्या संन्यास लेना है! लेकिन आदमी अद्‌भुत है। संन्यासी होने का अहंकार भी रस देता है, कायरता पीछे खींचती है, तो तुम सोचते हो चलो, आधा-आधा ले लें।

एक चूहा अपने बिल से निकला और एक धूप सेंकते हाथी के पैरों पर उछलने-कूदने लगा। हाथी को थोड़ा शक हुआ कि कोई प्राणी पैरों पर सरसराहट कर रहा है। हाथी ने चौंक कर पूछा, 'ऐ नन्हे-मुन्ने प्राणी, आपकी तारीफ?'

'जितनी की जाए उतनी थोड़ी,' चूहे ने छाती फुला कर जवाब दिया।

क्या, वीरसिंह, तुम भी बातें कर रहे हो! तुम्हारी तो जितनी तारीफ की जाए उतनी थोड़ी! आधा-आधा संन्यास!

चंदूलाल को कुंवारा देख कर उनके मित्र ढब्बू जी ने उनसे कहा, 'क्यों यार, तुम्हारा विवाह कब होगा?'

'बस, समझ लो आधा तो हो ही गया,' चंदूलाल ने बताया।

'आधा विवाह! वह कैसे?' ढब्बू जी ने आश्चर्य से पूछा।

'आधा विवाह ऐसे कि मैं तो राजी हो गया हूं विवाह के लिए, लेकिन कोई लड़की राजी नहीं है।'

मगर विवाह में तो समझ में आता है कि आधा-आधा भी हो सकता है, ठीक, तुम राजी हो लेकिन लड़की राजी नहीं, संन्यास में तो सिर्फ तुम्हीं को राजी होना है, और किसको राजी होना है! अगर यह भी आधा-आधा होगा, तो इस जगत में फिर कोई चीज पूरी हो ही नहीं सकती।

वीरसिंह, पंजाबी तो नहीं हो? नहीं तो संत महराज का सत्संग करो!

कम्पनी कमांडर ने हवलदार सरदार बिचित्तर सिंह को बुलाया और कहा, जाओ, कम्पनी में ऐलान कर दो कि आज सूर्य को ग्रहण लगेगा; बरसा हुई तो सभा हाल में होगी नहीं तो बाहर होगी। बिचित्तर सिंह ने कुछ सुना, कुछ नहीं सुना—फिफ्टी-फिफ्टी, आधा-आधा—कुछ समझा, कुछ नहीं समझा। स्वभावतः, सरदार से यही अपेक्षा! उसने बाहर जाकर ऐलान कर दिया, 'कमांडर साहब के हुक्म से आज सूर्य को ग्रहण लगेगा। बरसा हुई तो हाल में लगेगा, नहीं तो बाहर लगेगा।'

वीरसिंह, कुछ समझो! कुछ का कुछ न समझो। संन्यास बोध की एक अवस्था है; जागरण की एक अवस्था है। ये वस्त्र तो केवल प्रतीक हैं। लेकिन यह वस्त्र यात्रा का प्रारम्भ जरूर करवा देते हैं। क्यों? क्योंकि जैसे ही तुम घोषणा कर देते हो संन्यास की, वैसे ही तुम अपने भीतर, अपने बाहर एक उत्तरदायित्व से भर जाते हो। तुम्हारी घोषणा संन्यास की तुम्हें एक उत्तरदायित्व दे देती है, कि अब इस बोध को निभाना है; अब इस बोध को जीना है, अब इस बोध के विपरीत जाना हीनता

होगी, दीनता होगी, इस बोध से नीचे गिरना अपनी ही आंखों में नीचे गिरना हो जाएगा। और मैं कुछ तुमसे ज्यादा आग्रह करता नहीं संन्यास के लिए। बुनियादी आग्रह तो ध्यान का है। लेकिन जो व्यक्ति वस्त्र भी बदलने को राजी न हो, वह अपनी आत्मा को क्या खाक बदलेगा! और लोग कुछ भी बदलने को राजी नहीं हैं।

मुल्ला नसरुद्दीन से उसकी प्रेयसी ने पूछा, 'अगर मैं तुमसे विवाह करने के लिए राजी हो जाऊं तो सिगरेट पीना छोड़ दोगे?'

मुल्ला ने कहा, 'हां।'

'और शराब?'

मुल्ला ने कहा, 'हां, वह भी।'

'दोस्तों के बीच गयी रात तक गप्पें हांकने की आदत?'

मुल्ला ने कहा, 'हां-हां, वह भी।'

'लेकिन सबसे पहले क्या छोड़ना पसंद करोगे?'

मुल्ला ने कहा, 'विवाह करने का इरादा।'

इतना छोड़ना पड़े तो इस झंझट में ही कौन पड़े!

सो मैं तुमसे ज्यादा छोड़ने को भी नहीं कहता। मैं तो सिर्फ ध्यान के लिए कहता हूं। क्योंकि मैं जानता हूं, ध्यान आया तो शेष अपने से छूट जाता है। मगर वस्त्र की घोषणा उपयोगी है। यह तुम्हें जगाए रखेगी। तुम बाजार जाते हो, कोई सामान खरीदने, अपने कुरते में एक गांठ लगा लेते हो, वह गांठ तुम्हें याद दिलाती रहती है कि सामान खरीदना है। बस, ये कपड़े तो ऐसे ही हैं—एक गांठ। जहां जाओगे वहीं लोग पूछेंगे, आप संन्यासी हैं? जहां जाओगे वहीं लोग गौर से देखेंगे। पुनः-पुनः याद दिलाते रहेंगे। सतत स्मृति बनी रहेगी। 'रसरी आवत जात है, सिल पर पड़त निसान'। रस्सी भी आती रहे, जाती रहे, तो पत्थर पर निशान पड़ जाता है। 'करत करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान।' यह तो सिर्फ एक स्मृति का अभ्यास है। यह तो स्मरण की एक प्रक्रिया है। एक छोटी-सी विधि, उपाय।

लेकिन, वीरसिंह, कहीं कायरता छिपी है भीतर। डरे हो। किसी को पता न चले। लोग मुझसे पूछते हैं कि चलो हम गैरिक वस्त्र पहन लेंगे, मगर माला! अगर हम भीतर रखें छिपा कर तो चलेगा? तो माला का प्रयोजन ही क्या, जब भीतर ही छिपानी है, तो न ही पहनी तो ही चल जाएगा। छिपाना क्या है?

मेरे साथ जुड़ना भी घबड़ाहट पैदा करता है। और उस जुड़ने का उपयोग है। चुनौती है वह। वह तुम्हारे भीतर दबी हुई जो भी साहस की संभावना हो, उसके लिए चुनौती है। मेरे साथ जुड़ने का अर्थ एक खतरे में पड़ना है। और गैरिक वस्त्र, वे कहते हैं, चलो पहन लेंगे, लेकिन माला में खतरा है। क्योंकि गैरिक वस्त्र अकेले तुम पहने रहो, तो लोग समझेंगे कि अरे, बड़ी साधुवृत्ति का आदमी है, महात्मा है;

पैर भी पड़ेंगे। मेरी माला देखी कि धर्मशाला में भी न ठहरने देंगे। मंदिर में भी न घुसने देंगे। कि उठो-उठो भैया, कहीं और जाओ, आगे बढ़ो! कि इस तरफ कृपा-दृष्टि रखना, इधर मत आना! कि कौन झंझट में पड़े तुम्हें ठहरा कर और!

अपनी कायरता को पहचानो!

मुल्ला नसरुद्दीन कह रहा था, 'कल रात सर्कस में खूब भगदड़ मची। एक शेर पिंजरे से निकल भागा।'

मैंने पूछा, 'फिर क्या हुआ?'

उसने कहा, 'प्रत्येक व्यक्ति भाग खड़ा हुआ, केवल मुझे छोड़कर।'

मैंने कहा, 'नसरुद्दीन, मैं कभी नहीं सोचता था कि तुम इतने बहादुर! तुम नहीं भागे?'

उसने कहा, 'बिलकुल नहीं भागा। मैं तो तुरंत शेर के खाली पिंजरे में जा कूदा और अंदर से दरवाजा बंद कर लिया।' देखते हो बहादुरी! इससे ज्यादा सुरक्षित और स्थान ही नहीं था अब कोई। शेर बाहर था, सो वह भीतर कूद गये और भीतर से दरवाजा बंद कर लिया। अब कोई शेर दरवाजे थोड़े ही खोलना जानते हैं! 'और मैं तो निश्चित बैठ गया, भगदड़ मची है, भागते रहे कायर जमाने भर के! मगर मैं शान से बैठा रहा! और लोग भी मान गये कि है भई आदमी!'

संन्यास तो, वीरसिंह, प्रेम का मामला है, पागलों का मामला है; दीवानगी है। यूं नहीं चलेगा। प्रेमी ऐसा नहीं पूछते। प्रेम कहीं आधा-आधा होता है! मेरे पास बैठोगे आधे-आधे? कैसे बैठोगे आधे-आधे? तो शरीर यहां रहेगा, मन कहीं और रहेगा—यही आधा-आधा होना हो सकता है और क्या होगा? और मन यहां न रहा तो शरीर का यहां क्या करूंगा? यहां कोई लाशें इकट्ठी करनी हैं। यह कोई मरघट है! यह मयकदा है, मरघट नहीं।

मरघट तो बहुत हैं। इस देश में मरघट ही मरघट हैं। जहां जाओ वहीं मिल जाएंगे। मुर्दा आश्रमों की कोई कमी है! वीरसिंह, वहीं किसी मुर्दा आश्रम में कूद पड़ो और भीतर से ताला लगा कर बैठ जाओ! उससे ज्यादा सुरक्षित और कोई जगह नहीं है।

यह जगह सुरक्षा की नहीं है। यह तो खतरे की है। यह तो चुनाव की है। यह तो चुनौती की है। यहां तो सतत जागरूकता रखनी पड़ेगी। और यह तो दीवानों के लिए है। यह प्रेम के बिना नहीं हो सकता। और प्रेम कभी आधा नहीं होता, आंशिक नहीं होता। या तो होता है या नहीं होता है।

कोई लेजाता है उस तक तो कबा आती है....
कोई लेजाता है उस तक तो कबा आती है
खुद से जाने में मुझे आप हया आती है

खुद से जाने में मुझे आप हया आती है....
तो मजबूर करके मेरे दिल को यार लेचलो....
तो मजबूर करके मेरे दिल को यार लेचलो
उसकी....
उसकी गली में फिर मुझे इक बार लेचलो
उसकी गली में फिर मुझे इक बार लेचलो....

शायद ये मेरा वहम हो, मेरा खयाल हो....
शायद ये मेरा वहम हो, मेरा खयाल हो
फिर मेरे बाद उसे भी मलाल हो
फिर मेरे बाद उसे भी मलाल हो....
पछता रहा है अब मुझे दर से उठाके वो....
पछता रहा है अब मुझे दर से उठाके वो
अब बैठा है मेरी राह में....
अब बैठा है मेरी राह में आंखें बिछाके वो
बैठा है मेरी राह में आंखें बिछाके वो....
उसने भी तो किया था मुझे प्यार लेचलो....
उसकी....
उसकी गली में फिर मुझे इक बार लेचलो

अब उस गली में कोई न आयेगा मेरे बाद....
अब उस गली में कोई न आयेगा मेरे बाद
उस दर पर खून कौन बहाएगा मेरे बाद
अब उस गली में कोई न आयेगा मेरे बाद....
उस दर पै खून कौन बहायेगा मेरे बाद
मैंने तो संग-ओ-इश्क से टकराके अपना सर....
मैंने तो संग-ओ-इश्क से टकराके अपना सर
और गुलनार कर दिये थे लहू से वो पांव तर
और गुलनार कर दिये थे लहू से वो पांव तर....
फिर मुंतजिर है वो दरो-दीवार लेचलो....
फिर मुंतजिर है वो दरो-दीवार लेचलो
उसकी गली में फिर मुझे इक बार लेचलो

वो जिसने मेरे सीने को....
वो जिसने मेरे सीने को जख्मों से भर दिया

छुड़वा के अपना दर मुझे दर-दर का कर दिया
वो जिसने मेरे सीने को जख्मों से भर दिया ....
छुड़वा के अपना दर मुझे दर-दर का कर दिया
माना कि उसके जुल्म-ओ-सितम से हूं नीमजां ....
माना कि उसके जुल्म-ओ-सितम से हूं नीमजां
फिर भी मैं सख्तजां हूं ....
फिर भी मैं सख्तजां हूं पहुंच जाऊंगा वहां
सौ बार जाऊंगा मुझे सौ बार ले चलो
सौ बार जाऊंगा मुझे सौ बार ले चलो ....
उसकी गली में फिर मुझे इक बार ले चलो
उसकी गली में फिर मुझे इक बार ले चलो ....

दीवाना कह कर लोगों ने हर बात टाल दी ....
दीवाना कह कर लोगों ने ....
दीवाना कह कर लोगों ने हर बात टाल दी
और दुनिया ने मेरे पांवों में जंजीर डाल दी
और दुनिया ने मेरे पांवों में जंजीर डाल दी ....
चाहो जो तुम तो मेरा मुकद्दर सम्हाल दो ....
चाहो जो तुम तो मेरा मुकद्दर सम्हाल दो
अरे यारो ये मेरे पांवों से बेड़ी उतार दो ....
यारो ये मेरे पांवों से बेड़ी उतार दो ....
अरे या खेंचते हुए सरे बाजार लेचलो
या खेंचते हुए सरे बाजार लेचलो ....
उसकी ....
उसकी गली में फिर मुझे इक बार लेचलो

उसकी गली को तो जानता पहचानता हूं मैं ....
उसकी गली को तो जानता पहचानता हूं मैं
वो मेरी कत्लगाह है ये मानता हूं मैं
वो मेरी कत्लगाह है ये मानता हूं मैं ....
उसकी गली में मौत मुकद्दर की बात है ....
उसकी गली में मौत मुकद्दर की बात है
शायद ये मौत अहले-वफा की हयात है
मैं खुद भी मांगता हूं तलबगार लेचलो

मैं खुद भी मांगता हूं तलबगार लेचलो ....
उसकी गली में फिर मुझे इक बार ले चलो
उसकी गली में मौत मुकद्दर की बात है ....
शायद ये मौत अहले-वफा की हयात है
मैं खुद ही मांगता हूं तलबगार लेचलो
उसकी गली में फिर मुझे इक बार ले चलो
उसकी गली में फिर मुझे इक बार ले चलो

दीवानगी चाहिए। पागलपन चाहिए। प्रेम चाहिए। यह आधा-आधा नहीं हो सकता। यह तो पूरा ही हो सकता है। और यहां तो उन्हीं लोगों के लिए निमंत्रण है, जो मिटने को राजी हैं, जो जीते-जी मरने को राजी हैं। क्योंकि तभी, तुम्हारे अहंकार की राख पर ही तुम्हारी आत्मा का कमल खिलेगा।

यदि प्रेम जग रहा है, वीरसिंह, तो कंजूसी न करो, हिसाब न लगाओ! कुछ तो जिंदगी में कर लो बेहिसाब! एक बात तो जिंदगी में कर लो बिना तर्क के, बिना सोच-विचार के! क्योंकि वही बात नाव बनेगी। सोचने-विचारने वाले इसी तट पर अटके रह जाते हैं। ये तो हिम्मतवर हैं कुछ, जो उस किनारे को छू लेते हैं। जो कूद पड़ते हैं अज्ञात में।

आधे-आधे का मतलब? आधे-आधे का मतलब कि दुनिया से छिपाए रखूंगा। मगर यह बात छिपाने की नहीं है। सूरज निकलेगा तो कैसे छिपेगा? अरे, दीया जलेगा तो कैसे छिपेगा, सूरज तो बहुत दूर की बात है! जरा-सा दीया भी जलेगा तो नहीं छिपाया जा सकता है। और यह भी ख्याल रखना, अगर दीया जले और तुम उसे छिपा दो, तो दीया मर जाएगा। दीये को अगर तुमने ढांक दिया, यह देख कर कि कहीं कोई हवा का झोंका न बुझा दे, कि अंधड़ उठ रहा है, झंझावात आ रहा है, कहीं दीया बुझ न जाए, और तुमने उस पर बर्तन ढांक दिया, तो शायद झंझावात में तो दिया न बुझता, लेकिन बर्तन ढांकते ही बुझ जाएगा। क्योंकि दीये को भी श्वास लेनी पड़ती है। वह भी जलता है अक्षजन से। उसको भी हवा मिलती रहनी चाहिए।

और जब कोई दीया बुझ जाता है हवा में, तो इसी बात का सबूत देता है: कमजोर था। क्योंकि यही हवा जंगल में लगी आग को हजार गुना कर देती है और यही हवा कमजोर दीये को बुझा जाती है। हवा का कोई कसूर नहीं है, तुम्हारे भीतर कितना बल है! अगर टिमटिमाता-सा है, तो कोई भी झोंका बुझा देगा। और अगर जंगल में लगी आग जैसा है, तो आएं तूफान, आएं आंधियां, तुम्हारी आग और भी प्रज्वलित होगी, और भी निखरेगी।

और अगर आधा भी तुम्हारा मुझसे लगाव बन गया है तो तुम मुश्किल में

पड़ोगे। तुम झंझट में पड़ोगे। घर जाकर रोओगे। फिर तुम्हें बहुत याद आएगी। फिर तुम कहोगे : उसी गली में. . . .। फिर तुम कहोगे :

कोई ले जाता है उस तक तो कबा आती है
खुद से जाने में मुझे आप हया आती है
तो मजबूर करके मेरे दिल को यार लेचलो
उसकी गली में फिर मुझे इक बार लेचलो

भागो मत, नहीं तो पछताओगे। डरो मत, नहीं तो पछताओगे। अपराध अनुभव होगा।

तेरी बातें ही सुनाने आए
तेरी बातें ही. . . .
तेरी बातें ही सुनाने आए
दोस्त भी दिल ही दुखाने आए
दोस्त भी. . . .
दोस्त भी दिल ही दुखाने आए
फूल खिलते हैं तो हम सोचते हैं. . . .
फूल खिलते हैं. . . .
फूल खिलते हैं तो हम सोचते हैं
तेरे आने के जमाने आए
तेरे आने के. . . .
तेरे आने के जमाने आए
तेरी बातें ही सुनाने आए
दोस्त भी दिल ही दुखाने आए
दोस्त भी दिल ही दुखाने आए. . . .

इश्क तन्हा है. . . .
इश्क तन्हा है सरे मंजिले गम. . . .
इश्क तन्हा है सरे मंजिले गम
कौन ये बोझ उठाने आए
कौन ये बोझ उठाने आए. . . .
दोस्त भी दिल ही दुखाने आए

तेरी बातें ही सुनाने आए. . . .
तेरी बातें ही. . . .
तेरी बातें ही सुनाने आए

अजनबी दोस्त हमें देखके हम. . . .
अजनबी दोस्त. . . .
अजनबी दोस्त हमें देखके हम
तुझे कुछ याद दिलाने आए
तुझे कुछ याद दिलाने आए. . . .
दोस्त भी दिल ही दुखाने आए
तेरी बातें ही सुनाने आए

अब तो रोने से भी दिल दुखता है. . . .
अब तो रोने से भी. . . .
अब तो रोने से भी दिल दुखता है
शायद अब होश ठिकाने आए
शायद अब होश ठिकाने आए. . . .
तेरी बातें ही सुनाने आए
तेरी बातें ही. . . .
दोस्त भी दिल ही दुखाने आए
दोस्त भी. . . .

सोरहो मौत के पहलू में फराज़. . . .
सोरहो मौत के. . . .
सोरहो मौत के पहलू में फराज़
नींद किस वक्त न जाने आए
किस वक्त न जाने आए. . . .
न जाने आए. . . .
नींद किस वक्त न जाने आए. . . .
दोस्त भी दिल ही दुखाने आए
तेरी बातें ही सुनाने आए
दोस्त भी दिल ही दुखाने आए

लौट तो जा सकते हो, मगर हर बात दिल को दुखाएगी। सुबह सूरज निकलेगा और पूरब में गैरिक रंग फैल जाएगा--और तुम्हें याद आएगी! टेसू के फूल खिलेंगे—और तुम्हें याद आएगी! गुलाब का फूल हवा में नाचेगा—और तुम्हें याद आएगी! बाहर के दीये जलेंगे--और तुम्हें याद आएगी! आकाश चांद-तारों से भरेगा--और तुम्हें याद आएगी! क्योंकि यह सब तुम्हारा भी हो सकता है, तुम्हारा भी हो सकता था।
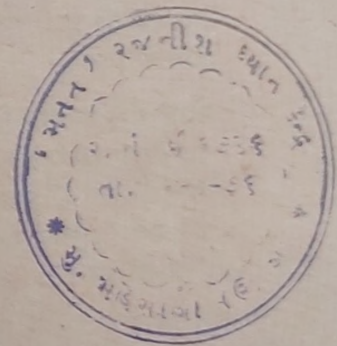
तेरी बातें ही सुनाने आए
दोस्त भी दिल ही दुखाने आए
फूल खिलते हैं तो हम सोचते हैं
तेरे आने के जमाने आए
दोस्त भी दिल ....

इश्क तन्हा है सरे मंजिले गम
कौन यह बोझ उठाने आए
दोस्त भी दिल ही दुखाने आए
तेरी बातें ही सुनाने आए

अजनबी दोस्त हमें देखके हम
कुछ तुझे याद दिलाने आए
दोस्त भी दिल ....

अब तो रोने से भी दिल दुखता है
शायद अब होश ठिकाने आए
तेरी बातें ही सुनाने आए
दोस्त भी दिल ....

सोरहो मौत के पहलू में फराज़
नींद किस वख्त न जाने आए
दोस्त भी दिल ही दुखाने आए
तेरी बातें ही सुनाने आए
दोस्त भी दिल....

ऐसे भाग मत जाना ! ! हां, सौ प्रतिशत संन्यास न लेना हो, तो बिलकुल ठीक। लेकिन पचास प्रतिशत का मामला बहुत खतरनाक है। अगर पचास प्रतिशत भी बात मन को पकड़ ली है, तो तुम तड़फोगे--यूं जैसे मछली तड़फे, रेत पर पड़ कर। यहां तो सागर है गैरिक संन्यासियों का, यहां तो डूब कर एक मस्ती आएगी, एक रस बहेगा, लेकिन लौट कर रेत में पड़ जाओगे। अपने साथ सागर ले जा सकते हो ! इसीलिए तो तुम्हें गैरिक वस्त्र दे देता हूं कि तुम इस विराट सागर के हिस्से हो गये, फिर तुम जहां भी रहो, इस सागर के ही हिस्से हो। गैरिक वस्त्र तुम्हारे और मेरे बीच सेतु बन जाते हैं। गैरिक वस्त्र तुम्हारे और मेरे बीच उपनिषद की घटना है। फिर तुम हजारों मील दूर भी बैठो तो मेरे पास बैठे हो। और यहां जो संन्यासी नहीं है, पास भी बैठा हो तो भी दूर ही बैठा है।

पर तुम्हारी मर्जी ! मैं आग्रह नहीं करता कि संन्यास लो, सिर्फ स्मरण दिला रहा हूं। स्मरण दिलाने से ज्यादा मेरी कोई चेष्टा नहीं है। मैं कोई आदेश नहीं देता। मैं कौन हूं जो आदेश दूं ! सिर्फ सुझाव दे देता हूं। और जिनके हृदय उर्वर हैं, उनमें वे सुझाव बीज बन जाते हैं। फिर बसंत की प्रतीक्षा करनी। बसंत आता है, अपने से आता है--और जीवन फूलों से भर जाता है !

आज इतना ही।

४ अक्तूबर १९८०; श्री रजनीश आश्रम, पूना

अल्लाह बेनियाज़ है

पहला प्रश्न : भगवान, कुरान की जो प्रार्थना है उसके तीन हिस्से हैं : पनाह, अलफातिहा और सूरत-इ-इखलास (मैत्री)। सूरत-इ-इखलास इस प्रकार है :

बिस्मिल्लाहिर् रहमानिर् रहीम।
कुल हुवल्लाहु अहद। अल्लाहुस्समद।
लम् यलिद, वलम् यूलद;
व लम् यकुल्लहू कुफवन् अहद्॥

अर्थ ऐसा है :

पहले ही पहल नाम लेता हूं अल्लाह का, जो निहायत रहमवाला मेहरबान है।

(ए पैगम्बर, लोग तुम्हें खुदा का बेटा कहते हैं और तुमसे हाल खुदा का पूछते हैं, तो तुम उनसे)

कहो कि वह अल्लाह एक है, और अल्लाह बेनियाज़ है (उसे किसी की भी गरज नहीं), न उसका कोई बेटा है और न वह किसी से पैदा हुआ है। और न कोई उसकी बराबरी का है।

भगवान, इसे हमारे लिए बोधगम्य बनाने की अनुकंपा करें।

आनंद मैत्रेय! कुरान अत्यन्त सीधे-सादे हृदय का वक्तव्य है। उपनिषद, धम्मपद, गीता, ताओ-तेह-किंग, इन सब में एक परिष्कार है। क्योंकि बुद्ध परम सुशिक्षित, सुसंस्कृत राजघर से आए थे। मुहम्मद बेपढ़े-लिखे थे। कृष्ण जब कुछ कहते हैं, तो उस कहने में तर्क होता है, विचार की प्रक्रिया होती है, एक गणित होता है। मुहम्मद के वक्तव्य अत्यंत सरल हैं। जैसे खदान से निकाला गया ताजा-ताजा हीरा। अभी उस पर जौहरी की छैनी नहीं चली। अभी उस पर पालिश नहीं किया गया। अभी उस पर पहलू नहीं निखारे गये।

इससे एक तो लाभ है और एक हानि भी। और इसलाम को दोनों ही बातें अनुभव करनी पड़ी हैं। लाभ तो यह है कि जैसे ग्रामीण व्यक्ति की भाषा में एक बल होता है, ताजगी होती है, धार होती है, क्योंकि बात सीधी-साफ होती है, समझाने की कोई जरूरत नहीं होती। इसलिए कुरान पर टीकाएं नहीं लिखी गयीं। बात सीधी-साफ है। टीका करने का कोई उपाय नहीं है। गीता पर हजारों टीकाएं हैं।—तो हजारों अर्थ हो गये—क्योंकि बात दुरूह है। अभिव्यक्ति का ढंग ऐसा है कि उससे बहुत अर्थ अभिव्यंजित हो सकते हैं। एक-एक शब्द से अनेक-अनेक अर्थों की संभावना है। तो बाल की खाल खींची जा सकती है।

तर्कशास्त्री के हाथ में पड़ कर गीता का सत्य खो जाएगा, बुद्ध का सत्य खो जाएगा, कुरान का सत्य नहीं खोएगा। क्योंकि कुरान के साथ तर्क का कोई संबंध नहीं बैठता। कुरान को जिन्हें समझना है, उन्हें तर्क से नहीं, अत्यंत सरलता से कुरान के पास पहुंचना होगा। यह तो लाभ है।

लेकिन हानि भी है। हानि यह है, कि चूंकि वक्तव्य बहुत सीधे-सादे हैं, उनमें गहराई दिखायी न पड़ेगी, उनमें ऊंचाई दिखाई न पड़ेगी, उनमें बहुत आयाम दिखाई न पड़ेंगे, साधारण मालूम होंगे। इसलिए उपनिषद की तुलना में कुरान के वचन साधारण मालूम होंगे। कहां उपनिषद, उपनिषद के ऋषि की प्रार्थना: असतो मा सद्गमय, असत्य से मुझे सत्य की ओर ले चल, हे प्रभु; तमसो मा ज्योतिर्गमय, अंधकार से उठा मुझे प्रकाश के लोक में; मृत्योर्माऽमृतं गमय, और कब तक मृत्यु में जीऊं, अमृत के द्वार खोल! हटा दे यह स्वर्ण के पात्र से सारे ढक्कन! उठा दे घूंघट कि मैं देख लूं अमृत को! इसमें गहराई खोजी जा सकती है। बहुत गहराई खोजी जा सकती है!

कुरान में भी गहराई इतनी ही है, जरा भी कम नहीं, मगर वक्तव्य मुहम्मद के सीधे-सादे हैं। मुहम्मद गैरपढ़े-लिखे आदमी हैं। न लिख सकते थे, न पढ़ सकते थे। इसलिए जब कुरान की आयतें पहली बार उन पर उतरनी शुरू हुईं तो वे बहुत घबड़ा गये। भीतर कोई हृदय में जोर से कहने लगा: लिख! और मुहम्मद ने कहा कि मैं लिखना जानता नहीं, लिखूं कैसे? गा, भीतर से कोई आवाज आने लगी। और मुहम्मद ने कहा, मैं क्या गाऊंगा! न मेरे पास कंठ है, न गीत की कोई कला है, मैं बिलकुल बेपढ़ा-लिखा आदमी हूं, क्या गाऊं, क्या लिखूं? कैसे गाऊं? वे इतने घबड़ा गये कि घर भागे आ गये; पहाड़ पर बैठे थे मौन में—मौन में ही यह परम घटना घटती है कि सत्य अवतरित होता है। और जब सत्य अवतरित होता है तो सत्य अभिव्यक्त होना चाहता है। जैसे फूल खिलेगा तो गंध उड़ेगी; और दीया जलेगा तो प्रकाश झरेगा; और सूरज निकलेगा तो वृक्ष जागेंगे, पक्षी गीत गाएंगे; बस वैसे ही जब सत्य का सूर्य भीतर ऊगता है तो तुम उसे छिपा न सकोगे। उसकी अभिव्यक्ति

होगी। वह पुकारेगा: अभिव्यक्त करो!

वही पुकार थी मुहम्मद के भीतर: कहो, लिखो, बोलो, बांटो! मगर मुहम्मद के लिए यह बात अपनी सीमा के बहुत पार मालूम पड़ी।

यही उद्घोषणा बुद्ध के जीवन में है, और बुद्ध ने भी इनकार किया कि नहीं बोलूंगा, मगर कारण और थे। मुहम्मद ने इनकार किया इसलिए कि कैसे बोलूं? शब्द नहीं, भाषा का धनी नहीं, तर्क नहीं—कौन मेरी सुनेगा? लिखूं तो कैसे लिखूं? मुझे लिखना भी नहीं आता। पढ़ूं तो क्या पढ़ूं? मुझे पढ़ना भी नहीं आता। ये कारण थे मुहम्मद के।

बुद्ध को भी जब सत्य की अभिव्यक्ति हुई तो कथा है—वह कथा तो प्रतीकात्मक है; जैसे यह मुहम्मद की प्रतीकात्मक है कि कोई भीतर बोला कि बोल, गा, गुनगुना—ऐसे ही बुद्ध से देवताओं ने अवतरित होकर स्वर्ग से कहा: अभिव्यक्ति दो, बांटो, कहो, चुप न रह जाओ! बुद्ध ने भी कारण बताए कि क्यों चुप हूं। लेकिन कारण बड़े अलग थे। उससे दो व्यक्तित्वों का भेद पता चलता है। बुद्ध ने कहा: बोलूंगा; कौन समझेगा?

फर्क समझना।

मुहम्मद ने कहा: कैसे बोलूं, मेरी समझ क्या? बुद्ध ने कहा: कहूंगा, मगर कौन समझेगा? यह बात इतनी गहरी है! किससे कहूं? मुहम्मद ने कहा: कैसे कहूं? बुद्ध ने कहा: किससे कहूं? जिससे कहूंगा वही कुछ-का-कुछ समझेगा। गलत समझेगा। सौ आदमियों से कहूंगा, निन्यानबे तो समझेंगे ही नहीं, सुनेंगे ही नहीं, सुन भी लिया तो गलत समझेंगे, लाभ के बजाय हानि होगी। और सौवां आदमी, एक आदमी सौ में अगर ठीक भी समझा तो उसके लिए मुझे कहने की जरूरत नहीं है।

देवताओं ने पूछा: क्यों? तो बुद्ध ने कहा: इसलिए कि जो मेरी बात को सुनते ही ठीक समझ लेगा, वह मेरे बिना भी जान लेगा। आखिर मैंने भी बिना किसी के कहे जान लिया! जिसकी इतनी प्रतिभा होगी, जिसके पास ऐसी मेधा होगी—क्योंकि यह तो प्रतिभा और ध्यान की ही संभावना होगी कि मैं जो कहूं उसको वैसा ही समझ ले जैसा मैंने कहा है—जिसके पास ऐसा निखार होगा, ऐसी तीक्ष्णता होगी, वह क्या मेरे लिए रुका रहेगा! मेरे बिना भी पहुंच जाएगा—दिन-दो दिन की देर हो सकती है। लेकिन उस एक के लिए बोल कर निन्यानबे के जीवन में मैं व्यर्थ का उपद्रव खड़ा नहीं करना चाहता। इसलिए नहीं बोलूंगा।

मैं तुम्हें भेद दिखाना चाहता हूं। बुद्ध और मुहम्मद, दोनों को एक ही सत्य का अनुभव हुआ है। मगर बुद्ध भलीभांति जानते हैं कि मैं बोल सकता हूं, लेकिन समझेगा कौन? मुहम्मद यह कहते ही नहीं कि समझेगा कौन? मुहम्मद कहते हैं कि मैं बोल सकूं तो शायद कोई समझ ले, मगर मैं बोलूंगा कैसे? मैं ठहरा अत्यंत

ग्रामीण, दीन-हीन; न पढ़ा, न लिखा, न मेरे कोई संस्कार, न मेरी कोई संस्कृति।

बुद्ध को राजी कर लिया देवताओं ने, क्योंकि वे तर्क खोज लाये—बुद्ध के लिए तर्क खोजना पड़ा। वे तर्क खोज लाए; उन्होंने सोच-विचार किया, मंत्रणा की, फिर लौटे और उन्होंने कहा, आप ठीक कहते हैं, कि जो समझ सकता है वह आपके बिना भी समझ लेगा; हम राजी। और जो नहीं समझ सकते, उनको आप लाख समझाओ वे नहीं समझेंगे; इससे भी हम राजी। मगर क्या आप मानते हैं कि इन दोनों के बीच में भी कुछ लोग न होंगे? इन दोनों के मध्य में; जो आप समझाओ तो समझ लेंगे और आप न समझाओ तो शायद सदा के लिए भटकते रह जाएंगे। क्या आप कह सकते हैं कि इन दोनों के बीच में कोई व्यक्ति होगा ही नहीं? क्या हम मनुष्यों को इस तरह दो कोटियों में बिलकुल बांट सकते हैं कि बीच में कोई न होगा? यह तर्क बुद्ध को स्पष्ट समझ में आया कि जरूर कुछ लोग बीच में हो सकते हैं। हजार में एक होगा, मगर कोई तो बीच में होगा ही। शृंखला है मनुष्यों की। ऐसा तो नहीं हो सकता कि ये दो कोटियों में बिलकुल खंडित कर दिया जाए मनुष्यता को। इन दोनों के बीच में भी कोई होगा, मध्य में भी कोई होगा। तभी तो एक कोटि में से कोई दूसरी कोटि में जाता है।

बच्चा जवान होगा, तभी तो बूढ़ा होता है। ऐसा नहीं हो सकता कि जवान हो ही न, बच्चे हों और बूढ़े हों। बीच की सीढ़ी तो पार करनी ही होगी। वह जो एक आदमी सौवां हो गया है, वह कभी निन्यानबे का हिस्सा था, पार करके गया है उस सीमा को जो दोनों के बीच में है। कभी तो ऐसा रहा होगा जब बीच की सीमा पर रहा होगा। और जरूर बहुत लोग होंगे जो बीच की सीमा पर होंगे। जो अपने से नहीं जाग सकेंगे; जिन्हें कोई जगाने वाला मिल जाए, इशारा देने वाला मिल जाए, तो शायद चल पड़ें।

बुद्ध राजी हो गये।

मुहम्मद भी राजी हुए। लेकिन मुहम्मद को राजी करने का ढंग यह नहीं हो सकता था, मुहम्मद को तर्क नहीं दिये जा सकते थे। भीतर की आवाज कहती गयी कि मुहम्मद, मैं तुझसे कहता हूं: बोल! तू बोल, फिकिर छोड़! जब मैं कहता हूं तो तू बोल! तुझे बोलना ही होगा। कोई तर्क नहीं है, सीधा आदेश है।

बुद्ध को देवताओं को कुछ कहना पड़ा तो बुद्ध की बुद्धि से ही संबंध जोड़ना पड़ा। एक विकसित बुद्धि है। मुहम्मद के पास हृदय है, बुद्धि नहीं। हृदय आदेश मानता है, तर्क नहीं, विचार नहीं। तर्क और विचार व्यर्थ चले जाते हैं।

और जब आवाज इतने जोर से आयी कि तुझे करना ही होगा, तो वे कंप गये। उन्हें बुखार चढ़ आया। वे भागे घर आए। उन्हें डर लगा कि जरूर मैं पागल हो गया हूं।

घर आकर उन्होंने जो बात कही, वह बड़ी प्यारी है।

अपनी पत्नी से उन्होंने कहा कि जल्दी से मेरे ऊपर दुलाइयां ओढ़ा दे, मुझे बहुत बुखार आ रहा है। पत्नी ने कहा, अभी-अभी आप ठीक-ठीक गये थे सुबह-सुबह, इतनी जल्दी इतनी तीव्रता से बुखार! और शरीर उनका जल रहा है। तप्त है। और उनकी आंखें ऐसी हैं जैसी उसने कभी नहीं देखी थीं। ये बुखारवाली आंखें नहीं हैं! उसने दुलाइयां ओढ़ा दीं, पूछा कि मुझे कहो तो कि हुआ क्या? तो मुहम्मद ने कहा कि दो में से कुछ एक बात हुई है: या तो मैं पागल हो गया हूं, या कवि।

और ये दो शब्द बड़े विचारणीय हैं।

मुहम्मद ने कहा: या तो मैं पागल हो गया हूं या कवि। साफ नहीं है कि क्या हो गया है। विक्षिप्त हो गया हूं, लगता है। भीतर से कुछ आवाज आ रही है, जो कभी नहीं आयी थी। और या हो सकता है मैं कवि हो गया हूं। क्योंकि सुना है कि कवियों को भीतर से आवाज आती है, अंतर्वाणी उठती है। पत्नी ने कहा कि तुम्हारी आंख देख कर मैं कह सकती हूं कि कुछ अभूतपूर्व घटा है। तुम्हारी आंखों में ऐसी चमक कभी न थी। और तुम्हारे चेहरे पर ऐसी आभा कभी न थी। तुम घबड़ा गये हो, बेचैन हो, इसलिए बुखार है अन्यथा तुम आविष्ट हुए हो, तुम्हारे ऊपर कोई विराट ऊर्जा उतरी है। तुम उसे पचा नहीं पा रहे हो। तुम विश्राम करो, सब ठहर जाएगा। इस कारण मुहम्मद की पत्नी ही उनकी पहली शिष्या थी। वही पहली मुसलमान थी। क्योंकि उसने ही पहले संदेश सुना।

फिर धीरे-धीरे उसने पूछा कि क्या तुम्हारे भीतर हो रहा है, मुझे कहो। जो उन्होंने कहा, वह सीधा-साफ था, लेकिन उसमें गहराइयां भी थीं।

ये वचन भी सीधे-साफ हैं। यूं ऊपर से देखोगे तो तुम प्रभावित न होओगे, लेकिन जरा इनकी गहराइयों में उतरोगे—इन हीरों पर थोड़ी धार रखनी होगी, थोड़े पहलू निखारने होंगे; इन हीरों की थोड़ी सफाई करनी होगी और तब कुरान में भी वही गरिमा है, जो उपनिषदों में है; वही सुगंध है, जो धम्मपद में है।

'बिस्मिल्लाहिर्'। पहले ही पहल नाम लेता हूं अल्लाह का।

अल्लाह का एक नाम है: अव्वल। जो सबसे पहले है, वही अल्लाह है। और जो सबसे बाद में बच रहेगा, वही अल्लाह है। अल्लाह का दूसरा नाम है: आखिरी। यह सीधी-सादी बात है। पहला नाम: अव्वल; जो प्रथम है, सर्वप्रथम है; और दूसरा नाम: आखिरी; जो सबसे अंत में है। शेष बीच में नाटक है, अभिनय है। जैसे मंच पर कोई अभिनेता राम बनकर आ जाता है। परदे के पीछे असलियत थी, परदे पर राम बन कर आ गया है; खेलेगा राम का पार्ट, अभिनय अदा करेगा, धनुष-बाण लेकर चलेगा, युद्ध करेगा, और जैसे ही परदा गिरेगा, फिर वही हो

जाएगा जो था—राम नहीं रह जाएगा।

परदे के पहले और परदे के बाद असलियत है, परदे के उठने और परदे के गिरने के बीच नाटक है।

परमात्मा ही प्रथम है और परमात्मा ही अंतिम—और जो प्रथम है और जो अंतिम है, वही सत्य है। बीच में सब मन का खेल है। सब तरंगें हैं विचारों की। अलग-अलग अभिनय है। कोई स्त्री बना है, कोई पुरुष बना है। कोई मस्जिद में बैठा है, कोई मंदिर में बैठा है। कोई इस तरह से जी रहा है, कोई उस तरह से जी रहा है। कोई संत हो गया है; कोई साधु है, कोई असाधु। लेकिन ये सब परदा उठने और परदा गिरने के बीच का खेल है। परदे के पीछे न कोई साधु है, न कोई असाधु। न कोई संत, न कोई असंत। सिर्फ परमात्मा है। वही अव्वल है, वही आखिरी है। तो पहले-पहले उसी का नाम लेता हूं—अल्लाह का। और किसका नाम लो? क्योंकि पहले-पहले उसी का स्मरण करो, जो है। प्रार्थना उसी से शुरू हो सकती है।

'बिस्मिल्लाहिर्'। पहले-पहल नाम लेता हूं अल्लाह का।

इस्लाम में परमात्मा के सौ नाम हैं। निन्यानबे व्यक्त और सौवां अव्यक्त। जब तुम इस्लाम की फेहरिस्त देखोगे नामों की, तो ऊपर लिखा होता है : अल्लाह के सौ नाम; और जब तुम फेहरिस्त में गिनती करोगे तो तुम बहुत हैरान होओगे, हमेशा निन्यानबे नाम होते हैं, सौ नहीं होते। सौवां छोड़ा होता है। वही असली नाम है। उसे कहा ही नहीं जा सकता। मगर कुछ तो कहना होगा। इसलिए 'अल्लाह' कहते हैं।

अल्लाह पहला नाम है निन्यानबे की श्रृंखला में। और जो आखिरी नाम है, असली नाम है, उसे तो नाम भी नहीं दिया जा सकता, वह तो अनाम है, वह तो शून्य है। बुद्ध की भाषा में वही निर्वाण है, शून्य है, अनत्ता है। उपनिषद उसे ब्रह्म कहते हैं।

मगर, यह प्यारी बात समझते हो! शून्य भी तुमने कहा—हालांकि कहा : शून्य—मगर शून्य भी नाम हो गया। ज्यादा प्यारी बात है इस्लाम की : कहा ही नहीं कुछ। खाली जगह छोड़ दी।

इस्लाम में सूफी फकीरों की परंपरा है। उनके पास एक किताब है, जिसे वे 'किताबों की किताब' कहते हैं। वह खाली किताब है, उसमें कुछ लिखा हुआ नहीं है। गुरु शिष्य को देता रहा है उस किताब को। परंपरा से वह किताब मिलती रही है, बचायी गयी है। सैकड़ों वर्ष पुरानी है। कुछ भी लिखा नहीं है, खाली पन्ने हैं, कोरे पन्ने हैं!

और वैसा ही कोरा हो जाना है। वैसा ही खाली हो जाना है। जब तुम भी रिक्त

हो जाओ, तुम्हारे भीतर भी कोई विचार की लिखावट न रह जाए, तभी जानना सौवां नाम, असली नाम उपलब्ध हुआ।

मगर शुरुआत करने के लिए—कामचलाऊ—निन्यानबे नाम हैं। निन्यानबे इसलिए कि तुम्हें जो प्रीतिकर लगे! दुनिया में बहुत तरह के लोग हैं, तरह-तरह के लोग हैं। हर एक की अपनी-अपनी प्रीति है, अपना-अपना ढंग है। इसलिए एक ही नाम सबको शायद प्यारा न भी लगे। तो सब तरह की रुचियों के लोगों के लिए निन्यानबे नाम हैं। लेकिन याद सबको दिलाए रखनी है कि तुम्हारा नाम काम-चलाऊ है। असली नाम तो बोला नहीं जा सकता, सुना नहीं जा सकता। असली नाम तो अनुभव में आता है। और वह अनुभव ध्वनि नहीं है, नाद नहीं है—अनाहत है। परम शून्य का संगीत है। मौन संगीत है।

इसलिए शास्त्रों को ठीक से पढ़ना हो तो पंक्तियों के बीच में पढ़ना, पंक्तियों में मत पढ़ना। पंक्तियों के बीच में जहां खाली जगह होती है, वहां शास्त्र हैं। पंक्तियों में तो शब्द हैं। शब्दों के बीच में पढ़ना, जहां रिक्त स्थान होते हैं, क्योंकि वहीं सत्य है।

और यही अवस्था तुम्हारे अंतर की भी है। एक विचार गया, दूसरा विचार आया, दोनों के बीच में थोड़ी जगह होती है। उस जगह में ही झांक लो तो ध्यान हो जाए। मगर हम एक शब्द से दूसरे शब्द पर छलांग लगाते रहते हैं, एक विचार से दूसरे विचार पर छलांग लगाते रहते हैं, हम बीच में वह जो खाली जगह है उसको देखते ही नहीं। उसको हम यूं ही गुजर जाने देते हैं। हम उस पर ध्यान ही नहीं देते। वह हमारा 'गेस्टाल्ट' नहीं है।

'गेस्टाल्ट' शब्द जर्मन भाषा का है। और मनोविज्ञान ने उसे स्वीकार किया है, क्योंकि किसी दूसरी भाषा में वैसा शब्द नहीं है। 'गेस्टाल्ट' का अर्थ होता है : देखने का एक खास रवैया। तुमने मनोविज्ञान की किताबों में या कभी-कभी बच्चों की किताबों में एक तस्वीर देखी होगी। एक तस्वीर बनी होती है, जिसको दो ढंग से देखा जा सकता है। एक ढंग से देखो तो तस्वीर में बूढ़ी स्त्री दिखाई पड़ती है। और अगर तुम देखते ही रहो, देखते ही रहो बूढ़ी स्त्री को, तो तुम चकित होते हो कि थोड़ी देर में बूढ़ी स्त्री तो विदा हो गयी और उसकी जगह एक सुंदर युवा स्त्री दिखाई पड़ने लगी। अगर तुम उस युवा स्त्री को देखते रहो, देखते रहो, तो थोड़ी देर में वह भी विलीन हो जाएगी, फिर बूढ़ी स्त्री प्रगट हो जाएगी।

और मजा यह है कि जब तुमने दोनों को भी देख लिया तस्वीर में, तब भी तुम दोनों को साथ-साथ न देख सकोगे। क्योंकि उन दोनों को बनाने वाली जो पंक्तियां हैं, जो लकीरें हैं, वे एक ही हैं। उन्हीं लकीरों से बूढ़ी बनी है, उन्हीं लकीरों से जवान स्त्री बनी है। तो जब जवान स्त्री को देखोगे, बूढ़ी नहीं देख पाओगे। अगर बूढ़ी

को देखोगे, जवान को नहीं देख पाओगे। जानते हो भलीभांति कि इन्हीं लकीरों में जवान स्त्री भी छिपी है, कई बार देख भी चुके हो, लेकिन जब फिर बूढ़ी स्त्री का 'गेस्टाल्ट' तुम्हें पकड़ लेगा, तो तुम लाख उपाय करो, जवान स्त्री दिखाई न पड़ेगी। और तुम्हें मालूम है, तुमने देखा है, तुम जानते हो भलीभांति कि यहीं कहीं है। मगर तुम कोशिश करो तो नहीं देख पाओगे। लेकिन अगर तुम बूढ़ी को गौर से देखते रहो, देखते रहो, तो अचानक 'गेस्टाल्ट' बदलता है। बदलाहट इसलिए होती है कि मन थिर नहीं हो सकता। मन अथिर है, भागा हुआ है। तुम अगर बूढ़ी को ही देखते रहोगे, देखते रहोगे, वह जल्दी ही बूढ़ी से भागने लगेगा, इधर-उधर भागेगा। उसी भाग-दौड़ में वह जवान को खोज लेगा। अगर तुम जवान को ही देखते रहोगे, उसी भाग-दौड़ में वह फिर बूढ़ी स्त्री को खोज लेगा। वे दोनों ही स्त्रियां उस एक ही तस्वीर में हैं। इस बदलते हुए ढांचे को 'गेस्टाल्ट' कहते हैं।

अब तुम जब अपने भीतर जाते हो और विचारों को देखते हो, तो तुम्हारा गेस्टाल्ट एक है। एक विचार गया कि तुम बीच में जो थोड़ा-सा अंतराल आता है, उसे नहीं देखते; दूसरा विचार आया, उसको देखते हो। तुमने ध्यान ही नहीं दिया होगा जब तुम किताब पढ़ते हो कि दो शब्दों के बीच में खाली जगह भी है, या दो पंक्तियों के बीच में भी खाली कागज है। तुम तो बस शब्दों से छलांग लगाते चले जाते हो।

एक छोटा बच्चा रास्ते के किनारे खड़ा है। उसे रास्ता पार करना है। बड़ी देर से खड़ा है। एक आदमी जो उसे देख रहा है—एक दुकानदार—उसने पूछा कि बेटा, क्या बात है, तू बहुत देर से यहां खड़ा हुआ है! तुझे उस तरफ जाना है तो मैं पहुंचा दूं। उसने कहा, उस तरफ मुझे जाना है, लेकिन मैं देख रहा हूं कि जब, खाली स्थान आए, तो मैं निकल जाऊं। जब खाली स्थान मेरे सामने से गुजरे, तो मैं निकल जाऊं।

तुमने इस तरह नहीं सोचा होगा। कार गुजरी, बस गुजरी, ट्रक गुजरा—यह तुम देखते हो; खाली स्थान गुजरता है, ऐसा तुम नहीं देखते। जब बस नहीं गुजरती तो जो रह जाता है खाली स्थान, तुम उसमें से गुजर जाते हो। मगर उस बच्चे ने कहा कि जब खाली स्थान आए....! कभी तो कार आ रही है, कभी ट्रक आ रहा है, कभी बस आ रही है, खाली स्थान आ ही नहीं रहा! जैसे ही खाली स्थान आएगा, मैं निकल जाऊंगा। और बिना खाली स्थान के कैसे निकल सकता हूं?

तुम्हारे भीतर विचारों की शृंखला में खाली स्थान आ रहे हैं, प्रतिपल आ रहे हैं, मगर उन पर तुम्हारा ध्यान नहीं। तुम्हारा 'गेस्टाल्ट' बंध गया है।

और इसीलिए साक्षी का अद्भुत सूत्र है ध्यान के लिए। तुम सिर्फ साक्षी हो कर खड़े हो जाओ किनारे और देखते रहो, देखते रहो आंख गड़ा कर—विचारों को

गुजरते हुए—और तुम चकित होओगे, देखते-देखते ही जैसे बूढ़ी स्त्री जवान में बदल जाती है, ऐसा ही तुम्हारे भीतर का 'गेस्टाल्ट' बदलेगा। तुम अगर देखते रहो विचारों को साक्षी हो कर, तो धीरे से तुमको एक क्षण पता चलेगा कि हर दो विचार के बीच खाली जगह आती है। और जैसे ही तुम्हें खाली जगह दिखाई पड़ गयी, तुम दूसरा काम भी कर सकते हो—एक खाली स्थान से दूसरे खाली स्थान में छलांग; दूसरे से तीसरे खाली स्थान में छलांग। विचारों को छोड़ कर छलांग लगने लगती है। अभी खाली स्थान को छोड़ कर तुम छलांग लगाते हो, फिर विचारों को छोड़ कर खाली स्थान में छलांग लगाने लगते हो। वही ध्यान की प्रक्रिया है। खाली स्थानों को जोड़ लेना अपने भीतर ध्यान है। विचार तिरस्कृत हो गया, अनादृत हो गया। तुम विचार के प्रति उदासीन हो गये।

ध्यान है खाली अंतरालों को देखने की क्षमता। और जैसे ही यह क्षमता आती है, पर्दा गिर गया। अब तुम्हें वह दिखाई पड़ने लगेगा, जो अव्वल है और आखिरी है।

'पहले ही पहल नाम लेता हूं अल्लाह का, जो निहायत रहमवाला मेहरबान है।'

सीधी-सादी बात है कि परमात्मा करुणा है। बुद्ध भी इस बात को कहते हैं। लेकिन बुद्ध के कहने का ढंग बहुत और है। वह एक सुसंस्कृत दार्शनिक का ढंग है। बुद्ध कहते हैं: जब ध्यान का कमल खिलता है, तब करुणा की सुगंध उड़ती है। करुणा अंतिम उपलब्धि है समाधि की—और समाधि की कसौटी भी। जिसके जीवन में करुणा प्रगट हो, समझना कि उसे समाधि मिली। भीतर मिलती है समाधि, बाहर करुणा की गंध उड़ती है। भीतर जलता है समाधि का दीया और बाहर करुणा की रोशनी फैलती है।

यही बात मुहम्मद अपने सीधे-सादे ढंग से कह रहे हैं कि वह जो परमात्मा है, वह जो अव्वल है, वह जो पहले है और आखिरी; जिसका कोई नाम नहीं, लेकिन फिर भी जिसको नाम देना होगा, नहीं तो हम कैसे उसका स्मरण करें, वह निहायत रहमवाला मेहरबान है। वह महा करुणा है।

और इसमें इस बात की भी उद्घोषणा है कि भयभीत न होओ अपनी गल्तियों से, उसकी करुणा तुम्हारी गल्तियों से बहुत बड़ी है! डरो न अपने पापों से, नाहक के पश्चात्ताप में मत पड़ो, तुम आदमी हो, भूल-चूक स्वाभाविक है, लेकिन भूल-चूक को तूल मत दो, तिल का ताड़ न बनाओ!

अक्सर तथाकथित धार्मिक व्यक्ति तिल के ताड़ बना लेते हैं। छोटी-सी भूल को भी बहुत गुब्बारे की तरह फुलाते चले जाते हैं। छोटी-सी भूल को भी बड़ा कर के दिखाने लगते हैं। उसमें भी अहंकार है।

अगस्तीन की प्रसिद्ध किताब है: 'कन्फेसन्स'। अपने पापों का प्रायश्चित है। अगस्तीन की इस किताब के बाद एक सिलसिला शुरू हुआ कि लोगों ने अपने पापों

के प्रायश्चित लिखने शुरू कर दिये। टाल्स्टाय ने लिखे, महात्मा गांधी ने लिखे। और मेरी प्रतीति है कि इन सबने बहुत बढ़ा-चढ़ा कर लिखे। छोटे-छोटे पापों को भी खूब बढ़ा-चढ़ा कर लिखा। पीछे कारण हैं।

तुमने अकबर और बीरबल की कहानी सुनी है। अकबर ने एक दिन दरबार में आ कर दीवाल पर एक लकीर खींच दी और अपने दरबारियों से कहा कि एक लाख स्वर्ण-अशर्फियां उसे भेंट करूंगा जो इस लकीर को बिना छुए छोटा कर दे। अब बिना छुए कौन लकीर छोटा करे, कैसे करे? बहुत सिर पचाया लोगों ने, बड़ा सोचा-विचारा, पसीना-पसीना हो गये! एक लाख स्वर्ण-अशर्फियां तो सभी चाहते थे, मगर बिना छुए छोटी कर दो! और तब बीरबल उठा और उसने उस लकीर के नीचे एक बड़ी लकीर खींच दी। उस लकीर को छुआ भी नहीं और लकीर छोटी हो गयी। एक लाख स्वर्ण-अशर्फियां उसने अपने बस्ते में बंद कीं और घर की तरफ चल पड़ा। उसने धन्यवाद भी नहीं दिया अकबर को। धन्यवाद देने की जरूरत भी नहीं थी। उसने काम कर के दिखा दिया था। लकीर को छुआ नहीं और छोटा कर दिया।

यही राज है इन तथाकथित प्रायश्चित्त के नाम पर बढ़ा-चढ़ा कर लिखे गये पापों में। पहले पाप को बड़ा कर के दिखाओ, तो फिर तुम्हारा पुण्य भी उसी अनुपात में बड़ा हो जाता है। फिर पुण्य की लकीर खींचो। तो छोटा पाप होगा तो पुण्य भी छोटा ही होगा। अगर बड़ा पाप होगा तो पुण्य भी बड़ा होगा।

इस गणित को समझ लेना।

तुमने अगर दो पैसे की चोरी की और चोरी का त्याग कर दिया, तो लोग कहेंगे, क्या खाक त्याग किया! अरे, दो पैसे की चोरी की—पहले तो चोरी भी की तो कुछ ढंग की न की—और त्याग भी दिया तो क्या त्याग दिया, दो ही पैसे न! दो अरब की चोरी करते, तो दो अरब का त्याग होता। फिर त्याग बड़ा होता, क्योंकि चोरी बड़ी होती!

इसीलिए तो जैनों के चौबीस तीर्थंकर राजपुत्र हैं। कोई गरीब तीर्थंकर नहीं हो सका। कैसे हो? क्योंकि त्याग कसौटी है। राजपुत्रों के पास त्यागने को कुछ है, गरीबों के पास त्यागने को क्या है? गरीब छोड़ेगा भी तो क्या छोड़ेगा! था ही क्या? लोग पूछेंगे, एक झोपड़ा था घास-फूस का, उसे छोड़ भी दिया तो क्या छोड़ दिया! राजमहल चाहिए, स्वर्ण-महल चाहिए, तब त्याग का कोई मूल्य है!

बुद्ध भी राजपुत्र हैं। कृष्ण और राम भी राजपुत्र हैं। हिंदुओं के अवतार, जैनों के तीर्थंकर, बौद्धों के बुद्ध, सब राजपुत्र हैं।

इस दृष्टि से इस्लाम ने और ईसाइयत ने एक बहुत बड़ी क्रांति की। उस क्रांति का ठीक-ठीक मूल्यांकन नहीं हुआ है। इस्लाम और ईसाइयत ने पहली बार दो

साधारणजनों को ईश्वर का पैगंबर घोषित किया। जीसस एक बढ़ई के बेटे थे। अत्यंत दीन-हीन वर्ग से। मुहम्मद भी गरीब घर से आए थे। भेड़-बकरियां चराते रहे थे, चरवाहे थे।

इस्लाम ने और ईसाइयत ने दुनिया को एक तो बहुत बड़ा दान दिया है। इन्होंने पहली बार धर्म को राजाओं के घेरे से मुक्त किया। इन्होंने पहली बार कहा कि धर्म पर कोई बपौती नहीं है धन वालों की। गरीब भी चाहे, अभीप्सा करे, तो परमात्मा उसका भी हो सकता है। इस्लाम और ईसाइयत का इतना व्यापक प्रचार जो दुनिया में हुआ, उसके पीछे यही कारण है। सर्वहारा को, दीन-हीन को यह बात रुचिकर लगी, उसके निकट की लगी।

हिंदू धारणा राजाओं से बंधी धारणा है। जैन धारणा भी राजाओं से बंधी धारणा है। उसमें एक तरह का आभिजात्य है, 'अरिस्टोक्रेसी' है। और 'अरिस्टोक्रेसी' के दिन लद गये, आभिजात्य के दिन लद गये! यह तो सर्वहारा का युग है। तो अगर सारी दुनिया में आधी दुनिया ईसाई हो गयी तो कुछ आश्चर्य नहीं है। और ईसाइयत के बाद नंबर आता है इस्लाम का। यह कोई आश्चर्य नहीं है। यह बिलकुल स्वाभाविक है। फिर, इनकी भाषा गरीब की भाषा है। इनकी भाषा अत्यंत दीन-हीन की भाषा है।

पश्चात्ताप को भी लोग बढ़ा-चढ़ा कर बताते हैं। अहंकार बड़ा अद्भुत है! अहंकार पाप भी करे तो बड़ा करता है, छोटा नहीं करता। छोटा पाप अहंकार को जंचता नहीं। और न भी किया हो बड़ा पाप, तो कम-से-कम अपनी आत्मकथा में तो बड़ा पाप लिख ही सकते हो। पहले महापापी अपने को सिद्ध करो और फिर त्याग, व्रत, उपवास .... तो महात्मा हो जाओगे। लेकिन अगर महापापी नहीं हो, तो महात्मा कैसे होओगे?

इसलिए मेरे देखे अगस्तीन, टाल्स्टाय, गांधी, इन तीनों की आत्मकथाओं में बहुत-सी बातें झूठ हैं। यद्यपि महात्मा गांधी कहते हैं कि ये सत्य के प्रयोग हैं, मगर इसमें बहुत झूठ है। यह पापों को बहुत बढ़ा-चढ़ा कर लिखा गया है। जिन पापों में कोई मुद्दा नहीं है, उनको यूं बढ़ाया है जिसका हिसाब नहीं। उनको इतना बड़ा कर दिया है! क्योंकि फिर उन्हीं के अनुपात में पुण्य भी बड़े होंगे। इतने बड़े पाप त्यागे!

इस्लाम की घोषणा है: तुम्हारे पाप कितने ही बड़े हों, परमात्मा की करुणा उससे बहुत ज्यादा बड़ी है!

'रहमानिर् रहीम'। वह निहायत रहमवाला है; रहीम है, मेहरबान है, रहमान है। तुम अपने पश्चात्तापों में न उलझो। तुम अपने घावों को नाहक न कुरेदो! इसलिए इस्लाम पश्चात्ताप नहीं सिखाता। ईसाइयत में पश्चात्ताप का मूल्य है, मगर इस्लाम में पश्चात्ताप का कोई मूल्य नहीं है।

और मैं इस बात को कीमत देता हूं।

पश्चात्ताप एक तरह की रुग्ण-अवस्था है। यह अपने घावों को कुरेदना है। और जो अपने घावों को कुरेदता रहता है, वह घावों को भरने नहीं देता। वह उनको हरे रखता है, लहूलुहान रखता है। फिर-फिर कुरेद लेता है। यह एक तरह की रुग्ण-दशा है। अपने घाव को भरने दो! क्या पीछे लौट-लौट कर देखना है!

इस्लाम कहता है: परमात्मा की करुणा अनंत है। तुम उसकी करुणा का भरोसा करो।

लेकिन इस्लाम के कहने का ढंग बहुत सीधा-सादा है।

'(ए पैगंबर, लोग तुम्हें खुदा का बेटा कहते हैं और तुमसे हाल खुदा का पूछते हैं, तो तुम उनसे) कहो कि वह अल्लाह एक है।'

हिंदुओं के तैंतीस करोड़ देवी-देवता हैं। यूं समझो कि जितने आदमी थे, उतने ही देवी-देवता। हर आदमी की अपनी देवी, अपना देवता। और इसलिए कभी भी यह देश इकट्ठा नहीं हो सका। खंडित होना इसकी किस्मत हो गयी। क्योंकि इसका ईश्वर तक इकट्ठा नहीं हो सका, आदमियों की तो बात छोड़ दो! इसके ईश्वर की धारणा भी इकट्ठी नहीं हो सकी, तो यहां हर चीज खंडित हो गयी है।

बुद्ध मरे और उनके मरने के बाद बत्तीस संप्रदाय हो गये।

जैनों के महावीर गये कि तत्क्षण जैन खंडों में टूट गये, छोटे-छोटे संप्रदाय बन गये। पहले दो संप्रदाय बने, फिर दो में से बीस खड़े हो गये।

और हिंदुओं का तो कुछ हिसाब ही करना मुश्किल है! हिंदुओं को तो एक धर्म कहना भी ठीक नहीं है। यह तो जमघट है; कुंभ का मेला समझो! कोई गणेश को पूज रहा है, कोई हनुमान जी को पूज रहा है, कोई शिव जी को, कोई राम को, कोई कृष्ण को--और जिसकी जो मर्जी! कोई झाड़ों को, कोई पत्थरों को, कोई नदियों को।

इस्लाम ने एक सीधी-साफ बात कही: परमात्मा एक है। इस विचार का परिणाम महत्त्वपूर्ण हुआ। अगर परमात्मा एक है, तो उसके मानने वालों को भी एक होने की सुविधा हो गयी, खंडित होने की वृत्ति छूट गयी।

इस देश में तो खंडित होने की इतनी वृत्ति है कि जो धर्मों के साथ हुआ, वही अब राजनीति के साथ हो रहा है। एक-एक पार्टी खंडित होती जाती है, छोटे-छोटे टुकड़ों में टूटती जाती है। देश प्रदेशों में टूटा हुआ है, प्रदेश भी अपने जिलों में टूटे हुए हैं। और हर एक की अपनी जिद है, अपना आग्रह है। यह हमारी जो धार्मिक चिंतना रही है, उस चिंतना में कहीं दोषपूर्ण बात है। यूं तो हम कहते रहे ऊंची बातें, लेकिन उन ऊंची बातों के लिए हमने कोई बुनियादी ठोस आधार न दिये।

इस्लाम ने एक तो अनुदान दिया जगत को कि परमात्मा एक है। इसलिए बहुत

प्रतिमाओं की जरूरत नहीं है, प्रतिमाओं की ही जरूरत नहीं है, क्योंकि तुम प्रतिमा बनाओगे तो अनेक हो जाएंगी। फिर लोग अपने-अपने ढंग से प्रतिमा बनाएंगे। किसी का चेहरा ऐसा होगा, किसी का चेहरा वैसा होगा, किसी के दो हाथ होंगे, किसी के चार हाथ होंगे। प्रतिमा बनी, परमात्मा को तुमने रूप दिया कि तुमने खंडन शुरू कर दिया। परमात्मा निराकार है। तुम पुकारो! परमात्मा एक भाव की दशा है। तुम उस भाव की दशा में एक हो जाओ, तल्लीन हो जाओ। परमात्मा सागर है। तुम उसमें विलीन हो जाओ।

'(ए पैगंबर, लोग तुम्हें खुदा का बेटा कहते हैं और तुमसे हाल खुदा का पूछते हैं, तो तुम उनसे) कहो कि वह अल्लाह एक, है, और अल्लाह बेनियाज़ है (उसे किसी की भी गरज नहीं)।'

उसे किसी की भी जरूरत नहीं है। वह स्वयंभू है। तुम उसे मानते हो या नहीं मानते हो, उससे कुछ भेद नहीं पड़ता। तुम उसके साथ हो या उससे विपरीत हो, कुछ भेद नहीं पड़ता। तुम आस्तिक हो या नास्तिक हो, कुछ भेद नहीं पड़ता। वह बेनि-याज़ है। उसकी करुणा तुम पर बरसती ही रहेगी। तुम साधु हो, असाधु हो, कुछ भेद नहीं पड़ता। उसकी करुणा में कोई कंजूसी नहीं होगी। वह तुम पर निर्भर नहीं है। वह तुम्हारी पात्रता की भी पूछताछ नहीं करता। वह तुम्हारी योग्यता का भी हिसाब नहीं रखता। अगर तुम उसे लेने को राजी हो तो वह हमेशा तुम्हारे भीतर प्रवेश करने को तैयार है। वह तुम्हारे द्वार पर खड़ा द्वार खटखटा रहा है। तुम्हीं उसे भीतर न बुलाओ तो तुम्हारी मर्जी अन्यथा वह हर घर में आने को राजी है।

एक सूफी फकीर को हमेशा की आदत थी कि अकेला भोजन नहीं करता था। किसी को निमंत्रण दे देता था, बुला लाता था। मगर एक दिन ऐसा हुआ कि बहुत खोजा लेकिन कोई मिला ही नहीं। या तो लोग भोजन कर चुके थे या लोग भोजन करने जा रहे थे या कहीं निमंत्रित थे, कोई राजी ही न हुआ आने को। और अकेला उसे भोजन करना नहीं। वह तो साथ में ही भोजन करेगा, बांट कर ही भोजन करेगा। तो उसने सोचा, फिर आज भूखा ही रहना होगा। तभी द्वार पर एक बूढ़े आदमी ने दस्तक दी और उसने कहा कि मैं बहुत भूखा हूं, क्या कुछ खाने को मिल सकेगा?

उसने कहा, मेरे धन्यभाग! आओ, मैं प्रतीक्षा ही कर रहा था। जरूर तुम्हें परमात्मा ने ही भेजा होगा। उसकी करुणा अपरंपार है। उसने देखा होगा कि मैं भूखा....।

मेहमान को बिठाया, दस्तरखान लगाया, भोजन रखा और मेहमान भोजन शुरू करने ही जा रहा था कि उस फकीर ने देखा--अरे, इसने अल्लाह का नाम ही नहीं लिया। भोजन के पहले अल्लाह का नाम तो लेना चाहिए, प्रार्थना तो करनी चाहिए।

उसने उसका हाथ पकड़ लिया इसके पहले कि कौर मुंह में जाए, उसने कहा, रुको! अल्लाह का नाम नहीं लिया ?

उस आदमी ने कहा कि मैं अल्लाह इत्यादि में भरोसा नहीं करता। कोई ईश्वर नहीं है। तो मैं क्यों नाम लूं ?

तो सूफी फकीर ने कहा, फिर भोजन न कर सकोगे !

और कहानी कहती है--तभी अल्लाह की आवाज सुनाई पड़ी कि अरे पागल, मैं इस आदमी को सत्तर साल से भोजन दे रहा हूं और इसने एक भी बार मेरा नाम नहीं लिया, और तू एक ही दिन में शर्त लगाने लगा ! तुमने इसका बढ़ा हुआ हाथ पकड़ लिया ! यह भूखा बूढ़ा ! भोजन भी तूने शर्तबंदी से ....! भोजन में भी शर्त लगा दी ! प्रेम की कोई शर्त होती है ! तुझे अनुगृहीत होना चाहिए कि यह तेरा निमंत्रण स्वीकार किया। अनुग्रह तो दूर रहा, तू इस पर शर्त थोपने लगा ! तुझसे तो यह बूढ़ा बेहतर है। यह भूखा रहने को राजी है, लेकिन अपने उसूल के खिलाफ जाने को राजी नहीं है। और जिसको मैं सत्तर साल से भोजन करा रहा हूं, तू एक दिन उसे भोजन नहीं करा सकता ?

फकीर उस बूढ़े के चरणों पर गिर पड़ा। कहा, आप भोजन करें; मेरी भूल थी। धर्म के नाम पर शर्त नहीं लगायी जा सकती है।

परमात्मा बेशर्त है। उसकी कृपा और करुणा तुम्हारी किसी योग्यता के कारण नहीं होती। उसकी करुणा उसका स्वभाव है।

'बिस्मिल्लाहिर् रहमानिर् रहीम।' यह उसका स्वभाव है--रमजान होना, रहमान होना, रहीम होना। तुम्हारा सवाल नहीं है, यह उसका स्वभाव है। गुलाब का फूल गुलाब की गंध देगा, और जुही का फूल जुही की गंध देगा। जुही की फूल इसकी फिक्र नहीं करता कि पास से जो निकल रहा है, वह पात्र है या नहीं। सूरज निकलेगा तो रोशनी होगी--आस्तिक के लिए भी और नास्तिक के लिए भी; साधु के लिए भी, असाधु के लिए भी। वह सूरज का लक्षण है। वह कुछ शर्त नहीं करता कि नास्तिक के लिए अंधेरा रहेगा और आस्तिक के लिए दिन हो जाएगा।

परमात्मा का स्वभाव है करुणा।

इस्लाम की यह बहुत बड़ी अनुभूति है। मुहम्मद का यह मनुष्य के विकास में गहरा अनुदान है।

सदा से हमने ऐसा सोचा है, हमारे कर्मों के फल के अनुसार उपलब्धि होती है। यह अगर ठीक से समझो तो अहंकार की ही घोषणा है। मैं अगर अच्छे कर्म करूंगा, तो मुझे पुण्य मिलेगा; अगर बुरे कर्म करूंगा तो पाप मिलेगा। अच्छे कर्म करूंगा तो स्वर्ग जाऊंगा, बुरे कर्म करूंगा तो नर्क जाऊंगा। जोर 'मैं' पर है। मैं जो करूंगा! कर्ता पर जोर है। और इसका ही यह परिणाम हुआ, इस जोर का यह अंतिम तार्किक

निष्कर्ष हुआ कि जैनों ने ईश्वर को इनकार ही कर दिया। ईश्वर की जरूरत ही क्या रही ! अगर ठीक से समझो तो तो कर्म के सिद्धांत में ईश्वर की कोई जरूरत नहीं रह जाती। हिंदुओं का दृष्टिकोण इस लिहाज से तर्क-विरुद्ध है। या तो इस्लाम ठीक है या जैन ठीक हैं।

इस्लाम कहता है : उसकी करुणा। हमारे कृत्य का सवाल नहीं है। हमने क्या किया, इसका हिसाब नहीं है। उसकी करुणा।

और जैन कहते हैं : हमने जो किया उसका हिसाब है। अच्छा किया तो अच्छा, बुरा किया तो बुरा। अच्छा बोया तो अच्छा काटेंगे, बुरा बोया तो बुरा काटेंगे। फसल हमारे कर्मों की है। इसलिए परमात्मा की कोई जरूरत ही नहीं है। परमात्मा क्या करेगा ? जिसने बुरा काम किया है, उसको स्वर्ग नहीं भेज सकता। और जिसने अच्छा काम किया, उसको नर्क नहीं भेज सकता। परमात्मा निहायत गैरजरूरी हो जाता है।

और हिंदू इन दोनों के बीच में खड़े हैं। वे कर्म का सिद्धांत भी मानते हैं और परमात्मा को भी मानते हैं। मेरे हिसाब में या तो जैन तार्किक रूप से ठीक हैं, कि कर्म का सिद्धांत सही है तो परमात्मा की कोई जरूरत न रही; या फिर इस्लाम सही है, कि अगर कर्म का सिद्धांत सही नहीं है, तो ही परमात्मा है। जोर बदल गया --'मैं' पर जोर।

इसलिए जैनमुनि को तुम जितना अहंकारी पाओगे, उतना किसी दूसरे धर्म के साधु को नहीं पाओगे। स्वाभाविक है वह अहंकार। क्योंकि उसकी सारी चिंतना अहंकार-केंद्रित है। मेरा कृत्य ! मेरी साधना ! मेरा उपवास ! मेरा व्रत ! मेरी तपश्चर्या ! सब के बीच में 'मैं' है। और जितना तुम विनम्र सूफी फकीर को पाओगे, उतना विनम्र तुम किसी फकीर को कभी नहीं पाओगे। न बौद्धों के फकीर, न हिंदुओं के फकीर, न जैनों के फकीर--किसी को तुम इतना विनम्र नहीं पाओगे जितना सूफी फकीर को। कारण ? अपना तो कुछ भी नहीं है, है तो उसकी करुणा!

> तजल्ली रुए-जानां की....
> तजल्ली रूए-जानां की सही भाषा में कुदरत की
> किताबे हुस्न का मैंने यही उन्वान रक्खा है :
> वो दोनों कुहनियां टेके हैं और चेहरा है हाथों पर....
> वो दोनों कुहनियां टेके हैं और चेहरा है हाथों पर
> कोई देखे तो समझे कि रहल पर कुर-आन रक्खा है
> तेरा हुस्न मेरी निगाह में बखुदा, खुदा की किताब है....
> तेरा हुस्न मेरी निगाह में बखुदा, खुदा की किताब है
> तेरी बंदगी तो अलग रही, तुझे देखना भी शराब है

तेरी बंदगी तो अलग रही, ...
तेरी बंदगी तो अलग रही, तुझे देखना भी शराब है

बाद में बांधा है सहरा सरफराजी के लिए
जिंदगी दुल्हन बनी है तेरे गाजी के लिए
एक ही जुनून है तू हो नजर के सामने
ऐसा करना चाहिए ऐसे नमाजी के लिए
तुझे देखना भी शराब है. . . .
तुझे देखना भी शराब है. . . .
तेरी बंदगी तो अलग रही, तुझे देखना भी शराब है

तेरी आरजू है तेरा इंतकाब है. . . .
तेरी आरजू है तेरा इंतकाब है
जिसके जमाले नाज से हुस्न-ओ-शबाब है
मैं क्यूं न अपने इश्क का हासिल कहूं तुझे. . . .
मैं क्यूं न अपने इश्क का हासिल कहूं तुझे
दावा है आस्मानों का तू लाजबाब है
तुझे देखना भी शराब है. . . .
तुझे देखना भी शराब है. . . .
तेरी बंदगी तो अलग रही, तुझे देखना भी शराब है

रिवायत . . . .
रियावत मैं अभी भूला नहीं मंसूर-ओ-सरमद की. . . .
रिबायत मैं अभी भूला नहीं मंसूर-ओ-सरमद की
लगा रक्खा है सीने से तमन्नाए शहादत को
तरस कर रह गयी हैं मेरी नजरें तेरी सूरत को. . . .
तरस कर रह गयी हैं मेरी नजरें तेरी सूरत को. . . .
उठा दे रुख से पर्दा. . . .
उठा दे रुख से पर्दा ये सरे जीशान हाजिर है
ये दिल हाजिर है, मैं हाजिर हूं, मेरी जान हाजिर है. . . .
ये दिल हाजिर है, मैं हाजिर हूं, मेरी जान हाजिर है

उठा दे रुख से पर्दा. . . .
उठा दे रुख से पर्दा, देख : मेरी जान हाजिर है
उठा दे रुख से पर्दा. . . .

मुझे मंजूर है. . . .
मुझे मंजूर है सर मेरा देरेदार हो जाए
मगर इतनी तमन्ना है तेरा दीदार हो जाए
उठा दे रुख से पर्दा, देख : मेरी जान हाजिर है
मुझे मंजूर है सर मेरा देरेदार हो जाए
मगर इतनी तमन्ना है तेरा दीदार हो जाए
उठा दे रुख से पर्दा . . . .
उठा दे रुख से पर्दा . . . .
तेरी बंदगी तो अलग रही, तुझे देखना भी शराब है

होकर रूपोश . . . .
होकर रूपोश न दिल तोड़ तमन्नाई का . . . .
होकर रूपोश न दिल तोड़ तमन्नाई का . . . .
हौसला पस्त न कर अपने तू शैदाई का
हौसला पस्त न कर . . . .
हौसला पस्त न कर अपने तू शैदाई का
हम भी बांधेंगे तेरे इश्क में अहरामे जुनूं . . . .
हम भी बांधेंगे तेरे इश्क में अहरामे जुनूं . . . .
हम भी देखेंगे तमाशा तेरी लैलाई का
हम भी देखेंगे तमाशा तेरी लैलाई का . . . .
होकर रूपोश न दिल तोड़ तमन्नाई का
हौसला पस्त न कर अपने तू शैदाई का
हम भी बांधेंगे तेरे इश्क में अहरामे जुनूं
हम भी देखेंगे तमाशा तेरी शैदाई का
उठा दे रुख से पर्दा . . . .
उठा दे रुख से पर्दा . . . .
तेरी बंदगी तो अलग रही, तुझे देखना भी शराब है

ऐ जाने मन . . . .
ऐ जाने मन
ऐ गुलबदन
ऐ जाने मन . . . .
ऐ गुलबदन
ऐ रूहे चमन

ऐ सुल्ताने मन
ऐ रहमाने मन
ऐ शाहे खूबां
ऐ जाने जानां

उठा दे रुख से पर्दा, ...
उठा दे रुख से पर्दा, ...
उठा दे रुख से पर्दा, ...
ऐ जाने मन
ऐ गुलबदन
ऐ रूहे चमन
ऐ सुल्ताने मन
ऐ रहमाने मन
ऐ शाहे खूबां
ऐ जाने जानां
उठा दे रुख से पर्दा, तुझे देखना भी शराब है
तेरी बंदगी तो अलग रही, तुझे देखना भी शराब है

ऐ दोस्त . . . .
ऐ दोस्त आ भी जा कि मेरा दिल उदास है . . . .
ऐ दोस्त आ भी जा कि मेरा दिल उदास है
जल्वा मुझे दिखा . . . .
जल्वा मुझे दिखा कि मेरा दिल उदास है
ऐ दिल नवाज़ प्यार की तस्वीर बन के आ . . . .
ऐ दिल नवाज़ प्यार की तस्वीर बन के आ
उल्फत का वास्ता मेरी तकदीर बन के आ . . . .
ऐ दिल नवाज़ प्यार की तसवीर बन के आ
उल्फत का वास्ता मेरी तकदीर बन के आ
दामाने इश्क फैला है खैरात के लिए . . . .
दामाने इश्क फैला है खैरात के लिए
बेचैन हूं मैं तेरी मुलाकात के लिए
उठा दे रुख से पर्दा, तुझे देखना भी शराब है
उठा दे रुख से पर्दा, ...
तेरी बंदगी तो अलग रही, तुझे देखना भी शराब है

इतना सिला. . . .
इतना सिला तो प्यार का ए दिलनवाज़ दे
हुस्ने करम से अपने मुझे भी नवाज़ दे
तू मेरे दिल के शौक का परवरदिगार है
अब आजा कि मुझे तेरा इंतजार है
जो खफा न हो तो मैं ये कहूं. . . .
जो खफा न हो तो मैं ये कहूं
मेरा इश्क है तेरा आइना
जिसे तू समझता है दिलबरी
वो मेरी नजर का शबाब है
यही रस्मे-राजो-नियाज है. . . .
यही रस्मे-राजो-नियाज है
मैं खता करूं तू करम करे. . . .
मैं खता करूं तू करम करे
न मेरी खता का जवाब है
न तेरे करम का हिसाब है
मैं खता करूं तू करम करे
न मेरी खता का जवाब है
न तेरे करम का हिसाब है
तुझे देखना भी शराब है,. . . .
तेरी बंदगी तो अलग रही, तुझे देखना भी शराब है

इस्लाम की देनगियों में से एक देनगी है कि न तो मेरे पापों का कोई जवाब और न तेरे करम का; न तेरे रहम का; न तेरी करुणा का। मैं लाजवाब हूं गलतियां करने में और तू लाजवाब है क्षमा कर देने में। इसलिए पश्चात्ताप का इस्लाम में कोई स्थान नहीं है। क्या पीछे लौट कर देखना ? क्या की गयी भूलों की बार-बार सोचना-विचारना ? सच तो यह है कि जिन भूलों को तुम बार-बार पछताते हो, पछताने के कारण और उनको मजबूत कर लेते हो। क्योंकि जितनी तुम अपने चित्त में पुनरुक्ति करते हो, उतने ही आत्म-सम्मोहित होते चले जाते हो। तुम फिर-फिर वही करोगे। लाख तय करो कि अब क्रोध न करूंगा, और जितना तुम तय करोगे कि क्रोध न करूंगा, उतना ही क्रोध तुम करोगे। क्योंकि तुम्हारे तय करने में अहंकार बैठा है।

और अहंकार ही क्रोध का कारण है; जरा इस रहस्य को समझने की कोशिश करना।

क्रोध करता कौन है ? तुम नहीं करते हो, अहंकार । अहंकार क्रुद्ध हो जाता है। और अहंकार ही पश्चात्ताप कहता है । और अहंकार ही करता है--यह मैंने क्या कर लिया ? और क्यों कहता है अहंकार ? इसलिए कहता है कि जब पीछे से तुम सोचते हो कि मैंने यह क्या किया, लोग क्या कहेंगे ! मेरी प्रतिष्ठा थी, एक प्रतिमा थी, खंडित हो गयी । अब तक लोग कहते थे कि मैं कितना शांत; अब तक लोग कहते थे मैं कितना विनम्र; अब क्या कहते होंगे ? यह मैंने क्या कर लिया ?! जरा-सी बात थी, मैंने क्यों इतनी-सी बात के लिए इतना उपद्रव मचा दिया ? अब तुम अहंकार को फिर से खड़ा कर रहे हो--जो गिर गया । जो प्रतिमा खंडित हो गयी, उसको फिर जोड़ रहे हो । अब तुम पश्चात्ताप करोगे । तुम क्षमा मांगोगे ।

जैन-धर्म में क्षमा मांगने का बड़ा महत्त्व है । पर्यूषण पर्व के बाद--' मिच्छामि दुक्कणम् ' ! क्षमा करो ! और कुछ फर्क पड़ता नहीं, वही के वही आदमी, वही का वही काम फिर करेंगे, हर साल फिर क्षमा मांगेंगे । तो पिछली साल की क्षमा का क्या हुआ ? मांग ली एक दफा, बात खतम हो गयी थी, फिर दोबारा कैसे भूलें कीं ? अब काहे के लिए क्षमा मांग रहे हो ? और यह तो तुम हमेशा से कर रहे हो, हर साल कर रहे हो । यह गोरख-धंधा बंद करो ! भूल करनी हो भूल करो, क्षमा मांगनी हो क्षमा मांगो, मगर दोनों क्यों चला रहे हो !

लेकिन गहरा राज है । वह क्षमा मांगना फिर से क्रोध करने का, फिर से भूल करने का उपाय है । यूं जैसे कि गंगा में गये, स्नान कर लिया, पाप धुल गये, अब फिर मजे से करो ! अब क्या है डर ! अब तो साफ-सुथरे, पाक हो कर आ गये ! बिलकुल पाकिस्तानी हो कर आ गये गंगा में स्नान कर के ! अब क्या है, अब दिल खोल कर करो ! और फिर अगली साल जा कर नहा आना ! अरे, गंगा कोई भागी थोड़े ही जा रही है ! और फिर जो बहुत होशियार हैं, उन्होंने और-और नदियां बना ली हैं--नर्मदा है, गोदावरी है; कोई गंगा ही जाना जरूरी है ! और जो और बहुत होशियार हैं, वे कहते हैं : दिल चंगा तो कठौती में गंगा ! अरे, कहां जा रहे हो ? यहीं घर की कठौती,...हर-हर महादेव ! ...यहीं अपना गंगा हो गयी, खतम हो गया ! रोज अपना सुबह धो लिया; दिन भर किया, फिर सुबह धो लिया । सो मरते वक्त जैसे कबीर कह गये, तुम भी धर देना अपनी चदरिया : ज्यों की त्यों धरि दीन्ही चदरिया ! क्योंकि रोज-रोज तो धोयी, कठौती में गंगा थी !

इस्लाम में पश्चात्ताप के लिए जगह नहीं है । क्योंकि पश्चात्ताप भी अहंकार है । पश्चात्ताप अहंकार की पुनर्स्थापना है । और जिस अहंकार से क्रोध हुआ, पाप हुआ, उसकी पुनर्स्थापना कर रहे हो; उसकी फिर सजावट दे रहे हो; फिर उसको इंजेक्शन दे रहे हो दवा का कि फिर उसमें बल आ जाए, फिर प्राण आ जाए । फिर बी विटामिन की गोलियां उसको खिला रहे हो ! वह और अकड़ कर खड़ा हो जाएगा । अब की बार और बड़ा पाप करेगा । क्योंकि उसको राज भी हाथ लग गया कि क्षमा मांग ली, बात खतम हो जाती है । सस्ता नुस्खा !

एक देहाती पहली दफा एम. पी. हो कर दिल्ली पहुंच गया, पार्लियामेंट में । सीधा-सादा देहाती आदमी...और पार्लियामेंट तो तुम हमारी समझ ही लो, कि सब छंटे हुए पागल वहां इकट्ठे हैं...सो दृश्य देख कर वह बहुत चौंका । उसकी समझ में ही न आया कि पार्लियामेंट में आया है या किसी सर्कस में आ गया है, कि किसी पागलखाने में आ गया है । और एक और मजे की बात, कि हर कोई उसे हुद्दा-हुद्दी करे ! कोई भी धक्का मार दे और धक्का मार कर कहे--' सारी ' ! यह भी मजा है ! जो भी धक्का मारे, कोई उसके पैर पर पैर रख दे और कह दे--' सारी ' ! यह भी एक मजा है, बस बात खतम ! सो फिर उसने भी देखा आव न ताव और एक चांटा एक एम. पी. को लगाया और कहा--' सारी ' ! जो देखो वही धक्का मार रहा है--और बस इतना ही कहना पड़ता है, मामला खतम, फिर कुछ आगे बात चलती नहीं, फिर धक्का मारने को स्वतंत्र ।

तुम जरा अपनी जीवन की शैली को देखो ! धक्के भी मारे जाते हो, क्षमा भी मांगते चले जाते हो । और क्षमा मांग कर फिर धक्का मारते हो । इस सबके पीछे एक कारण है : तुमने अपने को कर्ता मान रखा है ।

इस्लाम कहता है : कर्ता तो सिर्फ परमात्मा है । जो वह करवा रहा है, हम कर रहे हैं; क्या पश्चात्ताप ? क्या पाप, क्या पुण्य ?

ऐसा जिसने अपने को सर्मपित किया हो, वही समझ पाएगा उसकी करुणा को । समर्पण में ही उसकी करुणा से संबंध जुड़ जाता है ।

'ए पैगंबर, लोग तुम्हें खुदा का बेटा कहते हैं. . . ., कुल हुवल्लाहु अहद । अल्ला-हुस्समद । . . . और वे तुमसे खुदा का हाल पूछते हैं, तो तुम उनसे कहो कि वह अल्लाह एक है और अल्लाह बेनियाज है । ' उसे तुम्हारे मानने की कोई जरूरत नहीं है, कि तुम उस पर आस्था करो । वह तुम्हारी आस्था पर निर्भर नहीं है । न तुम्हारे पुण्यों पर निर्भर है । न तुम्हारी प्रार्थनाओं की उसे कोई आवश्यकता है । न तुम्हारी स्तुतियों से कुछ प्रयोजन है । उसे किसी की कोई जरूरत नहीं है । वह स्वयंभू है ।

' न उसका कोई बेटा है ' ।

और ध्यान रखना, ... मुहम्मद को अंतर्वाणी कह रही है कि ध्यान रखना, ... ' न उसका कोई बेटा है और न वह किसी से पैदा हुआ है । ' यह अस्तित्व किसी से पैदा नहीं हुआ है । यह सदा से है और सदा होगा । यह पैदा होने की बात ही मूढ़तापूर्ण है । यह धारणा कि कभी परमात्मा ने जगत को बनाया, एक दूसरी गल्ती को जन्म देती है । तब सवाल उठने लगता है कि फिर परमात्मा को किसने बनाया ? क्योंकि जो लोग यह दलील देते हैं कि परमात्मा ने जगत को बनाया, उनके दलील

देने का कारण क्या होता है, दलील का आधार क्या होता है ? दलील का आधार यह होता है कि कोई भी चीज बिना बनायी नहीं हो सकती, किसी ने बनायी होगी। यही तो उनकी दलील का आधार होता है। इतना विराट अस्तित्व--किसी ने जरूर बनाया होगा--हो कैसे सकता है ! इतना जटिल, इतना सूक्ष्म, और इतना सुसंबद्ध चल रहा है सारा व्यापार विश्व का, जरूर इसके पीछे कोई चलाने वाला होगा !

नास्तिक कहता है, 'ठीक ! स्वीकार करते हैं। फिर हम पूछते हैं कि परमात्मा ने जगत बनाया तो परमात्मा को किसने बनाया ?' तुम्हारा ही तर्क है। जब जगत तक को बनाने के लिए परमात्मा की जरूरत है, तो परमात्मा तो और भी जटिल, और भी सूक्ष्म; उसको किसने बनाया ? और वहीं तुम्हारी आस्तिकता घुटने टेक देती है और तुम को कहना पड़ता है--'उसको किसी ने नहीं बनाया।' अगर यही बात है कि उसको किसी ने नहीं बनाया, तो फिर अस्तित्व को ही बनाने की क्या जरूरत है ? तुम्हारा तर्क ही गलत हो गया। तुम बेईमानी कर रहे हो। या तो तर्क न दो ऐसा। और तर्क देते हो तो फिर तर्क की पूरी निष्पत्ति पर जाओ।

अस्तित्व और परमात्मा दो नहीं हैं--एक ही हैं। परमात्मा अस्तित्व का ही प्रेमपूर्ण नाम है। जिन्होंने अस्तित्व को प्रेम की नजर से देखा है, उनके लिए 'परमात्मा', और जिन्होंने अस्तित्व को सिर्फ तर्क की नजर से देखा है, उनके लिए 'अस्तित्व'। मगर बात एक ही है। अस्तित्व तो वही है, चाहे तुम प्रेम की नजर से देखो और चाहे तर्क की नजर से देखो। बुद्धि से देखो तो प्रकृति और हृदय से देखो तो परमात्मा।

न तो यह किसी से पैदा हुआ है और न यह किसी को पैदा करता है। 'उसका कोई बेटा नहीं है। और न कोई उसकी बराबरी का है।' क्योंकि उसके अतिरिक्त कुछ है ही नहीं, तो कोई बराबरी का कैसे होगा ? वही है। अकेला है। एक है। कोई दूजा है नहीं। तुलना का कोई उपाय नहीं है। न उससे कोई छोटा है, न उससे कोई बड़ा है। बराबरी का भी कोई नहीं। कोई है ही नहीं;--एक ही है। वही तुम में व्याप्त है, वही मुझमें व्याप्त है; वही वृक्षों में, वही फूलों में, वही चांद-तारों में। बस एक ही मौजूद है। इस 'मौजूद जो है', इसको ही जिन्होंने जाना है, प्रेम से पहचाना है, इस अस्तित्व की करुणा को जिन्होंने अनुभव किया है, उन्होंने इसे परमात्मा कह कर पुकारा है।

'बिस्मिल्लाहिर् रहमानिर् रहीम। पहले-पहल नाम लेता हूं अल्लाह का, जो रहमान है, रहीम है, महाकरुणावान है !' जो करुणा का ही दूसरा नाम है। 'कुल हुवल्लाहु अहद।' ए पैगंबर, तुम्हें खुदा का बेटा कहते हैं लोग, सावधान ! इस भ्रांति में मत पड़ जाना। 'अल्लाहुस्समद।' और वे तुमसे हाल भी पूछेंगे खुदा का, क्योंकि कहेंगे तुम बेटे हो, इसलिए खुदा का हाल दो। तो तुम उनसे कहना : अल्लाह एक है,

और अल्लाह बेनियाज है।

'लम् यलिद, वलम् युलद्;
व लम् यकुल्लहू कुफवन् अहद् ।।'

'उसे किसी से कोई गरज नहीं।' वह आप्तकाम है। उसकी कोई आकांक्षा नहीं तो गरज कैसे होगी ? वह आकांक्षाओं के पार है। उसे कुछ पाना नहीं है। वह परम तृप्त है। 'न उसका कोई बेटा है, न वह किसी से पैदा हुआ है और न उसकी कोई बराबरी का है।' क्योंकि वह एक है। दूसरा है ही नहीं।

छोटा-सा सूत्र है, सीधी-सादी भाषा में कहा गया है। मगर समझने चलो तो जीवन के बहुत-से रहस्य खोलेगा।

कुरान को पढ़ने के लिए बड़ा सीधा-सादा हृदय चाहिए, मुहम्मद जैसा।

दूसरा प्रश्न : भगवान, आप संन्यास और गैरिक पर बहुत बल देते हैं, लेकिन श्री जे. कृष्णमूर्ति न तो संन्यास की दीक्षा देते हैं और न गैरिक को ही महत्व देते हैं, वरन वे इन्हें गलत मानते हैं। और आप कहते हैं कि कृष्णमूर्ति बुद्धपुरुष हैं। कृपया बताएं कि दो समसामयिक बुद्धपुरुषों में संन्यास और गैरिक के प्रश्न पर कौन सही है ?

पार्थ सारथी ! मेरे हिसाब में, मेरी तरफ से तो कृष्णमूर्ति सही हैं। लेकिन तुम्हारे लिए मैं सही हूं। तुम देख ही रहे हो कि न तो मैंने गैरिक वस्त्र पहने हैं और न मैं संन्यासी हूं ! लेकिन तुम्हारे लिए कृष्णमूर्ति सही नहीं हैं। तुम्हारे लिए मैं सही हूं।

सत्य की अभिव्यक्ति सापेक्ष होती है।

बुद्ध से एक व्यक्ति ने पूछा, 'ईश्वर है ?' बुद्ध ने कहा, 'नहीं।' और उसी दिन दोपहर को दूसरे व्यक्ति ने पूछा, 'ईश्वर है ?' और बुद्ध ने कहा, 'है।' और उसी दिन सांझ को तीसरा आदमी आया और उसने पूछा, 'क्या ईश्वर के संबंध में मुझे कुछ समझाएंगे ?' और बुद्ध कुछ न बोले। उन्होंने आंख बंद कर ली। वह आदमी भी आंख बंद कर के बैठा रहा। थोड़ी देर बैठा रहा, फिर उठा, उसने बुद्ध के चरण छुए और कहा कि धन्यवाद, आपके उत्तर के लिए धन्यवाद !

आनंद, जो बुद्ध के साथ छाया की तरह रहता था, सदा चौबीस घंटे उनकी सेवा में तत्पर, उसने ये तीनों बातें सुनी थीं--सुबह, दोपहर, सांझ। चकित था। उलझन में पड़ा था। सबके सामने तो कुछ पूछ नहीं सकता था, लेकिन रात जब बुद्ध अकेले रह गये, जैसे ही बुद्ध लेटने को हुए, आनंद ने कहा कि इसके पहले कि आप सोएं, मुझे निश्चित कर दें। नहीं तो मैं रात भर सो न सकूंगा। आप मेरा भी तो कुछ

ख्याल किया करें ! जिन तीन आदमियों को आप ने तीन उत्तर दिये, उनको तो यह पता नहीं है कि दूसरे को आपने क्या कहा, मुझे तो तीनों के उत्तर पता हैं ! मेरी मुसीबत तो समझें ! मैं सो न पाऊंगा। कौन सही था ? किसको आपने ठीक उत्तर दिया था ? और आप किसी को गलत उत्तर क्यों देंगे, यह भी सवाल उठता है। आप और गलत क्यों बोलेंगे !

बुद्ध ने कहा, 'देख आनंद, पहली तो बात उसमें से कोई भी उत्तर तेरे लिए दिया नहीं गया। दूसरों से जो कहा, उसको सुनना उचित बात नहीं। यह तो यूं हुआ जैसे कोई दूसरे की चिट्ठियां खोल कर पढ़ ले। यह बात नाजायज है।'

आनंद ने कहा, 'आप भी हद करते हैं ! अरे, अब मैं वहां बैठा हूं, मेरे कान हैं। किसी की चिट्ठी खोल कर मैंने पढ़ी नहीं, मगर कान हैं, अब इनको तो बंद करने का भी उपाय नहीं। परमात्मा ने भी आंखों को तो बंद करने का उपाय दिया है कि मत देखो, कान को खुला छोड़ दिया है, बंद करने की कोई जगह नहीं ! अब मैं करता भी क्या ! आप बोलते थे सो मैं सुनता था। मैंने सुनना नहीं चाहा था, मगर सुनाई पड़ गया। और अब जो हो गया है सो हो गया है, मगर हल कर दें, ताकि मैं भी निश्चित हो कर सो जाऊं। दिन भर उधेड़बुन में लगा रहा। एक से कहा कि ईश्वर है, एक से कहा नहीं है, और तीसरे के साथ चुप ही रह गये !'

बुद्ध ने कहा, सत्य सापेक्ष है। जिससे मैंने कहा, ईश्वर है, वह नास्तिक था। वह मानता है कि ईश्वर नहीं है। जानता नहीं है, सिर्फ मानता है। बकवासी है, तार्किक है। उसके तर्कजाल को गिराने के लिये मैंने कहा, ईश्वर है। क्योंकि अगर मैं उससे कहता, ईश्वर नहीं है, तो वह अपने अहंकार को और भरपूर अनुभव कर के लौटता; वह कहता, मैं ही सही नहीं हूं, बुद्ध भी मेरे समर्थन है, है। मैं मुझे उसकी धारणाओं को तोड़ना पड़ा। मुझे उसकी धारणाओं को खंडित करना पड़ा। मुझे कहना पड़ा, ईश्वर है। वह नास्तिक था, इसलिए ही कहना पड़ा कि ईश्वर है।

और दूसरा आस्तिक था, उसने भी जाना नहीं है, वह भी उसी हालत में था जिसमें पहला। न उसने जाना, न इसने जाना। लेकिन यह मानता है, है। मैं इसकी अननुभूत धारणा को समर्थन नहीं दे सकता हूं। तो मुझे कहना पड़ा, नहीं है। उसकी भी मैंने धारणा तोड़ी, इसकी भी धारणा तोड़ी। मेरा काम तो वही था, दोनों के साथ, तुझे लगा कि मैं उल्टी बातें कर रहा हूं, मैं तो एक ही काम कर रहा था--धारणा तोड़ रहा था। एक की धारणा थी ईश्वर की, वह मैंने तोड़ी। एक की धारणा थी अनीश्वर की, वह मैंने तोड़ी। मैंने तो दोनों पर अपनी हथौड़ी चलायी। अगर तू समझ सके तो मैंने अलग-अलग उत्तर नहीं दिये। मेरा तो काम एक ही था कि दोनों की धारणाएं गिर जाएं, ताकि दोनों खोज की यात्रा पर निकल जाएं। धारणाएं न गिरें तो खोज की यात्रा नहीं होती।

और फिर तीसरा जो आदमी आया था, उसकी कोई धारणा न थी। उस पर, चोट करने का सवाल नहीं था। वह सच में ही जिज्ञासु था। विश्वासी नहीं था, खोजी था। तो मैं आंख बंद करके चुप हो रहा। और वह मेरा इशारा समझ गया। जिसकी कोई धारणा नहीं है, वह बड़ी जल्दी इशारा समझ लेता है। जिसकी धारणा है, अगर उसके पक्ष में कही जाए बात तो जल्दी से छाती से लगा लेता है, और कहता है--अहह ! असल में वह अहह अपने लिए कह रहा है। वह यह कह रहा है, अहह, मैं कितना ठीक था ! यही तो मेरी मान्यता है ! और अगर उसकी धारणा को गलत कहा जाए, तो एक तो वह सुनता ही नहीं, इनकार ही करता है--भीतर कहता है कि नहीं, यह गलत है--भीतर ही नहीं घुसने देता। और अगर घुसने भी दे, तो उसे अपना रंग दे देता है, अपना ढंग दे देता है; किसी तरह तोड़-मरोड़ कर लेता है, विकृत कर लेता है। लेकिन इस व्यक्ति की कोई धारणा न थी जो सांझ को आया था। यह बड़ा निश्छल व्यक्ति था। बड़ा निर्दोष। बड़ा जिज्ञासु। मैंने आंख बंद कीं, वह इशारा समझ गया। उसने पूछा था कि ईश्वर है या नहीं ? यह उसका सच्चा प्रश्न था, प्रामाणिक प्रश्न था। कोई पूर्वाग्रह न था। तो मैंने आंख बंद कर ली। वह इशारा समझ गया, उसने भी आंख बंद कर ली। यह मेरा उत्तर था उसके लिए, कि मौन हो जाओ, जान लोगे; चुप हो जाओ, जान लोगे; ध्यान में डूब जाओ, जान लोगे। और इसीलिए जब वह गया तो तूने देखा होगा, आनंद, कि वह धन्यवाद दे कर गया, कि आपने जो उत्तर दिया उसके लिए अनुगृहीत हूं।

और बुद्ध ने कहा,... आनंद बुद्ध का चचेरा भाई था। दोनों साथ-साथ बड़े हुए थे। आनंद बुद्ध से उम्र में थोड़ा बड़ा भी था। और साथ ही पढ़े थे, साथ ही खेले थे, झगड़े थे। दोनों को घुड़सवारी का शौक था। तो बुद्ध ने कहा, 'तू भूल नहीं गया होगा, आनंद, हम दोनों को घुड़सवारी का शौक था। और तू जानता है कि घोड़े चार तरह के होते हैं। एक तो वह घोड़ा होता है कि मारो तो भी टस से मस नहीं होता। किसी तरह मारपीट कर थोड़ा-बहुत चलाओ, फिर-फिर खड़ा हो जाता है। बेशर्म। दूसरा वह घोड़ा होता है कि मारो तो चलता है, न मारो तो नहीं चलता। थोड़ी शर्म होती है। तीसरा वह घोड़ा होता है : मारना नहीं पड़ता, सिर्फ कोड़े को फटकारना पड़ता है। सिर्फ कोड़े की आवाज--चटक--पर्याप्त है और घोड़ा चलता है। और चौथा वह घोड़ा होता है, उसे कोड़े की फटकार भी देने की जरूरत नहीं, उसे कोड़े की छाया भी काफी होती है। कोड़ा मौजूद है, यह भी काफी होता है। छाया भी काफी होती है। और ऐसे ही चार तरह के आदमी होते हैं। और उन चारों के लिए मुझे अलग-अलग ढंग से आयोजन करना होता है, अलग-अलग ढंग से उपाय करना होता है।'

पार्थ सारथी, तुम पूछते हो : 'आप संन्यास और गैरिक पर बहुत बल देते हैं, लेकिन कृष्णमूर्ति न तो संन्यास की दीक्षा देते हैं, न गैरिक को ही महत्व देते हैं, वरन वे इन्हें गलत मानते हैं। और आप कहते हैं कृष्णमूर्ति बुद्धपुरुष हैं।' निश्चित ही वे बुद्धपुरुष हैं। 'और फिर बताएं कि दो समसामयिक बुद्धपुरुषों में संन्यास और गैरिक के प्रश्न पर कौन सही है?'

तुम्हारे लिए तो कृष्णमूर्ति गलत हैं। सावधान रहना! मेरे लिए सही हैं। मेरे लिए इसलिए सही हैं कि मैं भी उस किनारे पर खड़ा हूं जिस किनारे पर वे खड़े हैं—दूसरे किनारे पर। तुम इसी किनारे पर हो। मैं तुमसे कहता हूं : नाव पकड़ लो, तो तुम भी इस किनारे आ जाओगे। नाव में बैठ जाओ! लेकिन कृष्णमूर्ति तुमसे डरते हैं; क्योंकि कई लोगों को उन्होंने नाव में बैठते देखा है—बैठ तो जाते हैं, फिर उतरते नहीं। बैठे सो बैठे! अरे, फिर क्या उतरना! जब बैठ ही गये तो फिर क्या उतरना!

मैंने सुना है, अमृतसर के स्टेशन पर बड़ा झगड़ा-झांसा मचा हुआ था।... अमृतसर का स्टेशन वैसे ही झगड़ा-झांसा! कब कृपाणें निकल आएं, कुछ कहा नहीं जा सकता!

मैं एक दफा अमृतसर गया, तो स्टेशन पर कोई दो सौ लोग मेरे विरोध में इकट्ठे खड़े थे—डंडे लिए, काले झंडे लिए, कि वापिस लौट जाओ! और मेरे पक्ष में भी कोई चार-पांच सौ लोग इकट्ठे थे। झगड़ा बिलकुल निश्चित था। पांच सौ मुझे लेने आए थे, कि चाहे कुछ भी हो जाए, आना ही है आपको! और उनमें तीन निहंग सिक्ख थे। वे तीनों नंगी कृपाणें लिए हुए सामने खड़े थे, कि अगर किसी ने जरा भी गड़बड़ की तो गर्दनें कट जाएंगी।

मैंने कहा, इस छोटी-सी बात पर इतना क्या उपद्रव करना! अगर इन लोगों की इच्छा है कि जाऊं, तो मैं चला जाता हूं। क्यों तलवारें खींचनी?

उन्होंने कहा, कभी नहीं! हम आपको जाने न देंगे! तलवारें खिंच चुकी हैं, अब म्यान के भीतर नहीं जाएंगी। आज खून बहेगा!

मैंने कहा, तुम्हारी मर्जी! फिर कोई बात नहीं! जब खून ही बहना है और मेरे जाने पर भी बहेगा, तो फिर मेरे आने पर ही बह जाए—कोई बात नहीं!

तो पहले ही मौके पर मेरे सामने तीन आदमी कृपाण लिए नंगी, तीन मेरे पीछे कृपाण लिए, और पांच सौ आदमी डंडे लिए। ऐसा अमृतसर की स्टेशन पर मेरा स्वागत हुआ! फिर दोबारा मैं गया नहीं! मैंने कहा ऐसी बेवकूफी में मुझे पड़ना नहीं!

तो अमृतसर के स्टेशन की यह कहानी है कि वहां बड़ा झगड़ा मचा हुआ था। एक सरदार जी को लोग बिठालने की कोशिश कर रहे थे डिब्बे में, वे निकल-निकल

कर बाहर आ रहे थे। आखिर मित्रों ने कहा कि भई, चलना है तुम्हें कि नहीं चलना है? बामुश्किल तो हम तुम्हें भीतर कर पाते हैं, तुम बाहर निकल जाते हो!

उन्होंने कहा, एक बात पक्की हो जाए, कि फिर उतारोगे तो नहीं? क्योंकि मैं बैठा तो बैठा, फिर उतरूंगा नहीं।

उन्होंने कहा कि इसमें क्या है, कौन उतारेगा, क्यों उतारेगा? उन्होंने समझा कि यह शायद कह रहा है कि बीच में कहीं उतार न देना। तो उन्होंने कहा, बराबर, कोई नहीं उतारेगा।

दिल्ली स्टेशन पर झगड़ा फिर मचा। क्योंकि अब दिल्ली उतरना था और मित्र उनको फिर खींचने लगे। उन्होंने कहा, मैंने पहले ही कहा था! अरे, जब बैठ ही गये तो बैठ ही गये! अब मैं उतरूंगा नहीं। अरे, जब उतरना ही था तो चढ़े ही क्यों!

उनका भी तर्क ठीक है—सरदारी तर्क—कि जब उतरना ही था तो चढ़े ही क्यों! और जब चढ़ ही गये तो अब कौन उतारने वाला है? देखें, कौन माई का लाल मुझ उतारता है! कृपाणें चल जाएंगी!

यही तर्क है लोगों का, पार्थ सारथी! कुछ लोग हैं जो नाव में बैठ गये हैं, अब उतरते नहीं हैं। दूसरा किनारा भी आ जाता है तो भी वे नाव में ही बैठे हैं। दिल्ली आ गयी मगर वे गाड़ी में से नहीं उतरते। उनका नाव से मोह हो गया। वे कहते हैं, यह नाव हमें यहां तक लायी है, इसको यूं छोड़ दें! यह प्यारी नाव—हिंदू धर्म की नाव, इस्लाम की नाव, बौद्ध-धर्म की नाव, जैन धर्म की नाव—यहां तक लायी, अरे, भवसागर तिरा दिया, अब उतर जाएं! यह तो अनुग्रह नहीं होगा! यह तो बड़ी कृतघ्नता होगी! नहीं, कभी नहीं उतरेंगे! इसी नाव में रहेंगे। और अगर उतरेंगे भी तो नाव को सिर पर ले कर चलेंगे, क्योंकि इसने इतनी कृपा की।

कृष्णमूर्ति डरे हैं इससे कि तुम नाव पकड़ लो तो कहीं ऐसा न हो कि फिर छोड़ने में समर्थ न रह जाओ। कृष्णमूर्ति का भय अकारण नहीं है। कृष्णमूर्ति ने आज से पचास-साठ साल पहले काम शुरू किया। तो कृष्णमूर्ति के सामने जो अनुभव था—मेरे संन्यासियों का तो था नहीं। अगर मेरे संन्यासियों का अनुभव कृष्णमूर्ति को होता तो जो वे कहते हैं, उन्होंने कभी कहा नहीं होता। और मेरे संन्यासियों के सामने जब बोलते हैं तब भी उनको वही संन्यासी याद आता है—गैरिक वस्त्र! और गैरिक वस्त्र देखते ही से उनकी वही हालत हो जाती है, जो बैल के सामने लाल झंडी दिखा दो!.... लाल झंडी ने इतनी तकलीफ दी है पहले! हजारों साल का इतिहास है गैरिक वस्त्र के पीछे। इस जाल में बहुत लोग फंस गये और नावें ढोते रहे। पकड़ गये। मुक्त होने चले थे और कैदी हो गये। तो कृष्णमूर्ति का जो परिचय है, वह परंपरागत संन्यास से है। वे उसके विरोध में हैं। उसके विरोध में मैं भी हूं।

लेकिन मेरी अपनी दृष्टि यह है—और वह दृष्टि, पार्थ सारथी, कृष्णमूर्ति को

मानने वालों के कारण पैदा हुई। जैसे कृष्णमूर्ति को दृष्टि जो पैदा हुई वह शंकराचार्य और रामानुजाचार्य और निम्बार्काचार्य और वल्लभाचार्य, इनके संन्यासियों के कारण पैदा हुई। क्योंकि इन्होंने देखा कि ये संन्यासी तो मूढ़ हो कर रह गये हैं, मतिमंद, बिलकुल ही इनकी बुद्धि जड़ हो गयी है। इन्होंने तो बस, गैरिक वस्त्र क्या पहन लिए, समझते हैं कि ये मुक्त हो गये। बस, इतना काफी है जैसे! वस्त्रों में ही अटक गये। जैसे वस्त्र बदल लिए तो सब बदल गया, क्रांति हो गयी!

क्रांति आत्मिक होती है, कपड़े बदलने से नहीं हो जाती। तो कृष्णमूर्ति ने कोशिश की कि तुम कपड़ों में न अटको, आत्मा को बदलो। लेकिन कृष्णमूर्ति के पास जो लोग इकट्ठे हुए पचास साल में, उनका मुझे अनुभव है। उनको देख कर मैं कहता हूं कि कृष्णमूर्ति के पास अहंकारी इकट्ठे हो गये। यह मनुष्यजाति का हमेशा का दुर्भाग्य है—क्योंकि अहंकारी अपने ढंग से सोचने लगा। कृष्णमूर्ति के पास शिष्य होना नहीं है, दीक्षा लेनी नहीं है, झुकना है नहीं, कृष्णमूर्ति के पैर छूना नहीं, कोई संन्यास नहीं—अहंकारी को बहुत बात जंची। अहंकारी ने कहा कि यह बात बिलकुल ठीक है! अहंकारी इसी से तो डरता है कि कहीं झुकना न पड़े, कहीं सर्मापत न होना पड़े, कहीं दीक्षित न होना पड़े, किसी का शिष्य न बनना पड़े। अहंकार को बड़े से बड़ा कष्ट यही है।

कृष्णमूर्ति ने बात तो ठीक कही थी कि कहीं बुद्धू की तरह कपड़ों में ही न बंधे रह जाना। मगर वे बुद्धुओं के लिए तो खतरनाक थे कपड़े, लेकिन दूसरे तरह के बुद्धू भी हैं यहां—अहंकारी। यहां तरह-तरह के बुद्धू हैं। बुद्धू कई प्रकार के, कई साइजों में, कई तरह के डब्बों में आते हैं! तरह-तरह के लेबिल हैं उनके। कोई बुद्धू एक तरह के होते हैं! अरे, जितने तरह के बुद्ध होते हैं उतने ही तरह के बुद्धू भी होते हैं। क्योंकि बुद्धुओं में ही से तो आखिर कोई बुद्ध होता है। तो एक तरह के बुद्धुओं से बचाया, दूसरे तरह के बुद्धुओं ने उनको घेर लिया। उन्होंने परंपरा से बचाया, तो जो परंपरा-विरोधी थे, उन्होंने घेर लिया। परंपरावादी भी उतना ही अंधा था, परंपरा-विरोधी भी उतना ही अंधा है।

मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, हमें आपकी बात समझ में नहीं आती। कभी तो एक सूत्र का वेद का आप समर्थन कर देते हैं, कभी दूसरे सूत्र का खंडन कर देते हैं। वह कहता है, या तो समर्थन ही करो, या खंडन ही करो! दो में से कोई एक बात करो। अब जैसे कुरान के इस सूत्र का मैंने समर्थन किया, लेकिन कुरान में ऐसे सैकड़ों सूत्र हैं कि अगर तुम ले आए, तो मैं उनकी बिलकुल धज्जी उड़ा दूंगा! तब तुम दिक्कत में पड़ोगे। तब तुम कहोगे, यह बात बड़ी गड़बड़ हो गयी। कि अगर आप खिलाफ हो तो पूरे के खिलाफ। मगर मैं क्या करूं! मैं तो सिर्फ खिलाफ गलत के होऊंगा! वह कहीं भी हो। कुरान में हो, वेद में हो, गीता

में हो, धम्मपद में हो—कहीं भी हो। और मैं जिसके पक्ष में हूं, वह कहीं भी हो, मैं उसका पक्ष करूंगा। मैं कोई अरबी, संस्कृत, पाली और प्राकृत से मुझे लेना-देना नहीं है; मुझे बुद्ध, महावीर और कृष्ण से भी कुछ लेना-देना नहीं है, मुझे लेना-देना है तो सत्य से है। तो मैं सत्य को छांट लेता हूं।

परंपरा के विपरीत कृष्णमूर्ति का प्रयोग ठीक था, लेकिन परंपरा में हीरे भी हैं, कचरा ही नहीं। माना कि कचरा बहुत है, और माना कि हीरे बहुत कम हैं, लेकिन कचरे के पूरे ढेर में अगर एक कोहिनूर हीरा भी हो, तो भी, वह कोहिनूर हीरा एक है और कचरा बहुत है, तो भी उसी कोहिनूर हीरे का मूल्य है। कचरे को जला डालो, कोहिनूर को बचा लो!

अंग्रेजी में कहावत है कि बच्चे को नहलाओ तो पानी के साथ, गंदे पानी के साथ बच्चे को मत फेंक देना। गंदे पानी को जरूर फेंकना है, क्योंकि जब बच्चा नहा लिया तो पानी गंदा हो गया, अब उसको फेंक ही देना है। मगर कुछ लोग हैं जो कहते हैं कि ऐसा कैसे कर सकते हैं! अरे, इसी पानी ने तो बच्चे को शुद्ध किया! इसको हम फेंक दें! यह तो गंगाजल है! इसको तो सम्हाल कर रखेंगे। ऐसी प्यारी चीज, इतनी उपकारी चीज, इतनी कल्याणकारी चीज, मंगलदायी, इसको फेंक दें! कभी नहीं! इसको तो हम रखेंगे सम्हाल कर!

और दूसरे लोग हैं, जो गंदा पानी फेंकने को इतने उत्सुक हैं कि वे कहते हैं इस बच्चे को भी फेंको, यह झंझट ही मिटाओ! यह बच्चा रहेगा तो फिर गंदा करेगा।

पुराने लोगों ने बच्चे के साथ गंदा पानी बचा लिया था और कृष्णमूर्ति ने गंदे पानी के साथ बच्चा भी फेंक दिया। मेरा कहना इतना है, भैया, बच्चे को बचा लो, गंदे पानी को फेंक दो! मगर तुम कहते हो, इसमें विरोधाभास आ जाता है।

मुझे जो भी परंपरा में सुंदर है, उसे बचाना है और जो भी असुंदर है, उसे आग लगा देनी है। इससे मुझसे दोनों तरह के लोग नाराज होंगे। परंपरावादी मुझसे नाराज होगा, क्योंकि मैं उसकी पूरी परंपरा स्वीकार नहीं करता! और परंपरा-विरोधी मुझसे नाराज होगा, क्योंकि मैं उसकी पूरी गैर-परंपरावादी धारणा स्वीकार नहीं करता। मैं तो सत्य को ही स्वीकार करता हूं। वह पुराना हो, नया हो, इससे क्या लेना-देना है! सत्य क्या पुराना होता है या नया होता है?

कृष्णमूर्ति ने इन कपड़ों का विरोध किया, क्योंकि इन कपड़ों के कारण बुद्धुओं ने इस देश की छाती पर बहुत मूंग दली है। और वह विरोध सार्थक था। लेकिन कृष्णमूर्ति दूसरी चीज नहीं देख पाए कि उनके विरोध के कारण उनके पास जो लोग इकट्ठे हुए, वे वस्तुतः धार्मिक लोग नहीं हैं, अहंकारी लोग हैं; अहंकारियों की जमात है। जो अपने को थोथे किस्म के बुद्धिवादी समझते हैं कि बड़े बुद्धिवादी हैं, उस तरह के थोथे लोगों की जमात कृष्णमूर्ति के पास इकट्ठी है। वह इसलिए इकट्ठी

नहीं है कि कृष्णमूर्ति की बातें सच हैं, वह इसलिए इकट्ठी है कि उसके लिए आधार मिल रहे हैं परंपरा के विरोध के; उसके लिए आधार मिल रहे हैं अहंकार को बचाने के लिए।

संन्यास है क्या? अहंकार का विसर्जन। शिष्यत्व है क्या? किसी के चरणों के बहाने अपने को झुकाने की तरकीब। चरण तो बहाने हैं, उनका कोई मूल्य नहीं, निमित्त मात्र हैं। खूंटी पर जैसे कोई कोट टांग देता है। खूंटी न हो तो खीली पर टांग देता है। खीली न हो तो दरवाजा, खिड़की पर टांग देता है। कहीं न हो तो कुर्सी पर टांग देता है। कहीं न कहीं टांगेगा। सवाल खूंटी का नहीं है, सवाल कोट को टांगने का है।

तुम्हारा अहंकार जिस बहाने से भी मिट सके, मिट जाना चाहिए। संन्यास तो सिर्फ एक उपाय है। बुद्ध ने इस उपाय का प्रयोग किया; महावीर ने इस उपाय का प्रयोग किया; शंकराचार्य ने इस उपाय का प्रयोग किया। यह सिर्फ उपाय है। मगर खतरा तो हमेशा है, क्योंकि बुद्धुओं की भीड़ है दुनिया में, वे हर उपाय को अपने सांचे में ढाल लेते है। उन्होंने इन वस्त्रों को जोर से पकड़ लिया। वे यह समझने लगे कि वस्त्र गैरिक हो गये, बात खत्म हो गयी, यात्रा पूरी हो गयी।

यात्रा सिर्फ शुरू होती है वस्त्रों से; आत्मा पर पूरी होती है।

कृष्णमूर्ति इतने परेशान हो गये इस हजारों साल के उपद्रव से कि उन्होंने दूसरी अति पकड़ ली। उन्होंने कहा कि छोड़ो, ये वस्त्र ही खतरनाक हैं! ये वस्त्र खतरनाक नहीं हैं। इन वस्त्रों के पीछे जो बुद्धू आदमी है, वह खतरनाक है। वही बुद्धू आदमी बिना वस्त्रों के भी बुद्धूपन करेगा। कोई वस्त्रों से थोड़े ही बुद्धू होता है! बुद्धू के हाथ में जो भी पड़ जाएगा, उसी के साथ गड़बड़ करेगा। उसको कृष्णमूर्ति की बातें सुनाई पड़ गयीं कि कोई दीक्षा की जरूरत नहीं है, संन्यास की कोई जरूरत नहीं है, शिष्यत्व की कोई जरूरत नहीं है, किसी से समझने की कोई जरूरत नहीं, सत्य तो प्रत्येक के भीतर है।

फिर क्या तुम भाड़ झोंकते हो कृष्णमूर्ति को सुन कर! किसलिए जाते हो सुनने? किसलिए कृष्णमूर्ति को पढ़ते हो? जब सत्य तुम्हारे भीतर है, तो ये कृष्णमूर्ति को पचास साल से सतत सुनने वाले लोग क्या कर रहे हैं? और पचास साल तक तुमको अभी यह भी समझ में नहीं आया कि सत्य तुम्हारे भीतर है; और सत्य के लिए किसी के पास जाने की जरूरत नहीं? तो कृष्णमूर्ति के पास किसलिए जाते हो? जरूर अभी तुम्हें सत्य नहीं मिला है। और तुम्हें किसी के पास जाना पड़ रहा है। लेकिन तुम हो अहंकारी। तुम चाहते हो जाना भी पड़े और यह स्वीकार भी न करना पड़े कि हम किसी के पास गये। बस, यह अहंकार ही तुम्हें डुबा देगा।

तो मैं तुम्हारे लिए तो कहूंगा, पार्थ सारथी, कि मैं सही हूं। तुम्हें संन्यास से

गुजरना होगा। और मैं कहता हूं, नाव को पकड़ने की जरूरत नहीं है, नाव में बैठो! हां, उतरते वक्त धन्यवाद दे देना नाव को, बस काफी है! न नाव को ढोने की जरूरत है, न पकड़ कर बैठ जाने की जरूरत है। सीढ़ी से चढ़ो, दूसरी मंजिल पर पहुंच जाओ तो सीढ़ी छोड़नी ही है। सीढ़ी छोड़नी ही होगी।

जैसे-जैसे तुम्हारा ध्यान गहरा होगा, वैसे-वैसे संन्यास की नाव का काम पूरा होने लगा। जिस दिन तुम्हारे भीतर समाधि लग जाएगी, उस दिन तुम संन्यास से मुक्त ही हो गये। इतने मुक्त हो गये कि तुम्हें गैरिक वस्त्र भी नहीं छोड़ने पड़ेंगे। क्योंकि छोड़ने का भी अगर आग्रह बना रहा तो समझना कि अभी पूरे मुक्त नहीं हुए। अभी थोड़ा-सा लगाव बाकी है, नहीं तो छोड़ने की भी क्या बात है! कोई तो वस्त्र पहनोगे न! हरे पहनोगे, नीले पहनोगे, सफेद पहनोगे, कोई तो वस्त्र पहनोगे, तो गैरिक में क्या हर्जा है! मगर तुम्हारे भीतर से पकड़ चली जाएगी। तुम्हारे भीतर आग्रह नहीं रह जाएगा। छोड़ने की भी अगर जिद रही, तो उसका मतलब यह हुआ कि अभी कहीं-न-कहीं आग्रह शेष है।

जीवन इतना सरल नहीं है जैसा कि लोग समझते हैं। जीवन थोड़ा जटिल है। उसमें चीजें पकड़नी पड़ती हैं और छोड़नी पड़ती हैं। तुम तर्क से सोचो तो वही सरदारी तर्क होगा फिर, कि पकड़ेंगे तो फिर पकड़े रहेंगे; और जब छोड़ना ही है तो फिर पकड़ना ही क्यों!

कृष्णमूर्ति को सुन कर बहुत-से अहंकारियों को बड़ी राहत मिली है। उनको राहत यह मिली कि हमको झुकना नहीं है। मगर इससे कुछ लाभ भी नहीं हो गया। मेरे पास कितने कृष्णमूर्ति को मानने वाले लोग आ कर नहीं स्वीकार किये हैं कि अब हम क्या करें, सब बात समझ में आती है कृष्णमूर्ति की, मगर कोई लाभ तो हो नहीं रहा है, जीवन में कोई क्रांति तो हो नहीं रही है!

तो मैं उनसे कहता हूं कि अब तुम मुश्किल में पड़ोगे। क्योंकि जो तुम्हें उन्होंने समझाया, गलत है; अगर मैं तुमसे कहूं ध्यान करो, तुम फौरन कृष्णमूर्ति का उद्धरण दोगे कि वे कहते हैं ध्यान की कोई जरूरत नहीं। अगर कहूं कि दीक्षा लो, तुम कहोगे, दीक्षा की कोई जरूरत नहीं। संन्यासी बनो; संन्यासी की कोई जरूरत नहीं। और कृष्णमूर्ति को सुन कर कोई लाभ हो नहीं रहा है! अब तुम बड़ी विडम्बना में पड़ गये; तुम बड़ी किंकर्तव्यविमूढ़ अवस्था में आ गये।

कृष्णमूर्ति ने किस को लाभ पहुंचाया? क्या लाभ पहुंचा? कृष्णमूर्ति निश्चित ही बुद्धपुरुष हैं, लेकिन जरूरी नहीं कि हर बुद्धपुरुष लोगों को लाभ पहुंचा सके। लाभ पहुंचाने की कला और बात है। लाभ पहुंचाना एक अलग कला है। लोगों के लिए जगाना एक अलग कला है, खुद जग जाना एक बात है। जो खुद जग गया है, जरूरी नहीं कि दूसरे को जगा सके। कृष्णमूर्ति किसी को नहीं जगा सके हैं। क्योंकि

जगाने की जो प्रक्रिया है, वे उस प्रक्रिया को ही स्वीकार करने को राजी नहीं हैं।

संन्यास जगाने की प्रक्रिया है--साधन मात्र, साध्य नहीं है। साधन की तरह उपयोग कर लो और जब जरूरत न रह जाए, तो बात खत्म हो गयी! जिस दिन तुम समाधिस्थ हो जाओ, प्रबुद्ध हो जाओ, उस दिन संन्यास के वस्त्र रहे कि न रहे, कोई फर्क नहीं पड़ता है। नग्न रहे कि वस्त्र रहे, कुछ फर्क नहीं पड़ता है। लेकिन जब तक वैसी घड़ी न आ जाए, तब तक नाव का उपयोग करना जरूरी है। उस किनारे जाने के लिए नाव अत्यंत आवश्यक है।

इसलिए पुनः दोहराता हूं, पार्थ सारथी, तुम्हारे लिए तो मैं सही हूं!

आज इतना ही।

५ अक्तूबर १९८०; श्री रजनीश आश्रम, पूना

गुहाग्रंथिभ्यो विमुक्तोऽमृतो भवति
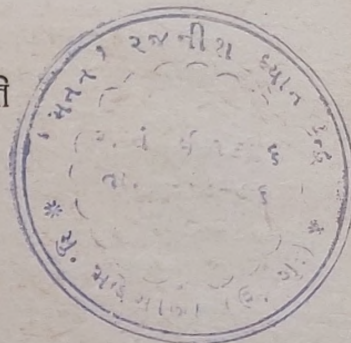
पहला प्रश्न : भगवान, मुंडकोपनिषद का यह सूत्र कुछ अजीब लगता है। यह कहता है : 'जो उस परम ब्रह्म को जानता है, वह ब्रह्म ही हो जाता है। उसके कुल में ब्रह्म को न जानने वाला पैदा नहीं होता। वह शोक से तर जाता है, पाप से तर जाता है, और हृदय की ग्रंथियों से मुक्त होकर अमृत बन जाता है।'

श्लोक इस प्रकार है :

> स यो ह वै तत परमं ब्रह्म वेद, ब्रह्मैव भवति।
> नास्याब्रह्मवित् कुले भवति।
> तरति शोकं, तरति पाप्मानम्
> गुहाग्रंथिभ्यो विमुक्तोऽमृतो भवति।।

भगवान, हमें इस सूत्र का गूढ़ार्थ समझाने की अनुकंपा करें।

सहजानंद! यह सूत्र अजीब लग सकता है, अजीब है नहीं। लग सकता है इसलिए कि इसमें कुछ अस्तित्व के संबंध में बुनियादी बातें कही गयी हैं, जो सामान्य तर्क के अतीत हैं।

पहली बात, हम जो भी जानते हैं, जानने के कारण उससे एक नहीं हो जाते। ज्ञाता और ज्ञेय अलग-अलग बने रहते हैं। यही मन के ज्ञान की प्रक्रिया है। जानना ज्ञाता और ज्ञेय के बीच एक संबंध है। ज्ञाता पृथक है, ज्ञेय पृथक है। जानने के संबंध के कारण वे एक नहीं हो जाते हैं। नहीं तो फूल को जानने वाला फूल हो जाए और पत्थर को जानने वाला पत्थर हो जाए। फिर तो जानने वाला शेष ही न रहे। जिसने पत्थर को जाना, वह पत्थर हो गया। इसलिए सूत्र अजीब लगता है।

लेकिन मन के पार जानने का एक और जगत भी है। मनातीत। उस जगत का द्वार ही ध्यान है। वहां ज्ञाता और ज्ञेय दो नहीं, एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।

क्योंकि वहां जानने को कोई अन्य नहीं होता, कोई भिन्न नहीं होता, वहां जानने वाला स्वयं को ही जानता है।

ध्यान की प्रक्रिया को ख्याल में लो तो सूत्र सरल हो जाएगा। ध्यान को बीच में न लिया तो सूत्र बेबूझ रह जाएगा। ये सारे सूत्र ध्यान के सूत्र हैं। ये उपनिषद ध्यान की गंगोत्री से पैदा हुए हैं। ये उन द्रष्टाओं की अनुभूतियां हैं, जिन्होंने विचार की जो सतत प्रक्रिया चलती है, उससे छुटकारा पा लिया है। ध्यान का अर्थ होता है: विचार की धारा का ठहर जाना। साधारणतः तुम्हारे भीतर विचारों की सतत शृंखला लगी रहती है। जैसे रास्ता चल रहा हो। लोग निकलते ही रहते हैं, गुजरते ही रहते हैं। और रास्ता तो कभी-कभी रात बंद भी हो जाए, लेकिन यह मन के रास्ते पर विचार दौड़ा ही करते हैं। दिन में विचार, रात में स्वप्न; कभी स्मृतियां, कभी वासनाएं, कभी आकांक्षाएं, कभी कल्पनाएं--अंत ही नहीं है; न ओर है न छोर है; यह चलता ही रहता है मन। इस मन की सतत प्रक्रिया के कारण तुम यह भूल ही जाते हो कि तुम इससे पृथक हो।

यूं समझो कि किसी दर्पण के सामने से चौबीस घंटे, अहर्निश, चेहरे गुजरते रहें, तो दर्पण को मौका ही न मिले जानने का कि मैं इन गुजरते हुए चेहरों से अलग हूं। कभी-न-कभी कोई-न-कोई चेहरा बन रहा है; एक मिटता नहीं, दूसरा बन जाता है —मिट नहीं पाता कि दूसरा बन जाता है; मिटने के पहले दूसरा बन जाता है-- हमेशा दर्पण आच्छादित है, तो दर्पण को पता कैसे चले कि मैं पृथक हूं! इसलिए ध्यान का आविष्कार हुआ। ध्यान का अर्थ है: दर्पण को मौका देना थोड़ी देर को कि उसमें कोई प्रतिबिम्ब न बने, ताकि दर्पण यह समझ ले कि मैं अलग हूं और प्रतिबिम्बों की जो धारा मेरे सामने से गुजरती है, वह अलग है। जिस घड़ी दर्पण के सामने से कुछ भी नहीं गुजरता, उस घड़ी दर्पण अपने को जान पाता है।

तुम्हारी चेतना दर्पण है और विचार दर्पण के सामने से गुजरते हुए दृश्य। तुम्हारी चेतना द्रष्टा है, ज्ञाता है और चेतना के सामने से जो गुजर रहा है, वह ज्ञेय है। जिस क्षण ध्यान की गहन, मौन अवस्था भीतर पैदा होती है जैसा रज्जब ने कहा: 'जन रज्जब ऐसी विधि जाने ज्यूं था त्यूं ठहराया'--जब सब ठहर जाता है, चित्त में कोई तरंग भी नहीं होती, कोई भाव नहीं होता, चित्त जब यूं होता है जैसे झील निष्तरंग हो--थिर--तब तुम्हें पहली बार अनुभव होता है कि मैं पृथक हूं विचारों से। और तुम्हारे जानने की जो क्षमता अब तक विचारों में उलझी थी, वह जानने की क्षमता अपने पर ही लौट आती है। अब जानने वाला अपने को जानता है। अब ज्ञाता और ज्ञेय दो नहीं होते, एक ही होता है। वही जान रहा है, वही जाना जा रहा है। इस अनुभूति का नाम ही ब्रह्म-अनुभूति है।

यह सूत्र प्यारा है; गहन है, गूढ़ है।

स यो ह वै तत परमं ब्रह्म वेद, ब्रह्मैव भवति।

जिसने ब्रह्म को जाना, वह ब्रह्म हो गया। या जिसने अपने को पहचाना, वह ब्रह्म हो गया। यही वेद है। क्योंकि यही असली जानना है! दूसरे को जानना भी कुछ जानना है! दूसरे को जान कर भी क्या करोगे? भीतर अंधेरा रहा और बाहर सारी दुनिया रोशन भी हो जाए तो किस काम की है! भीतर खाली रहे और बाहर धन, पद और प्रतिष्ठा के अंबार भी लग जाएं, तो किस काम के हैं! थोड़ी ही देर में मौत आएगी और सब छीन लेगी, सब पड़ा रह जाएगा। जीवन भर की आपाधापी व्यर्थ हो जाएगी। जो कमाया, सिद्ध होगा मौत के क्षण में कि वह कमायी न थी, गंवायी थी। जो इकट्ठा किया, मौत के क्षण में पता चलेगा कि कंकड़-पत्थर इकट्ठे किये और हीरे अपरिचित ही रह गये। कूड़ा-करकट इकट्ठा करते रहे और सम्पदा का एक बड़ा साम्राज्य भीतर था, उस तरफ पीठ ही बनी रही।

जब कोई व्यक्ति स्वयं की तरफ मुड़ता है तो जिसे वह जानता है, वह कोई और नहीं, वह स्वयं की ही सत्ता है। वहां जानने वाला और जाना जाने वाला दो नहीं होते। इसलिए यह सूत्र ठीक कहता है: जो उस परम ब्रह्म को जानता है, वह ब्रह्म ही हो जाता है। यह सूत्र धर्म की पराकाष्ठा है। बहुत थोड़े-से धर्म इस ऊंचाई तक उठे। क्योंकि बहुत थोड़े-से धर्म इतना साहस कर सके हैं।

जैसे, ईसाई समझ नहीं पाए जीसस को। जीसस तो कहते हैं कि मैं और मेरा पिता अर्थात ब्रह्म, परमात्मा, हम दोनों एक हैं। लेकिन ईसाइयों ने इस बात को बिलकुल गलत ढंग से पकड़ा। वे कहने लगे कि यह बात सिर्फ जीसस के संबंध में सच है कि जीसस परमात्मा से एक हैं, किसी और के संबंध में यह सच नहीं है। जबकि जीसस अपने संबंध में कुछ भी नहीं कह रहे हैं। जब जीसस कहते हैं मैं और परमात्मा एक हैं, तो वे जोसफ और मरियम के बेटे जीसस के संबंध में कुछ भी नहीं कह रहे हैं, वे तो उस भीतर छिपे हुए परम चैतन्य के संबंध में कह रहे हैं। वही परम चैतन्य हमारा असली मैं है। वही हमारा असली अस्तित्व है। वही हमारी अस्मिता है। वही हमारी आत्मा है। 'मैं' उसकी तरफ ही इशारा कर रहा है। लेकिन ईसाइयों ने यूं पकड़ ली बात!

अंधे आदमी से प्रकाश के संबंध में कुछ कहो, वह कुछ-का-कुछ पकड़ लेगा। बहरे को संगीत के संबंध में कुछ समझाओ, वह कुछ-का-कुछ पकड़ लेगा। ईसाइयों ने यह समझा कि जीसस अपने संबंध में कह रहे हैं। जीसस उन सबके संबंध में कह रहे हैं जिन्होंने भी जाना है। मगर ईसाइयत उस तल तक ऊंचा न उठ पायी; ईसाइयत उस ऊंचाई को न छू सकी; ईसाइयत में वह फूल न खिल सका।

वही परिणाम इस्लाम में हुआ। इसलिए अलहिल्लाज मंसूर को मुसलमानों ने सूली पर लटका दिया। क्यों? क्योंकि उसने अनलहक की घोषणा की। उसने कहा

कि मैं परमात्मा हूं। और मुसलमानों में इस तरह की घोषणा कुफ्र है, पाप है, महापाप है। कोई कहे कि मैं परमात्मा हूं, परमात्मा के साथ कोई बराबरी करे! अलहिल्लाज़ मंसूर परमात्मा के साथ बराबरी नहीं कर रहा था, क्योंकि अलहिल्लाज़ यह कह रहा था, मैं तो हूं ही नहीं, परमात्मा है; बराबरी का सवाल कहां था! बराबरी तो तब हो जब दो हों! दो तो हैं ही नहीं! अनलहक का मतलब है: मैं सत्य हूं। मैं और सत्य, ऐसी दो चीजें नहीं हैं। अलहिल्लाज़ अपने संबंध में कोई घोषणा नहीं कर रहा है। अलहिल्लाज़ तो मिट गया। ध्यान में जो गया, उसका अहंकार तो मिट ही जाता है। फिर जो शेष रह जाता है, वह परमात्मा है।

अलहिल्लाज़ मंसूर का गुरु था जुन्नैद। उसने अलहिल्लाज़ को बहुत बार समझाया कि देख, इस बात को भीतर ही पी जा! मैं भी जानता हूं, लेकिन मत कह! जुन्नैद बूढ़ा था, जीवन के कड़वे-मीठे अनुभव उसने लिए थे; अलहिल्लाज़ जवान था! जुन्नैद अलहिल्लाज़ को समझाता रहा कि तू यह बात कहेगा तो आज नहीं कल तू मुश्किल में पड़ेगा और मुझे भी मुश्किल में डालेगा। क्योंकि अंततः यह दोष मुझ पर भी आएगा, कि तेरा शिष्य घोषणा कर रहा है। अलहिल्लाज़ हमेशा स्वीकार कर लेता था कि अब नहीं करूंगा। लेकिन जब भी ध्यान में बैठता था, बस, भूल ही जाता था! जब मैं ही न रहा, तो मैं के द्वारा दिये गये वचन कौन याद रखे? जिसने वचन दिये थे वह तो गया और जो प्रगट होता, वह फिर वही धुन उठा देता; वही अनलहक का नाद। और जुन्नैद कहता, कितनी बार तुझे समझाया कि यह बात अगर फैल गयी तो मुश्किल खड़ी होगी। तू तो मारा ही जाएगा, तेरे साथ मेरा भी जो काम चल रहा है, जो सैकड़ों लोग ध्यान को, समाधि को उपलब्ध हो रहे हैं, इनकी प्रक्रिया भी अवरुद्ध हो जाएगी। फिर वह वायदा करता। और फिर वायदा टूट जाता!

अंततः अलहिल्लाज़ ने एक दिन कहा कि अब और वायदा न करूंगा, क्योंकि बहुत वायदा किया, वह टूट-टूट जाता है; असलियत यह है कि जो वायदा करता है, वह तो मौजूद नहीं होता, और जो मौजूद होता है, उसने कभी वायदा नहीं किया। मैं वहां होता नहीं और जो वहां होता है, वह घोषणा करता है। मैं रोकूं तो कैसे रोकूं!

जुन्नैद ने कहा कि ऐसा कर, तू काबा की यात्रा कर आ!... उन दिनों पैदल ही यात्रा करनी होती थी। वर्ष लग जाते थे। जुन्नैद ने सोचा कि काबा की यात्रा कर आएगा, तब तक तो बात टलेगी। इस बीच कुछ भी हो सकता है। समझ आ जाए!...लेकिन पता है अलहिल्लाज़ मंसूर ने क्या किया? वह उठा और उसने कहा, ठीक, आप आज्ञा देते हैं तो जाकर तीर्थयात्रा कर आता हूं। उठा और उसने जुन्नैद के तीन चक्कर लगाए और फिर बैठ गया सामने। जुन्नैद ने कहा, यह क्या

किया? उसने कहा, मेरे लिए तुम ही काबा हो। तुम्हारे अलावा और कहां काबा है! जब जीवित गुरु को पा लिया, तो अब किस पत्थर की पूजा करने जाऊं! और किसलिए? तुम्हारे तीन चक्कर लगा लिए, यात्रा पूरी हो गयी। अब कहां जाना है! और वही अनलहक का नाद।

वह नाद मंसूर के संबंध में नहीं है। मुसलमान गलत समझे। उन्होंने व्यर्थ ही मंसूर को सूली दे दी।

लेकिन इस देश में धर्म के ऊंचे-से-ऊंचे शिखर छुए गये। वे दिन भी जा चुके हैं। आज भारत की मनोदशा वैसी नहीं है, जो उपनिषद के काल में थी। आज तो भारत बहुत दयनीय है। अब तो यहां भी आदमी जमीन पर घिसट रहा है; आकाश में उड़ने की क्षमता उसने खो दी। आज तो यह घोषणा करना कि मैं ब्रह्म हूं, खतरे से खाली नहीं है। लेकिन जो जानेगा, वह रुक भी नहीं सकता है।

> पहले अपनी आवाज की लरजिश पर तो काबू पा लो. . . .
> पहले अपनी आवाज की लरजिश पर तो काबू पा लो
> फिर प्रेम के बोल तो ओठों से निकल जाते हैं

एक बार कंपती हुई आवाज ठहर जाए, फिर प्यार के बोल तो अपने से निकल जाते हैं; कुछ कहना नहीं पड़ता।

> फिर प्यार के बोल तो ओठों से निकल जाते हैं

बस, एक ही काम करना जरूरी है कि वह जो भीतर चलता हुआ कंपन है—

> पहले अपनी आवाज की लरजिश पर तो काबू पा लो

फिर कुछ कहना नहीं पड़ता, जो कहने योग्य है, अपने से निकल जाता है। फिर उसे रोका नहीं जा सकता। ये उपनिषद के वचन कहे नहीं गये हैं, निकले हैं। ये स्व-स्फूर्त घोषणाएं हैं, स्फुरणाएं हैं।

जो उस परम ब्रह्म को जानता है, वह ब्रह्म ही हो जाता है।

> स यो ह वै तत परमं ब्रह्म वेद, ...

और यही वेद है।

वेद शब्द बड़ा प्यारा है। वेद का अर्थ है: जानना। वेद बनता है विद से। विद का अर्थ होता है: ज्ञान। उसी से विद्वान शब्द बना। वेद कोई चार संहिताओं में समाप्त नहीं हो गया है; कोई ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद, उन पर समाप्त नहीं हो गया है; जब भी दुनिया में किसी व्यक्ति ने अपने भीतर परमात्मा का साक्षात्कार किया है, वेद वहां फिर से जन्मा है। हर बुद्ध के साथ वेद का जन्म होता है। फिर वह बुद्ध चाहे मोहम्मद हों, चाहे जीसस, चाहे जरथुस्त्र, चाहे लाओत्सू, चाहे महावीर, चाहे कृष्ण, चाहे कबीर, चाहे नानक, कुछ भेद नहीं पड़ता। जिसने अपने को जाना, जानते ही उसके ओठों से वेद फूट पड़ते हैं। क्योंकि वह

स्वयं ही ब्रह्म हो गया।

असल में यह कहना कि स्वयं ही ब्रह्म हो गया, भाषा की भूल है। ब्रह्म तो तुम हो ही। सिर्फ जानते नहीं हो, सिर्फ बोध नहीं है—सोए हुए ब्रह्म हो। बुद्ध जागे हुए ब्रह्म हैं। भेद कुछ ज्यादा नहीं है। जरा-सी तुम भी करवट लो और उठ आओ, बस, भेद समाप्त हो जाता है। कोई गुणात्मक भेद नहीं है। तुम सोए हुए बुद्ध हो, बुद्ध जागे हुए बुद्ध हैं। यह उपनिषद का ऋषि जो कह रहा है, यह तुम्हारे संबंध में उतना ही सच है जितना उसके स्वयं के संबंध में। मगर तुम्हें इसका पता नहीं है। और जब तक तुम्हें पता नहीं है, तब तक स्वभावतः यह सूत्र अजीब-सा लगेगा, कि जिसे हम जानते हैं, उसके साथ हम एक कैसे हो जाते हैं? तुम एक हो ही।

अब यूं समझो, जो तुम्हारे भीतर जान रहा है, वही ब्रह्म है। वह जो जानने की क्षमता है, वही ब्रह्म है। वह जो तुम्हारे भीतर बोध है, वही बुद्धत्व है। तुम्हारा चैतन्य ही परमात्मा का एकमात्र प्रमाण है।

और सूत्र का दूसरा हिस्सा भी तुम्हें, सहजानंद, दिक्कत में डाला होगा। क्योंकि उसका सामान्य अर्थ जो एकदम से ख्याल में आता है, अड़चन में डालने वाला है। 'उसके कुल में ब्रह्म को न जानने वाला पैदा नहीं होता।' इसको अगर तुमने शाब्दिक अर्थों में लिया, तो स्वभावतः बहुत अजीब-सा लगेगा। क्योंकि बुद्ध का बेटा राहुल कोई पैदा होने से ही बुद्धत्व को उपलब्ध नहीं हो जाता। महावीर की बेटी तो कभी बुद्धत्व को उपलब्ध हुई, इसका कोई उल्लेख नहीं है। और कृष्ण की सोलह हजार पत्नियां थीं, तो न-मालूम कितने हजार बेटे-बेटियां हुए होंगे! इतने हजारों ब्रह्मज्ञानी अगर एक साथ एक आदमी पैदा कर देता तो इस देश की ऐसी दुर्गति न होती! कहां खो गये वे हजारों कृष्ण के बेटे-बेटियां? उनका तो कुछ पता नहीं है।

इस सूत्र का शाब्दिक अर्थ मत लेना, इस सूत्र का बड़ा संकेतात्मक अर्थ है। यूं समझो—

बुद्ध ने कहा है: मनुष्य की चेतना एक प्रवाह है। जैसे नदी का प्रवाह। बुद्ध का शब्द है उस प्रवाह के लिए: संतति। आखिर तुम्हारा बेटा तुम्हारा क्यों कहलाता है? क्योंकि तुम्हारे प्रवाह से आया है। तुम्हारे ही प्रवाह का हिस्सा है। फिर उसका बेटा, फिर उसका बेटा, यह प्रवाह है। संतति।

बुद्ध ने कहा, जैसे दीया जलाते हैं हम सांझ को, फिर सुबह दीये को बुझाते हैं, अगर कोई तुमसे यह कहे कि जो दीया तुमने सांझ जलाया था, जो ज्योति तुमने सांझ जलायी थी, क्या वही तुम सुबह बुझा रहे हो? तो तुम मुश्किल में पड़ोगे। क्योंकि वही ज्योति तो तुम नहीं बुझा रहे हो। वह ज्योति तो न-मालूम कितनी बार बुझ चुकी। नहीं तो धुआं कहां से उठता है? प्रतिपल पुरानी ज्योति बुझ कर धुआं हो

जाती है। और उसकी जगह नयी ज्योति आ जाती है। लेकिन पुरानी ज्योति का बुझना और नयी ज्योति का आना इतनी त्वरा से होता है, इतनी तीव्रता से होता है कि तुम्हारी आंख देख नहीं पाती। दोनों के बीच अंतराल इतना कम है और शीघ्रता इतनी है। नहीं तो यह सत्य तो यही है कि ज्योति हर क्षण पुरानी विदा हो रही है, उड़ी जा रही है धुआं होकर, नयी ज्योति उसकी जगह ले रही है। अगर वही ज्योति रही, तो फिर तेल जलेगा ही नहीं, फिर बाती जलेगी ही नहीं; बाती उतनी ही रहेगी, तेल भी उतना ही रहेगा—खर्च का सवाल ही नहीं उठता, ज्योति वही है। लेकिन ज्योति प्रतिपल भागी जा रही है।

तो तुम क्या कहोगे? क्या तुम कहोगे, हम वही ज्योति बुझाते हैं सुबह जो हमने सांझ जलायी थी? यह तो नहीं कहा जा सकता। तो क्या तुम यह कहोगे कि हम दूसरा दीया बुझा रहे हैं; जो हमने सांझ जलाया था, वही नहीं; यह भी नहीं कहा जा सकता। क्योंकि दीया तो यह वही है जो सांझ जलाया था। तो बुद्ध ने एक नया शब्द खोजा। बुद्ध ने कहा: यह उसी दीये की संतति है। वह दीया तो बुझता रहा, लेकिन उसकी संतति चलती रही, उसका प्रवाह चलता रहा। यह उसी शृंखला में बंधी हुई आयी ज्योति है। जो ज्योति तुमने जलायी थी, उसी सिलसिले का यह हिस्सा है। उसी सातत्य का।

आज विज्ञान भी इस सत्य को स्वीकार करता है। इसलिए विज्ञान के पास भी संतति जैसा एक शब्द है: 'कंटीनम'। 'कंटीनम' का अर्थ होता है: 'कन्टीन्यूटी', सातत्य। तुम जब यहां आए थे और तुम जब घंटे भर बाद यहां से जाओगे, तो क्या तुम सोचते हो तुम वही व्यक्ति हो जो आए थे? नहीं। जो आया था, उसमें तो बहुत बदल गया। थोड़ा-सा तुम्हारे भीतर बुढ़ापा भी आ गया। एक घंटा जिंदगी बीत गयी। कुछ तुम्हारे भीतर मर भी गया। तुम्हारे नाखून थोड़े बढ़ गये, तुम्हारे बाल थोड़े बढ़ गये। कुछ जीर्ण-शीर्ण भी हो गया। कुछ भोजन भी पच गया—सुबह से नाश्ता करके आए थे—कुछ मांस-मज्जा भी बन गयी। तुम वही तो नहीं हो। और फिर तुम मुझे सुन कर जाओगे तो कुछ नये विचार भी तुम्हारे भीतर प्रविष्ट हो गये। कुछ पुराने विचारों को धक्का देकर उन्होंने निकाल दिया होगा। तुम वही नहीं हो। लेकिन एक अर्थ में तुम वही हो। इस अर्थ में तुम वही हो कि अब तुम जो जा रहे हो, उसी की संतति है, उसी की संतान है।

जिस वृक्ष के पास से तुम गुजर कर आए थे, जब लौट कर जाओगे, क्या वृक्ष वही है? कुछ पत्ते गिर गये, कुछ नये पत्ते ऊग आए। वही तो नहीं है। वृक्ष थोड़ा बड़ा भी हो गया, जड़ें थोड़ी गहरी भी हो गयीं। हो सकता है तुम जब आए थे तो जो कली थी, जब तुम लौट कर जाओ फूल बन गयी हो; पंखुड़ियां खिल गयी हों, गंध उड़ गयी हो। वृक्ष वही तो नहीं है। जीवन सतत प्रवाह है। गतिमान है, गत्यात्मक है। थिर

नहीं है। ठहरा हुआ नहीं है। जड़ नहीं है। इसको बुद्ध ने कहा है : प्रवाह, संतति। विज्ञान कहता है : 'कंटीनम'।

इस बात को ख्याल में रखो तो उपनिषद का यह सूत्र साफ हो जाएगा––

'उसके कुल में ब्रह्म को न जानने वाला पैदा नहीं होता।' जिसने एक बार ब्रह्म को जान लिया, फिर उसकी शृंखला में जो भी चेतना आएगी, उसकी चेतना में जो नये-नये पत्ते लगेंगे और नये-नये फूल खिलेंगे, वे सब ब्रह्म को जानने वाले होंगे। इसका मतलब तुम यह मत समझ लेना कि उसके बेटे ब्रह्म को जानने वाले होंगे। बेटे तो उसके शरीर से आते हैं। शरीर तो ब्रह्म को जानता नहीं। चेतना ब्रह्म को जानती है। तो चेतना की जो संतति होगी, वह ब्रह्म को जानने वाली होगी। जिसने जवानी में ब्रह्म को जाना, वह बुढ़ापे में भी ब्रह्म को जानेगा। हालांकि बुढ़ापे में कितनी धारा बदल गयी, गंगा का कितना पानी बह गया! जिसने जीते-जी ब्रह्म को जाना, वह मरते क्षण में भी ब्रह्म को जानेगा। वह उसी आनंद से जीया, वह उसी आनंद से मरेगा भी। उसकी मृत्यु भी एक अपूर्व, अद्वितीय अनुभव होगी। उसकी मृत्यु भी एक उत्सव होगी। वह जीवन भी उत्सव से जीया, उसका जीवन गीतों से भरा था, उसका जीवन एक मादक संगीत था, उसकी मृत्यु भी उसी मादकता का अंतिम शिखर होगी, गौरीशंकर होगी।

साधारण आदमी मरता है तो हम उसे जलाते हैं। और करें भी क्या? लेकिन हम भी रोते हैं, वह भी रोता हुआ विदा होता है। लेकिन जब कोई बुद्ध विदा हो तो रोना मत, क्योंकि वह रोता विदा नहीं हुआ। उसके साथ अन्याय मत करना! वह हंसता गया, प्रफुल्लित गया, तुम भी नाचते हुए उसे विदा देना। तुम भी आनंदमग्न हो कर विदा देना। इसलिए मैंने कहा है कि मेरा कोई भी संन्यासी मरे तो रोना मत, आंसू मत गिराना––उसके साथ अन्याय होगा––नाचना, आह्लादित होना। दुख की कोई बात नहीं है। जो नहीं मिटने वाला है, नहीं मिटेगा, और जो मिटने वाला है, वह मिटने ही वाला था।

तू जिस्म के खुशरंग लिबासों पै है नाजां
तू जिस्म के खुशरंग लिबासों पै है नाजां
पागल, मैं रूह को मोहताजे कफन देख रहा हूं
मैं रूह को मोहताजे कफन देख रहा हूं....
तू जिस्म के खुशरंग लिबासों पै है नाजां
मैं रूह को मोहताजे कफन देख रहा हूं
हम हाल उनकी बज़्म का दुनिया से पूछते
लेकिन, दुनिया गयी तो वहीं जाकर रह गई....
हम हाल उनकी बज़्म का दुनिया से पूछते

दुनिया गयी तो वहीं जाकर रह गई
कोई आये, कोई जाये....
कोई आये, कोई जाये, ये तमाशा क्या है
कोई आये, कोई जाये ये तमाशा क्या है
देखो, कोई आये, कोई जाये, ये तमाशा क्या है
कुछ समझ में नहीं आता....
कुछ समझ में नहीं आता कि ये दुनिया क्या है
नींद से आंख खुली है अभी....
नींद से आंख खुली है अभी देखा क्या है
देख लेना अभी कुछ देर में....
देख लेना अभी कुछ देर में दुनिया क्या है
कोई आये, कोई जाये, ये तमाशा क्या है
देखो, कोई आये, कोई जाये, ये तमाशा क्या है
कुछ समझ में नहीं आता कि ये दुनिया क्या है
नींद से आंख खुली है अभी देखा क्या है
देख लेना अभी कुछ देर में दुनिया क्या है
दम निकलते ही हुआ....
दम निकलते ही हुआ बोझ सभी पर भारी
अरे, जल्द ले जाओ....
जल्द ले जाओ अब इस ढेर में रक्खा क्या है
दम निकलते ही हुआ बोझ सभी पर भारी
जल्द ले जाओ....
जल्द ले जाओ अब इस ढेर में रक्खा क्या है
कोई आये, कोई जाये, ये तमाशा क्या है
कुछ समझ में नहीं आता कि ये दुनिया क्या है
रेत की, ईंट की, पत्थर की हो या मिट्टी की
इस दीवार के साये का भरोसा क्या है
रेत की, ईंट की, पत्थर की हो या मिट्टी की
इस दीवार के साये का भरोसा क्या है
कोई आये, कोई जाये, ये तमाशा क्या है
कुछ समझ में नहीं आता कि ये दुनिया क्या है
शौक गिनने का अगर है तो अमल को गिन ले
मेरे दिलगीर इस दौलत को गिनता क्या है

शौक गिनने का अगर है तो असल को गिन ले
मेरे दिलगीर इस दौलत को गिनता क्या है
देखो, कोई आये, कोई जाये, ये तमाशा क्या है
कुछ समझ में नहीं आता कि ये दुनिया क्या है
जख्म करके वो तसल्ली भी दिये जाते हैं. . . .
जख्म करके वो तसल्ली भी दिये जाते हैं
अरे, रफ्ता-रफ्ता. . . .
अरे, रफ्ता-रफ्ता सभी आजायेंगे डरता क्या है
रफ्ता-रफ्ता सभी आजाएंगे डरता क्या है
जख्म करके वो तसल्ली भी दिये जाते हैं
रफ्ता-रफ्ता सभी आजाएंगे डरता क्या है
अपनी दानिश्त में समझे कोई दुनिया साहिद
अपनी दानिश्त में समझे कोई दुनिया साहिद
वरना हाथों में. . . .
वरना हाथों में लकीरों के इलावा क्या है
अपनी दानिश्त में समझे कोई दुनिया साहिद
वरना हाथों में लकीरों के इलावा क्या है
देखो, कोई आये, कोई जाये, तमाशा क्या है
तू जिस्म के खुशरंग लिबासों पै है नाजां
मैं रूह को मोहताजे कफन देख रहा हूं
कोई आये, कोई जाये, ये तमाशा क्या है
कुछ समझ में नहीं आता कि ये दुनिया क्या है

यह जिंदगी समझ में नहीं आएगी, जब तक कि तुम भीतर न झांको। बाहर देखते रहो, देखते रहो, देखते रहो, कुछ समझ में न आएगा। लेकिन भीतर झांका कि सब समझ में आ जाता है। क्योंकि समझने वाला समझ में आ जाता है। देखने वाला दिखायी पड़ जाए, जानने वाला जानने में आ जाए, सब समझ में आ जाता है। और उस समझ के बाद कोई छीन नहीं सकता तुम्हारे ज्ञान को, तुम्हारे बोध को। बुद्धत्व पर पहुंच कर कोई गिरता नहीं है। गिरना असंभव है। क्योंकि बुद्धत्व कोई ऐसी चीज नहीं है जो तुमसे भिन्न है। वह तुम्हारा ही परम आविष्कार है। उससे गिरना भी चाहोगे तो कैसे गिरोगे ? बुद्धत्व को पाकर न कभी कोई गिरा है, न कभी कोई गिर सकता है।

नास्याब्रह्मवित् कुले भवति।

उसके कुल में, उसकी संतति में, उसके प्रवाह में, उसकी चैतन्य-धारा में, उसकी आत्मा की गंगा में फिर कभी भी अज्ञान पैदा नहीं होता। फिर हर आने वाला दिन और भी निखार लाता है। हर आने वाला क्षण और नये फूल खिला जाता है। उसके जीवन में फिर बसंत ही बसंत है। उसके जीवन में फिर ऋचाएं उठने लगती हैं, गीत फूटने लगते हैं, नृत्य जगने लगता है।

तरति शोकं, ...

वह पार हो जाता है दुख के।

दुख क्या है ? दुख का आधार क्या है, बुनियाद क्या है ? यही कि हम अपने से अपरिचित हैं। अपने से अपरिचित होना दुख है। अपने से परिचित हो जाना आनंद है।

तरति शोकं, तरति पाप्मानम्

और पाप क्या है ? जो अपने को नहीं जानता, वह जो भी करेगा, पाप है।

इसे जरा समझना।

वह पुण्य भी समझ कर जो करेगा, वह भी पाप है। वह पुण्य कर ही नहीं सकता। जिसने स्वयं को नहीं जाना है, उससे पुण्य असंभव है। क्यों ! इसलिए कि जो भीतर अंधेरे से भरा है, उस अंधेरे से कैसे प्रकाश की किरणें पैदा होंगी ? जो भीतर बेहोश है, उससे तुम होश की अपेक्षा न रखो। वह चाहे दिखावा कितना ही करे !

मैं रायपुर कुछ समय के लिए प्रोफेसर था। मेरे साथ अंग्रेजी विभाग में एक प्रोफेसर थे, उन्हें शराब पीने की आदत थी। मगर वे दिखावा यूं करते थे कि नहीं पीए हुए हैं। मगर उनके दिखावे के कारण ही वे फंसते थे। सभी शराबी कोशिश यही करते हैं दिखलाने की। वे कोशिश न करें तो शायद पकड़ में भी न आएं। उनकी कोशिश ही झंझट कर देती।

एक दिन वे पीकर मुझसे मिलने आ गये। आते ही से मुझसे बोले कि आप यह मत समझना कि मैं पीए हुए हूं। मैंने कहा कि हद कर दी तुमने भी ! मैं क्यों समझूंगा कि तुम पीए हो ! मगर तुमने यह बात कही क्यों ? नहीं, उन्होंने कहा, कुछ लोग यह समझ लेते हैं कि मैं हमेशा ही पीए हुए हूं। अरे, कभी होली-दीवाली पी ली, बात रख दी, मगर रोज नहीं पीता। मगर मैंने कहा, तुमने यह टोपी कैसे उलटी लगा रखी है ? टोपी सीधी थी, उन्होंने जल्दी से उसको उल्टी कर ली। मैंने कहा, बिलकुल साफ है कि तुम पीए हुए नहीं हो, मगर यह कोट तुमने उल्टा पहन रखा है ! उन्होंने गौर से देखा, अरे, उन्होंने कहा, हां ! और जब वे कोट उल्टा करने लगे, मैंने कहा, अब रुको, नाहक कष्ट न करो, किसको धोखा दे रहे हो ?

तुम्हारी चेष्टा कि तुम नहीं पीए हुए हो, तुम्हें कहीं भी फंसा देगी। शराब पीने के बाद या भांग पी लेने के बाद आदमी यह कोशिश करता है दिखाने कि मैं नहीं

पीए हुए हूं। सम्हल कर चलता है। मगर उसका सम्हल कर चलना ही बताता है। क्योंकि रोज तो सम्हल कर नहीं चलता था, सम्हलने की कोई जरूरत ही नहीं थी। आदमी जब होश में होता है तो चलता है, सम्हलने की क्या जरूरत है? जोर-जोर से बोलता है कि कहीं कोई भूल-चूक न हो जाए। सम्हल-सम्हल कर बोलता है। उसी में गड़बड़ हो जाती है।

जिसको आत्मज्ञान नहीं है, वह मंदिर बनवाए तो भी पाप होगा। क्योंकि वह मंदिर परमात्मा के लिए तो बनवा नहीं सकता। परमात्मा का उसे कोई बोध नहीं है। अब तुम देखते हो न कितने बिड़ला-मंदिर बने हुए हैं! जुगल किशोर बिड़ला मुझे मिले थे, तो वह मुझसे कहने लगे कि आप जानकर तो खुश होंगे कि मैंने कितने मंदिर बनवाए! मैंने कहा, उनमें से एक भी मंदिर भगवान का नहीं है, सब बिड़ला-मंदिर हैं। और पहली दफे ही यह अनूठी घटना आपने की है! यहां कृष्ण के मंदिर बनते थे, राम के मंदिर बनते थे, लेकिन बिड़ला-मंदिर बिलकुल नयी चीज है! उन्होंने कहा, लेकिन किसी ने मुझे यह ख्याल नहीं दिलाया। यह बात तो ठीक है कि मंदिर बिड़ला-मंदिर क्यों कहलाए? सदियों से मंदिर बनते रहे, लेकिन कोई मंदिर बनाने वाले के नाम से नहीं कहलाया था। जिसकी मूर्ति स्थापित हो, उसका मंदिर होता है। लेकिन बिड़ला-मंदिर।

लेकिन सचाई यह है कि आदमी मंदिर मंदिर के लिए नहीं बनाता, उस पत्थर के लिए बनाता है जो उसके नाम का मंदिर पर लगाया जाएगा। यह जो मंदिर पर लगाया हुआ अहंकार का पत्थर है, उसकी ही सजावट है मंदिर और कुछ भी नहीं। उससे भिन्न कुछ भी नहीं। वह दान भी करेगा तो भी दान के पीछे लोभ ही छिपा होता है। क्योंकि शास्त्र कहते हैं, पंडित-पुरोहित समझाते हैं कि यहां एक पैसा भी अगर दान किया तो स्वर्ग में एक करोड़ गुना पाओगे। यह सौदा करने जैसा है! यह इतना--लाटरी समझो, सौदा नहीं! एक पैसा यहां लगाओगे, करोड़ गुना मिलेगा; कर ही लेने जैसा है! अरे, थोड़ा-बहुत लगा दिया तो हर्ज क्या है! इतना अगर मिलने वाला है, तो जो नहीं कर रहे हैं धंधा, वे गलती में हैं! मगर यह धंधा ही है, इसके पीछे लोभ है। इसके पीछे स्वर्ग को पाने की कामना है।

और स्वर्ग के पीछे क्या इच्छा छिपी हुई है? कल्पवृक्ष के नीचे बैठेंगे, बहुत-सी वासनाएं यहां अधूरी रह गयी हैं--किसकी पूरी होती हैं! बुद्ध ने कहा है: वासना दुष्पूर है; किसी की भी पूरी नहीं होती--तो स्वर्ग में पूरी कर लेंगे। यहां तो बहुत दौड़धूप करो, भाग-दौड़ करो, बामुश्किल से मारामार करो, तब भी थोड़ा-बहुत कुछ मिलता है; उससे कुछ तृप्ति तो होती नहीं, और प्यास बढ़ जाती है। लेकिन कल्पवृक्षों के नीचे बैठेंगे, आनंद करेंगे--एक दफा स्वर्ग पहुंच जाएं!

तो कल्पवृक्षों की कल्पना ही कामियों की कल्पना है। कल्पवृक्ष भोगियों की कल्पना है। जो यहां नहीं भोग पाए--यहां धूनी रमाए बैठे हैं; आग बरस रही सूरज से और ये चारों तरफ और आग जला कर बैठे हैं; इसको कहते हैं तपश्चर्या! आत्महिंसा कर रहे हैं, अपने को सता रहे हैं, दुष्टता कर रहे हैं हर तरह की, मगर इसको कहते हैं तपश्चर्या! मगर इनके भीतर कामना क्या सुलग रही है? यहां बाहर आग सुलग रही और भीतर कामना की आग सुलग रही है कि अरे, चार दिन की बात है, दो दिन तो गुजर ही गये, दो दिन भी गुजर जाएंगे और फिर स्वर्ग में आनंद ही आनंद है, थोड़ा कष्ट झेल ही लो! इस थोड़े-से कष्ट के पीछे उतना आनंद नहीं छोड़ा जा सकता! वहां कल्पवृक्षों के नीचे बैठेंगे और मजा करेंगे! वहां तो कामना की और तत्क्षण पूरी हो जाती है। इधर चाहा नहीं--तुम्हारी चाह भी पूरी नहीं हो पाती कि कामना पूरी हो जाती है। बस, मन में भाव उठा कि कामना पूरी हो जाती है। तो यहां लोग पुण्य करेंगे, तप करेंगे, योग करेंगे, दान करेंगे, व्रत-उपवास करेंगे, लेकिन आकांक्षा क्या है? आकांक्षा यही है कि स्वर्ग में भोगेंगे।

और जो नहीं कर रहे हैं तप-व्रत-उपवास, उनकी तरफ इन उपवासियों की नजर देखो! उनको इस तरह देखते हैं कि जैसे कोई कीड़े-मकोड़े हों। नर्क में सड़ेंगे ये। ये भी मजा है तपश्चर्या का, कि दूसरों को नर्क में सड़ता हुआ देखने का भी रस। नर्क की जिनने ईजाद की है, नर्क की कल्पना को जिन्होंने ईजाद किया है, ये बहुत हिंसक और दुष्ट-प्रवृत्ति के लोग होंगे। अपने लिए स्वर्ग का आयोजन कर लिया है, दूसरों के लिए नर्क का आयोजन कर दिया है। जो हमारी मान कर चले, वह स्वर्ग; जो हम जैसा रहे, वह स्वर्ग; और जो हमसे विपरीत जाए, वह नर्क में पड़ेगा। ये कोई अच्छे आदमियों के लक्षण तो नहीं। ये तो सुसंस्कृत आदमी के लक्षण भी नहीं, धार्मिक की तो बात ही छोड़ दो!

तो ध्यान रखना, आत्मज्ञान के बिना कोई पाप से मुक्त नहीं हो सकता। हां, पाप को छिपा ले सकता है, ढांक ले सकता है। मगर पाप घूम-घूम कर लौट आएगा।

पाप है क्या? अंधकार से भरे हुए आदमी के कृत्य का नाम पाप है। अज्ञान से पैदा हुए कृत्य का नाम पाप है। ज्ञान से पैदा हुए कृत्य का नाम पुण्य है। इसीलिए मैं तुम से नहीं कहता कि पाप मत करो, पुण्य करो; मैं कहता हूं: अज्ञान को तोड़ो और ज्ञान को जगाओ। नींद हटाओ, होश को जगाओ। और होश के बाद तुम जो करोगे, वह पुण्य है। और बेहोशी में तुम जो करोगे, वह पाप है। मेरी व्याख्या सीधी-साफ है।

और अगर तुम इस निर्णय में पड़ गये कि क्या पाप है और क्या पुण्य है, तो तुम मुश्किल में पड़ जाओगे। बहुत मुश्किल में पड़ जाओगे! फिर मच्छरों को मारना पाप है या पुण्य? डी. डी. टी. का उपयोग पाप है या पुण्य? मच्छरदानी बांधना पाप है या पुण्य है, सवाल उठेगा। क्योंकि मच्छरदानी बांधने का मतलब मच्छरों

को भूखा मार रहे हो। महापाप कर रहे हो। जरा सोच-समझ कर मच्छरदानी बांधना। जैनी भी मच्छरदानी बांधते हैं! इनको तो कम-से-कम नहीं बांधना चाहिए। क्या महापाप कर रहे हो! इतने बेचारे मच्छरों को, दीन-हीन मच्छरों को भूखा मार रहे हो!

कल मैंने देखा एक वक्तव्य, मेरे खिलाफ। जीव-दया मंडल, बम्बई ने वक्तव्य दिया है कि जीवों पर दया करनी चाहिए, इसलिए गऊ-हत्या बंद होनी चाहिए। यह जीव-दया मंडल को अपना नाम बदल लेना चाहिए। इसको नाम रखना चाहिए : जीव-शोषक मंडल। क्योंकि अगर दया करनी है तो मच्छर पर करके दिखाओ, खटमल पर करके दिखाओ। गाय पर क्या दया कर रहे हो! गाय को तुम चूसते हो! और किस शास्त्र में लिखा है कि गाय के थन में जो दूध आता है, वह तुम्हारे लिए आता है—जीव-दया मंडल वालों के लिए आता है? वह बछियों-बछड़ों के लिए आता है। और तुम उसको पी रहे हो और जीव दया कर रहे हो तुम! गाय के बच्चों को भूखा मार रहे हो! और गाय के इन बछड़ों को तुम फिर बधिया करके बैल बना रहे हो!

लेकिन जीव-दया मंडल!

उन्होंने सब गाय का गुणगान किया है कि गाय से कितने फायदे हैं। इसी से तो बैल मिलते, हल-बक्खर जोते जाते, बैलगाड़ी चलती; इसी से दूध मिलता; इसी से गोबर मिलता, गोबर गैस बनती, खाद बनती। तुम जीव-दया कर रहे हो कि गाय तुम पर दया कर रही है? मगर गाय से भी पूछ लो कि उसे दया करनी है कि नहीं? कि तुम जबरदस्ती दया करवा रहे हो? जीव-दया मंडल का क्या अर्थ है? जीवों से जबरदस्ती अपने ऊपर दया करवानी! अगर सच में ही जीव-दया मंडल हो, तो मच्छरदानी की खिलाफत करो, डी. डी. टी. का विरोध करो, खटमलों को मत मारो; खाट में खटमल हो जाएं तो धन्यभागी हो तुम, बिलकुल महावीर स्वामी होकर लेट जाओ—नंग-धड़ंग, दिगम्बर—कि आओ भाइयो एवं बहनो, जी भर कर पीओ! पुण्य करो! मच्छरों को निमंत्रण दो! मच्छरों को मारो मत! तिलचट्टे इकट्ठे करो! चूहे! ऐसी-ऐसी चीजें इकट्ठी करो, गऊ पर क्या तुम्हारा....सिर्फ दया गऊ माता पर कर रहे हो! और एक गऊ नहीं कहती कि तुम उसके बेटे हो। और तुम्हीं बुद्धू कहे चले जाते हो कि हम गऊ को माता मानते हैं। और बैल को बाप नहीं मानते, बड़ा मजा है! गऊ को माता मानते हो, बैल को बाप क्यों नहीं मानते? और यह गाय के जो बच्चे-कच्चे होते हैं, इनको भाई-बहन! सिर्फ गऊ माता। और जीव-दया मंडल है। जीव-दया मंडल का नाम बदल लो, इसका नाम रखो : जीव-शोषक मंडल। क्योंकि अगर दया करनी है, तो अपना शोषण करवाओ। दया का मतलब होता है तुम कुछ त्याग करो। तो गऊ को तुम चूस रहे हो और

दया की बातें कर रहे हो! किसको धोखा दे रहे हो?

कैसे तय करोगे कि क्या पाप है और क्या पुण्य है? कौन-सी सब्जी खाना पाप है और कौन-सी सब्जी खाना पुण्य है? जैनों के हिसाब से जो भी सब्जी जमीन के नीचे पैदा होती है, उसको खाना पाप। आलू,....आलू जैसा निरीह प्राणी कि किसी को भी देख कर दया आ जाए, उसको खाना पाप है! क्योंकि वह जमीन के नीचे पैदा होता है। अब जमीन के नीचे पैदा होने में कोई कसूर है? अंधेरे में पैदा होता है। तो तुम कोई रोशनी में पैदा हुए हो? नौ महीने तुम भी मां के पेट में अंधेरे में रहे। बिचारा आलू भी जमीन के गर्भ में रहता है, उससे ऐसी क्या नाराजगी है?

पर्यूषण आते हैं तो जैन हरी सब्जियां नहीं खाते! मगर सुखा कर रख लेते हैं। और जिनको सुखा कर रख लेते हैं वे हरी थीं। मगर पहले रख लेते हैं, पर्यूषण के पहले सुखा कर रख लेते हैं। सूख गयीं फिर हरी न रहीं।

और एक मजा तो मैंने देखा, एक श्वेताम्बर घर में मैं मेहमान था, पर्यूषण के दिन हरी सब्जियां तो नहीं, लेकिन केले डट कर खाए जा रहे हैं। मैंने पूछा, मामला क्या है? उन्होंने कहा, ये थोड़े ही हरे हैं। हरी सब्जी, ये थोड़े ही हरे हैं! ये तो पीले हैं! हरी सब्जी का निषेध है।

तो फिर आदमी चालबाजियां निकालता है; होशियारियां निकालता है, बेईमानियां निकालता है, रास्ते बनाता है। क्या-क्या रास्ते नहीं लोग बना लेते!

बुद्ध ने कहा कि मरे हुए जानवर का मांस खाने में कोई पाप नहीं है, क्योंकि तुम हत्या तो कर नहीं रहे। बस, तरकीब मिल गयी, सारे दुनिया के बौद्ध मांसाहारी हैं। तरकीब मिल गयी। हर बौद्ध देश में होटलों पर लिखा होता है कि यहां सिर्फ अपने-आप मर गये जानवरों का मांस मिलता है। इतने जानवर एकदम से अपने-आप बौद्ध मुल्कों में ही मरते हैं! अपने-आप! और किसी मुल्क में अपने-आप नहीं मरते। और मजा यह है कि इन बौद्ध मुल्कों में अगर इतने जानवर अपने-आप आत्महत्या कर लेते हैं, तो फिर कसाईघर किसलिए खोले हुए हैं। कसाईघर में क्या होता है? आदमी मारे जाते हैं? इतने-इतने बड़े बूचरखाने हैं, ये किस लिए हैं? मगर होटल पर वैसे ही टंगी होती है तख्ती जैसे यहां टंगी होती है कि यहां शुद्ध घी की मिठाइयां मिलती हैं। अब तो ये भी तख्तियां टंगने लगीं कि यहां शुद्ध डालडा की मिठाइयां मिलती हैं, क्योंकि अब यहां शुद्ध डालडा भी कहां मिलता है? शुद्ध घी तो गयी बात, अब तो शुद्ध डालडा भी नहीं मिलता। अब तो शुद्ध कोई चीज नहीं मिलती। अब तो डालडा घी की बात ही छोड़ दो, शुद्ध दवा भी नहीं मिलती। तुम मजे से इंजेक्शन ले रहे हो, सोच रहे हो कि ठीक हो जाओगे और पानी के इंजेक्शन दिये जा रहे हैं! और हो सकता है पानी भी शुद्ध न हो। वह भी म्युनिसिपल के नल से भरा गया हो।

आदमी बेईमान है। और आदमी तब तक बेईमान रहेगा जब तक भीतर रोशनी नहीं है। तब तक वह हर तरकीब निकाल लेगा। हर उपाय खोज लेगा। तर्क खोज लेगा। और अपने को तर्क की आड़ में खड़ा कर लेगा।

जो मांसाहारी हैं दुनिया के, वे भी तर्क खोजे बैठे हुए हैं। वे भी कहते हैं कि जानवरों की आत्मा को मुक्ति दिला रहे हैं। नहीं तो जानवर मुक्त कैसे होंगे? अब कोई बेचारा सूअर के शरीर में बंद है आत्मा, इसको मुक्ति करवा दो! सुअर के शरीर से इसका छुटकारा करवा दो। जैसे कि कोई जेलखाने से किसी कैदी को छुटकारा करवाता है। ऐसे सुअर के शरीर में बंद आत्मा को मुक्त करवा दो। यह मुक्त हो जाए तो किसी ऊंचे शरीर में पैदा होगी। कौन कहे कि किसके तर्क सही हैं और किसके गलत हैं?

और किस आधार पर कहे?

हिन्दुस्तान में दूध को पवित्र आहार समझा जाता है--शुद्धतम, सात्विक--और ईसाइयों में क्वेकर सम्प्रदाय है, वह दूध को छूता नहीं। क्योंकि दूध बनता तो आदमी के शरीर के भीतर है उसी तरह जैसे खून बनता है; या गाय के शरीर में बनता है, या भैंस के शरीर में बनता है, लेकिन है तो यह 'एनीमल प्रॉडक्ट'। जैसे खून। इसमें और खून में कोई भेद नहीं है। इसलिए क्वेकर दूध नहीं पीते। और दुग्धाहारी को महापापी मानते हैं। किसको सही मानोगे? ये तुम्हारे ऋषि-मुनि सही हैं, जो कह रहे हैं कि दूध का आहार सात्विक है? या, क्वेकर सही हैं?

तुम अगर निर्णय करने बैठोगे कि क्या पुण्य और क्या पाप, तो बहुत उलझन में पड़ जाओगे। सब धागे उलझ जाएंगे तुम्हारे जीवन के। न तो पुण्य तय हो पाएगा, न पाप तय हो पाएगा।

इसलिए मैं तुमसे यह कहता ही नहीं कि तुम तय करो कि पुण्य क्या, पाप क्या। मैं कहता हूं : तुम सिर्फ एक काम करो कि भीतर जागो! उस भीतर के ब्रह्म को जगा लो! फिर वह ब्रह्म जो कहे, वही पुण्य है। और जो कहे कि मत करो, वही पाप है। और जब तुम्हारे भीतर की अंतर्वाणी, अंतर्नाद उठना शुरू होता है, अंतर्वेद जगता है, तब तुम्हारे जीवन में पुण्य हो सकता है। उसके पहले पुण्य नहीं हो सकता। उसके पहले तो पाप ही होगा। और तुम जो भी करोगे, गलत कारण से करोगे।

रामकृष्ण के पास एक आदमी आया और उसने कहा कि मैं जा रहा हूं काशी, गंगा-स्नान को, आपका आशीर्वाद ले आऊं सोचा; आप क्या कहते हैं, काशी-स्नान से पाप धुलते हैं या नहीं धुलते? रामकृष्ण ने कहा कि जरूर धुलते हैं? मगर एक बात ख्याल रखना, तुमने देखा गंगा के तट पर बड़े-बड़े वृक्ष लगे होते हैं? देखा, जरूर देखा! वे किसलिए लगे हैं? उसने कहा कि यह भी कोई बात है, अरे वृक्ष

हैं, लगे हैं, नदी के किनारे वृक्ष ऊगते ही हैं! रामकृष्ण ने कहा, उसका भी राज है। तुम जब डुबकी मारते हो तो तुम्हारे पाप वृक्षों पर बैठ जाते हैं। फिर तुम डुबकी ही मारे रखना! निकलना मत! अगर निकले और घर की तरफ चले कि वे फिर तुम पर सवार हो जाएंगे! पाप भी बड़े होशियार हैं। गंगा में जब तक डूबे रहोगे, ठीक है; वे कहेंगे, डूबे रहो; बेटा, कब तक डूबे रहोगे, निकलोगे कि नहीं? जब निकलोगे, वे फिर सवार हो जाएंगे। इसलिए सार कुछ हाथ न आएगा।

रामकृष्ण ने बात पते की कही। अब कुछ को ख्याल है, गंगा में नहा आए तो पाप धुल गये। और जिस गंगा में इतने लोग पाप धो चुके हैं, उसमें जरा सोच-समझ कर नहाना! पाप ही पाप से भर गयी होगी गंगा। सदियों से नहा रहे हैं लोग। और सदियों से पाप धो रहे हैं वहां। गंगा से ज्यादा पापी कोई नदी नहीं हो सकती दुनिया में। जरा सोच-समझ कर नहाना! इससे तो कोई नाले में कहीं भी नहा लेना तो अच्छा है, किसी डबरे में कूद जाना तो अच्छा है। शायद थोड़े-बहुत पाप धुल भी जाएं, क्योंकि डबरे में कोई कूदा नहीं। कोई गाय-भैंसें कूदती हैं, मगर उनको कोई पाप होता भी नहीं। भैंसें वगैरह जरूर गंगा नहीं जातीं, वे डबरों में जाती हैं--होशियार हैं! कहते भी हैं कि अक्ल बड़ी कि भैंस? मैं तो भैंस को ही बड़ा मानता हूं। क्योंकि अक्ल जिनकी है वे तो गंगा में जाते हैं और भैंस देखो तो डबरे में नहाती है। है होशियार! कि क्या जाना गंगा में, इतने पाप भरे हुए हैं, वहां नहाने से और झंझट खड़ी हो जाएगी।

तुम ऊपर से तय करने बैठोगे तो तुम कुछ भी तय न कर पाओगे। हर चीज को पाप कहा गया है। ऐसी कोई चीज नहीं जिसको दुनिया में किसी धर्म ने पाप न कहा हो। और ऐसी भी कोई चीज नहीं जिसको दुनिया में किसी धर्म ने पुण्य न कहा हो। किसकी मानो? किस आधार पर मानो?

जीसस शराब पीते हैं। शराब पीना पाप है या पुण्य? जीसस को कोई एतराज नहीं है शराब पीने में। और अगर जीसस शराब पी सकते हैं, तो फिर शराब पीने में कैसे पाप होगा? रामकृष्ण मछली खाते हैं। मछली खाना पाप है या पुण्य? अगर रामकृष्ण मछली खा सकते हैं, तो कैसे पाप होगा? महावीर नग्न रहते हैं। नग्न रहना पाप है या पुण्य? अगर नग्न रहना पाप है तो फिर महावीर पाप कर रहे हैं। लेकिन महावीर कहीं पाप कर सकते हैं!

किसको मानोगे?

और दूसरा कभी भी निर्धारक नहीं हो सकता है। निर्धारण तुम्हारे भीतर से आना चाहिए। और प्रत्येक व्यक्ति को अपने जीवन के लिए ज्योति अपने ही भीतर खोजनी पड़ती है।

इसलिए मैं तुम्हें आचरण नहीं देता। मैं तुम्हें सिर्फ ध्यान देना चाहता हूं।

आचरण दो कौड़ी का है बिना ध्यान के। और ध्यान से जो आचरण पैदा होता है, तुम्हारे अंतस के रूपांतरण से जो आचरण पैदा होता है, उसकी आभा अलग, उसका सौन्दर्य अलग, उसका रस अलग।

वही यह सूत्र कह रहा है :

तरति शोकं, तरति पाप्मानम्

इस सूत्र की अद्‌भुतता देखते हो ? साधारणतः तुम्हारे साधु-संत तुमसे कहते हैं, पाप से मुक्त हो जाओ तो ब्रह्म को जान लोगे। यह सूत्र कह रहा है : ब्रह्म को जान लो तो पाप से मुक्त हो जाओगे। और यह सूत्र सत्य है।

गुहाग्रंथिभ्यो विमुक्तोऽमृतो भवति ।।

'और हृदय की ग्रंथियों से मुक्त होकर अमृत बन जाता है।'

जिसने अपने भीतर के ज्ञाता को जान लिया, द्रष्टा को जान लिया, उसकी सारी ग्रंथियां कट गयीं। सारी गांठें कट गयीं। उसके जीवन में कोई गांठ न रही। उसका जीवन सीधा, साफ-सुथरा हो गया। फिर वह जैसा भी जीता है, उसमें एक सरलता है, एक विनम्रता है। उसके जीवन में फिर एक सादगी है। थोपी हुई सादगी नहीं। जबरदस्ती अपने को सादा बनाने की चेष्टा नहीं। मगर उसके जीवन में एक सहज-स्फूर्त सादगी है। जैसे फूलों में होती है। जैसे चांद-तारों में होती है। जैसे बच्चों की आंखों में होती है।

दूसरा प्रश्न : भगवान, संसार भर में 'भारतीय' अस्वीकृत और अनादृत हैं। यहां तक कि भारतीय राष्ट्रीयता का जिक्र ही लोगों के व्यवहार में परिवर्तन ला देता है—ऐसे जैसे कि वे किसी भिखारी अथवा असामाजिक व्यक्ति से बात कर रहे हैं। और तो और इस आश्रम में भी भारतीय लोगों के साथ बिलकुल भिन्न व्यवहार होता है और कभी-कभी बहुत कठोर भी।

भगवान, इस देश में पैदा होना क्या कोई दुर्भाग्य अथवा अवांछनीय घटना है ?

कभी-कभी और भी विचित्र लगता है, क्योंकि बातों-बातों में आपके संन्यासी भारतीयों तथा गैर-भारतीयों में विभक्त कर दिये जाते हैं।

इस स्थिति पर कुछ कहने की अनुकंपा करें।

कमल भारती !...कमल अभी-अभी सारे विश्व की यात्रा करके लौटा है। स्वभावतः यह प्रश्न उसे जगह-जगह उठा होगा कि भारतीय अस्वीकृत और अनादृत क्यों हैं ?...

कारण खोजने चाहिए। कारण हैं ?

पहली तो बात, भारतीय अहंकार—कि हम धर्मभूमि हैं, पुण्यभूमि हैं; कि हम

धार्मिक लोग हैं; कि हम सदाचारी हैं—दुनिया में अनादर पैदा करवाता है। तुम्हारी ये घोषणाएं थोथी हो गयीं। जमाने हो गये, तब से थोथी हो गयीं। हां, कभी कुछ लोग इस देश में हुए, जो परमात्मा की अनुभूति को पाकर ज्योतिर्मय हो उठे थे; जिन्होंने अमृत को जाना था। मगर उन कुछ लोगों के कारण कोई भारत-भूमि पवित्र नहीं हो जाती। भूमियां भी कहीं पवित्र और अपवित्र होती हैं ! भूमि तो एक है। भूमि अलग-अलग भी नहीं है। कोई भारत और चीन कटे थोड़े ही हैं। कोई भारत और पाकिस्तान बंटे थोड़े ही हैं। सिर्फ नक्शों पर विभाजन है।

और कैसा मजा है ! अभी कुछ दिन पहले तक पाकिस्तान पुण्यभूमि थी; उन्नीस सौ सैंतालीस के पहले पुण्यभूमि थी—लाहौर भी और ढाका भी। और अब ? अब लाहौर और ढाका पुण्यभूमि नहीं रहे। अचानक क्या हो गया ? इतनी जल्दी सदियों पुरानी पुण्यभूमि एकदम अपवित्र हो गयी ? और किसको तुम पुण्यभूमि कहते हो ? किस आधार पर पुण्यभूमि कहते हो ?

तो तुम्हारी यह अकड़ अनादर का कारण बनती है। यह अकड़ छोड़नी चाहिए। भारतीय बहुत दंभी हैं। और दंभ में कोई बल भी नहीं। बल भी हो तो भी एक बात है। दंभ के लिए कोई कारण हो तो भी एक बात है। कारण हो तब भी दंभ गलत होता है और यहां तो अकारण दंभ है ! बाईस सौ साल तुम गुलाम रहे और अब भी तुम कहे चले जाते हो कि देवता भारत में जन्म लेने को तरसते हैं ! बाईस सौ साल की गुलामी के बाद भी तुम्हें यह समझ में नहीं आता कि तुम कायर हो, कि तुम नपुंसक हो गये हो, कि तुम्हारे जीवन में चुनौतियों को स्वीकार करने की क्षमता नहीं रही है। लेकिन तुम तो इसको भी गौरव की बात मानते हो ! तुम सोचते हो, शायद यह भी परमात्मा की ही देन थी कि हमको गुलाम बनाया। क्योंकि बिना उसकी इच्छा के पत्ता भी नहीं हिलता। अरे, उसने चाहा होगा तभी तो हम गुलाम बने। और जब उसने चाहा तो हम कौन हैं जो उसके विपरीत चाहें ! हम तो सदा उसके साथ राजी हैं। हम तो भक्त लोग हैं। धार्मिक लोग हैं।

तुम्हारा धर्म तुम्हें सिखाता है कि आत्मा अमर है। और तुमसे ज्यादा मरने से डरने वाली कोई कौम दुनिया में नहीं है। तुम किस आधार पर आदर मांगते हो ? तुम अपने शास्त्रों के खुद ही सबसे बड़े खंडन हो। शास्त्र कहते हैं : ब्रह्म को जानने वाला ब्रह्म हो जाता है। ... अभी हमने मुंडकोपनिषद का यह वचन समझने की कोशिश की।... और यहां ब्रह्म को जानने वाले कितने लोग हैं ! लेकिन ब्राह्मण बहुत हैं। और ब्राह्मण वही है अपने को कहलाने का हकदार, जिसने ब्रह्म को जाना हो। जिसने ब्रह्म को नहीं जाना, वह ख़ाक ब्राह्मण है ! ब्रह्म को बिना जाने ब्राह्मण ! कैसे कोई ब्राह्मण हो सकता है बिना ब्रह्म को जाने ! और ब्रह्म को जानना कोई पाण्डित्य की बात तो नहीं, कि तुमने वेद कंठस्थ कर लिये, कि उपनिषद याद कर

लिये, कि गीता को तोते की तरह रटने लगे। और इसी तोतारटंत को तुम ज्ञान समझते हो ! तुम दुनिया को धोखा नहीं दे सकते।

इसलिए, कमल, अस्वीकृति है तुम्हारी, अनादर भी है। और यह बिलकुल स्वाभाविक है। तुम्हारे ही कारण। भारत से ज्यादा पाखंडी व्यक्तित्व इस समय पृथ्वी पर किसी देश का नहीं है। भारत के नेता पाखंडी, भारत के धर्मगुरु पाखंडी। ये कहते कुछ हैं, करते कुछ हैं। जो कहते हैं, ठीक उससे उल्टा करते हैं। और इन दोनों के कारण ही सारे भारत की प्रतिमा खंडित हो गयी है। तुम अपने साधु-संतों को तो देखो ! क्या कहते हैं, क्या करते हैं ! ...

चैतन्य कीर्ति ने पूछा है: भगवान, बम्बई के 'जनशक्ति' समाचार-पत्र में 'कच्छ-केसरी अचल गच्छाधिपति' जैनाचार्य आचार्य गुणसागर सूरी जी का एक वक्तव्य छपा है कि 'कच्छ की पावन धरा पर रजनीशधाम की स्थापना से कच्छ अनीति के मार्ग पर अग्रसर होगा। कच्छ की संतान तथा इसके नीति-निर्धारक इस दृश्य को ठंढे कलेजे से कैसे देख सकते हैं ?

जैनाचार्य आचार्य गुणसागर ने यह भी आरोप लगाया है कि भगवान के नाम के पीछे अश्लीलता का नाटक चल रहा है, जिसमें मां-बहन समेत नारियों की लाज लूटी जा रही है। इस नग्न दृश्य को देख कर हमारे तीन करोड़ रोम खड़े नहीं हो जाएंगे ? हमें कच्छ में ही नहीं, सारे गुजरात में रजनीशधाम नहीं चाहिए।'

इसलिए इन आचार्य ने समस्त कच्छ और गुजरात के युवकों का आह्वान किया है कि वे सचेत हो जाएं।

भगवान, जैनाचार्य के इन मनगढ़ंत निराधार आरोपों का क्या उत्तर है ? और ये जो युवकों को दिग्भ्रमित कर रहे हैं, उसके लिए क्या करना चाहिए ? निवेदन है कि कुछ कहें।

पहली तो बात, इस देश का दुर्भाग्य तो तुम जरा आंको ! 'कच्छ-केसरी' ! गांव-गांव, मुहल्ले-मुहल्ले, गली-गली, कूचे-कूचे केसरी बसे हैं ! भारत-केसरी भी कोई हो तो ठीक, कच्छ-केसरी ! पहले इन कच्छ-केसरी का कभी नाम भी नहीं सुना। यह न-मालूम किस गुफा में छिपे रहे ! एकदम से इन्होंने सिंहनाद कर दिया। और सिंहनाद भी क्या किया ! और वही पाखंड और वही दंभ : कच्छ-केसरी ! मुनि भी, साधु भी उसी अहंकार की भाषा में बोलते हैं ! कम-से-कम मुनि को तो कहना चाहिए कि मैं आदमी हूं, कोई सिंह नहीं। यह तो लायंस क्लब वालों पर छोड़ दो ! जिनकी जिंदगी में कुछ भी नहीं है, जो घर में पूंछ दबा कर घुसते हैं, वे लायंस क्लब के मेम्बर हो जाते हैं। क्योंकि कम-से-कम थोड़ा तो रहता है कि अरे, हम लायंस, हम सिंह !—क्लब की सदस्यता ! इसीलिए तो इस तरह के अच्छे-अच्छे नाम चुने जाते हैं। घर में भीगी बिल्ली और लायंस क्लब में देखो, टाई

इत्यादि बांध कर, सुगंध इत्यादि छिड़क कर खड़े हो जाते हैं, पहुंच जाते हैं, मन को समझा लेते हैं।

मगर कम-से-कम साधु को तो कहना चाहिए कि मैं परमात्मा की तलाश में निकला हूं, यह तो आदमी से भी नीचे गिर जाना हुआ : 'कच्छ-केसरी' ! सिंह कोई आदमी से ऊपर होता है ! चलो, कोई सरदार हो, कोई राजपूत हो, कोई सिपाही हो और सिंह की भाषा में बोले, समझ में आ जाता है। कि चलो ठीक है, यह आदमी से गया-बीता। मगर मुनि हो कर और 'कच्छ-केसरी' ! और 'अचल गच्छाधिपति' !! जहां सब कुछ चलायमान है इस जगत में, वहां कहां के 'अचल गच्छाधिपति' ! अचल ! अरे, हिमालय भी अचल नहीं है। हम पहाड़ों को अचल कहते हैं, मगर पहाड़ भी अचल नहीं हैं। हिमालय भी चलायमान है। वह भी बढ़ रहा है। ऋग्वेद में हिमालय का कोई उल्लेख नहीं है। इस आधार पर लोकमान्य तिलक ने यह सिद्ध किया कि वेद—कम-से-कम ऋग्वेद नब्बे हजार वर्ष पुराना है।

और यह आधार महत्त्वपूर्ण है। क्योंकि हिमालय का कोई उल्लेख नहीं। अर्थात वेद की प्रथम ऋचाएं जब रची गयी होंगी, उस समय हिमालय नहीं था। और हिमालय है भी सबसे नया पर्वत। विन्ध्याचल ज्यादा पुराना, ज्यादा बूढ़ा है। विन्ध्याचल दुनिया का सबसे पुराना पर्वत है। और इसलिए तो बेचारा झुक गया है—कमर झुक गयी ! यह मत सोचना कि कोई ऋषि दक्षिण गये थे और कह गये थे कि तू झुका रहना जब तक मैं न आऊंगा, और फिर आए ही नहीं, सो वह बेचारा झुका है। सिर्फ बूढ़ा है। बुढ़ापे में कोई भी झुक जाता है। पहाड़ भी झुक जाते हैं।

हिमालय नया पहाड़ है। अभी बढ़ रहा है। रोज बढ़ रहा है। प्रतिवर्ष कम-से-कम एक फीट ऊपर उठ जाता है। वह भी कुछ अचल नहीं है। हिमालय भी बनते और बिगड़ते रहते हैं। और जो सारे संसार को कहते हैं कि यहां सब चलायमान है, परिवर्तनशील है, वे भी 'अचल गच्छाधिपति' हो कर बैठ जाते हैं !

और क्या हैं इनके गच्छ ? भेड़ों के झुंड। उनको गच्छ कहते हैं। और कितने गच्छ हैं जैनियों के ? संख्या कुछ ज्यादा नहीं, कोई तीस-पैंतीस लाख। उसमें दो बड़े सम्प्रदाय हैं : दिगम्बर, श्वेताम्बर। फिर उनमें छोटे-छोटे सम्प्रदाय। फिर छोटे-छोटे सम्प्रदायों में और छोटे-छोटे गच्छ।...राजनीति का जाल फैला हुआ है !

और इनका वक्तव्य क्या है कि 'कच्छ की पावन धरा'। ये जो बातें करते हैं आत्मा की, वह भी मिट्टी में भरोसा करते हैं। बातें आत्मा की, भरोसा मिट्टी में। अरे, मिट्टी मिट्टी है, कच्छ की हो कि कटक की हो, कलकत्ता की हो कि कोयम्बटूर की हो, मिट्टी मिट्टी है ! कुस्तुन्तुनिया की हो कि कैलिफोर्निया की हो, क्या फर्क पड़ता है, मिट्टी मिट्टी है ! कच्छ की मिट्टी किस आधार पर सिद्ध करोगे कि पावन है ? कोई रासायनिक, कोई वैज्ञानिक आधार दे सकते हो कि क्या पावनता है ? लेकिन बस,

मूढ़तापूर्ण बातें ! और इन मूढ़तापूर्ण बातों के कारण सारी दुनिया में हंसी होती है, व्यंग्य होता है ।

भारतीय हास्यास्पद हो गया है ।

और वे कहते हैं कि मेरे वहां पहुंचने से कच्छ अनीति के मार्ग पर अग्रसर होगा । तो हे कच्छ-केसरी, तुम क्या कर रहे हो वहां ? हजारों साल से तुम तरह के केसरी वहां जमे हुए हैं और अब तक नीति के मार्ग पर अग्रसर न कर पाए,... चौदह संतों-महंतों का वक्तव्य निकला है इकट्ठा कि कच्छ अनीति में डूब जाएगा, अगर मैं वहां गया । अरे, तुम चौदह, मैं अकेला ! तुम नीति पर चलाना, मैं अनीति पर चलाऊंगा, फिर अब कच्छ की मर्जी ! तुम हो कौन जबरदस्ती नीति थोपने वाले ? तुमने कोई ठेका लिया है नीति का ? तुम्हें इतनी घबड़ाहट क्या है ? तुम्हारे पैर के नीचे से जमीन क्यों खिसकी जा रही है ?

घबड़ाहट यह है कि मैं जो कह रहा हूं, उस सत्य के सामने तुम एकदम फीके पड़ जाओगे । तुम अंधेरी रात के जुगनू हो, कच्छ-केसरी वगैरह कुछ भी नहीं ! दिन के उजाले में लोग देख लेंगे की जुगनू की हैसियत क्या है ! इससे घबड़ाहट है । नहीं तो क्या चिंता है तुम्हें ? सूरज कहीं डरता है अंधेरे से ? डरता है तो अंधेरा डरता है । मैं तो नहीं डर रहा ! मैं तो तैयार हूं कहीं भी आने को ! काशी निमंत्रण दे, काशी में जम जाऊं । काशी की पावन धरा को अपवित्र करके रहूं ! ऋषिकेश बुलाए, ऋषिकेश में जम जाऊं । सब ऋषियों को भ्रष्ट कर दूं ! मैं तो तैयार हूं !

डरना मुझे चाहिए, क्योंकि मैं अनीति सिखा रहा हूं, तुम नीति सिखा रहे हो; मैं अधर्म सिखा रहा, तुम धर्म सिखा रहे; मैं लोगों को अंधकार की तरफ ले जा रहा, तुम प्रकाश की तरफ ले जा रहे, डरना मुझे चाहिए, तुम डरते हो ! और मैं अकेला और तुम्हारे साथ भारत के सब साधु-संत-महंत ! तुम्हें क्या भय होना चाहिए ! और तुम्हारा सनातन धर्म, सदियों पुराने वेद तुम्हारे, उपनिषद तुम्हारे, गीता तुम्हारी, एक मुझ अकेले आदमी से क्या इतने भयभीत हो रहे हो ? जरूर भीतर पोच हो । कुछ भीतर है नहीं । भुस भरी है भीतर ।

ये जो लोग हैं, इनके कारण भारत अनादृत है । इनमें चुनौती लेने की भी क्षमता नहीं रही । इन्हें खुश होना था कि मैं आ रहा हूं, तो चलो एक चुनौती रहेगी ! चलो एक संवाद उठेगा, कच्छ में चहल-पहल मचेगी, एक हवा खड़ी होगी ! और डरते क्या हो अगर सत्य तुम्हारे साथ है––सत्यमेव जयते । और अगर सत्य मेरे साथ है, तो भी सत्य को ही जीतना चाहिए । सत्य ही जीते, यही हमारी सबकी मनोकामना होनी चाहिए । लेकिन इनको भय है अपने सत्य पर । इनको भरोसा नहीं है अपने सत्य पर । इन्हें अपने पाखंड का पता है ।

अब वे कह रहे हैं कि अनीति के मार्ग पर कच्छ अग्रसर हो जाएगा । तुम इतनी

सदियों में नीति के मार्ग पर अग्रसर न कर पाए, और मैं दस-पांच वर्ष में अनीति के मार्ग पर अग्रसर कर दूंगा, तो जाहिर है कि कच्छ के लोग अनीति के मार्ग पर जाने को बिलकुल तत्पर बैठे हैं । सिर्फ उन्हें इशारा चाहिए, कोई झंडी भर बता दे ! तो तुम कौन हो उनको रोकने वाले ? तुम उनके कोई मालिक हो ? तुम्हारी कोई बपौती है ? कच्छ किसी के बाप का है ?

अब वे कह रहे हैं कि 'कच्छ की संतान'। और ये मुनि हो गये, मगर अभी तक कच्छ की संतान हैं ! क्या-क्या छोटे-छोटे दायरे हैं !! अभी कच्छ से भी छुटकारा नहीं हुआ, देह से क्या छुटकारा होगा ! मिट्टी से तो देह बनती है । आत्मा तो परमात्मा का हिस्सा है । आत्मा कोई मिट्टी की संतान नहीं है, मृण्मय नहीं है । तुम्हारे भीतर जो चिन्मय तत्त्व है, उसकी उद्घोषणा करो, क्या मिट्टी की बातें कर रहे हो ! मगर ये मिट्टी के ही शेर हैं ! ये घबड़ा रहे हैं कि जरा वर्षा हो गयी, तो रंग-रौनक उखड़ जाएगी ! ये झूठे शेर हैं ।

मैंने सुना, एक राजनेता चुनाव हार गये । चुनाव हार गये, खाने-पीने के लिए मुश्किल पड़ गयी । और तो कोई अकल थी नहीं । पढ़े-लिखे भी न थे । सिर्फ एक ही धंधा है––नेता का––जिसमें किसी योग्यता की कोई जरूरत नहीं होती । चपरासी भी होना हो तो कहते हैं कि कम-से-कम चौथी हिन्दी, कम-से-कम मिडिल तो पास होना ही चाहिए । वह भी नहीं थे । हस्ताक्षर भी नहीं करते, अंगूठा-छाप थे । तो बड़ी मुश्किल में पड़ गये, अब कहां से रोटी-रोजी कमाएं, क्या करें, क्या न करें !

किसी ने कहा कि सर्कस में एक जगह ख़ाली है, सो भागे पहुंचे, मैनेजर से कहा । मैनेजर ने कहा, जगह तो खाली है मगर आप कर पाएंगे काम ? अरे, नेता ने कहा, मैं क्या नहीं कर सकता ! तरह-तरह के काम किये । इस विभाग में मिनिस्टर रहा, उस विभाग में मिनिस्टर रहा, सबका अनुभव है, तुम काम तो बताओ ! उसने कहा, काम कठिन नहीं है, काम बिलकुल सरल है । हमारा एक सिंह मर गया है, सो उसकी खाल हमने निकाल ली है, उसके भीतर तुम्हें घुसना होगा; और बस, तुम घूमते रहना कटघरे में, सो लोगों को ख्याल रहेगा कि सिंह घूम रहा है । और कोई काम नहीं है, बस दो-तीन घंटे सर्कस जब चलता है, तुम अपने चक्कर मारते रहे, ताकि लोगों को यह ख्याल न रहे कि सिंह मर चुका है । और हमने सिंह की दहाड़ भी टेपरिकार्ड कर रखी है, सो बीच-बीच में दहाड़ भी उठेगी, सो लोग प्रसन्न रहेंगे । यह तो कोई कठिन बात नहीं, नेता ने कहा ।

नेता उसी रात घुस गये सिंह की खाल में और टेपरिकार्डर से सिंह की घनघोर गर्जना हो––और नेता को मजा भी बहुत आया ! अरे, जनता को डराने में तो नेता को मजा आता है ! दूसरे की छाती पर मूंग दलने में तो मजा आता है ! भीतर ही टेपरिकार्डर छिपाए हुए थे, बार-बार उसकी बटन दबा दें ! और जब हुंकार मचे और

बच्चे रोने लगें और स्त्रियां बेहोश हो जाएं, तो उनका दिल खुश हो जाए ! अरे, उन्होंने कहा, नेता से भी अच्छा काम यह है !

तभी उन्होंने देखा कि दरवाजा खुला और एक दूसरा सिंह भीतर लाया गया। दूसरे सिंह को देखा कि वे एकदम दोनों पैर पर खड़े हो गये और चिल्लाए—बचाओ, बचाओ ! भूल ही गये कि मैं सिंह हूं। बचाओ, बचाओ ! घबड़ा गये कि यह दूसरा सिंह चला आ रहा है, अब मारे गये ! आदमियों को धोखा देना आसान है, सिंह को थोड़े ही धोखा दे सकोगे ? यह अभी दो लताड़ लगाएगा और अभी ठिकाने लगा देगा, रस्ते पर ! यह टेपरिकार्डर वगैरह का थोड़े ही भरोसा करेगा ! यह तो पहचान ही लेगा ! और जब उनको दो पैर पर खड़े देखा तो जनता भी खड़ी हो गयी, जनता ने कहा, यह चमत्कार ! सिंह दो पैर पर खड़ा है और आदमी की भाषा बोल रहा है कि बचाओ, बचाओ; अरे, मारे गये, बचाओ ! दूसरा सिंह बोला कि अरे, मत घबड़ा ! तू क्या समझता है तू ही एक नेता है जो चुनाव हारा है ! अरे, हम भी हारे !

तब राज खुला कि वह ऊपर की ही खाल थी !

ये कच्छ-केसरी, अचल गच्छाधिपति, ये सब हारे हुए नेता हैं ! इनकी भाषा अभी भी राजनीति की है।—उससे साबित होता है, इनकी भाषा से साबित होता है। कि हम कच्छ की संतान ! अभी मिट्टी से भी मोह छूटा नहीं और मुनि हो गये !

और इसके नीति-निर्धारक ! किसने तुमको तय किया कि तुम इसके नीति-निर्धारक हो ? किसने तुम्हें हक दिया कि तुम इसके नीति-निर्धारक हो ? अपने ही मुंह मियां मिट्ठू ! और अगर तुम नीति-निर्धारक हो, तो मुझसे टक्कर लो, मैं आता हूं ! तुम नीति-निर्धारण करो, और मैं नीति का तुम्हारी खंडन करूंगा, और फिर जो जीत जाए ! फिर जनता को मौका दो चुनने का, जिसको चुनना हो वह चुन लेगी। अगर तुम्हारी नीति इतनी मधुर है, इतनी अमृतदायी है, तो जरूर जनता उसे चुनेगी। और मैं खुश होऊंगा कि जनता हमेशा जो शुभ है, उसे चुने। मगर घबड़ाते क्या हो ? इतना डर क्या ? ये दोनों पैर पर खड़े होकर क्या चिल्ला रहे हो कि बचाओ, बचाओ, अरे मारे गये !

तो वे कह रहे हैं, हम इस दृश्य को ठंडे कलेजे से कैसे देख सकते हैं ? मुनि होकर भी अभी गरम कलेजा ! अरे, मुनि होकर तो कम-से-कम ठंडा कलेजा करो ! यह कलेजे की गरमी मुनि को शोभा नहीं देती ! कलेजा और गरम ! नहाओ-धोओ ! जैन मुनि नहाते नहीं, कलेजा गरम हो ही जाएगा। रात को ठंडा पानी पीओ ! रात भर बिना पीए रहोगे, कलेजा गरम हो ही जाएगा। पसीना ही पसीना से भरे होते हैं, रोएं, रंध्र, सब बंद हो गये होते हैं। और इसीलिए वे कह रहे हैं कि उनके तीन करोड़ रोम खड़े नहीं हो जाएंगे ? अरे, नहीं खड़े होंगे ! क्योंकि तुम्हारे रंध्र तो जमाने हो गये तब के बंद हो गये होंगे। पसीना और कच्छ की मिट्टी और धूल और

कच्छ के बवंडर—है ही क्या कच्छ में रेगिस्तान के सिवाय ? सो ये तो जैन मुनि की देह है, पसीने से भरी, और फिर कच्छ की धूल, तुम्हारे रोएं और खड़े होंगे ! भूल ही गये होंगे खड़ा होना। रोएं तो तुम्हारे सब बंद ही हो चुके होंगे, कब के मर चुके होंगे और इसीलिए तो कलेजा गरम हो रहा है। क्योंकि रोओं से ठंडी हवा भीतर जाती रहती है।

ख्याल रखना कि आदमी नाक से ही श्वास नहीं लेता, रोओं से भी श्वास लेता है। वैज्ञानिक तो कहते हैं कि अगर किसी आदमी के सारे रोएं बिलकुल बंद कर दिये जाएं और नाक खुली रखी जाए और सारी शरीर पर पेंट कर दिया जाए, कोलतार, पर्त पर पर्त, तो वह तीन घंटे में मर जाएगा। सांस नाक से लेता रहे, मगर तीन घंटे में उसकी मौत हो जाएगी। क्योंकि प्रत्येक रोआं श्वास लेता है। प्रत्येक रोआं एक छोटा-सा छिद्र है, जहां से हवा भीतर जाती है और खून को तुम्हारे ताजा रखती है और ठंडा रखती है। अब तुम्हारा कलेजा गरम हो रहा है, इसमें मैं क्या करूं ! तुम्हारा कलेजा गरम हो रहा है, नहाओ, धोओ, कच्छा बदलो ! न-मालूम किस जमाने से वही कच्छा पहने हुए हो ! कच्छियों की यही खराब आदत है कि कच्छा पहन लिया तो पहने ही हुए हैं, बदलते ही नहीं।

अब वे कह रहे हैं कि भगवान के नाम के पीछे अश्लीलता का नाटक चल रहा है, जिसमें मां-बहन समेत नारियों की लाज लूटी जा रही है। बड़े मजे की बात है। वात्स्यायन के कामसूत्र मैंने नहीं लिखे। महर्षि वात्स्यायन ने लिखे ! और पंडित कोक का कोकशास्त्र भी मैंने नहीं लिखा। पंडित कोक ने लिखा ! महापंडित था, ब्राह्मण था, कश्मीरी ब्राह्मण। और खजुराहो और कोणार्क और पुरी के मंदिर पर नग्न प्रतिमाएं मैंने नहीं खोदीं। कम-से-कम यह जुम्मा तुम मुझको मत देना। और तुम मुझ पर अश्लीलता का आरोपण कर रहे हो ! भारत से ज्यादा अश्लील दुनिया का कोई देश नहीं है। क्योंकि सबसे पहले भारत में कामसूत्र लिखे गये। सबसे पहले भारत में कोकशास्त्र रचा गया। सबसे पहले कोणार्क और खजुराहो जैसे मंदिर भारत में बने। दुनिया में कहीं ऐसे मंदिर नहीं हैं। और दुनिया में कहीं ऐसी किताबें प्राचीन समय में नहीं लिखी गयीं। और दोष तुम मुझे दे रहे हो ! मेरा इसमें कुछ भी हाथ नहीं है।

और ये जैन मुनि होकर महावीर जब नग्न घूम रहे थे, तो मां-बहनों को लाज आती थी कि नहीं ? मां-बहनें घूंघट निकाल लेती थीं कि नहीं ? नंग-धड़ंग महावीर खड़े हुए हैं, मां-बहनों की तो कुछ सोचो ! और जैन मुनि होकर ! तुम्हारे चौबीस तीर्थंकर नग्न रहे। और सुंदर देह वाले लोग थे—तुम्हारी प्रतिमाओं को देखकर यही सबूत मिलता है; बलिष्ठ देह वाले लोग थे, सुंदर देह वाले लोग थे—ये नग्न जब घूमते होंगे, तो स्त्रियों पर क्या गुजरती होगी, यह तो सोचो ! और तुम मुझ

पर अश्लीलता थोप रहे हो ! कुछ तो सत्य के प्रति निष्ठा और ईमानदारी चाहिए !

कह रहे हो कि इस नग्न दृश्य को देख कर हमारे तीस करोड़ रोएं नहीं खड़े हो जाएंगे ? अरे, होते हों तो हो जाएं ! यहां तो कोई नग्न दृश्य नहीं है । मगर अगर तुम्हारा दिल हो तो नग्न दृश्य भी खड़ा कर सकते हैं । इसीलिए कि तुम्हारे रोएं खड़े हो जाएं । एक दफे जिंदगी तो आए ! कुछ तो हो ! कच्छ में सदियों से कुछ नहीं हुआ, कुछ तो हो ! इसीलिए तो कच्छ चुना, कि बिलकुल मरा हुआ पड़ा है ! अभी मैं गया ही नहीं और चहलकदमी शुरू हो गयी । बड़ी धूमधाम मची हुई है, बड़े वक्तव्य निकाले जा रहे हैं, एकदम तहलका मचा हुआ है––मैं अभी गया ही नहीं कहीं । जाऊंगा या नहीं, यह भी कुछ पक्का नहीं । मेरा कोई भरोसा ! कि यूं ही तुम सबको बुद्धू बना रहा होऊं कि हे कच्छ के बुद्धओ, तुम शोरगुल कर लो ! फिर मेरा दिल हुआ तो काशी के पंडितों को भड़काऊंगा । मेरा कुछ भरोसा है ! काबा भी जा सकता हूं । इसमें कुछ अड़चन मुझे नहीं है । मैं यहीं बैठ कर कितना मजा ले लेता हूं, यह तो सोचो ! एक-से-एक गोबर-गणेशों में प्राण आ रहे हैं । इसको मैं जीवन-दान कहता हूं । कि जो कब के मर गये थे, उनमें फिर सांसें चलने लगीं ।

कहा है, समस्त कच्छ और गुजरात के युवकों को कि वे सचेत हो जाएं । युवकों के पीछे क्यों पड़े हो ? अरे, बूढ़ों को अखर रहा है तो बूढ़े सचेत हों ! युवक तो मेरे साथ हैं । और जो मेरे साथ नहीं है, वह क्या खाक युवक है ! अगर उसमें थोड़ा भी यौवन है और थोड़ी भी ऊर्जा है युवा होने की, मेरे साथ ही होगा । ये सड़ी-गली लाशें और बूढ़े ही तुम्हारे साथ हो सकते हैं । मेरे साथ तो बूढ़े भी हो जाते हैं तो युवा हो जाते हैं । और तुम्हारे साथ जवान भी अगर होंगे तो बूढ़े हो जाएंगे । वे जवान होंगे ही नहीं, तभी तुम्हारे साथ हो सकते हैं ।

मगर बड़ा मजा है । कल मैंने एक और दूसरा वक्तव्य देखा, महा कच्छ सम्मेलन के अध्यक्ष ने युवकों का आह्वान किया है कि रक्तदान देने के लिए तैयार हो जाओ । अरे, रक्तदान तुम करो ! बेचारे युवकों को क्यों फंसा रहे हो ! रक्तदान ही करना है तो बूढ़े करें । अब इनको वैसे भी जाना है, चलो इसी बहाने चले जाओ; रक्तदान कर दो ओर विदा हो जाओ; ऐसे भी भीड़-भाड़ बहुत है, थोड़ी जगह खाली होगी, मगर युवकों को क्यों ? युवकों को रक्तदान के लिए तैयार होना चाहिए । और ये सज्जन क्या करेंगे ? ये तमाशा देखेंगे । युवकों को भड़काएंगे ।

ये सारे जो पाखंडी इकट्ठे हो गये हैं इस देश में धर्म के नाम पर, राजनीति के नाम पर, और हर तरह की मूढ़ताओं का प्रचार कर रहे हैं, इनके कारण, कमल, भारत की अप्रतिष्ठा है । मैं छुटकारा दिलाना चाहता हूं तुम्हें इनसे । और तुम इनसे छूट जाओ तो भारत पुनः प्रतिष्ठित हो सकता है, पुनः गौरव के शिखर पर पहुंच

सकता है, मगर पाखंड से छूटे बिना यह नहीं होगा ।

तुम्हारे राजनेता पाखंडी हैं, उनसे छूटना जरूरी है ।

चन्दामल से कह रहे, ठाकुर आलमगीर,
पहुंच गये वे चांद पर, मार लिया क्या तीर ?
मार लिया क्या तीर, लौट पृथ्वी पर आए,
हुए करोड़ों खर्च, कंकड़ी-मिट्टी लाए ।
इनसे लाख गुना अच्छा नेता का धन्दा,
बिना चांद पर चढ़े, हजम कर जाता ‘ चंदा ’ ।

नेता अखरोट से बोले किशमिश लाल,
‘ हुजूर ! हल कीजिए मेरा एक सवाल ।
मेरा एक सवाल, समझ में बात न भरती,
मुर्गी अंडों के ऊपर क्यों बैठा करती ?’
नेता ने कहा––‘ प्रबंध शीघ्र ही करवा देंगे,
मुर्गी के कमरे में कुर्सी डलवा देंगे । ’

यह जो पाखंडियों की जमात इकट्ठी हो गयी है, मूढ़ों की जमात तुम्हारी छाती पर बैठी है, इसके कारण अपमान है, अनादर है । अन्यथा कोई और कारण नहीं है ।

आज इतना ही ।

६ अक्तूबर १९८०; श्री रजनीश आश्रम, पूना

धर्म है मुक्ति का आरोहण

पहला प्रश्न : भगवान, यह सूत्र छान्दोग्य उपनिषद में उपलब्ध है :

'जो विशाल है, वही अमृत है। जो लघु है वह मर्त्य है। जो विशाल है, वही सुखरूप है। अल्प में सुख नहीं रहता। निस्संदेह विशाल ही सुख है। इसलिए विशाल का ही विशेष रूप से जानने की इच्छा करनी चाहिए।'

मूलपाठ इस प्रकार है :

यो वै भूमा तदमृतम्। अथ यदल्पं तन्मर्त्यम्।। यो वै भूमा तत्सुख्। नाल्पे सुख-मस्ति। भूमैव सुख्। भूमा त्वेव विजिज्ञासितव्यः।।

भगवान, इस सूत्र को हमारे लिए सुस्पष्ट बनाने की कृपा करें।

सहजानंद ! छान्दोग्य उपनिषद ऐसे है जैसे अमृत से भरा सरोवर। जैसे शुद्ध संगीत। इसलिए उसका नाम है : छान्दोग्य। 'छंद' से बना है नाम।

जीवन दो ढंग से जीया जा सकता है। एक तो जीवन का ढंग है : संगीतशून्य; आपाधापी, चिन्ता, विषाद, संताप, अहंकार, महत्त्वाकांक्षा, संघर्ष। स्वभावतः संगीत असंभव होगा। ऐसे ही दौड़-धूप में भीतर का छंद बिखर जाता है। जैसे रात पूरे चांद की हो, पूर्णिमा हो, आकाश बादलों से रहित हो, चांद अपने पूरे सौन्दर्य में प्रगट हो, फिर भी अगर झील पर लहरें हों तो झील में चांद का प्रतिबिम्ब बन न पाएगा। बनेगा, लेकिन लहरों के कारण टूट-टूट जाएगा, खंड-खंड हो जाएगा, छितर-बितर हो जाएगा। जैसे कोई पारे को फर्श पर गिरा दे, इकट्ठा करना मुश्किल हो जाए। ऐसे ही चांद भी पारे की तरह है--खंड-खंड हो कर बिखर जाएगा। सारी झील पर चांदी फैल जाएगी। लेकिन चांद जैसा है वैसा प्रतिफलित न हो सकेगा। पर अगर झील मौन हो, शांत हो, निस्तरंग हो, आंधियां न उठ रही हों, तूफान न आया हो, झील ध्यानस्थ हो, समाधिस्थ हो, तो फिर चांद जैसा है वैसा ही प्रतिफलित होगा।

एक तो मनुष्य के जीने का ढंग है विक्षिप्त झील की भांति, जहां वासनाओं की आंधियां लहरों पर लहरें उठाये चली जाती हैं; जहां मन हमेशा कंपित है, डांवाडोल है, चंचल है। इस चंचल मन में परमात्मा का प्रतिफलन नहीं बन सकता। इस चंचल मन में सब विकृत हो जाएगा। छंद टूट जाएगा। छांदोग्य का अर्थ है: छंद टूटे नहीं। यह ध्यान की पराकाष्ठा है। जहां चित्त निर्विचार होता है। जैसे ही चित्त निर्विचार हुआ कि भीतर अनाहत का संगीत बजने लगता है; हृदय की वीणा पर शाश्वत की गुनगुनाहट सुनायी पड़ती है। चित्त विक्षिप्त हो तो हम संसार को जानते हैं, और चित्त शांत हो तो हम परमात्मा को जानते हैं।

संसार और परमात्मा दो नहीं हैं। सत्य तो एक है। चांद दो नहीं हैं, चाहे झील में लहरें हों और चाहे झील में लहरें न हों, चांद तो वही है, जैसा है वैसा ही है। लेकिन अगर झील के पास भी सोचने वाली बुद्धि होती, तो लहरों वाली झील सोचती एक ढंग से और शांत झील सोचती दूसरे ढंग से। लहर वाली झील देखती संसार को और शांत झील देखती परमात्मा को। जिसने संसार देखा, उसने अभी कुछ भी नहीं देखा। जिसने संसार में परमात्मा देखा, उसे ही आंख मिली। और जिसने परमात्मा को देखा, वह देखते ही परमात्मा हो जाता है। कल हम मुंडकोपनिषद के सूत्र पर ही तो बात कर रहे थे कि जो उस ब्रह्म को जानता है, ब्रह्मैव भवति, वह ब्रह्म ही हो जाता है। जिसने परमात्मा को जाना, उसने यह भी जाना कि मैं उसी का अंग हूं। और जिसने परमात्मा नहीं जाना, स्वभावतः उसने इतना ही जाना कि मैं क्षुद्र हूं, अपने में बद्ध हूं, जरा-सा पोखर हूं, डबरा हूं।

अहंकार का अर्थ है: अपने को अस्तित्व से पृथक जानना। और परमात्मा के अनुभव का अर्थ है: अपने को अस्तित्व के साथ एक पाना। एकाकार। इसी अनुभूति की तरफ छान्दोग्य का इशारा है—

यो वै भूमा तदमृतम्।

'जो विशाल है, वही अमृत है।' लहरें तो मिटेंगी, सागर रहेगा। हम तो मिटेंगे, परमात्मा रहेगा। हम तो जन्मे हैं, तो मृत्यु भी घटेगी। यह देह बनी है, तो बिखरेगी भी। देर-अबेर। मगर कितनी ही देर हो, बहुत देर तो नहीं होगी। समय में जो भी बनता है, वह बिखरता है। यह समय का नियम है। यहां तो मृत्यु अनिवार्य है।

तुमने ध्यान दिया, हम मृत्यु को भी काल कहते हैं और समय को भी काल कहते हैं। कारण हैं। शायद दुनिया की किसी भाषा में मृत्यु और समय के लिए एक ही शब्द उपयोग नहीं होता। सिर्फ हमने ही मृत्यु को भी काल कहा, समय को भी काल कहा। गहरे अनुभव के आधार पर ऐसा कहा। समय अर्थात मृत्यु। समय के भीतर तो मृत्यु अपरिहार्य है, उससे बचा नहीं जा सकता। वह तो घट ही चुकी है, जन्म के साथ ही घट चुकी है, जिस दिन चीज बनती है, उसी दिन बिखरनी शुरू हो

जाती है। बच्चा पैदा हुआ और मरना शुरू हुआ। पहली ही घड़ी से मृत्यु आनी शुरू हो जाती है। यह और बात है कि आते-आते सत्तर वर्ष लग जाते हैं। ऐसा मत सोचना कि सत्तर वर्ष पूरे होने पर अचानक एक दिन मृत्यु तुम्हारे द्वार पर दस्तक देती है। तुम मरते ही रहे, मरते ही रहते, सत्तर वर्ष में प्रक्रिया पूरी हुई। सत्तर वर्ष में पहली बार मृत्यु तुम्हारे द्वार पर नहीं आती, सत्तर वर्ष में मृत्यु काम पूरा कर चुकी, इसलिए तुम्हारे द्वार से विदा होती है। तुम सोचते हो आती है, उस दिन मृत्यु जाती है। आती तो है जन्म के साथ—वह जन्म का दूसरा पहलू है।

समय के भीतर हम क्षुद्र हैं। लेकिन अगर हम समय के ऊपर उठ सकें, तो तत्क्षण सीमातीत हो जाते हैं, विशाल का अनुभव शुरू होता है। हम उतने ही असीम हो हो जाते हैं जितना असीम आकाश है। फिर आकाश भी हमारी सीमा नहीं है।

'यो वै भूमा तदमृतम्।' और जिसने इस विशाल को अनुभव किया, इस विराट को अनुभव किया, इस विस्तीर्ण को अनुभव किया, वह अमृत को उपलब्ध हो गया। अब उसकी कोई मृत्यु नहीं है। कालातीत होते ही हम अमृत हो जाते हैं। काल है मृत्यु और कालातीत हो जाना है अमृत। ध्यान में पहली बार समय मिटता है। इसलिए ध्यान में पहली दफा अमृत की एक बूंद तुम्हारे गले के भीतर उतरती है, तुम्हारे कंठ को छूती है। ध्यान में पहली दफा झरोखा खुलता है। पहली बार तुम देख पाते हो कि जो वस्तुतः है, वह कभी मिटेगा नहीं; और जो मिटता है, वह था ही नहीं, तुमने मान लिया था। जैसे कोई ताश के घर बनाए, या कागज की नाव चलाए। कागज की नाव नाव-जैसी मालूम होती है, नाव नहीं है। उसका डूबना सुनिश्चित है। तुम कागज की नाव में दीये को जला कर भी नदी में तैरा दो, थोड़ी दूर तक चमकता रहेगा, झलकता रहेगा, फिर खो जाएगा।

ऐसे ही तो हम जन्म के साथ यात्रा शुरू करते हैं, कागज की नाव—देह इससे ज्यादा नहीं है—और यह विराट सागर है, इसमें कितनी दूर तक चलोगे? इसमें गिरना सुनिश्चित है। गिरने के पहले जो सजग हो जाए और समझ ले कि मेरी नाव कागज की है, मेरी नाव मृत्यु की है, उसके जीवन में क्रांति घट जाती है। क्योंकि उसके भीतर जिज्ञासा पैदा होती है। जिज्ञासा पैदा होती है उसे जानने की, जो कभी नहीं मिटेगा। और उसे बिना जाने जीवन में कैसे सुख हो सकता है? धन कितना ही हो, सुख न होगा।

तुम देखते तो हो धनी लोगों को, अक्सर तो गरीब से भी ज्यादा दुखी हो जाते हैं। गरीब को एक ही दुख होता है कि गरीब है और आशा होती है, कम-से-कम आशा होती है कि आज नहीं कल जब गरीबी मिट जाएगी तो जीवन में सुख होगा। और आशा के सहारे जी लेता है। अमीर की आशा भी मिट जाती है। अब अमीर गरीब तो नहीं है, इसलिए आशा क्या करे? अब धन तो पा लिया और भीतर की पीड़ा

तो वैसी की वैसी है, अछूती की अछूती, उसमें तो रत्ती भर भेद नहीं पड़ा! इसलिए धनी दोहरे दुख में पहुंच जाता है। धन भी मिल गया, आशा भी मर गयी और भीतर जैसा था वैसा ही है। वही पीड़ा, वही विषाद, वही संताप, वही नर्क, वही खालीपन, वही अर्थहीनता। न तो गीत जनमा, न संगीत पैदा हुआ, न फूल खिले, न चांद-तारे ऊगे; कुछ भी न हुआ! अंधेरा और सघन हो गया। वह जो दूर टिम-टिमाता-सा दीया जलता था आशा का, वह भी बुझ गया।

अंधेरी रात में जंगल में भटके राही को दूर टिमटिमाता दीया भी जिलाए रखता है। आशा बंधी रहती है: पहुंच जाऊंगा। चाहे पहुंच कर पता चले कि दीया कल्पित था। मृगमरीचिका थी; मैंने ही सपना देख लिया था; मेरी ही आकांक्षा थी दीये को पाने की, इसलिए दीया दिखाई पड़ने लगा था; खुली आंखों का देखा सपना था। इसलिए जो पहुंच जाता है—धन पा लेता, पद पा लेता—उसकी पीड़ा बहुत सघन हो जाती है।

मेरे अनुभव में उस पीड़ा से ही धर्म का जन्म होता है।

इसलिए गरीब समाज धार्मिक नहीं हो पाता। आशा बंधी रहती है संसार से। आशा की डोर लगी रहती है।... कमल ने कल पूछा था कि भारतीयों की इतनी अवमानना क्यों है? क्यों भारतीय की इतनी अप्रतिष्ठा है जगत में? बहुत कारण हैं। उनमें एक कारण यह भी है कि भारत जिस धर्म की बात कर रहा है, वह गरीब समाज को शोभा नहीं देता। गरीब उसकी बात करने का हकदार नहीं है। और गरीब जब उस तरह के धर्म की बात करता है, तो वह झूठी होती है, मिथ्या होती है, थोथी होती है।

मेरे पास न-मालूम कितने पत्र आते हैं। पश्चिम से पत्र आते हैं, तो उनकी जिज्ञासा और होती है। और भारतीयों के पत्र आते हैं तो उनकी जिज्ञासा बड़ी और होती है। एक मित्र ने लिखा कि मैंने सुना है कि आपके आश्रम के पास करोड़ों रुपये हैं; अगर आप असली महात्मा हैं तो कम-से-कम एक लाख रुपये मुझे भेज दें। तो मैं मानूंगा कि आप असली महात्मा हैं। एक मित्र ने लिखा—कल ही पत्र आया है—कि मैंने सुना कि आपके पास दो कारें हैं, और मेरे पास केवल साइकिल है, और मुझे दूर दफ्तर में काम करने साइकिल पर जाना पड़ता है, अगर आप सच में ही भगवान हैं, तो एक कार मुझे भेज दें! कोई लिखता है कि वह बीमार है। कोई लिखता है उसे नौकरी चाहिए। कोई लिखता है उसके लड़के के लिए यूरोप भिजवा दें, अमरीका भिजवा दें। और ये सारे लोग सोचते हैं कि धार्मिक हैं! इन सारे लोगों को भ्रांति है।

पश्चिम तुम्हारे पाखंड को देख पाता है। तुम्हारे झूठ को देख पाता है।

तुम्हारा झूठ अपरिहार्य है। धर्म जब इस देश में पैदा हुआ था, तब यह देश सोने की चिड़िया थी। तब धर्म की बात अर्थपूर्ण थी, क्योंकि हमने देख लिया था कि व्यर्थ है दौड़-धूप। उस दौड़-धूप की व्यर्थता न हमें एक प्रामाणिकता दी थी। आशा छूट गयी थी संसार से, तो हमने परमात्मा की जिज्ञासा की थी। अभी तो आशा हमारी संसार से बंधी है, अभी तो हम परमात्मा की जिज्ञासा भी करेंगे तो इसी संसार के लिए करेंगे।

मंदिरों में जा कर लोगों की प्रार्थनाएं सुनो, वह क्या मांग रहे हैं? किस मूर्ति के सामने प्रार्थना कर रहे हैं, यह दो कौड़ी की बात है, असली बात यह है कि वे क्या मांग रहे हैं प्रार्थना में, उससे पता चलेगा। उनके हृदय की खबर मूर्ति से नहीं मिलेगी; न मंदिर से, न मस्जिद से, न गुरुद्वारा से, न गिरजे से, उनके हृदय की खबर तो वे क्या प्रार्थना कर रहे हैं, यह सवाल नहीं है, प्रार्थना के पीछे छिपा हुआ अभिप्राय क्या है? कि पत्नी की बीमारी ठीक हो जाए, कि लड़के को नौकरी मिल जाए, कि धंधा ठीक से चल पड़े, कि इस बार लाटरी मेरे नाम से खुल जाए! और मैं इसमें दोष भी नहीं देखता—गरीब का कुछ कसूर भी नहीं है। खतरा तब पैदा होता है जब ऐसा गरीब समाज उन बातों को करने लगता है या किये चला जाता है, जिनसे अब उसके जीवन का कोई संबंध नहीं रह गया। दीन-हीन को क्या अंतर्छंद से संबंध होगा! रोटी-रोजी जुट जाए तो बहुत। अभी किसको पड़ी है कि अंतर में छंद जगे!

लेकिन अगर व्यक्ति बाहर के जगत को अनुभव करे, तो एक-न-एक दिन निराशा हाथ लगेगी। और निराशा बड़ी उपलब्धि है। क्योंकि उसी निराशा के बाद जिसको छान्दोग्य कहता है: विजिज्ञासितव्यः, वह विशेष जिज्ञासा पैदा होगी, विजिज्ञासा पैदा होगी। साधारण जिज्ञासा नहीं, विशेष जिज्ञासा पैदा होगी। कि मैं जानूं कि इस देह के पार भी कुछ है या नहीं? जानूं कि धन के पार भी कोई धन है या नहीं? पद के पार भी कोई पद है या नहीं? यह जो दिखाई पड़ता है जगत, इसके पीछे कोई छिपा हुआ राज है भी या नहीं? पाखंड पैदा हो जाता है जब तुम चाहते तो हो कि इसी जगत की चीजें मिलें, लेकिन बातें और दूसरे जगत की करते हो—तब पाखंड पैदा हो जाता है।

सेठ चंदूलाल ने अपने गुरु स्वामी मटकानाथ ब्रह्मचारी से पूछा, 'गुरुदेव, आप दूसरों को तो धूम्रपान छोड़ने के लिए कहते हैं और खुद पीते हैं!' स्वामी मटकानाथ ब्रह्मचारी ने कहा, 'बच्चा, मैं खुद न पीऊं तो इसकी हानियां कैसे जानूंगा?'

सेठ चंदूलाल जा रहे थे तीर्थयात्रा पर। बड़े चिन्तित थे कि दो-तीन महीने घर में ताला पड़ा रहेगा, चोर-उचक्के भरपूर हैं, मित्रों का भी अब कोई भरोसा नहीं, अब कोई किसी के काम आता नहीं, चाबियां साथ ले जाना भी खतरनाक है—तीन महीने में कहीं खो जाएं, चोरी चली जाएं—सो उन्होंने सोचा कि गुरुदेव को ही दे दें। स्वामी मटकानाथ ब्रह्मचारी को जाकर उन्होंने कहा कि मैं तीर्थयात्रा पर जा रहा हूं, ये मकान की चाबियां हैं, ये आपको सौंपे जाता हूं। आजकल जरा डर बना

रहता है, इसलिए चाबियां सम्हाल कर रखना। और ध्यान रखना कि कोई ताला तोड़ कर चोरी न कर जाए। ब्रह्मचारी जी ने कहा, 'बच्चा, बेफिक्री से जा! अरे, ताला-वाला तोड़ने की क्या जरूरत है, चाबियां तो हैं ही! वह नौबत नहीं आएगी!'

यहां आश्रम की ही यह घटना है। एक भारतीय संन्यासी ने एक अमरीकन संन्यासी से कहा, 'मित्र, मुझे बीस रुपये उधार दे दो, बहुत तंगी में हूं।'

अमरीकन संन्यासी बोला, 'भई, रुपये तो दे दूं, लेकिन कर्ज को दोस्ती की कैंची कहते हैं।' भारतीय संन्यासी हंसने लगा और बोला, 'यार, तुम रुपये तो दो! यूं ही हम कहां कोई बहुत गहरे दोस्त हैं!'

एक थोथापन अनिवार्य है। क्योंकि तुम जो मानते हो, अगर वह तुम्हारा अपना जीवित अनुभव नहीं है, तो तुम व्यवहार कुछ करोगे, कहोगे कुछ। इसलिए भारतीय सारे जगत में अनादृत है। क्योंकि वह कहता कुछ है, करता कुछ है। बताता कुछ है और निकलता है भीतर से बिलकुल विपरीत। एक थोथा पांडित्य है। उपनिषद कंठस्थ हो गये हैं,...छान्दोग्य भी दोहरा देगा—हालांकि भीतर कोई छंद नहीं है। और जिसके भीतर छंद नहीं है, उसकी छान्दोग्य की व्याख्या झूठ है, पाखंड है, मिथ्या है; उसके जीवन में उसका कोई कहीं भी लक्षण नहीं मिलेगा।

छान्दोग्य की व्याख्या करने का वही अधिकारी है, जिसके भीतर छंद जगा हो। जिसके जीवन में संगीत हो, काव्य हो, प्रसाद हो। और तुम्हारा जीवन बताएगा। तुम्हारा जीवन कुछ और बताएगा, तुम्हारी बातें कुछ और कहेंगी। तुम्हारी बातें आकाश की होंगी, और तुम्हारा जीवन जमीन पर कीड़े-मकोड़ों की तरह सरकता हुआ होगा।

एक महापंडित का हाथ, बायां हाथ मशीन में कट गया। बड़े शास्त्री थे। गीता-ज्ञान-मर्मज्ञ थे। वे मलहम-पट्टी करवाने डाक्टर के पास पहुंचे। डाक्टर ने कहा, 'पंडित जी, यह तो आपकी किस्मत अच्छी थी कि मशीन में बायां हाथ आया। यदि दायां हाथ आ जाता तो आप दुनिया का कोई भी काम नहीं कर सकते थे।' पंडित जी बोले, 'अरे डाक्टर साहब, किस्मत काहे की अच्छी, यह तो मेरी होशियारी है। दरसल मेरा दायां हाथ ही मशीन में आया था, लेकिन मैंने झट से उसे पीछे खींच बायां हाथ आगे कर दिया।'

गीता-ज्ञान-मर्मज्ञ होंगे, मगर जिंदगी तो कुछ और प्रमाण देगी। जिंदगी तो मूढ़ता को बताएगी।

और भारतीय व्यक्तित्व इसलिए भी अनादृत है कि तुम्हारी बातों की चूंकि भीतर कोई जड़ें नहीं रह गयी हैं, ऊपर-ऊपर हैं, कागजी हो गयी हैं, शास्त्रीय हो गयी हैं, तुम उबाते हो लोगों को।

मैंने सुना है, जार्ज बर्नार्ड शा से एक भारतीय पंडित मिलने गया था। जार्ज बर्नार्ड शा को बुरी तरह उबा रहा था। बर्नार्ड शा संकोचवश, शिष्टाचारवश कह भी नहीं सक रहे थे कि पंडित जी, अब क्षमा करो, यह बकवास बंद करो! कोई और रास्ता न देख कर बर्नार्ड शा ने पास में ही पड़ी हुई एक पत्रिका उठा ली और पढ़ने लगे। पढ़ने तो क्या लगे, पन्ने पलटने लगे; कि पंडित इशारा समझ ले। पंडित जी ने जब यह देखा तो वे बोले बर्नार्ड शा से, मैं आपसे कुछ कहना चाहता था, पर याद नहीं आ रहा है। जार्ज बर्नार्ड शा ने कहा, शायद आप नमस्ते कहना चाहते थे। मैं याद दिलाए देता हूं।

लोग ऊब गये हैं। लोग बुरी तरह ऊब गये हैं। और ऐसा नहीं कि तुम भी नहीं ऊब गये हो अपने पंडितों से, अपने साधुओं से, अपने महात्माओं से। तुम भी ऊब गये हो। मगर तुममें इतना बल भी नहीं रह गया है कि तुम स्पष्ट कह सको कि अब बस बंद करो! तुम्हारे जीवन में छंद नहीं है, तो कम-से-कम छान्दोग्य पर मत बोलो! तुम्हारे जीवन में गीत नहीं हैं, तो तुम्हारा गीता-ज्ञान-मर्मज्ञ होना दो कौड़ी का है! जब तक तुम्हारे भीतर भगवत्-गीत का जन्म न हो, तब तक क्या तुम भगवत्-गीता पर बोलोगे! जब तक तुम ब्रह्म को न जान लो, तब तक तुम कैसे वेद की कोई व्याख्या कर सकते हो!

यह सूत्र जिसने भी कहा होगा, जान कर कहा है। अहंकार दुख है, क्योंकि अहं-कार सीमा है। और निर-अहंकारिता सुख है, क्योंकि निर-अहंकारिता असीम है। शरीर में आबद्ध होना दुख है। क्योंकि शरीर सीमा है। और मैं शरीर से मुक्त हूं, ऐसा जानना सुख है। मैं चैतन्य हूं, ऐसा जानना सुख है। जानना, मानना नहीं। ऐसा अनुभव, ऐसा सिद्धांत नहीं। ऐसी प्रतीति, ऐसा साक्षात्कार, ऐसी धारणा नहीं। ये प्रश्न धारणाओं के नहीं हैं। समय में अपने को देखना मृत्यु से बंधे रहना है। कालातीत अपने को अनुभव करना अमृत का अनुभव है।

और कालातीत अपने को अनुभव करने का ध्यान के अतिरिक्त कोई उपाय नहीं है! कितना ही गऊ-माता का दूध पीओ, कालातीत को न जान पाओगे। खोपड़ी में गोबर-ही-गोबर भर जाए तो भी कालातीत को नहीं जान पाओगे। और कितना ही शीर्षासन करो, कालातीत को न जान पाओगे। उल्टा खड़े-होने से, शीर्षासन करने से कालातीत को जानने का कोई संबंध नहीं है। लाख ब्रह्ममुहूर्त में उठो, ब्रह्म को न जान लोगे। और कितना ही दोहराते रहो तोतों की तरह अपने शास्त्रों को, कुछ पाओगे नहीं, हाथ कुछ लगेगा नहीं—कौड़ियां भी हाथ नहीं लगेंगी, हीरे-जवाहरात तो दूर। ध्यान के अतिरिक्त न कभी कोई उपाय था, न कभी कोई उपाय होगा।

ध्यान का अर्थ है: कालातीत होने की प्रक्रिया। समय के पार जाने की प्रक्रिया। तुम समय के स्वभाव को थोड़ा समझ लो। कुछ बातें तो तुम्हारे अनुभव में हैं,

इसलिए समझना कठिन नहीं होगा। कुछ तुम्हारे अनुभव में नहीं है, लेकिन जो तुम्हारे अनुभव में हैं, उससे उस दिशा में इशारे मिल सकते हैं जो तुम्हारे अनुभव में नहीं हैं।

जब तुम दुखी होते हो, तो समय लम्बा हो जाता है। जैसे, तुम्हारी मां या तुम्हारे पिता मरणशैय्या पर पड़े हैं और रात-भर तुम बैठे हो, जाग रहे हो, क्योंकि डाक्टरों ने कहा है कि पता नहीं कब श्वास खो जाएगी! तो वह रात इतनी लम्बी हो जाएगी कि कयामत की रात मालूम होगी। अंत ही आता न मालूम पड़ेगा। लगेगा कि अब सहर होगी ही नहीं, सुबह होगी ही नहीं। रात इतनी लम्बी हो जाएगी और घड़ी का कांटा यूं सरकेगा कि जैसे सरकना ही भूल गया! हालांकि घड़ी का कांटा पुराने ही ढंग से चल रहा है। घड़ी को क्या पड़ी है कि कौन मर रहा है, कौन जी रहा है! रात भी पुराने ढंग से ही सरक रही है। लेकिन तुम्हारे चित्त की अवस्था दुख की है। दुख में समय लम्बा हो जाता है।

समय तुम यूं समझो कि जैसे रबर है। दुख में खिंच जाता है, लम्बा हो जाता है। सुख में सिकुड़ जाता है।

तुम्हारी प्रेयसी तुम्हें मिलने आ गयी है, बरसों का बिछड़ा यार मिल गया है, तो घंटे यूं बीत जाते हैं जैसे पल बीते। पलक झपकते बीत जाते हैं। रात भर मित्र से बातें करते रहते हो, कब सुबह हो गयी पता नहीं चलता। एकदम पता चलता है कि रात पूरी बीत गयी। यूं बीत गयी! कब आयी, कब गयी, पता नहीं। तुम बातों में ऐसे तल्लीन थे, बरसों बाद मित्र मिला था, न-मालूम कितनी बातें करने की थीं, हृदय उघाड़ कर रख देने में लगे थे—आनंदित थे, मस्त थे—तो समय छोटा हो गया।

यह तुम्हारा अनुभव है। इस अनुभव से इशारे ले सकते हो। दुख में समय लम्बा हो जाता है, सुख में छोटा हो जाता है। लेकिन महासुख में? स्वभावतः विलीन हो जाएगा। और महादुख में? स्वभावतः अनंत हो जाएगा।

बर्ट्रेंड रसल ने एक बहुत महत्त्वपूर्ण किताब लिखी है, ईसाइयत के खिलाफ, कि मैं ईसाई क्यों नहीं हूं? उसमें बहुत-से तर्क दिये हैं, महत्त्वपूर्ण तर्क दिये हैं। एक तर्क जो उसने दिया है, वह ऊपर से तो महत्त्वपूर्ण दिखता है लेकिन ध्यान का उसे कोई अनुभव नहीं रहा होगा, इसका सबूत देता है। बहुत-से तर्कों में उसने एक तर्क यह भी दिया है कि जीसस का कहना है कि जो लोग पाप करते हैं, जो लोग मूर्छा में जीते हैं, वे नर्क में पड़ेंगे। और ईसाइयत की धारणा है कि नर्क अनंत है। मतलब एक बार पड़े सो पड़े।

बर्ट्रेंड रसल का कहना बिलकुल तर्कयुक्त है कि मैं कितने ही पाप करूं—और ईसाइयत में एक ही जन्म होता है, अगर अनंत जन्म भी होते तो भी समझ में आ सकता था कि अनंत पाप किये होंगे अनंत-अनंत जन्मों में; चौरासी करोड़ योनियों

में कितने नहीं पाप किये होंगे, तो अनंत काल तक रहना पड़ेगा—लेकिन ईसाइयत तो एक ही जन्म को मानती है; सत्तर साल का जन्म, जीवन, इसमें कितने पाप करोगे? बर्ट्रेंड रसल का कहना है कि अगर कठिन-से-कठिन भी कोई मजिस्ट्रेट हो, तो मुझे चार या पांच साल की सजा दे सकता है—मैंने जो पाप किये। अगर वे भी पाप जोड़ लिये जाएं जो मैंने किये नहीं सिर्फ सोचे,... कि फलाने की स्त्री ले भागूं—सिर्फ सोचा, किया भी नहीं है—अगर वह भी जोड़ लिया जाए, तो समझ लो ज्यादा-से-ज्यादा आठ से दस साल की मुझे सजा दी जा सकती है। वह भी कठोर-से-कठोर कोई न्यायाधीश हो तो। दस साल की इस सजा के लिए मुझे अनंत काल तक नर्क में रहना पड़ेगा! और फिर भी ईसाई कहते हैं कि परमात्मा न्यायपूर्ण है! यह तो महा अन्याय हो गया। अरे, सत्तर साल में कितने पाप करोगे? अगर सत्तर साल भी पाप करते रहो, सतत—और दूसरा काम ही न करो; न खाओ, न पीओ, न सांस लो, न उठो, न बैठो, न नहाओ, न धोओ, पाप ही पाप करते रहो सत्तर साल, तो भी कितने दंड दोगे? सात सौ साल का दण्ड दे देना और क्या करोगे? सात हजार साल का दे देना, सात लाख साल का देना, मगर अनंत! यह तो कुछ बात जंचती नहीं।

और बर्ट्रेंड रसल का कोई उत्तर ईसाई पादरी नहीं दे सके हैं, ईसाई धर्मगुरु नहीं दे सके हैं। बर्ट्रेंड रसल ने किताब लिखी थी आज से कोई साठ साल पहले—बर्ट्रेंड रसल नब्बे साल तक जीया, अभी-अभी मरा है कुछ वर्ष पहले, साठ साल प्रतीक्षा की उसने, किताब लिखी थी जब वह कोई तीस साल का था, लेकिन कोई जवाब नहीं मिल सका उसको।

जवाब मिले कैसे? न बर्ट्रेंड रसल को ध्यान का अनुभव है, न ईसाई पादरी-पुरोहितों को ध्यान का कोई अनुभव है, जवाब देगा कौन? और जवाब बड़ा सीधा-सरल था, अगर ध्यान का कोई भी अनुभवी हो तो जवाब बड़ा सीधा-सरल है। अनंत का अर्थ अनंत नहीं है। अनंत का अर्थ है: नर्क अनंत मालूम पड़ेगा। क्योंकि दुख में समय लम्बा जाता है। साधारण दुख में लम्बा जाता है, तो नर्क तो अनंत मालूम पड़ेगा। है अनंत, ऐसा नहीं है, मालूम पड़ेगा।

और इसीलिए तो हमको प्रतीत होता है कि सुख क्षणभंगुर है। क्योंकि समय छोटा हो जाता है। दुख को नहीं कहता कोई क्षणभंगुर।

तुमने यह सुना! तुम्हारे महात्मा समझाते रहते हैं, सुख क्षणभंगुर है, लेकिन किसी महात्मा को तुमने यह कहते सुना कि दुख क्षणभंगुर है? तुमने यह वचन ही कहीं नहीं देखा होगा कि दुख क्षणभंगुर है। सुख क्षणभंगुर है। सुख क्षणभंगुर है इसलिए नहीं कि क्षणभंगुर है, बल्कि इसलिए कि सुख में समय सिकुड़ जाता है, एक क्षण हो जाता है। और दुख अनंत हो जाता है। प्रतीत होता है। एहसास होता है।

समय हमारी प्रतीति है।

तो ये चार बातें ख्याल रखो। अगर महादुख होगा तो समय अनंत मालूम होगा। ...मालूम होगा, ख्याल रखना। समय तो जैसा है वैसा ही है, सिर्फ तुम्हारी प्रतीति बहुत खिंच जाएगी। अगर छोटा-मोटा दुख होगा तो समय बड़ा मालूम होगा। अगर छोटा-मोटा दुख होगा तो समय बहुत अल्प मालूम होगा। और अगर महासुख होगा तो समय विलीन हो जाएगा।

जीसस से किसी ने पूछा—बाइबिल में यह उल्लेख नहीं है, लेकिन सूफियों की परंपरा में यह वचन संगृहीत है। यह प्यारा वचन है और पी. डी. आस्पेंस्की ने अपनी महान किताब टर्शियम आर्गनम में यह वचन सबसे पहले उद्धृत किया है। जैसे कि पूरी किताब इसी की व्याख्या है।—किसी ने जीसस से पूछा कि तुम्हारे प्रभु के राज्य में, जिसकी तुम निरंतर चर्चा करते हो, सबसे खास बात क्या होगी? तो जीसस ने कहा: 'देयर शैल बी टाइम नो लांगर'। वहां समय नहीं होगा। पी. डी. आस्पेंस्की ने अपनी किताब के प्रथम ही इसको उल्लेख किया है, जीसस के इस वचन को कि वहां समय नहीं होगा।

यह अनुभव तो ध्यान में किसी को भी हो जाता है। क्योंकि ध्यान में हम तत्क्षण प्रभु के राज्य के हिस्से हो गये। ध्यान का अर्थ है: निर्विचार, शून्य। जहां कोई विचार न रहा, वहां कोई सीमा न रही। विचार ही बागुड़ की तरह तुम्हें घेरे हुए हैं। जहां विचार गिर गये, सारी दीवालें गिर गयीं, सारे कारागृह गिर गये, सारे कटघरे विलीन हो गये, तिरोहित हो गये—सब द्वार खुल गये। उस घड़ी में घड़ी बंद हो जाती है। समय ठहर जाता है। छान्दोग्य उसी की तरफ इशारा कर रहा है। कह रहा है:

'जो विशाल है, वही अमृत है।'

यो वै भूमा तदमृतम्।

भूमा शब्द बहुत अर्थ रखता है, जो विशाल शब्द में नहीं आते। विशाल केवल उसका एक पहलू है। भूमा का अर्थ होता है: सर्वव्यापी। जहां-जहां तक तुम्हारी कल्पना जा सकती है, वहां तो मौजूद है ही और जहां तुम्हारी कल्पना भी नहीं जा सकती, वहां भी मौजूद है। इतना विराट कि जहां तुम्हारी कल्पना भी थक कर गिर जाती है, जहां तुम्हारे विचार भी गति नहीं कर सकते, जहां तुम्हारे स्वप्न भी उड़ान नहीं भर सकते, इतना विराट कि तुम थक जाओ सोच-सोच कर और सोच न पाओ, अनिर्वचनीय रूप से जो विराट है।

ब्रह्म शब्द का भी भूमा ही अर्थ होता है। ब्रह्म शब्द जिस धातु से बना है, उसी से हमारा हिन्दी का शब्द बना है: विस्तीर्ण।

ब्रह्म शब्द बहुत अद्भुत है। अगर इसका ठीक-ठीक अनुवाद करना हो तो यूं कहना पड़े: जो सदा ही विस्तीर्ण होता चला जाता है। तुम जहां भी जाओगे, पाओगे

वह अभी और आगे शेष है। तुम उसे कभी चुकता न कर सकोगे। तुम ऐसा न कह सकोगे कि बस, यह आ गया आखिरी पड़ाव, यह आ गयी मंजिल, अब इसके आगे कुछ भी नहीं—ऐसा तुम कभी न कह सकोगे। तुम जहां भी जाओगे, पाओगे वह और आगे फैला हुआ है, और आगे फैला हुआ है। तुम बढ़ते जाओगे और तुम पाओगे वह और आगे फैला हुआ है। उसका कोई कूल-किनारा नहीं है।

ब्रह्म शब्द का उपयोग हमने किया है आज से पांच हजार साल पहले—कम-से-कम। जो सदा विस्तीर्ण होता चला जाता है। और आधुनिक विज्ञान ने इस सदी में आकर ठीक इसी सत्य को स्वीकार किया है। अल्बर्ट आइंस्टीन की बड़ी-से-बड़ी खोजों में एक खोज यह है कि जगत वह है जो सदा विस्तीर्ण हो रहा है। अल्बर्ट आइंस्टीन के पहले वैज्ञानिक मानते थे कि जगत जैसा है वैसा है, जहां तक है वहां तक है; उनकी धारणा एक थिर जगत की थी। अल्बर्ट आइंस्टीन ने धारणा को तोड़ दिया थिर जगत की। गतिमान, गत्यात्मक जगत की धारणा दी। 'एक्सपांडिंग यूनीवर्स'। विस्तीर्ण होता हुआ विश्व, फैलता हुआ विश्व। फैल ही रहा है। बड़े से बड़ा होता जा रहा है। विराट से विराटतर होता जा रहा है। जैसे कि कोई छोटा-सा बच्चा अपने फुग्गे में हवा भरता जाता है और फुग्गा बड़ा होता जाता है, बड़ा होता जाता है, बड़ा होता जाता है। ऐसे यह अस्तित्व विराट होता जा रहा है। यह प्रतिक्षण फैल रहा है। और बड़ी गति से फैल रहा है।

विज्ञान के हिसाब से जो गति सूर्य के प्रकाश की है, उसी गति से जगत विस्तीर्ण हो रहा है। गति बहुत है। अकल्पनीय है। प्रकाश की गति है: प्रति सेकंड एक लाख छियासी हजार मील। इसलिए सूरज से हम तक किरण को आने में कोई साढ़े नौ मिनट लगते हैं। इस गति से आने में। एक लाख छियासी हजार मील प्रति सेकंड। इसमें साठ का गुणा करो तो एक मिनट में इतनी गति। फिर साढ़े नौ का गुणा करो तो उतनी देर में प्रकाश यहां तक आ पाता है—इतनी हमारी सूरज से दूरी है।

और सूरज कुछ बहुत दूर नहीं।

जो सबसे निकट का तारा है, उससे हम तक प्रकाश को इसी गति से आने में चार वर्ष लगते हैं। और फिर तारे हैं, जिनसे करोड़ों वर्ष लगते हैं। तारे हैं, जिनसे अरबों वर्ष लगते हैं। ऐसे तारे हैं कि जब पृथ्वी बनी थी तब उनकी किरणें चली थीं, वे अभी तक पृथ्वी पर नहीं पहुंचीं। और ऐसे तारे हैं कि शायद पृथ्वी समाप्त भी हो जाएगी और उनकी किरणें चली थीं तब जब पृथ्वी बनी न थी और जब आएंगी तब तक पृथ्वी विदा हो चुकी होगी। उन किरणों को कभी पृथ्वी मिलेगी ही नहीं। पृथ्वी को बने कोई चार अरब वर्ष हुए। तो जिस तारे से पृथ्वी की तरफ अभी तक चार अरब वर्ष में चली किरण नहीं पहुंच पायी है, उसकी दूरी की तुम कल्पना कर सकते हो—वही गति है एक लाख छियासी हजार मील प्रति सेकिंड!

और इसी गति से जगत विस्तीर्ण हो रहा है।

एक महिला एक डाक्टर के पास गयी। डाक्टर होंगे हमारे अजित सरस्वती जैसे। जच्चा-बच्चा अस्पताल चलाते होंगे। उस महिला की एक ही चिंता थी—उसको गर्भ रह गया था—वह कहने लगी, यह मुझे कैसे पक्का पता चलेगा कि अब नौ महीने पूरे हो गये? क्योंकि मुझे चीजें भूल-भूल जाती हैं। मैं यही भूल जाती हूं कि सुबह जो तय किया था, वह दोपहर याद नहीं रहता। बाजार सामान लेने जाती हूं, कुछ लेने जाती हूं, कुछ खरीद कर आ जाती हूं—मेरी स्मृति बड़ी कमजोर है। तो मैं भूल ही जाऊंगी कि कब नौ महीने पूरे हुए। तो उस डाक्टर ने थोड़ा सोचा और कहा कि ठीक है, लेट! उसको लिटा दिया टेबल पर, फाउन्टेन पेन उठाया और उसके पेट पर कुछ लिख दिया। उस महिला ने कहा कि इससे क्या होगा? उस डाक्टर ने कहा कि जब तू इसे साफ-साफ पढ़ने लगे, तब आ जाना। अभी कुछ तेरी पढ़ाई में आता है? उसने कहा, कुछ पढ़ाई में नहीं आता। इतने बारीक अक्षरों में लिखा है आपने कि मुझे कुछ दिखायी नहीं पड़ता कि लिखा क्या है। बस, तो उस डाक्टर ने कहा, फिकर न कर, जब तेरी साफ-साफ समझ में आने लगे—यह मेरा पता है—जब तू इसे बिलकुल ठीक-ठीक पढ़ने लगे, समझ लेना कि नौ महीने पूरे हो गये। पेट फैल रहा है, यह बड़ा होता जा रहा है, जब नौ महीने का बच्चा हो जाएगा तो अक्षर बराबर पढ़ पाएगी, कोई चिंता न कर!

यह अस्तित्व फैलता जा रहा है। इसको रहस्यदर्शियों ने स्त्री के फैलते हुए गर्भ का ही नाम दिया है। यह निरंतर विराट होता जा रहा है। यह विस्तीर्ण होता जगत है। यह प्रक्रिया सतत चल रही है। ब्रह्म शब्द का यही अर्थ है: जो सदा विस्तीर्ण होता चला जाता है। बड़ा प्यारा शब्द है ब्रह्म। वही भूमा का अर्थ है: जो सदा विराट होता चला जाता है। जो विराट है, ऐसा ही नहीं, जो विराट होता चला जाता है। जो एक क्षण ठहरता नहीं और विराट होता ही चला जाता है।

बुद्ध ने कहा है कि काश, हम अपनी भाषाओं से संज्ञाएं अलग कर दें और सिर्फ क्रियाएं बचा लें, तो हम सत्य के बहुत करीब पहुंच जाएंगे। क्योंकि संज्ञाएं हमें एक भ्रांति देती हैं कि चीजें थिर हैं। और क्रियाएं हमें बोध देंगी कि चीजें गतिमान हैं। जैसे, हम कहते हैं: नदी है। लेकिन बुद्ध कहते हैं, उचित होगा कि तुम कहो: नदी हो रही है। मत कहो कि है। हम कहते हैं: वृक्ष है। बुद्ध कहते हैं कि अच्छा होगा कि तुम कहो: वृक्ष हो रहा है। क्योंकि प्रतिपल गति है। जीवन यानी गति।

भूमा का अर्थ है: जो प्रतिपल हो रहा है, विराट हो रहा है, बड़ा हो रहा है, बड़े से बड़ा हो रहा है, विराट से विराटतर होता जा रहा है। और जिसकी कोई सीमा नहीं है, कोई अंत नहीं है। जो कहीं ठहरेगा नहीं। जो ठहरना जानता ही नहीं है। जिन्होंने देखा है, अनुभव किया है, वे कहेंगे: जगत में कोई मंजिल नहीं है, यात्रा ही यात्रा है—अनंत यात्रा है।

'जो विशाल है, वही अमृत है'। और काश, तुम इस विशाल के साथ अपने को एक अनुभव कर सको, फिर कैसी मृत्यु? क्षुद्र मरता है, बूंद मरती है, सागर नहीं मरता। लहर मरती है, सागर नहीं मरता। जीवन का एक रूप विदा हो जाता है, लेकिन जीवन जारी रहता है। जीवन की अभिव्यक्तियां बदल जाती हैं, रंग बदल जाते हैं, ढंग बदल जाते हैं, लेकिन जीवन जारी रहता है।

'यो वै भूमा तदमृतम्'। जो विशाल है, विराट है, विराटतर हो रहा है, वही अमृत है। 'जो लघु है, वह मर्त्य है'। इसलिए लघु के साथ अपने को न जोड़ना।

'अथ यदल्पं तन्मर्त्यम्'। अल्प के साथ अपने को मत जोड़ना। और हमने अल्प के साथ ही अपने को जोड़ रखा है। शरीर के साथ जोड़ रखा है। मन के साथ जोड़ रखा है। दोनों अल्प हैं। दोनों लघु हैं। दोनों बहुत छोटे हैं। और उसके कारण हम छोटे हो गये हैं। और जब हम छोटे हो जाते हैं तो पीड़ा होती है, कि मैं छोटा, तो बड़े होने की दौड़ शुरू होती है।

अब यह तुम पागलपन समझने की कोशिश करो।

पहले हम अपने को छोटा बना लेते हैं, छोटे के साथ अपना तादात्म्य कर लेते हैं, फिर तादात्म्य करने से हीनता की ग्रंथि पैदा होती है, फिर हीनता की ग्रंथि हमको दौड़ाती है कि अब बड़े होओ, धन कमाओ, पद पर पहुंचो, प्रधानमंत्री हो जाओ, राष्ट्रपति हो जाओ, दुनिया के सबसे बड़े धनी हो जाओ, यशस्वी हो जाओ, यह करो, वह करो, दौड़ाती है, दौड़ाती है! और भूल कुल इतनी है कि तुम बड़े हो ही, तुम से बड़ा कुछ भी नहीं है, काश, तुम्हें यह दिखाई पड़ जाए तो दौड़ सब बंद हो जाती है।

इसलिए मैं नहीं कहता कि संसार छोड़ो, पद छोड़ो, धन छोड़ो—छोड़ने से कुछ भी न होगा—ध्यान जानो! ध्यान को जाना कि यह जो दौड़ है, यह अपने-आप क्षीण होने लगती है। फिर तुम जहां हो, संतुष्ट हो। क्योंकि वह हीनता की ग्रंथि ही गल गयी।

मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि सभी राजनीतिज्ञ हीनता की ग्रंथि से पीड़ित होते हैं। हीनता की ग्रंथि न हो तो राजनीति समाप्त हो जाए। भीतर लगता है कि मैं इतना छोटा, तो किसी तरह बड़ा होकर दिखा दूं। अब बड़े होने की एक ही समझ आती है—या तो धन हो, या पद हो, प्रतिष्ठा हो, यश हो; किसी भी तरह बड़ा होकर दिखा दूं। इससे आदमी अहंकार के नये-नये सोपान चढ़ता है, नयी-नयी सीढ़ियां चढ़ता है। और मजा यह है, बिडम्बना यह है कि वही अहंकार तुम्हारे छोटे होने का

कारण है। जो तुम्हारे छोटे होने का कारण है, उसी को मान कर तुम बड़े होने की चेष्टा कर रहे हो। उसको जब तक मानते रहोगे, बड़े हो न पाओगे। जिस दिन उसे छोड़ दोगे, उसी दिन छोटापन छूट जाएगा। और जहां छोटापन नहीं रह गया, अल्प के साथ संबंध नहीं रह गया, वहां सब दौड़ समाप्त हो गयी। फिर व्यक्ति जीता है। जब दौड़ता नहीं तब जीता है।

और जब कोई मृत्यु नहीं रह जाती, तो जीवन ही जीवन बचता है। शरीर के साथ अपने को एक माना कि मुश्किलें खड़ी हुईं। शरीर के साथ एक माना तो अभी जवान हो, डर लगेगा कि अब बुढ़ापा करीब आता है। ये बाल सफेद हुए, ये चमड़ी पर झुर्रियां पड़ने लगीं, ये पैर कंपने लगे--अब यह बुढ़ापा आया! अब घबड़ाए! अब परेशान हुए! अब बुढ़ापा आ रहा है तो मौत भी आती ही होगी। कदम-कदम, रफ्ता-रफ्ता सरकने लगे कब्र की तरफ। लाख कब्रिस्तानों को गांव के बाहर बनाओ--छिपाने के लिए हम गांव के बाहर बनाते हैं, ताकि मौत भूली रहे --मगर कैसे भूलोगे मौत को? जब तक अहंकार के साथ जुड़े हो, मौत याद आएगी। वृक्ष से पीला पत्ता गिरेगा और मौत याद आएगी। सुबह की धूप में ओस का कण वाष्पीभूत होगा और मौत याद आएगी। रास्ते पर चलते बूढ़े को देखोगे, मौत याद आएगी। कोई की अर्थी निकलेगी--और निकलेगी ही किसी की अर्थी-- और मौत याद आएगी। जब तक अहंकार से जुड़े हो, मौत से छूट नहीं सकते। मौत का भय तुम्हें कंपाए रखेगा। और जब तक अहंकार से जुड़े हो, छोटे हो। इसलिए मन में ये आकांक्षाएं प्रबल होती रहेंगी कि किस तरह धन पाऊं, किस तरह पद पाऊं, कैसे सिकंदर हो जाऊं? हालांकि सिकंदर होकर भी कोई कुछ हुआ नहीं। सिकंदर भी खाली हाथ मरता है।

हमारी तरफ से ....
हमारी तरफ से सलाम उनको देना ....
हमारी तरफ से सलाम उनको देना
तो कह देना कासिद सलाम आखरी है
तो कह देना कासिद ....
तो कह देना कासिद सलाम आखरी है
हमारी तरफ से सलाम उनको देना
तो कह देना कासिद सलाम आखरी है

मुलाकात हमसे ....
मुलाकात हमसे न अब हो सकेगी
ये बीमारे-गम का ....

ये बीमारे-गम का पयाम आखरी है
हमारी तरफ से सलाम उनको देना
तो कह देना कासिद सलाम आखरी है
मुलाकात हमसे न अब हो सकेगी
ये बीमारे-गम का पयाम आखरी है

सरे-शाम तुम जब जुदा हो रहे हो ....
सरे-शाम तुम जब जुदा हो रहे हो
जुदा रूह गोया कि होती है तनसे
मुझे ऐसा मालूम होता है जैसे
मेरी जिंदगी की ये शाम आखरी है
हमारी तरफ से सलाम उनको देना
तो कह देना कासिद सलाम आखरी है
जवानी के नशे में ....
जवानी के नशे में बदमस्त होकर ....
जवानी के नशे में बदहोश होकर ....
जवानी के नशे में बदमस्त होकर
न चल ....
न चल टूटी कब्रों को ठुकरा के जालिम
जवानी के नशे में बदमस्त होकर
न चल टूटी कब्रों को ठुकरा के जालिम
तुझे भी यहीं ....
तुझे भी यहीं मरके आना है इक दिन
ये दुनिया में सबका मकाम आखरी है
ये दुनिया में सबका मकाम आखरी है....

जवानी के नशे में बदमस्त होकर
न चल टूटी कब्रों को ठुकरा के जालिम
तुझे भी यहीं मरके आना है इक दिन
ये दुनिया में सबका मकाम आखरी है
हमारी तरफ से सलाम उनको देना
तो कह देना कासिद सलाम आखरी है

मुंह देख लिया आईने में और दाग न देखे सीने में!....
मुंह देख लिया आईने में और दाग न देखे सीने में

जी कैसा लगा है जीने में, मरने को भी इंशा भूल गये
मुंह देख लिया आईने में और दाग न देखे सीने में
जी कैसा लगा है जीने में, मरने को भी इंशा भूल गये
ये आदमी का जिस्म क्या है जिसपै शैदा है जहां
एक मिट्टी की इमारत एक मिट्टी का मकां
खून का गारा बनाया, ईंट इसमें हड्डियां
चंद साधों पर खड़ा है ये ख़याली आस्मां
मौत की पुरजोर आंधी जब इसे टकरायेगी
तो टूट कर ये इमारत खाक में मिल जायेगी

ये आदमी का जिस्म क्या है ?

ये आदमी का जिस्म क्या है जिसपै शैदा है जहां
एक मिट्टी की इमारत एक मिट्टी का मकां
खून का गारा बनाया, ईंट इसमें हड्डियां
चंद साधों पर खड़ा है ये ख़याली आसमां
चंद ख़्वाबों पर खड़ा है ये ख़याली आसमां
मौत की पुरजोर आंधी जब इसे टकरायेगी . . . .
मौत की पुरजोर आंधी जब इसे टकरायेगी
तो टूट कर ये इमारत खाक में मिल जायेगी

ये इमारत : पैर में लालो-गुहर क्या चीज है
दौलते-ईमां के आगे मालो-जर क्या चीज है
बेनवां, मुफलिस नवां, खुशहाल पूछे जायेंगे . . . .
बेनवां, मुफ़लिस नवां, खुशहाल पूछे जायेंगे
माल के बदले फकत आमाल पूछे जायेंगे
जवानी के नशे में बदमस्त होकर . . . .
जवानी के नशे में बदहोश होकर
न चल टूटी कब्रों को ठुकराके जालिम
तुझे भी यहीं मरके आना है इक दिन
ये दुनिया में सबका मकाम आखरी है
हमारी तरफ से सलाम उनको देना
तो कह देना कासिद सलाम आखरी है

सुबूते वफा . . . .
सुबूते वफा कर रहा हूं मुकम्मल

सुबूते वफा कर रहा हूं मुकम्मल . . . .
दिया था . . . .
दिया था जिन्हें मैंने दिल रोजे-अव्वल . . . .
दिया था जिन्हें मैंने दिल रोजे-अव्वल
कूए जान भी आज देने चला हूं
कूए जान भी आज देने चला हूं . . . .
मुहब्बत में पुरनम . . . .
मुहब्बत में पुरनम ये काम आखरी है

सुबूते वफा कर रहा हूं मुकम्मल
दिया था जिन्हें मैंने दिल रोजे-अव्वल
कूए जान भी आज़ देने चला हूं
मुहब्बत में पुरनम ये काम आखरी है
हमारी तरफ से सलाम उनको देना
तो कह देना कासिद सलाम आखरी है

समय में मौत निश्चित है। मत चलो अकड़ कर ! मत जीओ अकड़ कर ! लेकिन अहंकार अकड़ कर जीने की तमन्ना का ही नाम है। अहंकार को हम कितने सहारे देते हैं--धन के, पद के, प्रतिष्ठा के--फिर भी गिर जाता है, फिर भी बिखर जाता है। बिखरना ही बदा है उसकी किस्मत में। झूठ है; झूठ को कितना खींचोगे ? ज्यादा नहीं खींचा जा सकता। आज नहीं कल, कल नहीं परसों झूठ का यह गुब्बारा फूटेगा ही। यह झूठ का बबूला टूटेगा ही। इसके पहले कि यह टूटे, तुम लघु से अपने को मुक्त कर लो।

अथ यदल्पं तन्मर्त्यम् ।।

इतना जान लो कि जो लघु है, वह मृत्यु के घेरे में है। तुम लघु के पार हो चलो।

ध्यान नेति-नेति की प्रक्रिया है। न मैं शरीर हूं, न मैं मन हूं, न मैं हृदय हूं, फिर जो शेष रह जाता है, वही मैं हूं। और जो शेष रह जाता है, उसकी फिर कोई सीमा नहीं है।

शरीर स्थूल सीमा है। मन थोड़ी सूक्ष्म। हृदय और सूक्ष्मातिसूक्ष्म। लेकिन सब सीमाएं हैं। इन तीन परकोटों के भीतर हम हैं। और वह जो हमारा चैतन्य इन तीन परकोटों के भीतर है, उसकी कोई सीमा नहीं है। वह आकाश जैसा विराट है। उसको जान लेना ही सुख है।

यो वै भूमा तत्सुखम् ।

जिसने उस भूमा को पहचान लिया, उसके जीवन में महासुख की वर्षा हो जाती है। कमल खिल जाते हैं। सुगंध बिखर जाती है। दीये जल जाते हैं। और ऐसे दीये जो बुझते नहीं। और ऐसे कमल जो मुरझाते नहीं। और ऐसी गंध जो उड़ नहीं जाती है।

नाल्पे सुखमस्ति।

अल्प में सुख कहां ! जागो, अल्प में सुख कहां ! मगर हम अल्प में अकड़े हुए हैं। हम अल्प में ऐसे अकड़े हुए हैं कि जिसका हिसाब नहीं।

जवानी के नशे में बदमस्त होकर
न चल टूटी कब्रों को ठुकराके जालिम
तुझे भी यहीं मरके आना है इक दिन
ये दुनिया में सबका मकाम आखरी है

जिसने मृत्यु के आने के पहले मृत्यु को पहचान लिया, जान लिया, उसे छूटने में अड़चन नहीं होती। मैं संन्यास कहता हूं इसी समझ को। जीते-जी मृत्यु को पहचान लेना संन्यास है। संसार का त्याग नहीं, मृत्यु का बोध संन्यास है। फिर संसार में रहो, संसार के बाहर रहो, कुछ भेद नहीं पड़ता। शरीर से बंधे हुए न रहो। मन से बंधे हुए न रहो। बंधे हुए ही न रहो किसी से। निर्बंध। निर्ग्रंथ। मुक्त। यूं तैरो जसे कमल के पत्ते झील पर तैरते हैं। झील में होते हैं और झील उन्हें छूती नहीं। पानी उन्हें छूता नहीं। ओस की बूंदें भी जम जाती हैं कमल के पत्तों पर, तो भी कमल के पत्तों को भिगा नहीं पातीं। वे अनभीगे ही रह जाते हैं। ऐसे जीने का नाम संन्यास है।

भूमैव सुख्।

और फिर सुख ही सुख है। क्योंकि जो कहीं बंधा नहीं, जिस पर कोई जंजीर नहीं, कोई बेड़ी नहीं, उसके लिए दुख कैसे हो सकता है? परतंत्रता दुख है। स्वतंत्रता सुख है।

भूमा त्वेव विजिज्ञासितव्यः ।।

और, यही भूमा अभीप्सा करने योग्य है। यही भूमा अन्वेषण करने योग्य है। इसी भूमा की तलाश करो ! यही भूमा, यही अमृत, यही सत्य, यही विराट, निरंतर फैलता हुआ विराट, इसकी खोज ही धर्म है।

लेकिन तुमने तो धर्म के नाम पर भी कैसे पाखंड खड़े कर लिए। तुमने तो धर्म के नाम पर भी जंजीरें गढ़ ली हैं। धर्म है मुक्ति का आरोहण। लेकिन बन गये कारागृह धर्म के नाम पर। कोई मंदिर में बंद है, कोई मस्जिद में बंद है, कोई गुरुद्वारा में, कोई गिरजे में। कोई ईसाई होकर बंद है, कोई हिन्दू होकर बंद है, कोई जैन होकर बंद है। जमीन पागलों से भरी मालूम पड़ती है। हमें स्वतंत्रता भी दी जाए तो हम स्वतंत्रता से भी जंजीरें और बेड़ियां गढ़ लेते हैं। अजीब लोग हैं! हम स्वतंत्र होना जैसे चाहते ही नहीं। हमें अगर वीणा भी थमा दी जाए, तो हम संगीत पैदा नहीं करते, हम उससे शोरगुल पैदा करते हैं। मुहल्ले वालों की नींद हराम करते हैं; खुद की नींद हराम करते हैं।

चंदूलाल के दुश्मन ने––और दुश्मन यानी पड़ोसी; यह हमेशा एक ही तरह के व्यक्ति का नाम है, उसको दुश्मन कहो कि पड़ोसी कहो––चंदूलाल के बेटे को उसके जन्मदिन पर एक ढोल भेंट कर दिया। बेटे को ढोल क्या मिला––अब जैसे बंदर को ढोल मिल जाए !––सो वह वक्त-बेवक्त ढोल बजाता रहे। उसने चंदूलाल की नींद हराम कर दी, चंदूलाल की पत्नी की नींद हराम कर दी। आधी रात उठ आए और ढोल बजा दे ! अब जब तक रोको तब तक नींद ही टूट गयी। बहुत परेशान हो गये चंदूलाल। चंदूलाल की पत्नी परेशान हो गयी। यह दुष्ट ने ढोल क्या भेंट कर दिया है। इतने परेशान हो गये कि जब दूसरा जन्मदिन आया और बेटे ने मां-बाप के पैर छुए, तो दोनों के मुंह से एकदम निकल गया: जीओ और जीने दो !

चंदूलाल मुझसे पूछते थे, क्या करूं? यह ढोल हमें मारे डाल रहा है! मैंने कहा, तुम भी पागल हो ! मैंने चंदूलाल को एक चक्कू दे दिया। मैंने कहा, यह चक्कू ले जाओ, अपने बेटे को भेंट कर दो। इससे क्या होगा? मैंने कहा, तुम बेटे को भेंट तो करो और फिर उसकी जिज्ञासा जगा देना कि अरे, इस ढोल के भीतर भी तो देख कि क्या है ! इतना पर्याप्त है। तबसे ढोल खतम हो गया। क्योंकि बेटे ने जिज्ञासा की, ढोल में चक्कू डाल दिया; भीतर तो कुछ न निकला––ढोल के भीतर तो पोल ही होती है––मगर ढोल खतम हो गया।

अब किसी बंदर के हाथ में ढोल लग जाए तो उपद्रव ही होने वाला है!

स्वतंत्रता तुम्हें देने बुद्धों ने क्या-क्या नहीं किया, मगर तुम उस स्वतंत्रता से जंजीरें ढाल देते हो ! संगीत पैदा नहीं होता है तुम्हारे जीवन में, और विसंगीत पैदा हो जाता है। हिन्दू-मुसलमान लड़ते हैं ! यह तो विसंगीत हो गया। इससे तो अच्छा था कि न इस्लाम होता दुनिया में, न हिन्दू धर्म होता, न ईसाइयत होती, न जैन धर्म होता। कम-से-कम आदमी शांति से तो जीता। कम-से-कम धर्म के नाम पर तो हत्याएं न होतीं, खून न बहाया जाता। जितना धर्म के नाम पर अनाचार हुआ है, किसी और चीज के नाम पर नहीं हुआ है।

आदमी को होश नहीं है। उसकी बेहोशी में तुम उसे हीरे भी दे दो, तो कुछ-न-कुछ नुकसान करेगा। सम्पदा को भी विपदा बना लेगा।

डाक्टर ने मुल्ला नसरुद्दीन से कहा, आप ठीक तो हो जाएंगे किन्तु आपको नियम से रहना पड़ेगा। मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा, नियम से? आप भी क्या बात कर रहे

डाक्टर साहिब, मैं तो हमेशा नियम से रहता हूं। डाक्टर ने कहा कि तुम्हें शर्म नहीं आती मुझसे यह कहते हुए! यह बात बिलकुल झूठ है। तुम किसी और को धोखा देना। अभी कल ही तो मैंने तुमको शराब पीते हुए देखा था। मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा, उससे क्या फर्क पड़ता है? यह तो मेरा रोज का नियम है।

अब देखते हैं नियम का क्या अर्थ! रोज शराब पीता हूं, नियम से पीता हूं। क्या बातें कर रहे हैं आप! एक दिन चूक नहीं होती। कभी नियम का भंग नहीं होता। जो यम-नियम दे गये तुम्हें, अपना सिर फोड़ते होंगे! कि नियम' से भी क्या अर्थ निकाले!

सेठ चंदूलाल तरह-तरह की दवाइयां बेचते हैं। उन्होंने दवा के एक पैकेट पर छपा रखा था: 'फोड़े-फुन्सियों की सर्वोत्तम दवा। फायदा न होने पर दाम वापिस।' एक सज्जन दवा का पैकेट वापस लाकर चंदूलाल से कहने लगे: 'सेठ साहब, मैंने एक माह तक आपकी दवा का इस्तेमाल किया, लेकिन मुझे कुछ भी फायदा न हुआ, मुझे दाम वापिस चाहिए।' चंदूलाल ने कहा, 'फायदा न होने पर दाम वापिस किये जाते हैं। आपको न हुआ हो, हमको तो हर पैकेट पर आठ आने का फायदा होता है।'

मतलब देखते हैं! आपको हो या न हो, इससे क्या मतलब है; साफ लिखा है कि फायदा न होने पर दाम वापिस, हमको तो फायदा हो रहा है! तुम्हारी बात ही किसने की है!

मां अपने बेटे से बोली, फिर से लड़ते देख कर, 'कि अरे, तुम लोग फिर लड़ने लगे?' उसके एक बेटे ने कहा, 'नहीं, मम्मी, यह तो वही पहले वाली लड़ाई है!' फिर से नहीं लड़ रहे, वही चल रही है।

चंदूलाल कह रहे थे मुल्ला नसरुद्दीन से: 'आप कब उठते हैं?' मुल्ला ने कहा: 'जब सूरज की किरणें मेरे कमरे में प्रवेश करती हैं।' चंदूलाल ने कहा: 'तब तो आप काफी जल्दी उठ जाते हैं, ब्रह्ममुहूर्त में। मुसलमान होकर और ब्रह्ममुहूर्त में! मैं भी इतना संयम नहीं पाल पाता।' मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा: 'गलत न समझिये, मेरे कमरे का रुख पश्चिम की ओर है।'

मुल्ला नसरुद्दीन की बेटी फरीदा स्कूल से लेट आयी। नसरुद्दीन ने कारण पूछा तो फरीदा ने कहा, 'पिता जी, एक दुष्ट लड़का मेरे पीछे पड़ गया था। बिलकुल लफंगा था। लुच्चा था। इसलिए लेट हो गयी।' मुल्ला बोला, 'पर बेटी, इससे लेट होने का क्या संबंध है?' फरीदा बोली, 'पापा, मेरे भोले पापा, कुछ समझा भी करो न! भला मैं करती भी क्या, वह बहुत धीरे-धीरे चल रहा था।'

लफंगा पीछे पड़ा था, मगर बहुत धीरे-धीरे चल रहा था तो बिचारी फरीदा को भी धीरे-धीरे चलना पड़ा!

जिंदगी के लिए सूत्र तो बहुत बार दिये गये हैं, लेकिन हर सूत्र से तुमने अपनी फांसी लगा ली है। तुमने हर शास्त्र से अपनी आत्महत्या का उपाय कर लिया है।

यह प्यारा सूत्र है छान्दोग्य का: जो विराट है, विशाल है, जो अनंत है, असीम है, वही अमृत है। और तुम भी वही हो। अमृतस्य पुत्रः। तुम अमृत के पुत्र हो। 'जो लघु है वह मर्त्य है।' और तुम नाहक लघु बन कर बैठ गये हो। सिवाय तुम्हारी भूल के और कोई जिम्मेवारी किसी की नहीं है। जो विशाल है, वही आनंद है। और तुम्हारा दुख कह रहा है कि तुम्हें आनंद की कोई खबर ही नहीं मिली। तुम्हारा जीवन, तुम्हारी उदासी पर्याप्त प्रमाण हैं कि तुमने कुछ गलत कर लिया है। जीवन के उत्सव को तुमने क्या मातमी रंग दे दिया है! तुम ऐसे जी रहे हो जैसे बोझ ढो रहे हो। दबे जा रहे हो— और फिर भी जागते नहीं! और बात कुल जागने की है।

निःसंदेह विशाल में ही आनंद है। इसलिए विशेष को ही जानने की अभीप्सा करो!

यो वै भूमा तदमृतम्। अथ यदल्पं तन्मर्त्यम्॥ यो वै भूमा तत्सुख्। नाल्पे सुखमस्ति। भूमैव सुख्। भूमा त्वेव विजिज्ञासितव्यः॥

जिज्ञासा करो, अभीप्सा करो, मुमुक्षा करो मगर विराट की। और विराट कहीं दूर तुमसे बाहर नहीं, तुम्हारे भीतर छिपा है। तुम्हारा अंतस्तल है। तुम्हारी अंतरात्मा है। इसलिए कहीं जाना नहीं है, अपने भीतर आना है। न काबा जाना है, न काशी, न कैलाश, अपने भीतर आना है। मत इस शरीर के साथ अपने को इतना बांधो! और ध्यान रखना, मैं कोई शरीर का दुश्मन नहीं हूं। मैं नहीं कह रहा हूं कि शरीर को सताओ। क्योंकि सताते वे ही हैं, जिन्हें यह बोध नहीं हुआ कि हम शरीर नहीं हैं। तुम भलीभांति जानते हो कि तुम जिस मकान में रहते हो, तुम वह मकान नहीं हो। इसका यह मतलब नहीं है कि तुम उस मकान की ईंटें गिराने लगते हो, कि उसका पलस्तर उखाड़ने लगते हो, कि उसका छप्पर गिराने लगते हो। जानते हो भलीभांति कि तुम मकान नहीं, लेकिन वर्षा आती है तो छप्पर को ठीक करते हो, खपड़ों को ठीक से जमवाते हो। और जानते हो कि मैं मकान नहीं हूं, लेकिन मकान में रहता हूं तो मकान को सुंदर रखते हो, सजा कर रखते हो। आखिर रहना तुम्हें है!

दुनिया में दो तरह के पागल हैं। एक, जो शरीर को समझ रहे हैं कि मैं शरीर हूं और उस कारण दुख भोग रहे हैं। और दूसरे पागल, जो कहते हैं कि हम शरीर नहीं हैं, इसलिए शरीर को सता रहे हैं। उपवासे मर रहे हैं। शरीर को गला रहे हैं। क्योंकि वे कहते हैं, हम शरीर नहीं हैं। तुम शरीर नहीं हो तो शरीर को सता किसलिए रहे हो? यह तो एक अति से दूसरी अति पर जाना हो गया। एक अति

थी कि शरीर के द्वारा भोगेंगे, और दूसरी अति है कि अब शरीर को सताएंगे, परेशान करेंगे। दोनों में ही तुमने शरीर के साथ अपना तादात्म्य किया हुआ है। और दोनों अतियों के मध्य में संगीत है, छंद है--छान्दोग्य है।

बुद्ध के पास एक राजकुमार, श्रोण ने दीक्षा ली। वह महाभोगी था। जीवन भर उसने भोग के अतिरिक्त कुछ भी न जाना था। शराब पीना, खाना, स्त्रियां, मौज-मजा--वह बिलकुल चार्वाकवादी था। न कोई आत्मा है, न कोई परमात्मा है, न कोई सत्य है, न कोई मोक्ष है, ऐसी उसकी धारणा थी। मगर कब तक भोगोगे? भोग-भोग कर थक गया। भोग-भोग कर ऊब गया। जो भोगता है, वह ऊब ही जाने वाला है। खतरा उनका है जो भोगते नहीं और भोग को जबरदस्ती छोड़ कर खड़े रहते हैं। वे कभी नहीं ऊबते। ऊबेंगे कैसे? जो स्त्रियों को छोड़ कर भागे हैं, उनके मन में स्त्रियों के प्रति रस बना ही रहेगा। बैठेंगे हिमालय की गुफा में, उन्हें राम याद नहीं आएगा, काम याद आएगा। बातें ब्रह्मचर्य की करेंगे, सपने उनके अब्रह्मचर्य से भरे होंगे। यह बिलकुल अनिवार्य है। यह बिलकुल वैज्ञानिक है। जो धन को छोड़ कर भागा है, उसके पीछे धन भूत की तरह लगा रहेगा। तुम कितना ही भागो, कहावत है न: 'भागते भूत की लंगोटी ही भली', वह धन जिसे तुम छोड़ कर भागे हो वह तुम्हारी लंगोटी पकड़े रखेगा। तुम जितना भागोगे, कुछ फर्क नहीं पड़ता, लंगोटी उसके हाथ में रहेगी।

जिससे तुम भयभीत हुए हो, तुम उससे मुक्त नहीं हो सकते।

लेकिन श्रोण ने भोगा था। अभी जवान ही था, कुल पैंतीस वर्ष उसकी उम्र थी, लेकिन थक गया। इतना भोग लिया जितना कि आदमी तीन-चार जन्मों में भोगे वह उसने एक ही जन्म में भोग कर दिखा दिया। लेकिन ऊब गया। स्त्रियां बेमानी हो गयीं, शराब व्यर्थ हो गयी, भोजन में स्वाद न रहा--सब व्यर्थ दिखायी पड़ने लगा। और तब बुद्ध का गांव में आगमन हुआ। श्रोण उनके पास गया। उन्हें देखा--सुना भी नहीं, सिर्फ देखा! एक परिपक्व अवस्था थी उसकी; भोग से ऊब गया था। त्यागी तो गांव में बहुत आए थे, लेकिन त्यागियों में उसे कोई रस नहीं आया था। त्यागी दिखते थे उदास--उससे भी ज्यादा उदास। त्यागी दिखते थे मुर्दा--उससे भी ज्यादा मुर्दा। न उनकी आंखों में ज्योति थी, न उनके जीवन में कोई आनंद की झलक थी, न कोई प्रकाश की किरणें थीं, न कोई प्रसाद था उनके आसपास, न कोई सौन्दर्य था--श्रोण कैसे प्रभावित होता?

लेकिन बुद्ध को देखा--सुना भी नहीं अभी, बुद्ध से बोला भी नहीं, बुद्ध ने एक शब्द भी नहीं कहा--और श्रोण उनके चरणों में गिरा और उसने कहा कि मुझे दीक्षा दें। मैं भिक्षु होने को तैयार हूं। बुद्ध ने कहा, न तूने मुझे सुना, न तूने मुझे समझा, अभी मैं गांव में आया ही आया हूं, तू अभी-अभी मेरे पास आया, हालांकि तेरे बाबत

कहानियां मेरे पास आ चुकी हैं, अनेक लोगों ने कहा कि आप श्रोण की नगरी जा रहे हैं, वह महाभोगी है, महा लम्पट है, वह शायद आपके दर्शन को भी न आए; लेकिन तू आया है और आते ही से भिक्षु होना चाहता है! उसने कहा, आपको देख कर सब समझ में आ गया। एक मैं हूं कि भोग के सिर्फ कांटों से बिंध गया हूं। और मैंने त्यागी भी देखे हैं, उनको भी मैंने कांटों में बिंधा हुआ पाया। आपके जीवन में कुछ नयी बात देखता हूं। न आप योगी मालूम पड़ते हैं, न आप भोगी मालूम पड़ते हैं। मगर आपकी यह प्रफुल्लित मुद्रा, आपके यह व्यक्तित्व की आभा, आपकी आंखों से झरता यह अमृत, काफी है, बस काफी है, आपकी उपस्थिति का बोध काफी है। मुझे दीक्षा दें! मैं एक क्षण भी नहीं गंवाना चाहता। क्योंकि कल का क्या पता है? मुझसे मत कहना आप कि सोच ले, विचार ले। सोचने-विचारने को कुछ बचा नहीं, मैं सब भोग कर देख लिया हूं।

बुद्ध ने उसे दीक्षा दे दी। और जिस बात का डर था, वही हुआ। दीक्षा लेने के बाद वह तत्क्षण दूसरी अति पर चला गया, जो कि मनुष्य के मन की साधारण प्रक्रिया है। मनुष्य का मन यूं चलता है जैसे घड़ी का पेण्डुलम। बायें से दायें, दायें से बायें। और एक ख्याल रखना पेण्डुलम के संबंध में, एक बात ध्यान में रखना, जब पेण्डुलम बायीं तरफ जाता है तो दिखाई तो पड़ता है बायीं तरफ जा रहा है, लेकिन वह दायें तरफ जाने की शक्ति इकट्ठी करता होता है। बायां जाता है और दायें तरफ जाने की शक्ति इकट्ठी करता है। जब दायें जाता है तब बायें जाने की शक्ति इकट्ठी करता है। दिखाई एक बात पड़ती है, भीतर कुछ और बात हो रही है।

और यही स्थिति तुम्हारे तथाकथित भोगियों की और त्यागियों की है। जाते त्याग में हैं, लेकिन तैयारी भोग की हो रही है। फिर चाहे भोग स्वर्ग में हो। और वही हालत तुम्हारे भोगियों की है। जाते हैं भोग में, लेकिन तैयारी त्याग की हो रही है। मगर अतियों के बीच डोलने से कुछ क्रांति नहीं होती। एक अति दूसरे पर ले जाती है, दूसरी फिर थका देती है और पहले पर ले जाती है। और जन्मों-जन्मों तक यह पेण्डुलम ऐसा ही घूमता रहता है।

और वही हुआ। श्रोण ने अति करनी शुरू कर दी। अति उसकी पुरानी आदत थी। भोग में अति की थी, अब वह त्याग में अति करने लगा। बौद्ध भिक्षु दिन में एक ही बार भोजन करते थे--क्योंकि बुद्ध का कहना था: पर्याप्त है--श्रोण... जिंदगी भर की पुरानी आदत, सबसे आगे होने की आदत, अगर दूसरे राजाओं के पास हजार स्त्रियां थीं तो उसने दो हजार इकट्ठी करके दिखा दी थीं; अगर दूसरे राजाओं के पास महल थे, तो उसने दुगुने बड़े महल बना कर दिखा दिये थे--वह भिक्षुओं में भी पीछे नहीं रह सकता था; वही अहंकार। बुद्ध से आंदोलित हो गया था, प्रभावित हो

गया था, लेकिन प्रभावित होते से ही तो क्रांति नहीं हो जाती। क्रांति करने के लिए तो फिर रफ्ता-रफ्ता, एक-एक इंच जीवन को बदलना होता है। प्रभावित होना तो बहुत आसान है, क्रांति लम्बी प्रक्रिया है, वह आग से गुजरना है। पुरानी आदतें एकदम से नहीं चली जातीं। लौट-लौट कर आ जाती हैं, पीछे के दरवाजे से आ जाती हैं। एक दरवाजे से फेंको, दूसरा दरवाजा खोज लेती हैं।... वह दो दिन में एक बार भोजन करता था।

उसने सब भिक्षुओं को मात कर दिया।

और भिक्षु रास्तों पर चलते थे, वह हमेशा रास्ते के नीचे से चलता था; जहां कांटे होते, कंकड़-पत्थर होते। उसके पैर लहूलुहान हो गये। और भिक्षु तीन वस्त्र रखते थे, वह सिर्फ एक लंगोटी रखता था। उसने सब भिक्षुओं को मात कर दिया। वही पुराना श्रोण! उसने यहां भी अपना कब्जा जमा दिया। और सब साधारण रह गये, वह एकदम असाधारण हो गया। सुंदर उसकी देह थी, फूल जैसी कोमल उसकी देह थी, बहुत सुख में पला था, बहुत सुख में जीआ था, उसने देह को बिलकुल ही जला डाला धूप में। काला पड़ गया। सूख गया। पैरों में घाव हो गये। रात सोता तो भी कंकड़ों-पत्थरों में सोता, बाहर सोता।

बुद्ध को खबरें आने लगीं कि उसकी हालत बिगड़ती जा रही है। हालांकि लोग उससे प्रभावित भी हो रहे थे।...लोग अजीब-अजीब तरह की चीजों से प्रभावित होते हैं।...वह फिर अहंकार में मजा लेने लगा था।

बुद्ध एक रात उसके झाड़ के पास गये जहां वह लेटा था और कहा: श्रोण, एक प्रश्न तुझे मुझसे पूछना है। और उसके पहले कि तू मुझसे प्रश्न पूछे, शायद तेरे सामने अभी साफ भी नहीं है प्रश्न, मैं तुझसे एक प्रश्न पूछता हूं, फिर तू भी शायद पूछ सकेगा। मैं राह देखता रहा कि तू पूछे। लेकिन लगता है कि तू प्रश्न को साफ नहीं कर पा रहा है, इसलिए पहले मैं पूछता हूं। मैं तुझसे पूछता हूं कि जब तू सम्राट था, तो सुना है मैंने कि तू अद्भुत वीणा बजाता था, तेरा वीणावादन अपूर्व था। श्रोण को भूली-बिसरी यादें आयीं। उसने कहा, आप ठीक याद दिलाते हैं, मैं तो सब भूल-भाल गया हूं; हां, वीणा में मुझे रस था। और वीणा बजाने में मेरी कुशलता थी। और दूर-दूर के संगीतज्ञ भी उसकी प्रशंशा करते थे। बुद्ध ने कहा: यह मुझे पूछना है कि तू इतना वीणा का कुशल वादक था, तुझे तो अच्छी तरह पता होगा कि वीणा के तार अगर बहुत ढीले हों, तो क्या होगा? श्रोण ने कहा, तार ढीले हों तो संगीत पैदा नहीं होता है। और बुद्ध ने कहा: तार अगर बहुत कसे हों? तो, श्रोण ने कहा, तो तार खींचोगे, टूट जाएंगे; संगीत फिर पैदा नहीं होगा। बुद्ध ने कहा: बस। तुझे कुछ पूछना है?

तू अपने जीवन पर पुनर्विचार कर ले। पहले तेरे तार बहुत ढीले थे, तब संगीत

पैदा नहीं हुआ। अब तूने तार बहुत कस लिये हैं, अब तार टूटने के करीब हैं, अब भी संगीत पैदा नहीं हो रहा है। मुझे देख, मैं वीणा बजाना नहीं जानता, लेकिन जीवन की वीणा बजाना जानता हूं। और मैं तुझसे कहता हूं: जो वीणा बजाने का नियम है, वही जीवन की वीणा को बजाने नियम भी है। न तार बहुत ढीले होने चाहिए, न बहुत कसे। एक ऐसी भी व्यवस्था है तारों की, जब न तो कह सकते हैं हम कि वे कसे हैं और न कह सकते हैं कि ढीले हैं; वह मध्य की अवस्था, वह समता की अवस्था, वह सम्यक्त्व, वह समतुलता की अवस्था जहां दोनों अतियों के बीच में तार होते हैं, वहीं संगीत पैदा होता है। और वीणा बजाना तो आसान है, लेकिन वीणा को ठीक समतुल अवस्था में लाना किसी उस्ताद को ही आता है।

श्रोण फिर पैरों पर गिरा दुबारा। एक दफा गिरा था जब भोगी की तरह आया था, आज गिरा योगी की तरह, त्यागी की तरह। उसने कहा, आपने मुझे ठीक समय पर सचेत कर दिया। जरूर मुझसे वही भूल हो गयी। तार ढीले थे, मैंने जरूरत से ज्यादा कस लिये। मैं भी सोच रहा था कि आनंद पैदा क्यों नहीं हो रहा है? सब तो मैं कर रहा हूं, दूसरे कर रहे हैं उससे दुगुना कर रहा हूं, फिर आनंद क्यों पैदा नहीं हो रहा है? बुद्ध ने कहा: वह दुगुना करने के कारण ही पैदा नहीं हो रहा है। जीवन में एक सम्यक्त्व चाहिए, तो छंद पैदा होता है, तो छांदोग्य पैदा होता है।

शरीर से बहुत बंधने की जरूरत नहीं है, शरीर के दुश्मन होने की भी जरूरत नहीं है। शरीर सुंदर घर है, रहो, शरीर की देखभाल करो, अपने को शरीर ही न मान लो। मन भी प्यारा है। उसका भी उपयोग करो। उसकी भी जरूरत है। और हृदय तो और भी प्यारा है। उसमें भी जीओ। मगर, ध्यान बना रहे कि मैं साक्षी हूं।

और जिसे सतत स्मरण है कि मैं साक्षी हूं, उसकी क्रांति सुनिश्चित है। जिसे स्मरण है कि मैं साक्षी हूं, वह भूमा को उपलब्ध हो जाता है।

तुम सिर्फ साक्षी हो, वह तुम्हारा स्वरूप है। न तुम कर्ता हो--शरीर से कर्म होते हैं--न तुम विचारक हो--मन से विचार होते हैं--न तुम भावुक हो--हृदय से भावनाएं होती हैं--तुम साक्षी हो--भावों के, विचारों के, कृत्यों के। ये तुम्हारी तीन अभिव्यक्तियां हैं। और इन तीनों के बीच में तुम्हारा साक्षी है। उस साक्षी के सूत्र को पकड़ लो।

साक्षी के सूत्र को पकड़ते ही संन्यास का फूल खिल जाता है। जो कली की तरह रहा है जन्मों-जन्मों से, तत्क्षण उसकी पखुड़ियां खुल जाती हैं। और वह फूल ऐसा

नहीं जो कुम्हलाए, वह फूल अमृत है। वह फूल ऐसा नहीं जो मरे, वह भूमा है, असीम है। वह फूल आनंद का फूल है। वह फूल ही मोक्ष है।

आज इतना ही।

७ अक्तूबर १९८०; श्री रजनीश आश्रम, पूना

दर्शन तो एक आत्मिक संस्पर्श है

पहला प्रश्न : भगवान, छांदोग्य उपनिषद में एक सूत्र इस प्रकार है :

न पश्यो मृत्युं पश्यति न रोगं नोत दुखतां
सर्वं ह पश्यः पश्यति सर्वमाप्नोति
सर्वश इति।

अर्थात ज्ञानी न मृत्यु को देखता है, न रोग को और न दुख को; वह सबको आत्मरूप देखता है। और सब कुछ प्राप्त कर लेता है।

भगवान, आप तो गवाह हैं, क्या सच ही बुद्धपुरुष को मृत्यु, रोग और दुख में भी आत्मरूप ही दिखाई पड़ता है?

इस सूत्र पर हमें दिशाबोध देने की कृपा करें।

सहजानंद, संबोधि का अर्थ है: अहंकार का मिट जाना। मैं-भाव की समाप्ति। अस्मिता का अंत। और जहां मैं नहीं है, वहां सवाल नहीं उठता मृत्यु का। मैं की ही मृत्यु होती है। अहंकार ही मरता है। क्योंकि अहंकार ऐसे है जैसे ताशों से बनाया घर। जरा-सा हवा का झोंका आया और गिरा। झूठा है, अब गिरा, तब गिरा; गिरकर ही रहेगा। काल्पनिक है। स्वप्नवत है। टूटेगा ही। कितनी देर खींचोगे? कितनी देर अपने को समझाओगे, भुलाओगे? जरा-सी चोट में बिखर जाएगा।

अहंकार चूंकि असत्य है, इसलिए मृत्यु भी असत्य है। अगर मैं नहीं हूं, तो कौन मरेगा? कैसे मरेगा? मरने के लिए होना जरूरी है।

इसलिए बुद्ध ने समाधि की परमदशा को निर्वाण कहा है।

निर्वाण शब्द का अर्थ बड़ा प्यारा है। अनूठा भी। अकल्पनीय भी। निर्वाण का अर्थ है : दीये का बुझ जाना। साधारणतः तो सूझ-बूझ में नहीं आएगा कि दीये क बुझ जाना या दीये का जल जाना? क्योंकि साधारणतः हम सोचते हैं कि उस

परमदशा में दीया जल जाएगा। और बुद्ध कहते हैं : उस परमदशा में दीया बुझ जाएगा! निर्वाण का शाब्दिक अर्थ होता है : दीये का बुझ जाना; दीये का अंत। यहां दीये से अर्थ है : तुम्हारे अहंकार की टिमटिमाती लौ और धुआं। तेल चुक जाएगा, दीया बुझ जाएगा। जब तक तेल है, तब तक जलता रहेगा। जब तक बाती है, तब तक धोखा बना रहेगा। मगर क्षणभंगुर है। क्योंकि तेल चुकेगा ही, उसकी सीमा है। और बाती जलेगी, उसकी भी सीमा है। और बाती और तेल पर जो निर्भर है, वह कितनी देर टिकने वाला है? जो क्षणभंगुर पर निर्भर है, वह स्वयं भी क्षणभंगुर ही होगा। इसलिए बुद्ध कहते हैं : दीये का बुझ जाना।

लेकिन यह एक हिस्सा है। यह पहला पहलू है। यह यात्रा का आधा अंग है। जिस दिन तुम्हारे मैं का दीया बुझ जाता है, तो ऐसा नहीं कि अंधकार हो जाता है। उल्टी ही घटना घटती है। उस घटना को समझने के लिए रवीन्द्रनाथ ठाकुर के जीवन में उल्लिखित यह संस्मरण उपयोगी होगा——

वे अक्सर ही पद्मा नदी पर अपने बजरे में रहने चले जाते थे। छोटा-सा बजरा था। और पद्मा की शांत, किसी एकांत स्थली पर वे बजरे को टिका रखते थे। उनका श्रेष्ठतम काव्य है, उस बजरे पर ही पैदा हुआ है। एक रात ऐसा हुआ—— पूर्णिमा की रात थी, आकाश पूरे चांद की रोशनी से भरा था, पृथ्वी भी जगमगाती थी, पत्ते-पत्ते पर रौनक थी, पद्मा की लहर-लहर पर चांदी थी, और वे अपने बजरे के छोटे-से झोपड़े में द्वार-दरवाजे बंद किये एक मिट्टी का दीया जलाए हुए पश्चिम के एक बहुत बड़े विचारक सौन्दर्यशास्त्री क्रोशे की किताब पढ़ रहे थे सौन्दर्य के ऊपर, कि सौन्दर्य क्या है? सौन्दर्य झर रहा था बाहर, बरस रहा था, कण-कण पर नाच रहा था; आकाश में था, पृथ्वी में था, झील में था, वृक्षों पर था; दूर कोई कोयल कूकती थी अमराई में, लेकिन वे इस सबसे बेखबर अपनी किताब में आंखें गड़ाए——क्योंकि दीये की रोशनी बहुत ज्यादा न थी; और रवीन्द्रनाथ बूढ़े भी हो गये थे, आंखों को बहुत सूझता भी न था——किसी तरह पढ़ने की कोशिश कर रहे थे क्रोशे को। और क्रोशे विचार कर रहा था कि सौन्दर्य क्या है।...जैसे कि सौन्दर्य पर विचार किया जा सकता है! सौन्दर्य अनुभूति है, विचार क्या खाक करोगे! विचार करके तो तुम सौन्दर्य को पाओगे नहीं। जितना विश्लेषण करोगे, उतना ही खो जाएगा। जितना मुट्ठी बांधोगे, उतना ही पाओगे हाथ खाली हैं।

विश्लेषण करके किसने कब सौन्दर्य जाना है? प्रश्न उठाया तुमने कि सौन्दर्य क्या है, कि समझ लेना कि तुम्हें सौन्दर्य का कभी भी पता न चलेगा। सौन्दर्य जीआ जाता है, अनुभव किया जाता है। हां, गाओ; नाचो; वीणा बजाओ; फूल के साथ एकात्म हो जाओ; या चांद-तारों के लोक में खो जाओ; इस विस्मृति में शायद थोड़ी बूंदा-बांदी हो जाए, थोड़े भीग जाओ, आर्द्र हो जाओ! शायद तुम्हारे भीतर

सौन्दर्य की थोड़ी-सी झलक, थोड़ी-सी पुलक उठे! शायद तुम्हारे रोओं में थोड़ा-सा कंपन हो, हलन-चलन हो! शायद तुम्हारा हृदय बजे, निनादित हो! कोई झरना शायद भीतर फूटे! मगर विचार से नहीं, निर्विचार से। मन से नहीं, मौन से।...

क्रोशे की किताब पढ़ते-पढ़ते आधी रात हो गयी। सौन्दर्य क्या है, यह तो कुछ समझ आया नहीं——रवीन्द्रनाथ जैसे व्यक्ति को, जिसे कि सौन्दर्य की बहुत-सी अनुभूतियां थीं, उसे भी समझ में न आया। वरन उल्टी बात हुई। जितना क्रोशे को पढ़ा उतना ही जो पहले भी समझ में आता था कि सौन्दर्य क्या है, वह भी अस्त-व्यस्त हो गया; उस पर भी संदेह उठ खड़े हुए।... विचार संदेहों को जन्म देता है। निर्विचार अनुभूति को। समाधि में समाधान है। विचार में तो समस्याएं ही समस्याएं हैं।... थक कर——आंखें भी थक गयी हैं——उन्होंने दीये को फूंक कर बुझा दिया और किताब बंद की। और तब, उन्होंने अपनी डायरी में लिखा है——थोड़े-से शब्द, लेकिन अति महत्त्वपूर्ण; हीरे-जवाहरातों से भी तौलो तो वजनी——लिखा है कि जैसे ही मैंने दीया बुझाया और किताब बंद की, मैं चकित हो गया, क्षणभर को भरोसा न आया, अवाक रह गया, ठिठक गया, रंध्र-रंध्र से, दरवाजे की संध से, खिड़की की संध से चांद का प्रकाश भीतर चला आया। चांद भीतर नाचने लगा। यह मेरा छोटा-सा दीया, इसकी टिमटिमाती यह धुंधली-सी रोशनी, यह धुएं से भरी रोशनी——जो बहुत रोशनी न थी——यह पीली-सी रुग्ण, बीमार, ज्वरग्रस्त रोशनी चांद की, उज्ज्वल चांद की अपूर्व छटा को बाहर अटकाए हुई थी, भीतर न आने देती थी! इधर दीया बुझा, उधर चांद भीतर आया। दीये का बुझना आधा हिस्सा और चांद का भीतर आ जाना दूसरा हिस्सा।

फिर उन्होंने द्वार खोल दिये। जब रंध्र-रंध्र से इतना आ रहा है, तो द्वार खोल दिये, खिड़कियां खोल दीं। क्षण में जैसे क्रांति हो गयी। एक जादू! वे बाहर निकल आए। जब भीतर इतना है तो बाहर कितना न होगा! और बाहर अपूर्व छटा थी। ऐसी सुंदर रात, ऐसी प्यारी रात, ऐसे सन्नाटे से भरी रात; दूर कोयल की कुहू-कुहू और पद्मा की लहरों पर तैरती हुई चांद की चांदी, मन ठहर गया। मन को गति न रही। जैसे समाधि लग गयी। कितना समय बीता, कुछ याद ही न रहा। जैसे समय मिट गया। जैसे घड़ी ठहर गयी।

और तब उन्होंने लिखा है कि जो मैं शास्त्र में खोज रहा था, वह बाहर बरस रहा था। मैं शास्त्र में अटका था, सो उसे नहीं देख पा रहा था जो मौजूद था। मैं शब्दों में उलझा था और सत्य द्वार पर दस्तक दे रहा था। लेकिन मुझे फुर्सत कहां थी? मैं होश में कहां था? मैं तो ऊहापोह में पड़ा था। उस धीमी-सी दस्तक को सुने तो कौन सुने? उस चांद की गुफ्तगू को सुने तो कौन सुने? वह चांद तो पुकार रहा था, निमंत्रण दे रहा था, कि खोलो द्वार, खोलो खिड़कियां, कि मैं आया हूं अतिथि की

तरह, लो मुझे भीतर। मगर भीतर तो हजार-हजार विचार दौड़ रहे थे। उस शोरगुल में कहां कोयल; उस शोरगुल में कहां चांद, कहां नदी! और फिर वह दीये की टिमटिमाती, पीली-सी, ज्वरग्रस्त रोशनी अटकाए थी चांद को। दीया बुझा--दीया निर्वाण को उपलब्ध हुआ--और चांद भीतर चला आया। और चांद भीतर आया तो रवीन्द्रनाथ बाहर आ गये।

ठीक बुद्ध ने इसी अर्थों में निर्वाण कहा है। अहंकार का टिमटिमाता दिया बुझ जाए, तो यह सारा आकाश तुम्हारा है। ये सारे चांद-तारे तुम्हारे हैं। तुम नहीं हो तो सब तुम्हारा है।

इस विरोधाभास को ठीक से समझ लेना, क्योंकि इसमें ही सारे धर्म का राज, सारे अनुभूतियों का निचोड़ है। जैसे कोई हजार-हजार गुलाब के फूलों को निचोड़ कर इत्र बनाए, ऐसा इसमें सारा निचोड़ है रहस्यवादियों का, ऋषियों का।

छांदोग्य का यह सूत्र गहरा है। बहुत गहरा है। अहंकार मिट जाए, तुम न रहो, तो सब तुम्हारा है। तुम न रहे, तो कुछ पराया न रहा। यह मैं ही है जो तू को खड़ा कर देता है। यह मैं ही है जो विभाजित कर देता है। यह मैं का विभाजन गिर गया, यह रेखा हट गयी, तो आंगन मिट कर आकाश हो जाता है। आंगन के चारों तरफ तुमने जो दीवाल खींच रखी है, उसे गिरा दो, तो तुम्हारा आंगन आकाश है।

न पश्यतो मृत्युं . . . .

ज्ञानी को मृत्यु दिखाई ही नहीं पड़ती। ज्ञानी मृत्यु को जानता ही नहीं। ज्ञानी मरता ही नहीं। क्योंकि जो चीज मर सकती थी, उसे ज्ञानी ने पहले ही मर जाने दिया। अहंकार मर सकता था। जो नहीं था, वही मर सकता था, जो है, वह तो सदा है। जो है, वह नहीं नहीं होता, और जो नहीं है, तुम लाख उपाय करो, वह है नहीं होता। हां, थोड़ी-बहुत देर को अपने को भरमा सकते हो, धोखे में डाल दे सकते हो, आत्मवंचना कर सकते हो, मगर कितनी देर करोगे? आज नहीं कल, कल नहीं परसों, इस जनम में नहीं अगले जनम में, कभी-न-कभी इस सत्य को जानना ही होगा कि अहंकार ही है जो मृत्यु को लाता है। झूठ ही मरता है। सत्य तो अमृत है। झूठ ही हारता है। सत्य तो सदा जीतता है। सत्यमेव जयते। झूठ ही डरता है। सत्य तो हर चुनौती को स्वीकार कर लेता है। सत्य को भय क्या?

सुकरात मर रहा था। उसे जहर दे कर मारा जा रहा था। कसूर क्या था? कसूर यह था उसका कि वह सत्य की बातें करने लगा था। और सत्य की बातें झूठों के सौदागर पसंद नहीं करते। और यहां झूठों के सौदागर बहुत हैं। मंदिर, मस्जिद, गुरुद्वारे, गिरजे झूठों के सौदागरों से भरे पड़े हैं। मगर उनकी झूठें पुरानी हैं। इतनी पुरानी हैं कि उनकी बड़ी साख हो गयी है। यहां तो पुराने का बड़ा मूल्य है! जितना सड़ा-गला हो, उतना मूल्यवान समझा जाता है! जितना मुर्दा हो, अस्थि-पंजर रह

गया हो, उतना ही बहुमूल्य है! और सुकरात सत्य की बातें करने लगा। पंडित, पुरोहित, राजनेता, सभी खिन्न हो उठे।

सुकरात को सजा दी गयी जहर से मार डालने की। सुकरात के एक शिष्य क्रेटो ने उससे मरने के पहले पूछा,...वह वार्तालाप अनूठा है!...क्रेटो ने पूछा, आप हमें यह तो बता दें कि मरने के बाद हम आपका अंतिम-संस्कार कैसे करें? इस संबंध में आपने कभी कोई संकेत नहीं दिया। आप चाहेंगे कि हम आपको गड़ाएं, जलाएं, नदी में बहाएं? पारसियों की तरह आपकी देह को पशु-पक्षियों के खाने के लिए छोड़ दें? कि पूर्वी लोगों की तरह अग्नि-संस्कार करें? या पश्चिम की प्रचलित धारा के अनुसार आपको मिट्टी में दबाएं? या कुछ जातियों के रिवाज के अनुसार आपको सागर में विसर्जित कर दें? हम क्या करें?

सुकरात हंसने लगा। और उसने कहा, पागलो, वे सोचते हैं कि मुझे मार रहे हैं और तुम सोचते हो कि तुम मुझे गड़ाओगे, कि तुम मुझे जलाओगे! दुश्मन सोचता है मुझे मार रहा है और दोस्त विचार कर रहे हैं कि मर जाने के बाद गड़ाना है कि जलाना है, मगर तुम दोनों का भरोसा मौत में है। तुम दोनों मौत को मानते हो, और मैं मौत को नहीं मानता हूं। मुझे मौत दिखाई नहीं पड़ती। और, क्रेटो, मैं तुझसे कहता हूं कि मुझे मारने वाले और मुझे गड़ाने वाले, तुम दोनों के बाद भी मैं जिंदा रहूंगा। तुम्हारी याद ही सिर्फ इसलिए की जाएगी कि किसी तरह तुम एक जिंदा आदमी से संबंधित थे।

और बात सच है। क्रेटो को किसने याद रखा होता? यह नाम सिर्फ इसलिए याद है, आज पच्चीस सौ साल बाद इस नाम को मैं तुम्हारे सामने उल्लिखित कर रहा हूं, सिर्फ इस कारण कि क्रेटो सुकरात से संयुक्त हो गया था, तो क्रेटो का नाम तक पच्चीस सौ साल जी गया। जब तक सुकरात का जीएगा, क्रेटो का भी जीएगा। और सुकरात ने यह कहा था उससे कि तुम सब मरोगे, फिर भी मैं रहूंगा। क्योंकि जो मेरे भीतर मर सकता था, कभी का मर चुका है। इसीलिए तो मृत्यु को मैं इतने आनंद से अंगीकार कर रहा हूं।

अदालत ने पूछा भी था--अदालत को दया भी आयी थी; न्यायाधीश थोड़ा अपराध भी अनुभव किया होगा, चूंकि सुकरात जैसे प्यारे आदमी को जहर देकर मार डालना अन्याय तो था! मगर न्यायाधीश भी क्या करे, जूरियों का बड़ा वर्ग मारने के पक्ष में था। एथेंस मारने के पक्ष में था। धनपति, राजनेता, धर्मगुरु, सब मारने के पक्ष में थे। और न्यायाधीश उनके विपरीत नहीं जा सकता था। जाता तो उसकी खुद की मौत होती, वह खुद मुश्किल में पड़ता। फिर भी उसने बचाने का उपाय किया था। उसने सुकरात से कहा था, तुम अगर एथेंस का नगर छोड़ कर चले जाओ और फिर वचन दो कि कभी एथेंस नहीं आओगे, तो--बड़ी दुनिया है, तुम्हें जहां रहना

हो रहो—मैं तुम्हें मरने की सजा से बचा सकता हूं।

सुकरात ने कहा : क्या तुम सोचते हो तुम मुझे मरने से बचा सकोगे ? आज नहीं मरूंगा, कल नहीं मरूंगा तो परसों मरूंगा, एथेंस में नहीं मरूंगा तो कहीं और मरूंगा; जब मरना ही है तो क्या आपाधापी ! फिर क्यों छोड़ कर एथेंस जाऊं ? एथेंस छोड़ कर जाने का मतलब तो यह होगा कि मैं अभी भी भरोसा करता था अपने अहंकार में : जितनी देर बचा लूं ! क्या फर्क पड़ता है ! मौत निश्चित है; कब आएगी, कुछ भेद नहीं पड़ता। तुम चिंता न करो। और तुम अपराधभाव अनुभव न करो। तुम सजा दो। मैं कहीं जाने वाला नहीं हूं। मरने के बाद भी कहीं जाने वाला नहीं हूं। मरने के बाद भी यहीं रहूंगा।

यही रमण महर्षि ने कहा था। मरते समय एक शिष्य ने पूछा कि क्या आपसे पूछूं कि मरने के बाद आप कहां होंगे ? रमण ने कहा, यहीं होऊंगा। और कहां होऊंगा ? मरने के पहले यहां हूं, जन्म के पहले यहां था, मरने के बाद भी यहीं होऊंगा। जाना कहां है ? आना कहां है ?...इसको कहते हैं आवागमन से छुटकारा ! इस बोध का नाम है आवागमन से छुटकारा ! कि न कुछ मरता है, न कुछ जन्मता है, तुम्हारा जो वास्तविक स्वरूप है वह शाश्वत है। नित्य है। समयातीत है। सदा से है और सदा रहेगा। और जैसा है वैसा ही है। हां, तुमने कुछ झूठे घर-घूले रेत के अपने आसपास बना लिये होंगे, तो वे जरूर गिरेंगे। वे ही मरते हैं।

न्यायाधीश ने फिर भी चेष्टा की कि ठीक, तुम्हें एथेंस में रहना है तो एथेंस में रहो, लेकिन इतना वचन दे दो कि अब तुम सत्य की जो बातें करते रहे, न करोगे। तो भी मैं तुम्हें छोड़ दे सकता हूं। क्योंकि लोगों को तुमसे एतराज नहीं है, तुम्हारी बातों से एतराज है। अगर तुम भरोसा दिला दो, तो हमें तुम्हारे भरोसे पर भरोसा है। हम मान सकते हैं कि तुम कहोगे तो अपने वचन को पूरा करोगे। तुम वचन-बद्ध व्यक्ति हो। तुम्हारे दुश्मन भी यह मानते हैं। तुम इतना कह दो कि अब तुम जिन बातों को सत्य कहते हो, उनको नहीं कहोगे। तुम चुप रहो। तुम शिक्षण देना बंद कर दो।

सुकरात ने कहा : फिर जीने का सार क्या ? मैं तो जी ही इसलिए रहा हूं—मेरा काम तो पूरा हो चुका; मेरा काम तो कभी का पूरा हो चुका; जिस दिन मैंने जान लिया है अपने को उसी दिन मेरा काम पूरा हो चुका; अब तो मैं इसलिए जी रहा हूं कि कुछ और लोगों को जगा सकूं। मैं तो जाग गया, जो लोग अभी भी सोए हैं और सपनों में खोए हैं, उनको झकझोर सकूं और जगा सकूं। और मैं जानता हूं कि किसी की नींद तुम तोड़ोगे तो वह नाराज होता है ! वह प्यारा सपना देख रहा हो सकता है, सुंदर सपना देख रहा हो—और तुम उसे झकझोर के जगा देते हो ! पीड़ा होती है। वह नहीं चाहता जागना। इसलिए मैं कुछ एतराज नहीं करता हूं लोगों पर कि क्यों मुझे मार डालना चाहते हैं। वे भी ठीक हैं। मगर मैं अपने काम को बंद नहीं करूंगा। सत्य तो मेरा जीवन है। मैं बोलूंगा तो सत्य, चुप रहूंगा तो सत्य, उठूंगा तो सत्य, बैठूंगा तो सत्य। यह वचन मैं नहीं दे सकता हूं। अगर सत्य ही बोलना बंद करना है तो जहर पी लेने में हर्ज क्या है !

न्यायाधीश ने दो विकल्प दिये थे, दोनों सुकरात ने छोड़ दिये। छोड़ सका सुकरात यह विकल्प इसीलिए कि भीतर अमृत को जान लिया है। जिसने अहंकार छोड़ा, उसने अमृत को जाना।

यह सूत्र ठीक कहता है : न पश्यतो मृत्युं। ज्ञानी को मृत्यु है ही नहीं, दिखाई ही नहीं पड़ती, अनुभव में ही नहीं आती। मरते क्षण में भी ज्ञानी को मृत्यु नहीं दिखाई पड़ती। उसे तो स्वयं का शाश्वत जीवन ही दिखाई पड़ता रहता है। उसे तो भीतर का चैतन्य ही दिखाई पड़ सकता है। देखता है कि देह जा रही है, मगर देह मेरी थी कब ? देखता है कि मन जा रहा है, लेकिन मन मेरा था कब ? देखता है कि सांस बंद हुई जा रही है, लेकिन मैं सांस था कब ? देखता है जल्दी ही यह घर उजड़ जाएगा, मगर मैं घर तो था ही नहीं। मैं तो मेहमान था, अतिथि था। और घर तो घर भी न था, सराय थी।...

बहुत अद्‌भुत सूफी फकीर हुआ : इब्राहिम। वह सम्राट था बल्ख और बुखारा का। एक रात अपने बिस्तर पर सोया था। और जैसे कि सम्राटों की रात होती है, उसकी भी रात थी, करवट बदलने वाली रात। सो नहीं पा रहा था। परेशान हो रहा था। करवट बदल रहा था। नींद का कोई पता न था, दूर-दूर तक कोई पता न था। कोई संभावना भी न थी। पैरों की कोई आहट भी न थी। और तभी उसने देखा उसके छप्पर पर कोई चल रहा है। सोचा, निश्चित कोई चोर है। या कोई हत्यारा है। चिल्लाया : कौन है ? ऊपर से आवाज आयी : परेशान होने की कोई जरूरत नहीं। न मैं कोई चोर हूं, न मैं कोई हत्यारा हूं। और आवाज कुछ ऐसी बुलंद थी, आवाज में कुछ ऐसी बुलंदगी थी, कुछ ऐसा बल था, इब्राहिम ठिठक रहा ! तो पूछा, फिर तू कौन है ? तो आवाज आयी कि मेरा ऊंट खो गया है, मैं उसे खोज रहा हूं। इब्राहिम ने कहा, तू पागल है ! ऊंट कहीं छप्परों पर खोजे जाते हैं ? और वह आदमी खिलखिला कर हंसा, उसने कहा, हां, मैं पागल हूं; और तू समझदार है ! तू आनंद खोज रहा है राजसिंहासनों पर; तो क्या कसूर है मेरा अगर मैं ऊंट खोजूं छप्परों पर ? नींद तक मिल नहीं रही है तुझे और आनंद की तलाश कर रहा है ! पागल मैं या पागल तू ? बात ऐसी साफ थी, बात ऐसी धार वाली थी, कि इब्राहिम उठ कर बैठ गया। पहरेदारों को बुलाया और कहा कि इस आदमी को खोजो ! यह आदमी कोई साधारण आदमी नहीं है। असल में जिस आदमी की मैं तलाश में था, उस तरह का आदमी है। जो मुझे जगा सकता है, उस तरह का आदमी

है। जो मुझे होश दे सकता है। क्या बात इसने कही है !

मगर वह आदमी नहीं पकड़ा जा सका। उसका कुछ पता ही न चला।

दूसरे दिन इब्राहिम जब अपने दरबार में बैठा था और दरबार भरा था तो फिर उसे वही आवाज सुनायी पड़ी। इस बार दरवाजे पर। द्वारपाल के साथ वही आदमी विवाद कर रहा था। विवाद का वही ढंग था, जो रात इब्राहिम के साथ था। वही बुलंदगी, वही बल, वही कटार की धार। शब्द नहीं, अंगारे। और फिर भी फूलों से प्यारे। वह आदमी कह रहा था पहरेदार से कि मुझे ठहरने दो इस सराय में, इस धर्मशाला में। और पहरेदार कह रहा था कि अपने शब्द वापिस ले लो, यह कोई सराय नहीं, यह कोई धर्मशाला नहीं, यह सम्राट का निजी महल है, निजी निवास है। वह आदमी खिलखिला कर हंसा। वह हंसी वही थी, रात की। इब्राहिम उसे भूल नहीं सकता था। जिंदगी भर नहीं भूल सकता था और अभी तो बात बड़ी ताजा थी। अभी तो रात ही यह हंसी सुनी थी। और वह आदमी फिर खिलखिलाया और उसने कहा कि मैं तुझसे कहता हूं कि यह सराय है, मुझे भीतर जाने दे। मैं सराय के उस आदमी से मिलना चाहता हूं जिसको यह भ्रांति है कि यह उसका मकान है, निवास है। यह कौन है इब्राहिम? इब्राहिम ने फौरन आदमी भेजा और पहरेदार से कहा रोको मत, उसे भीतर आने दो।

वह आदमी भीतर आया।

इब्राहिम ने कहा, मालूम होता है तुम्हारा दिमाग खराब है, यह मेरा निजी घर है और तुम इसे सराय कह रहे हो, धर्मशाला कह रहे हो ! तुम्हें डर भी नहीं कि सम्राट के महल को धर्मशाला कहोगे तो सजा पाओगे ! वह आदमी कहने लगा, धर्मशाला है इसलिए धर्मशाला कह रहा हूं। कैसा सम्राट ? किसका निवास ? मैं पहले भी आया था, तब मैंने इस सिंहासन पर एक दूसरे आदमी को देखा था; तुम इस पर कब बैठ गये ? इब्राहिम ने कहा, वह मेरे पिता थे। और उसने कहा कि मैं उसके भी पहले आया था और तब मैंने एक तीसरे आदमी को बैठे देखा था। वह कौन था? इब्राहिम ने कहा, वे मेरे पिता के पिता थे। और वह आदमी कहने लगा, फिर भी तुम इसे अपना मकान कह रहे हो ! मैं फिर आऊंगा और तुम्हें नहीं पाऊंगा। मैं कहता हूं यह धर्मशाला है, यहां कई लोग ठहरे और आये और गये। यह सराय है, मुझे भी ठहर जाने दो ! तुम भी ठहरे हो, मुझे भी ठहर जाने दो !

इब्राहिम उसके चरणों में गिर पड़ा, और उसने कहा कि तुम इस सराय में ठहरो, मैं चला ! मगर तुमने मेरा जीवन धन्य कर दिया ! नहीं तो मैं इसी सराय में बर्बाद हो जाता।

फिर इब्राहिम बड़ा प्रसिद्ध सूफी फकीर हो गया। वह बल्ख के बाहर ही, अपनी राजधानी के बाहर ही झोपड़ा बना कर रहता था। और अक्सर उसके झोपड़े पर

उपद्रव हो जाता था। क्योंकि उसका झोपड़ा एक चौराहे पर था, और वहां से राहगीर आते तो वे पूछते कि बस्ती का रास्ता कौन-सा ? तो वह बता देता कि बायें जाना; ख्याल रखना, बायें जाना; दायें मत जाना, अगर दायें गये तो मरघट पहुंच जाओगे; बायें गये तो बस्ती। वे बेचारे बायें जाते, और दो-चार मील चलने के बाद मरघट पहुंच जाते। वे लौट कर गुस्से में आते, कि तुम आदमी पागल हो या क्या हो ? इतना जोर देकर तुमने कहा बायें जाना, बस्ती बायें है, और दायें मत जाना, दायें मरघट है--और हमने पाया कि बायें मरघट है ! इब्राहिम कहता, तो फिर हमारी-तुम्हारी भाषा में भेद है। क्योंकि मरघट में जो लोग बस गये हैं वे उखड़ते नहीं वहां से, इसलिए उसको मैं बस्ती कहता हूं। और जिसको तुम बस्ती कहते हो, उसको मरघट कहता हूं, क्योंकि वहां जो भी बसे हैं, वे आज मरे, कल मरे, परसों मरे। वहां मौत आने ही वाली है। वहां सब कतार बांधे खड़े हैं मरने को। 'क्यू' लगा है। जिसका नंबर आ जाए, वह मरता जाता है। उसको मैं मरघट कहता हूं। और जिसको तुम मरघट कहते हो, उसको मैं बस्ती कहता हूं; क्योंकि वहां जो बस गया, उसको तुमने कभी उजड़ते देखा ! फिर उसे तुमने कभी घर बदलते देखा !

यह शरीर एक सराय है, यह मन एक सराय है, जिसने ऐसा जान लिया, जिसने ध्यान में ऐसा अनुभव कर लिया, जिसकी यह प्रतीति गहरी हो गयी कि मैं शरीर नहीं हूं, मैं मन नहीं हूं, उसकी फिर कोई मृत्यु नहीं है। मैं गवाह हूं। तुम ठीक कहते, सहजानंद, कि भगवान आप तो गवाह हैं, क्या सच ही बुद्धपुरुष को मृत्यु, रोग और दुख में भी आत्मरूप ही दिखाई पड़ता है ? और कोई उपाय ही नहीं है। बुद्धपुरुष का अर्थ होता है : 'मैं' मिट गया, 'मैं' के साथ मिट गया सारा अंधकार, 'मैं' के साथ मिट गयी सारी विक्षिप्तता, 'मैं' के साथ मिट गयी सारी मूर्च्छा, निद्रा, तंद्रा, होश आया ! और होश में क्या पाया कि मैं साक्षी हूं। सिर्फ साक्षी। सिर्फ द्रष्टा। शरीर को देख रहा हूं; जीवन को देख रहा हूं, मृत्यु को भी देखूंगा, लेकिन मेरा न तो जीवन है, न मृत्यु है। मैं दोनों के पार हूं। इस अतिक्रमण का नाम ही बुद्धत्व है।

जहां और भी हैं चांद-तारों के पार
आस्मां और भी हैं....
अभी इश्क के इम्तहां और भी हैं

ये आखिरी इम्तहां है। इसके पार फिर कोई इम्तहां नहीं है। शरीर के साथ जुड़े हो, तो अभी संसार में हो। मन के साथ जुड़े हो, तो अभी विक्षिप्त हो। शरीर और मन से अपने को पृथक जाना, पृथक जानते ही अहंकार टूट जाता है। अहंकार है तादात्म्य शरीर और मन के साथ। निरहंकारिता है तादात्म्य का टूट जाना। टूटने की प्रक्रिया बड़ी सीधी है। साक्षीभाव। सिर्फ देखो। बीमारी आए तो बीमारी देखो।

और स्वास्थ्य आए तो स्वास्थ्य देखो। जब भूख लगे तो भूख देखो। और जब पेट भर जाए तो तृप्ति देखो। जब प्यास लगे तो प्यास देखो। और जब कंठ प्यास से मुक्त हो जाए तो उस मुक्ति को देखो। मगर तुम दोनों हालत में देखने वाले हो। न तुम प्यास हो, न तुम प्यास की तृप्ति हो। न तुम भूख हो, न तुम भोजन के बाद हुई तृप्ति हो। तुम हर हाल में सिर्फ साक्षी हो। क्रोध आए तो क्रोध को देखो, और करुणा आए तो करुणा को देखो। काम उठे तो काम को देखो, और ब्रह्मचर्य जगे तो ब्रह्मचर्य को देखो। ब्रह्मचारी मत हो जाना! कामी ब्रह्मचारी हो जाते हैं। मतलब एक तादात्म्य छूटा, दूसरा पकड़ा। भोगी योगी हो जाते हैं। एक तादात्म्य छूटा, दूसरा पकड़ा। एक जेल से निकले नहीं कि वे दूसरे में तत्क्षण प्रविष्ट हो जाते हैं।

मैं अपने संन्यासी को कहता हूं : न तुम योगी, न तुम भोगी, तुम सिर्फ साक्षी।

'न पश्यतो मृत्युं'। फिर मृत्यु दिखाई नहीं पड़ती। 'पश्यति न रोगं नोत दुखतां'। फिर न रोग दिखाई पड़ते हैं, न दुख दिखाई पड़ते हैं। नहीं, ऐसा नहीं है कि रोग नहीं आते। इस भ्रांति में मत पड़ जाना कि रोग नहीं आते। रामकृष्ण कैंसर से मरे। रमण महर्षि भी कैंसर से मरे। महावीर की मृत्यु छः महीने की लम्बी पेचिश की बीमारी से हुई। बुद्ध, विषाक्त भोजन ने उनके सारे शरीर को रुग्ण कर दिया। लेकिन इन सूत्रों को न समझ पाने के कारण—और कैसे समझोगे जब तक ध्यान में न उतरोगे?—जैनों ने कहानियां गढ़ीं कि महावीर को बीमारी नहीं हुई; कहीं तीर्थंकर को बीमारी होती है!

तीर्थंकर को भी बीमारी होती है। दिखाई नहीं पड़ती बीमारी; मैं बीमार हूं ऐसी प्रतीति नहीं होती, बीमारी तो होती है। अगर बीमारी न होती तो तीर्थंकर मरते कैसे? तीर्थंकर भी बूढ़े होते हैं।—तुम लाख छिपाने की कोशिश करो! तुमने किसी तीर्थंकर की बूढ़ी प्रतिमा नहीं देखी होगी। सब प्रतिमाएं जवान हैं। महावीर अस्सी साल के हो कर मरे। अस्सी साल के हुए तो बूढ़े हो गये थे। लेकिन मंदिरों में जाकर तुम देखोगे तो यूं लगता है कि वे हमेशा जवान हैं। चौबीस ही तीर्थंकर जवान हैं। इनमें से कुछ की उम्र तो बहुत लम्बी है। अगर शास्त्रों की मान कर चलो, तो हजारों वर्ष की है। ये तो ऐसे जराजीर्ण हो गये होंगे जिसका हिसाब नहीं! सत्तर वर्ष में तो आदमी की गति हो जाती है, दुर्गति तो जाती है, हजारों साल में तो सभी कुछ सूख गया होगा, अस्थि-पंजर रह गये होंगे। लेकिन हम झूठों के आदी हैं। हम कहते हैं : तीर्थंकर को बीमारी नहीं होती। कहना चाहिए कि तीर्थंकर जानता है कि बीमारी मुझे नहीं है। यह और बात। यही छांदोग्य का सूत्र कह रहा है—

न पश्यतो मृत्युं पश्यति न रोगं नोत दुखतां

ध्यान रखना, सवाल है : उसे ऐसा प्रतीत नहीं होता कि यह बीमारी मैं हूं, या मैं बीमार हूं। बीमारी तो आती है; जैसे तुम्हें आती है, उसे भी आती है। अरे, जब भूख

आती है, प्यास आती है; जवानी आती है, बुढ़ापा आता है, तो बीमारी न आएगी? बीमारी भी आएगी, बुढ़ापा भी आएगा और मृत्यु भी आएगी। मगर, तीर्थंकर को जरा भी प्रभावित नहीं करती। तीर्थंकर अछूता रह जाता है, अस्पर्शित रह जाता है। यह तो बात समझ में आने की है। लेकिन यह बात मूढ़तापूर्ण हो जाती है जब तुम कहने लगते हो : बीमारी ही नहीं आती है। फिर तुम्हें न-मालूम क्या-क्या कहानियां गढ़नी पड़ती हैं—झूठी कहानियां! एक झूठ को बचाने के लिए हजार झूठ गढ़ने पड़ते हैं।

तो यह कहानी गढ़नी पड़ी है जैनों को। क्योंकि यह बात को झुठलाएं कैसे कि छः महीने महावीर पेचिश की बीमारी से परेशान रहे? अब इस बात को छिपाएं कैसे? छः महीने उनको दस्त ही लगते रहे। इसी में उनकी मृत्यु हुई। तो कहानी गढ़नी पड़ती।

कहानी यह गढ़ी कि गोशालक ने उनके ऊपर तेजोलेश्या छोड़ी। गोशालक ने जादू किया—काला जादू। जैन-शास्त्रों में उसका नाम : तेजोलेश्या। उसने अपना सारा क्रोध, क्रोधाग्नि उनके ऊपर फेंक दी। और करुणावश वह उस क्रोधाग्नि को पचा गये। क्योंकि अगर वापिस भेजें, तो गोशालक मर जाएगा। गोशालक न मरे, इसलिए वे पी गये उस तेजोलेश्या को, उस काले जादू को। स्वभावतः जब काला जादू पीआ, तो पेट खराब हो गया।

अब क्या कहानी गढ़नी पड़ी! सीधी-सादी बात है कि पेट की बीमारी थी। इसमें बिचारे गोशालक को फंसाते हो, इसमें तेजोलेश्या की कहानी गढ़ते हो, इसमें करुणा दिखलाते हो—और तुम कहते हो तीर्थंकर सर्वशक्तिशाली होता है, तो तेजोलेश्या को पचा गया तो पूरा ही पचा जाना था, फिर क्या पेट खराब करना था! पचा ही जाता पूरा! फिर पेट कैसे खराब हुआ? पचा नहीं पाया। नहीं तो पेट खराब नहीं होना था। पची नहीं तेजोलेश्या।

झूठों से झूठ दबाए नहीं जा सकते।

बुद्ध के संबंध में यही उपद्रव खड़ा हुआ। उनको जो भोजन दिया गया,...एक गरीब ने उनको निमंत्रित किया और भोजन दिया, भोजन विषाक्त था।...अब बुद्ध विषाक्त भोजन किये, तो कहानी गढ़नी पड़ी। क्योंकि बौद्धों की धारणा कि बुद्ध तो त्रिकालज्ञ होते हैं, वे तीनों काल जानते हैं, उनको इतना ही नहीं दिखाई पड़ा कि यह भोजन जो है विषाक्त है, इसको मैं न लूं! अब कैसे इसको छिपाएं? तो छिपाना पड़ता है। छिपाने के लिए बड़ी तरकीबें खोज ली जाती हैं। कि कहीं इसको दुख न हो, अगर मैं कहूं कि यह भोजन विषाक्त है तो इस बेचारे ने मुझे निमंत्रित किया, इस को कहीं दुख न हो, इस कारण बिना कहे विषाक्त भोजन ले लिया। लेकिन कहो या न कहो, आखिर विषाक्त भोजन का परिणाम तो हुआ ही!

और परिणाम हुआ तो उस आदमी को भी पता चला ही !

क्या मतलब इसका ?

मगर वह त्रिकालज्ञ होते हैं, इस धारणा को बचाए रखने के लिए यह झूठी कहानी गढ़नी पड़ी। कि दयावश। कि कहीं इसे दुख न हो, इसलिए चुपचाप भोजन कर लिया—जहर पी गये। और सर्वशक्तिमान होते हैं। तो फिर जब जहर पी गये थे तो विषाक्त नहीं होना था शरीर। लेकिन शरीर तो शरीर के नियम से चलता है। फिर चाहे बुद्धों का शरीर हो और चाहे बुद्धुओं का शरीर हो, इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता। शरीर के अपने नियम हैं। शरीर का अपना गणित है। शरीर प्रकृति का हिस्सा है। और प्रकृति कोई अपवाद नहीं करती। तो जो परिणाम होना था, वह हुआ। मृत्यु उससे फलित हुई।

मृत्यु भी होती है, बीमारी भी होती है, बुढ़ापा भी होता है। फिर भी जो साक्षी-भाव को उपलब्ध हो गया है, वह सिर्फ देखता रहता है, उसका कहीं भी ऐसा तालमेल नहीं बैठ जाता कि मैं बीमार हूं। यह बात उठती नहीं, यह बात जुड़ती नहीं उसके भीतर। इसलिए बीमारी के बीच भी वह परम स्वस्थ होता है। बीमारी परिधि पर होती है, केन्द्र पर स्वास्थ्य होता है। और वही स्वस्थ शब्द का अर्थ भी है : स्वयं में स्थित। बीमारी चारों तरफ रही आए, मगर वह अपने स्वयं में स्थित होता है; वह अपने स्वयं के केंद्र पर थिर होता है; वहां कुछ हिलता नहीं, डुलता नहीं; ज्यूं था त्यूं ठहराया, वह वहीं ठहरा होता है। मौत भी आती है, वह भी परिधि पर आती है। और केंद्र पर तो वही चिन्मय ज्योति, वही अमृत झरता रहता है।

मैं इसका गवाह हूं।

इसलिए जो मैं सूत्र की व्याख्या कर रहा हूं, वह कोई शाब्दिक व्याख्या नहीं है। मुझे किसी शास्त्र में कोई रस नहीं है। किसी शास्त्र का समर्थन करना चाहिए, ऐसा आग्रह नहीं है। जब तक मेरी बात से, मेरे अनुभव से किसी चीज का तालमेल न हो, मैं समर्थन नहीं करता हूं। इस सूत्र का मैं पूर्ण समर्थन करता हूं। बुद्धत्व में मृत्यु का कोई अनुभव नहीं है। न रोग का, न दुख का। सब घटता है, बाहर से सब दिखाई पड़ता है, . . .

रामकृष्ण को गले का कैंसर था। आखिरी-आखिरी दिनों में कुछ सप्ताह तक तो भोजन भी नहीं ले सकते थे। पानी भी पीना अंतिम दिनों में बंद हो गया था। गला बिलकुल अवरुद्ध हो गया था। गला क्या था, घाव हो गया था सिर्फ। उसमें से पानी पीना भी महापीड़ादायी था। और बिना पानी के जीना भी महापीड़ादायी था। विवेकानंद ने रामकृष्ण से कहा कि अगर आप एक बार भी मां काली को कह दें, तो सब अभी ठीक हो जाए। आप कह क्यों नहीं देते ? आप क्यों व्यर्थ का दुख

झेल रहे हैं ? और रामकृष्ण मुसकुराते। क्योंकि बाहर से तो यही दिखाई पड़ रहा है कि महादुख है, मगर विवेकानंद को भीतर का कुछ भी पता नहीं है। रामकृष्ण को भीतर कोई दुख नहीं है। दुख विवेकानंद और रामकृष्ण के बीच में है। विवेकानंद तो बाहर हैं दुख के, रामकृष्ण भी बाहर हैं। रामकृष्ण भीतर की तरफ बाहर हैं—और विवेकानंद बाहर की तरफ बाहर हैं—दोनों को दुख दिखायी पड़ रहा है, दोनों साक्षी हैं। मगर विवेकानंद को स्वभावत: अनुभव होता है कि इतनी पीड़ा है, पानी भी नहीं पी सकते, गर्मी के दिन हैं, प्यास से लोग मरे जा रहे हैं और इनको एक घूंट भी पानी पिलाना मुश्किल है—यह कैसा महाकष्ट ! ऐसे परमहंस को यह कैसा महाकष्ट ! !

इससे विवेकानंद केवल इतनी खबर देते हैं कि अभी उनको साक्षी का अनुभव नहीं हुआ। उनका प्रश्न एक साधारण व्यक्ति का प्रश्न है, जिसको साक्षी का कोई अनुभव नहीं हुआ। यह किसी बुद्धपुरुष का प्रश्न नहीं है—हो नहीं सकता। क्योंकि अगर विवेकानंद को साक्षी का अनुभव हुआ होता, तो यह बात उठती ही नहीं।

लेकिन जब रोज-रोज विवेकानंद कहने लगे, तो रामकृष्ण सीधे-सादे आदमी थे, चोट भी करते थे तो बहुत परोक्ष करते थे, सीधी नहीं करते थे, उन्होंने कहा, ठीक है, तू इतना परेशान हो रहा है, तो आज मैं आंख बंद करके काली से कहे देता हूं। आंख बंद की, और फिर आंख खोल कर कहा कि मैंने कहा, मगर काली ने क्या कहा, मालूम ? . . . अब यह सिर्फ विवेकानंद को समझाने के लिए है। क्योंकि कहां काली ! और क्या कहना काली से ! साक्षी को जो उपलब्ध हो गया है, उसके लिए काली इत्यादि सब खेल हैं, बच्चों के खेल हैं, खिलौने हैं। यह सब खिलौने हैं। चाहे तुम हनुमान के मंदिर में पूजा करो और चाहे गणेश जी की मूर्ति बना कर पूजा करो और चाहे काली की मूर्ति बनाओ, ये सब खिलौने हैं नासमझों के लिए। और नासमझों के ही द्वारा निर्मित हो रहे हैं। और नासमझ ही इनके पीछे बड़ा शोरगुल मचाए फिरते हैं। यह कुछ ज्ञानियों की बातें नहीं हैं ! . . .

पर रामकृष्ण तो उस भाषा में बोले जो विवेकानंद की समझ में आए। कहा कि मैंने कहा, तू नहीं माना तो मैंने कहा काली को; और तुझे पता है, काली ने मुझे बहुत डांटा ! विवेकानंद ने कहा, डांटा ? कहा कि हां, बहुत डांटा और कहा कि ज्ञानी होकर ऐसी अज्ञानपूर्ण बातें करता है ! और काली एकदम नाराज हो गयी, और कहने लगी कि चुप, कभी दुबारा इस तरह की बात मत करना ! अगर एक कंठ से जल जाना बंद हो गया, तो इतने सारे कंठ उपलब्ध हैं, ये भी तो तेरे ही कंठ हैं, इनसे ही जल पी ! इस कंठ से तो बहुत काम ले लिया, अब कब तक इसी पर अटका रहेगा ? सारे कंठ तेरे हैं। यह विवेकानंद का ही कंठ है, यह भी तेरा है, जब प्यास लगे, इसी कंठ से पी लिये। तो रामकृष्ण ने विवेकानंद से कहा, जब मुझे

प्यास लगे, तू पानी पी लिया कर। अब तो सब कंठ मेरे हैं। काली ने देख तेरी बात मैंने क्या कही, मुझे बहुत डांटा ! इस तरह की बातें अब दुबारा मत कहना ! तेरी बात मान कर मैंने कहा और झंझट में मैं पड़ा।

मैं जानता हूं कि यह पूरी की पूरी रामकृष्ण बात सिर्फ विवेकानंद को समझा रहे हैं। न तो काली से उन्होंने कहा है, न कह सकते हैं, न कहने की कोई बात है। न कहने को कोई काली है कहीं। यह सिर्फ ऐसा है जैसे हम छोटे बच्चों को किताब जब पढ़ाना शुरू करते हैं तो कहते हैं : आ आम का, ग गणेश का। और अब थोड़ी बात बदल गयी है, अब कहते हैं : ग गधे का। क्योंकि राज्य जो है हमारा, वह सेक्युलर है, वह धर्म-निरपेक्ष है, इसमें गणेश को लाओ तो धर्म आ जाए, तो ग गधे का। गधा बिलकुल ही निरपेक्ष प्राणी है। न हिन्दू, न मुसलमान, न ईसाई, न जैन। गधा तो बिलकुल ही पार जा चुका। परमहंस है। उसको कुछ लेना-देना नहीं मंदिर से, मस्जिद से। कभी देखो तो मस्जिद के सामने बैठा है, कभी देखो तो मंदिर के सामने बैठा है। उसको सब बराबर। तुम उस पर कुरान लाद तो इनकार नहीं, और गीता लाद तो इनकार नहीं। उसको तो ढोना है। वह ढो देगा। वह जरा चिंता नहीं करता कि तुमने किसको उसके ऊपर लाद दिया है !

तो अब बच्चों को पढ़ाया जाता है : ग गधे का; आ आम का। ताकि बच्चे को आ और ग समझ में आने शुरू हो जाएं। लेकिन जिंदगी भर जब भी ग पढ़ो, पहले कहो ग गधे का और फिर ग पढ़ो, तब तो पढ़ना ही मुश्किल हो जाए। एक शब्द को पढ़ने में कितनी देर लग जाए ! उसमें ग आ जाए तो गधे का, और आ आ जाए तो आम का—और तब आम और गधों में इतने खो जाओगे !...और ब बन्दर का और हा हाथी का, पूरा जंगल ही खड़ा हो जाएगा ! वह जो शब्द था, उसका तो पता ही नहीं चलेगा, यह जंगली जानवरों में ही खो जाओगे।

वह ग गधे का पहली कक्षा में ठीक। फिर गधे को भूल जाना है, ग को याद रखना है। फिर ग किसी का नहीं, न गधे का, न गणेश का, ग सिर्फ ग है। जिस दिन तुम्हारा ग गधे से और गणेश से मुक्त हो जाता है, उस दिन तुम समझना कि तुम सीख गये ग। जब तक वह ग गधे और गणेश से बंधा रहे, तब तक तुमने सीखा नहीं। और अगर हमेशा के लिए बंध जाए, तो तुम पागल हो।

काली है और हनुमान हैं, यह सब पाठ पढ़ाने के लिए ठीक है। मगर लोग इन्हीं के सामने बंधे बैठे हैं। कुछ लोग जो जिंदगी भर हनुमान चालीसा ही पढ़ रहे हैं। इनकी जिंदगी व्यर्थ गयी ! निरर्थक गयी !

जीवन की सार्थकता साक्षीभाव में है।

रामकृष्ण ने वही कहा कि मुझे कोई पीड़ा नहीं हो रही है, तू पी लेना पानी, काम चल जाएगा। मैंने पीआ कि तूने पीआ, सब बराबर है।

सर्वं ह पश्यः पश्यति सर्वमाप्नोति
सर्वश इति।

वह सबको आत्मरूप देखता है। जैसे 'मैं' गया, सब आत्मरूप हो जाते हैं। और सब कुछ प्राप्त कर लेता है। मैं क्या गंवाया, सब सम्पत्ति मिल गयी। 'मैं' के साथ विपत्ति ही विपत्ति है; दुख ही दुख है, नर्क ही नर्क है। तुमने मैं से कभी कोई सुख पाया ? तुमने अहंकार से कभी कोई सुख पाया ? मगर अहंकार को भरने के लिए ही दौड़े चले जा रहे हो। इससे बड़ी मूढ़ता इस संसार में दूसरी नहीं है।

अहंकार की मूढ़ता को देखो। अहंकार से मुक्त हो जाओ। और मुक्त होना कठिन नहीं। सिर्फ छोटी-सी प्रक्रिया है, छोटी-सी कुंजी,...कुंजी तो हमेशा छोटी होती है। ताले कितने ही बड़े हों, कुंजियां तो छोटी होती हैं। जरा-सा राज होता है कुंजी का और ताला खुल जाता है। कुंजी न हो तो ताला खुलना मुश्किल हो जाता है। हथौड़ी से तोड़ो तो शायद और भी मुश्किल हो जाए। फिर शायद कुंजी भी मिल जाए तो काम न आए। और तुम्हारे ताले ऐसी ही हालत में हो गये हैं। हथौड़ियां तो तुमने बहुत मारी हैं, कुंजियों की तलाश नहीं की। इसलिए अब जब कुंजी भी मिल जाती है, तो बड़ी देर लगती है, मुश्किल होती है। यह मुश्किल तुम्हारे ताले के साथ किये गये दुर्व्यवहार के कारण है। अन्यथा कुंजी सीधी-साफ है।

कुंजी इतनी ही है कि चलते समय जाग कर चलो, देख कर चलो, कि जो चल रहा है वह शरीर है, मैं अचल हूं। मैं सिर्फ देख रहा हूं कि शरीर चल रहा है। यह बायां पैर उठा, यह दायां पैर उठा; यह मैं बायें मुड़ा, यह दायें मुड़ा,... ऐसा कुछ शब्द दोहराने की जरूरत नहीं है, सिर्फ देखते रहो ! जैसे कोई किसी और को चलते हुए देख रहा हो। और जब विचार भीतर चलें—जो कि प्रतिपल चल रहे हैं—तो देखते रहो कि विचार चल रहे हैं। लड़ो मत, पकड़ो मत। यह अच्छा विचार है, इसको छाती से मत लगा लो; और यह बुरा विचार है, इसको धक्के देकर निकालने मत लगो; नहीं तो झगड़े में पड़ गये। साक्षी गया, कर्ता हो गये। कर्ता हुए कि अहंकार आया। लड़ना मत, झगड़ना मत, विचार को देखना, सिर्फ देखना। कुछ करना ही नहीं है, सिर्फ देखना है। बैठ कर घड़ी भर, जब सुविधा मिल जाए, देखते रहना, विचारों का सिलसिला लगा है। जैसे कोई रास्ते के किनारे बैठ जाए और रास्ते पर चलते हुए लोगों को देखे; नदी के किनारे बैठ जाए, नदी की धार को बहते हुए देखे, ऐसे ही मन की धार को भी देखना।

और मत सोचना कि मेरा मन। क्योंकि मेरा मन है, तो आग्रह आ जाते हैं। कि अच्छे-अच्छे विचार आएं, सुंदर-सुंदर विचार आएं; फूल लगें, कांटे न लग जाएं; कोई बुरा विचार न आ जाए; बस, फिर तुम मुश्किल में पड़े ! तुमने मेरा माना कि अहंकार जगना शुरू हो गया। तुम्हारा कुछ भी नहीं है। क्या लेना-देना है ! देखते

रहना है। जैसे फिल्म पर तुम कुछ आग्रह नहीं रखते, पर्दे पर फिल्म चलती है, तुम देख रहे हो, यूं देखते रहना है।

और तुम चकित होओगे, शरीर को देखते-देखते शरीर से छुटकारा हो जाता है; मन को देखते-देखते मन से छुटकारा हो जाता है। रफ्ता-रफ्ता, आहिस्ता-आहिस्ता तुम्हारे भीतर एक नयी चीज पैदा होने लगती है, एक नया सूत्र जन्मता है : साक्षी का। सिर्फ द्रष्टा का। और वही द्रष्टा जिस दिन अपनी पराकाष्ठा को पहुंचता है, संबोधि बन जाती है, समाधि बन जाती है। उस दिन दूर रह गये बहुत शरीर और मन, दूर रह गये शरीर और मन के खेल, उस दिन तुम अपनी परमसत्ता में विराजमान हो जाते हो। वहीं परम आनंद है, परम जीवन है।

दूसरा प्रश्न : भगवान, मुझे आपकी बातें बहुत रसपूर्ण लगती हैं। लेकिन मैं रंग-मंच का अभिनेता होने के नाते अभिनय कला की गहराई में जाना चाहता हूं। इसलिए संन्यास के लिए मेरी अभी तैयारी नहीं है। और न ही मैं केवल एक गैरिक रंग में सीमित होना चाहता हूं। मैं रंग-बिरंगे वस्त्रों में रुचि रखता हूं, क्योंकि जीवन भी तो रंग-बिरंगा है, इन्द्रधनुषी है।

भगवान, क्या मैं बिना आपका संन्यासी हुए समय-समय पर आपके दर्शन को आ सकता हूं?

नितिन चौधरी! पहली तो बात, अगर सच में ही मेरी बातें तुम्हें रसपूर्ण लगती हैं, तो बिना पीए कैसे बचोगे? रस को कोई देखता थोड़े ही है, पीता है। रस को तो पी कर ही स्वाद लिया जा सकता है। ऐसी बहती रहे नदी और तुम प्यासे किनारे खड़े रहो—और नदी बड़ी रसभरी लगे—मगर क्या होगा? तुम्हारी प्यास तो न बुझेगी। तुम्हें नदी में उतरना पड़ेगा। संन्यास कुछ और नहीं है, नदी में उतरना है।

बुद्ध ने तो संन्यास के लिए जो शब्द उपयोग किया है, दीक्षा के लिए, वह शब्द ही ऐसा है कि उसका अर्थ होता है नदी में उतरना : स्रोतापन्न : स्रोत में उतर जाना। दीक्षा को बुद्ध ने कहा है : स्रोतापन्न। जो व्यक्ति नदी में उतर आता है। मगर उतने से ही काम नहीं होता। नदी में भी उतर कर तुम खड़े रहो, तो भी प्यासे ही रहोगे। इसलिए तो कहते हैं, घोड़े को नदी तक ले जाया जा सकता है, मगर पानी पीने के लिए मजबूर नहीं किया जा सकता। क्या करोगे तुम? नदी में उतर कर खड़े हो गये, तो भी नदी तुम्हारे कंठ तक नहीं पहुंच जाएगी। तुम्हें अंजुलि बनानी पड़ेगी हाथों की, तुम्हें झुकना पड़ेगा, तुम्हें नदी से पानी अपने हाथों में भरना पड़ेगा, तुम्हें पानी को अपने कंठ तक ले जाना पड़ेगा, तब प्यास बुझेगी।

संन्यास कुछ और नहीं है, सिर्फ तुम्हारे झुकने का एक आयोजन है। कोई गैरिक वस्त्रों से थोड़े ही संन्यासी होता है, यह तो केवल तुम्हारे झुकने की एक सूचना है। अगर तुम मेरी बात मान कर कपड़े भी नहीं बदल सकते, तो क्या खाक और बदलोगे! तुम कहते हो, 'मेरी रुचि तो रंग-बिरंगे वस्त्रों में है'! अगर तुम्हारी रुचि मेरे साथ जुड़ कर इतना भी बदलने को राजी न हो, तो फिर और दूसरी बातों में तो बहुत अड़चन आ जाएगी। फिर आगे तो और बड़े मामले उठेंगे; जहां और बहुत-सी बदलाहटें करनी होंगी। यह कपड़े से तो सिर्फ शुरुआत है, तुम्हारी अंगुली पकड़ना है और कुछ भी नहीं। और अंगुली हाथ में आ गयी तो पहुंचा भी आ जाएगा। मगर अगर तुम अंगुली ही न पकड़ने दो, तो पहुंचा हाथ में नहीं आ सकेगा।

और यह तुमसे किसने कहा कि जीवन रंग-बिरंगा है? अभी तुमने जीवन जाना कहां! जीवन को ही जान लो, फिर संन्यास की कोई आवश्यकता नहीं है। जीवन को जानने की ही विधि तो संन्यास है। और मेरी बातें तुम्हें रसभरी लग रही हैं, इसीलिए लग रही हैं कि अभी तुमने जीवन नहीं जाना है। इसीलिए तो जीवन के संबंध में जो मैं कह रहा हूं, वह तुम्हें रसभरा लग रहा है। अगर जीवन को ही जान लोगे, तो बातों में फिर क्या रखा है!

कबीर और फरीद मिले, दो दिन साथ रहे, दोनों चुप रहे, बोले ही नहीं। और जब फरीद के शिष्यों ने पूछा, और कबीर के शिष्यों ने कबीर से पूछा, कि आप बोले क्यों नहीं? दोनों चुप क्यों रहे? हम बड़े आतुर थे सुनने को। तो फरीद ने कहा, हम बोलते क्या? जो मैं जानता हूं, उसे वे भी जानते हैं। जिस जीवन को मैंने चखा, उसको उन्होंने भी चखा। अब कहना क्या है? कबीर से पूछा, कबीर ने कहा, क्या तुम पागल हो? क्या बोल कर मैं सिद्ध करता कि मैं अज्ञानी हूं? तुम्हारे सामने बोलता हूं, क्योंकि तुमने जीवन को नहीं जाना, इसलिए जीवन की तुम्हें कुछ खबर देनी है, मगर फरीद से क्या बोलना है? हम तो दोनों एक ही तट पर बैठे हैं। हम तो दोनों एक ही जगह हैं। बोलने को क्या बचा है?

अभी तुमने जीवन जाना नहीं। और अगर तुम जीवन जानोगे तो तुम चकित होओगे कि जीवन का रंग शुभ्र है, सफेद है, रंग-बिरंगा नहीं है। यह तो जीवन जब खंडित होता है तो रंग-बिरंगा होता है। जैसे सूरज की किरण तो सफेद होती है, सूरज की किरण को जब हम कांच के टुकड़े—प्रिज्म—में से गुजारते हैं, तो वह सात रंगों में टूट जाती है। ऐसे ही इन्द्रधनुष बनता है। इन्द्रधनुष हमेशा नहीं बनता। तुमने ख्याल किया, इन्द्रधनुष बनने के लिए खास परिस्थिति चाहिए। वह परिस्थिति यूं होनी चाहिए—

वर्षा के दिन हों। ताकि हवाओं में जल के छोटे-छोटे कण तैर रहे हों। फिर

आकाश में बदलियां न हों। सूरज निकला हो। या कम-से-कम बदलियों के बीच से सूरज झांक रहा हो। ताकि सूरज की किरणें हवा में लटकी हुई छोटी-छोटी बूंदों को पार कर सकें। वे बूंदें प्रिज्म का काम करती हैं। उन बूंदों से जैसे ही सूरज की किरण पार होती है, सात टुकड़ों में टूट जाती है। इस तरह इन्द्रधनुष बनता है। इन्द्रधनुष होता नहीं। तुम अगर जाओगे वहां तो कुछ भी न पाओगे। अगर मुट्ठी बांधोगे तो सिर्फ हाथ गीला हो जाएगा और कुछ भी नहीं। कोई रंग हाथ न लगेगा।

जीवन इन्द्रधनुष नहीं है, जीवन तो शुभ्र किरण है। इसलिए महावीर ने ध्यान की परम अवस्था को शुक्ल ध्यान कहा है। शुभ्र। वहां सब हो सफेद हो जाता है। वहां कोई रंग नहीं बचता।

ध्यान रखना, सफेद कोई रंग नहीं है। सफेद सब रंगों का स्रोत है और सब रंगों का अंत भी। प्रारम्भ भी और समाप्ति भी। आदि भी और अंत भी। सफेद पहले है और सफेद बाद में––और बीच में सब रंगों का झमेला है। तुम जब कहते हो, मेरी रंगों में रुचि है, तो उसका अर्थ है कि झमेले में रुचि है। अभी इन्द्रधनुष में रुचि है, मतलब अभी झूठ में रुचि है। अभी झूठ प्यारे लगते हैं। इन्द्रधनुष बिलकुल झूठी चीज है। किरण सत्य है। इन्द्रधनुष तो किरण का टूट जाना है, विकृत हो जाना है, खंडित हो जाना है। जिस दिन तुम जीवन को जानोगे, उस दिन तो तुम पाओगे कि जीवन शुक्ल है, सफेद है, शुभ्र है। कोई रंग नहीं है। सारे रंग खो जाते हैं।

और तुम कहते हो कि 'मैं रंगमंच का अभिनेता होने के नाते अभिनय कला की गहराई में जाना चाहता हूं। इसलिए संन्यास के लिए मेरी अभी तैयारी नहीं है'। तो तुमने मेरी बात बिलकुल भी नहीं समझी। मैं तो कह ही यह रहा हूं कि संन्यास का अर्थ है: अभिनय की कला। अगर तुम्हें सच में अभिनेता होना है, तो संन्यासी के अतिरिक्त तुम कहां अभिनय सीखोगे? यह जो मैंने अभी तुमसे बात कही, छांदोग्य के सूत्र पर, इसका अर्थ साफ है कि जीवन को अभिनय की तरह देखो। तुम साक्षी रहो। जीवन के साथ तादात्म्य न कर लो। जैसे रामलीला में कोई राम बना, तो राम नहीं बन जाता। जानता है कि यह तो सिर्फ अभिनय कर रहा हूं, मैं तो वही हूं जो हूं। कोई धनुष-बाण लेकर आ गया हूं, तो कोई राम नहीं हो गया हूं! कि पीछे सीता मैया चल रही हैं और उनके पीछे लक्ष्मण जी चल रहे हैं तो मैं कोई राम हो गया! वह जानता है कि न सीता मैया सीता मैया हैं...जहां तक तो मैया होंगी ही नहीं, कोई भैया होंगे! मूंछे-वूंछे मुड़ा कर और रंग-रोगन करके खड़ा कर दिया होगा। भलीभांति जानता है कि यह भैया हैं, कोई सीता मैया नहीं हैं।

एक आदमी राम बना। उसके मित्रों ने उससे पूछा बाद में कि और सब तो ठीक है, लेकिन एक बात तो बताओ यार कि रामचंद्र जी और सीता मैया के बीच कोई शारीरिक संबंध हुए थे कि नहीं? क्योंकि रामलीला में उसका कोई उल्लेख ही नहीं

आता। यह तो पता चलता है कि गर्भवती हो गयीं। मगर गर्भवती होने के पहले क्या हुआ, इसका तो कुछ पता ही नहीं चलता। कब गर्भवती हो गयीं? उस आदमी ने कहा, भाई, मुझे पता नहीं है कि असली राम ने सीता मैया के साथ कोई शारीरिक संबंध किये थे कि नहीं, वह तो मुझे पता नहीं, मगर मैंने किये हैं, यह मैं तुम्हें बताए देता हूं! कि वे जो सीता मैया बनी हैं, गर्भवती हुई कि नहीं हुई, मुझे पता नहीं, वह भगवान जानें––राम ही जानें––मगर मैंने नहीं छोड़ा। अब रामचंद्र जी ने छोड़ा कि नहीं, वह वे समझें!

राम तुम बने, तो राम नहीं हो गये हो। सिर्फ अभिनय कर रहे हो। अभिनय का अर्थ ही है कि तुम्हें साक्षी रहना है। और वही तो संन्यास है। संन्यासी इस पूरे जगत को अपनी मंच बना लेता है। यह पूरा जगत उसके लिए लीला हो जाती है। उठता है, बैठता है, काम करता है, लेकिन अब उसे किसी भी काम में तादात्म्य नहीं है। वह किसी काम में अपने को जोड़ नहीं लेता। भीतर अलग-थलग बना रहता है।

और यही तो अभिनय की आधारशिला है कि तुम भीतर अलग-थलग बने रहो। प्रेम दिखलाओ, क्रोध दिखलाओ, दुख दिखलाओ, और भीतर अलग-थलग बने रहो।

मेरे गांव में रामलीला होती थी, तो मुझे रामलीला देखने में बहुत उत्सुकता नहीं थी, मुझे उत्सुकता रहती थी परदे के पीछे क्या हो रहा है? क्योंकि मेरी हमेशा से उत्सुकता परदे के पीछे क्या होता है, उसी में है। परदे के बाहर तो सब ठीक है। तो मैं परदे के पीछे। वह जो गांव के मैनेजर थे रामलीला के, वे भी कहें कि तू भी अजीब है! सारा गांव बाहर बैठा है और तुझे क्या पड़ी है कि तू परदे के पीछे बैठता है आ कर! मैंने कहा, मुझे यहीं देखना है। आपको कोई एतराज है? उन्होंने कहा, मुझे कोई एतराज नहीं है, बैठ, तू देख! तो मैं बैठा रहता एक कोने में, देखता रहता। वहां मैंने जो-जो गज़ब दृश्य देखे, वह जो परदे के सामने बैठे थे, उन्होंने देखे ही नहीं, वे चूक ही गये! वहां मैंने देखा कि सीता मैया बिड़ी पी रही हैं! अरे, मैंने कहा, गजब हो गया!! सीता मैया और बिड़ी पी रही हैं! मैंने वहां देखा कि रामचंद्र जी हनुमान जी को चाय पिला रहे हैं। हद हो गयी! मैंने वहां देखा कि रामचंद्र जी और रावण एक ही प्लेट से भजिया खा रहे हैं!

असली चीज मैंने देखी।

वह जो परदे पर चलता है, वह कुछ और ही है। वहां धनुषबाण खिंचे हैं और एकदम युद्ध चल रहा है और कोई कल्पना कर सकता है कि रामचंद्र जी और रावण जी एक ही प्लेट में भजिया खा रहे हैं! पहले तो भजिया खाएं रामचंद्र जी, यही कल्पना नहीं आती! रामचंद्र जी और भजिया का क्या संबंध? यह भीतर; तो वे फिर भी जानते होंगे परदे में जाकर, मंच पर जाकर कि यह सिर्फ एक अभिनय है।

संन्यासी पूरे जीवन को अभिनय बना लेता है। इसलिए संन्यास से बड़ी कोई अभिनय की कला सीखने का उपाय नहीं हो सकता। अगर, नितिन चौधरी, सच में ही तुम रंगमंच के अभिनेता होना चाहते हो, तो तो तुम्हें संन्यासी हो ही जाना चाहिए। तो मैं तुम्हें रंगमंच का अभिनेता ही नहीं, जीवन के सारे मंच का अभिनेता बना दूंगा। इसीलिए तो मैं अपने संन्यासी को नहीं कहता कि तू जंगल भाग जा। जरूरत नहीं है भागने की। अभिनय है यह सब, तो भागना कहां है? भागने की जरूरत क्या है? जो भागता है, वह तो गंभीरता से ले रहा है। वह तो समझ रहा है कि यहां रहूंगा तो फंस जाऊंगा। अगर यहां रुका तो अटक जाऊंगा। अभी उसमें साक्षीभाव नहीं जन्मा है, नहीं तो जंगल किसलिए जाएगा? जंगल सिर्फ मूढ़ जाते हैं। जिनको बोध नहीं है, वे जाते हैं। त्याग केवल बुद्धू करते हैं। एक तो भोग का चक्कर था, फिर त्याग का चक्कर शुरू होता है। और त्याग का चक्कर और भी बड़ा चक्कर है। उसमें जो पड़ा, वह बिलकुल घनचक्कर हो जाता है। भोग ही काफी चकरा देता है, कुछ बचा होता है थोड़ा-बहुत तो वह योग चकरा देता है।

मेरे संन्यासी को भोगी से त्यागी नहीं होना है। अगर वह त्यागी है, तो भी उसे साक्षी होना है। अगर वह भोगी है, तो भी उसे साक्षी होना है। वह कहीं से भी आए, किसी दिशा से, उसे एक ही काम करना है: साक्षी होना है। चाहे वह दुकान करता हो, चाहे दफ्तर में काम करता हो, चाहे गरीब हो, चाहे अमीर हो, चाहे अभिनेता हो, चाहे वेश्या हो, चाहे महात्मा हो, कुछ भेद नहीं पड़ता, संन्यास की प्रक्रिया एक है। वेश्या के लिए अलग और संतों-महंतों के लिए अलग, ऐसा नहीं है, प्रक्रिया एक है। इसलिए मैं कहता हूं कि वेश्या वेश्या रहते हुए भी परम मोक्ष को उपलब्ध हो सकती है। सिर्फ साक्षीभाव।

और क्या अड़चन है!

मैं तो ऐसा अनुभव करता हूं कि शायद वेश्या पत्नी से जल्दी साक्षीभाव को उपलब्ध हो सकती है। क्योंकि पत्नी को तो आग्रह होता है पति पर कि 'मेरा'। वेश्या को तो क्या आग्रह हो सकता है! कोई उसका नहीं। ये पति रोज बदल जाते हैं। वहां कोई पति ही नहीं है। तो 'मेरे' का सवाल नहीं है। मैं तो कहता हूं कि वेश्या को कोई अड़चन नहीं है मोक्ष पाने में। शायद सुविधा है।

अभिनेता को भी सुविधा है—ज्यादा सुविधा है बजाय तुम्हारे संतों-महात्माओं के। क्योंकि संत-महात्मा तो बड़े अकड़ जाते हैं, बड़े जकड़ जाते हैं। किसी ने मुंहपट्टी बांध ली, तुम उससे कहो कि मुंहपट्टी छोड़ दो, तब तुम्हें पता चलेगा कि इसने संसार छोड़ा कि नहीं?... कहता है संसार छोड़ दिया, मुंहपट्टी छोड़ नहीं सकता; क्या खाक संसार छोड़ा होगा, मुंहपट्टी नहीं छोड़ सकता! एक चार इंच

का टुकड़ा बांधे हुए है मुंह पर, उसको छोड़ नहीं सकता—और संसार छोड़ आया! गजब का त्याग है!!

मैंने आचार्य तुलसी से यही कहा कि आप मुंहपट्टी छोड़ दो, मैं समझ लूंगा कि आप त्यागी हैं। उन्होंने कहा, क्या कहा? मुंहपट्टी कैसे छोड़ी जा सकती है! अरे, मैं तेरापंथी साधु हूं, सात सौ साधुओं का आचार्य हूं, मुंहपट्टी कैसे छोड़ सकता हूं! मैंने कहा, अगर मुंहपट्टी नहीं छोड़ सकते, तो क्या छोड़ा होगा? अभी मुंहपट्टी के प्रति भी साक्षीभाव नहीं है, तो इतने विराट संसार के प्रति क्या साक्षी-भाव होगा!

मेरे देखे अभिनेता ज्यादा कुशलता से संन्यासी हो सकता है। क्यों? क्योंकि उसका अभिनय रोज बदल जाता है। कभी राम बनता है, कभी रावण बनता है। जब जैसी जरूरत हो जाती है। कभी तो एक ही साथ एक ही नाटक में दो-दो, तीन-तीन काम भी करने पड़ते हैं। जैसी जरूरत पड़ जाए। कभी कोई अभिनेता बीमार पड़ जाता है तो उसका भी काम उसको कर देना पड़ता है। और नाटक तो रोज बदलते रहते हैं। आज इस नाटक में काम कर रहा है, परसों दूसरे नाटक में काम कर रहा है। कभी कालिदास के नाटक में है, कभी भवभूति के नाटक में है, कभी बाणभट्ट के नाटक में है। नाटक बदलते रहते हैं। तो किसी से तादात्म्य नहीं हो पाता। जो आदमी जिंदगी भर एक ही दुकान पर बैठा रहा, स्वभावतः तादात्म्य हो जाएगा। लेकिन रोज दुकान बदलती रहे, तो कैसे तादात्म्य होगा? कभी सराफे की दुकान पर बैठ गये, कभी कपड़े की दुकान पर बैठ गये, कभी मिठाइयों की दुकान पर बैठ गये, तो वह क्या समझेगा अपने को? मैं मिठाईवाला हूं, सराफ हूं, क्या समझेगा? पकड़ने की सुविधा ही नहीं मिलेगी; धार बहती ही रही, रोज चीजें बदलती ही रहीं, इस बदलाहट की दुनिया में वह कैसे कुछ पकड़ेगा?

अभिनेता किसी और दूसरे धंधे की बजाय ज्यादा कुशल संन्यासी हो सकता है। और इससे उल्टा भी सच है—स्वभावतः—कि संन्यासी जितना कुशल अभिनेता हो सकता है उतना कोई दूसरा नहीं हो सकता है। क्योंकि उसने तो जीवन को ही अभिनय बना लिया, उसका तो तादात्म्य कहीं भी नहीं है। अब मंच में और जीवन में उसे कुछ फर्क ही नहीं है। उसकी अभिनय की कला बड़ी सहज और स्वाभाविक हो जाएगी। क्रत्रिम नहीं होगी। और वही तो महान कलाकार का लक्षण है कि कला स्वाभाविक हो, सहज हो, स्व-स्फूर्त हो।

नितिन चौधरी, अगर सच में ही तुम गहराई में जाना चाहते हो अभिनय कला की, तो मैं तुम्हें वह गहराई सिखा सकता हूं। कोई और तुम्हें सिखा भी नहीं सकेगा; क्योंकि या तो यहां भोगी हैं और या यहां त्यागी हैं। मैं दोनों नहीं हूं। मेरे लिए दोनों अभिनय हैं। कुछ भेद नहीं पड़ता। तुम किस तरह का अभिनय करते हो,

संत-महंत बने हो, चोर-लुटेरे बने हो, कुछ फर्क नहीं पड़ता। तुम जो भी कर रहे हो, इतना भर ध्यान रहे कि मैं सिर्फ द्रष्टा हूं। मगर भूल जाता है, भूल-भूल जाता है। जरा-सी कोई घटना घटती है और हम भूल जाते हैं।

ऐसा हुआ।

एक नाटक हो रहा था और बंगाल के बहुत बड़े विद्वान ईश्वरचन्द्र विद्यासागर प्रमुख अतिथि थे नाटक देखने के लिए। मगर सज्जन आदमी थे, सच्चरित्र आदमी थे, बड़ी नीति का उनको आग्रह था। नाटक में ऐसी घटना आती है कि एक लफंगा... बिना लफंगों के तो कोई कहानी होती ही नहीं; अच्छे आदमियों की जिंदगी में कहानी क्या ख़ाक होती है; कहानी के लिए बुरा आदमी चाहिए; बुरे आदमी की जिंदगी में कुछ होता है बताने लायक, कहने लायक; उसमें कुछ रस जगाने की क्षमता होती है। तुम अच्छे आदमी की जिंदगी पर कोई कहानी बनाओ, चलेगी ही नहीं। कोई देखने ही नहीं आएगा कि वहां है ही क्या! एक महात्मा जी बैठे हैं, तम्बूरा बजाते रहते हैं, कभी उपवास कर लेते हैं, अंखियां हरिदर्शन की प्यासी गाते रहते हैं! कब तक? जनता थोड़ी देर में कहेगी, भई, कुछ और भी होने दो! अंखियां हरिदर्शन की प्यासी, वह तो समझे, मगर हमारी अंखियां भी प्यासी हैं! कुछ और भी दिखलाओ! कुछ नाटक-चेटक होने दो, यह क्या कर रहे हो! यह तम्बूरा कब तक बजेगा? पिटाई हो जाएगी संत-महात्मा की। जनता निकाल बाहर कर देगी कि हटो यहां से, भागो! अगर यही तुमको करना है, तो नाटक किसलिए कर रहे हो?

नाटक में तो कुछ बुरा आदमी चाहिए। बुरे आदमी की जिंदगी में कहानी होती है, कहानी में मोड़ होते हैं, अचंभे होते हैं, चमत्कार होते हैं।...

तो एक लफंगा एक स्त्री के पीछे पड़ा हुआ है, हाथ धो कर पड़ा हुआ है।...जब कोई पड़ता है तो हाथ धो कर ही पड़ता है! अरे, फिर पीछे क्या हाथ धोने, पहले ही हाथ धो लिए! इसीलिए तो कहते हैं: हाथ धो कर पीछे पड़ना!...ईश्वरचंद्र को बड़ा गुस्सा आने लगा। नैतिक आदमी, उनको बड़ा कष्ट होने लगा। वह बड़े बेचैन हो गये, पसीना-पसीना हो गये। और वह आदमी तो इस तरह सता रहा है उस स्त्री को! और एक ऐसी अवस्था आयी कि स्त्री एक जंगल से गुजर रही है और उस आदमी ने उसको जंगल में पकड़ लिया। बस, फिर ईश्वरचंद्र ने आव देखा न ताव, उछल कर चढ़ गये मंच पर, निकाल लिया जूता, लगे पीटने उस अभिनेता को! जनता तो और भी हैरान हो गयी। नाटक देखने आई थी मगर इतना गजब का नाटक हो जाएगा, यह नहीं सोचा था। यह तो नाटक में एक नया नाटक हो गया। एक दफा तो लोगों की सांसें बंद हो गयीं, आंखें अटकी रह गयीं, जो सो गये थे वे भी जग गये कि हो क्या रहा है, कि दर्शक भी भाग ले रहे हैं! और साधारण भाग

नहीं ले रहे, जूते चला रहे हैं! और ईश्वरचंद्र विद्यासागर! जिनसे आशा ही नहीं हो सकती थी कि ये जूता चलाएंगे!

मगर उस अभिनेता ने गजब किया। उसने वह जूता उनके हाथ से ले लिया और अपने सिर लगा लिया। उसने मारा जूता ठीक से! पानी-पानी कर दिया उसने विद्यासागर को! और उसने जनता के सामने घोषणा की कि आप परेशान न हों, यह मेरे लिए बड़े से बड़ा पुरस्कार है। यह इस बात की सूचना है कि विद्यासागर भूल गये कि मैं केवल अभिनय कर रहा हूं। और यही तो अभिनेता के लिए सौभाग्य है कि जनता भूल जाए कि वह अभिनय कर रहा है। जनता को ऐसा लगने लगे कि जो हो रहा है, वह सच हो रहा है। और जनता को ही नहीं, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर जैसे आदमी को लगा, यह जूता मैं वापिस नहीं दूंगा, यह मेरा प्रमाणपत्र है। इसको मैं सम्हाल कर रखूंगा। इससे बड़ा प्रमाणपत्र मुझे जीवन में दूसरा नहीं मिला।

जरा सोचो कि ईश्वरचन्द्र विद्यासागर पर क्या गुजरी होगी! ठंडा पसीना छूट गया होगा। बैठ गये कुटे-पिटे जाकर अपने सोफा पर। मारे जूते, मगर खा गये जूते। ये ईश्वरचन्द्र विद्यासागर सिर्फ पंडित हैं। इनसे तो कहीं ज्यादा संन्यस्त वह अभिनेता था। उसने जूते की मार को भी अभिनय के ढंग से लिया। वहां भी साक्षीभाव रखा। उसने उस दुर्घटना को भी एक प्रीतिकर रूप दे दिया। उसने उसमें भी कष्ट नहीं माना। सम्मान समझा। बात को ऐसा मोड़ दे दिया! ईश्वरचन्द्र विद्यासागर तादात्म्य में पड़ गये। वे भूल ही गये कि नाटक है।

नितिन चौधरी, अगर सच में ही अभिनय कला की गहराई में उतरना है, तो संन्यास तुम्हें वे कुंजियां दे देगा जो किसी और तरह से उपलब्ध नहीं हो सकतीं। क्योंकि संन्यास कुछ है ही नहीं, जीवन को अभिनय के ढंग से जीने की कला।

और तुम कहते हो, 'मैं गैरिक वस्त्र में सीमित नहीं होना चाहता हूं'। तुम्हें पता नहीं। बिना अनुभव के कह रहे हो। गैरिक वस्त्रों में तुम मेरे संन्यासियों को सीमित देखते हो? तुम मेरे संन्यासियों से ज्यादा स्वतंत्र व्यक्ति पृथ्वी पर कहीं पा सकते हो! तुम्हारे रंग-बिरंगे वस्त्र सीमा हैं। यूं कहो कि अपनी सीमा से नहीं छूटना चाहते। मेरा संन्यासी तो बिलकुल मुक्त है। गैरिक वस्त्र तो सिर्फ उसकी उद्घोषणा है कि वह मेरा संन्यासी है, और कुछ भी नहीं। इस बात की उद्घोषणा है कि वह मेरे साथ जुड़ने को राजी है, बस और कुछ भी नहीं। उसके प्रेम की घोषणा है। और तुम जितना मेरे संन्यासी को रंग-बिरंगा पाओगे, उतना तुम अपने को नहीं पाओगे। तुम्हारा रंग-बिरंगापन कपड़ों तक ही रह जाएगा। मेरे संन्यासी के कपड़े तो एक रंग के हैं, लेकिन उसकी आत्मा बहुत आयामों में फैल गयी है।

मैं तो जीवन के सारे आयाम को स्वीकार करता हूं। मैं निषेधात्मक नहीं हूं। मैं किसी चीज का विरोध नहीं करता। जीवन को जितने आयाम मिलें, उतनी

समृद्धि होती है। जितने तुम सृजनात्मक हो जाओ, उतनी जीवन में समृद्धि होती है, उतने जीवन में भीतर के खजाने खुलते हैं। लेकिन तुम यह मत सोचना कि रंग-बिरंगे कपड़े पहनने से तुम्हारे जीवन में वैविध्य हो जाएगा। तुम तो मुझे याद दिलाते हो सरदार विचित्तरसिंह की! और तुम दिल्ली में रहते हो, सो सरदारों के बहुत करीब ही समझो। लोग कहते हैं, दिल्ली दूर नहीं है, वह कोई सरदार ने ही कहा होगा। और सब जगह से तो दूर है, बस, पंजाब से दूर नहीं है।

सरदार विचित्तर सिंह सूट बनवाने दर्जी के पास गये और दर्जी से बोले, ऐसा करो, एक टांग तो ढीली बनाना और एक बिलकुल चुस्त। दर्जी ने कहा कि बहुत, कपड़े सीते-सीते जिंदगी बीत गयी; मैं ही नहीं, मेरे बाप भी यही करते थे, उनके बाप भी यही करते थे, पीढ़ियों से हम यही धंधा कर रहे हैं, मगर आप गजब के ग्राहक आए! अरे, कोई आता है कि ढीला बनाओ, समझ में आता है। कोई आता है कि चुस्त बनाओ! मगर तुमने तो गजब कर दिया सरदार विचित्तर सिंह! हो तुम विचित्तर आदमी! यह कौन-सा फैशन कि एक मोहरी ढीली और एक मोहरी बिलकुल चुस्त! विचित्तर सिंह ने कहा, तुम समझे नहीं; मैं विविधता में विश्वास करता हूं। अरे, क्या एक फैशन करना! जब दो फैशन एक साथ हो सकती हैं, तो एक टांग पर एक फैशन, दूसरी टांग पर दूसरी फैशन।

नितिन चौधरी, जरा सावधान! इस तरह रंग-बिरंगे हो गये, तो फिर नाटकों में मसखरे का काम ही मिलेगा। सरकस में जोकर हो जाओगे! और दिल्ली में बहुत तरह के मसखरे इकट्ठे हैं, जरा सावधान रहना!

जीवन को अगर जानना है, तो किसी ऐसे व्यक्ति से संबंध जोड़ना होगा जिसने जाना है। अगर दीया बुझा है, तो किसी ऐसे दीये के पास आना होगा उसे जो जला है।

संन्यास का कुछ और अर्थ नहीं है। मेरे पास होने की घोषणा। मेरे और तुम्हारे बीच कोई व्यवधान नहीं है, इसकी घोषणा। मेरे-तुम्हारे बीच कोई तर्क नहीं है, कोई शब्द नहीं है, कोई विवाद नहीं है, इसकी घोषणा। और जिस दिन मैं देखूंगा कि तुम्हें गैरिक वस्त्रों की कोई जरूरत न रही, उस दिन मैं तुम्हें मुक्त कर दूंगा—गैरिक वस्त्रों से भी। कोई गैरिक वस्त्रों से थोड़े ही संन्यास बंधा हुआ है!

लेकिन मुझे कोई-न-कोई प्रतीक तो चुनना था। और गैरिक मैंने जान कर चुना है। जान कर चुना है इसलिए कि गैरिक वस्त्र गलत आदमियों के हाथ में कोई पांच हजार साल से रहा है। उसको उनके हाथ से छुड़ाना है। यह प्यारा रंग जीवन के निषेध का प्रतीक बन गया। और यह जीवन का रंग है, यह वसंत का रंग है। इसलिए इसका दूसरा नाम बासंती रंग है। वसंत, जब सारे फूल खिल जाते हैं। यह वसंत का रंग न-मालूम कैसे गलत लोगों के हाथ में पड़ गया, जो फूलों के दुश्मन

हैं, जो कांटों को प्यार करते हैं, जो कांटों की शैय्या बिछा कर उस पर सोते हैं, जो कांटों के लिए लालायित हैं, जो अपने को सताते हैं हर तरह से, जो अपने को परेशान करते हैं हर तरह से, जो हिंसा से भरे हैं।—हालांकि दूसरे की हिंसा करने में खतरा है। क्योंकि दूसरा भी जवाब देगा। वे अपनी ही हिंसा करते हैं। उसमें कोई जवाब भी नहीं कर सकता, उसमें कोई रक्षा भी नहीं कर सकता।—यह आत्महिंसक लोगों का प्रतीक हो गया। यह पाखंडियों का प्रतीक हो गया। जो कहते कुछ हैं, करते कुछ हैं। इस प्यारे रंग को, वसंत के रंग को उनके हाथ से छुड़ा लेना है। इसलिए मैंने इस रंग को चुना। अन्यथा मैं कोई भी रंग चुन सकता था। कोई भी रंग घोषणा बन सकता था।

लेकिन इसके पीछे कारण है। एक पुरानी परंपरा को पूरी तरह खंडित कर देना है। और उस परंपरा के भीतर घुस कर ही यह काम किया जा सकता है। यह विस्फोट, यह बम परंपरा के भीतर ही घुस कर रखा जा सकता है। यह सड़ी-गली धर्म की जो अब तक की व्यवस्था रही है, इसको भीतर से ही तोड़ देना है, ताकि एक नये धर्म का आविर्भाव हो सके—नयी तरह की धार्मिकता का आविर्भाव हो सके। इसलिए मैंने गैरिक को चुना है।

लेकिन जिस दिन मैं समझूंगा काम पूरा हो गया, उस दिन कह दूंगा: अब तुम्हारी मर्जी!

और तुम जरा सोचो, नितिन चौधरी, अगर मैं सतरंगे कपड़े चुन लेता, कि सात की तरह पट्टियों वाले कपड़े पहनो, तो भी तुम राजी न होते। तुम कहते कि और मखौल उड़ेगी। लोग क्या कहेंगे! कि तुम्हें क्या हो गया? अभी तो इतना ही कहेंगे कि चलो, संन्यासी हो गये; फिर तो समझते कि बिलकुल पागल हो गये!

मगर मैं ख्याल रखूंगा, अगर कभी बदलाहट करने के मेरे इरादे हुए, तो मुझे तुम्हारी बात जंची, बहुत रसभरी मालूम पड़ी, सतरंगे चुन लूंगा। मगर जरा देर है अभी।

और तुम कहते हो, 'भगवान, क्या मैं बिना आपका संन्यासी हुए समय-समय पर आपके दर्शन को आ सकता हूं?' सुनने को आ सकते हो; मिलने को नहीं आ सकते। क्योंकि मिलने की तो शर्त ही तुम पूरी नहीं कर रहे हो। सुनने के लिए तो कोई अड़चन नहीं है, जब आना चाहो, आओ। लेकिन मिलना हो, शर्त पूरी करनी पड़ेगी। उसके लिए तो फिर झुकना होगा। उसके लिए तो फिर मेरे साथ राजी होना होगा। फिर मेरे साथ तालमेल बिठाना होगा। मेरे छंद में गाना होगा। मेरे नृत्य में सम्मिलित होना होगा। तो ही सम्भव हो सकता है दर्शन। दर्शन बड़ी बात है! सुन लेने में तो क्या है? दर्शन तो एक आत्मिक संस्पर्श है।

आखिरी प्रश्न : भगवान, नये कम्यून को पंजाब में स्थापित करने के बारे में आपका क्या विचार है ?

सुरेन्द्र सरस्वती, पंजाब तो बहुत प्यारा है ! मगर कृपाणें खिंच जाएंगी। पहले कच्छ को सुधार लेने दो, फिर पंजाब चलेंगे। अभी कच्छ के लोग कह रहे हैं : 'कच्छ को बचाओ' ! पहले कच्छ को बचाने दो, फिर पंजाब को बचा लेंगे। और पंजाब में मुझे रस है। पंजाब में क्या-क्या गजब के लोग हैं, उनको भी बचाना तो है ही !

सरदार विचित्तर सिंह और प्यारा सिंह खूब पीकर लौट रहे थे। तभी प्यारा सिंह नाली में गिर पड़े। विचित्तर सिंह ने उन्हें उठाते हुए कहा, उठ यार, उठ, तेरा कसूर नहीं है, ये साले नगरपालिका वाले रात को नालियां उठा कर सड़क पर बीच में रख देते हैं।

सरदार विचित्तर सिंह की प्रेमिका ने उनसे कहा, क्या तुम शादी के बाद भी मुझे इतना ही प्यार करोगे ? विचित्तर सिंह ने कहा, अवश्य, अरे निश्चय ! सच बात तो यह है कि मैं शादीशुदा औरतों पर जान छिड़कता हूं।

सरदार विचित्तर सिंह अपने मित्र प्यारा सिंह के साथ पहली बार बंबई आए और एक होटल में गये। वे जिस टेबल पर बैठे थे, वहां एक गिलास उलटी रखी थी। विचित्तर सिंह के मित्र प्यारा सिंह ने कहा, हद हो गयी, इस गिलास का तो मुंह ही नहीं है ! विचित्तर सिंह ने गिलास उठाया, पलट कर देखा और और भी अधिक आश्चर्य से बोले, गजब है, कमाल है, इस गिलास में पेंदी भी नहीं है !

ऐसे-ऐसे प्यारे लोग ! सुरेन्द्र, पंजाब भी चलना ही होगा !

एक दर्जी ग्राहकों के कपड़े लेकर भाग गया। सारे ग्राहक इकट्ठे हुए और अपनी-अपनी दुख-कथा रोने लगे। मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा, वह बदमाश मेरा कोट ले गया। ढब्बूजी बोले, साला मेरा नया-नया पेंट ले गया। मैंने तो बस बटन लगाने के लिए ही उसे दिया था। चंदूलाल ने अपनी चांद पर हाथ फेर कर कहा, मैंने अपनी पीढ़ियों से चली आ रही परंपरागत टोपी उसे दी थी, थोड़ी-सी रफू करने के लिए, मैं तो लुट गया, हाय ! सरदार विचित्तर सिंह ने अपनी मूंछों को मरोड़ते हुए कहा, हरामजादा मिल भर जाए, उसे मैं जिंदा नहीं छोड़ूंगा, मेरा तो उसने सत्यानाश कर दिया। दोस्तों ने पूछा, आपका क्या ले गया ? सरदार जी बोले, वह मेरा नाप ले गया। अब मैं कपड़े किससे बनवाऊं ? और कैसे बनवाऊं ?

सरदार विचित्तर सिंह अहमदाबाद गये। एक पतली और एक चौड़ी टांग वाली पेंट, खूबसूरत कोट और नयी चमकदार जूतियां पहने नशे में धुत वे अहमदाबाद की सड़कों पर भ्रमण करते रहे; कई जगह गिरे, ठोकरें खाईं और अंततः एक जगह

बिलकुल बेहोश हो कर चारों खाने चित गिर पड़े। एक गुजराती भाई आया और अकेले में इस मदहोश आदमी को पाकर उसके महंगे जूते और कोट उतार कर ले गया और अपने फटे-पुराने जूते विचित्तर सिंह को पहना गया। घंटे भर बाद जब थोड़ा होश आया, तो देखा कि एक बिलकुल सामने खड़ी कार पों-पों-पों-पों कर रही है। कार के ड्राइवर श्री अहमक अहमदाबादी ने खिड़की में से झांक कर कहा, ओ सरदार के बच्चे, रास्ते से हट जा ! जानता नहीं मैं कौन हूं ? तेरी टांगों पर से कार चढ़ा दूंगा। विचित्तर सिंह ने एक नजर अपने पैरों पर डाली और जवाब दिया, चढ़ा दे, चढ़ा दे, यहां डर किसको पड़ा है; अरे, ये मेरी टांगें ही नहीं हैं ! मेरी टांगें तो नयी जूतियों वाली थीं।

सरदार विचित्तर सिंह साइकिल पर तेजी से भागे जा रहे थे। पीछे कैरियर पर एक स्त्री बैठी हुई थी। अचानक हवा के तेज झोंके में स्त्री के हाथ से रूमाल छूट कर गिर गया। एक दूसरे सरदार जी यह देख रहे थे, चिल्ला कर बोले, ओय् सरदार, तेरी बीबी का रूमाल उड़ गया ! साइकिल रोक ! इस पर सरदार विचित्तर सिंह ने क्रोध भरी निगाहों से पीछे मुड़ कर देखा और जवाब दिया, ऐ जरा सोच-समझ कर जबान खोला कर ! शर्म नहीं आती, बदतमीज, इसको मेरी बीबी कहता है ! अरे, होगी तेरी बीबी, हरामजादे, मेरी तो भैंण लगती है !

ऐसे-ऐसे प्यारे लोग ! पंजाब पुकार रहा है। सुरेन्द्र, चलना तो जरूर है।

दस साल की उम्र में ही विचित्तर सिंह घर से भाग निकले। उसकी दादी उसे बहुत प्यार करती थी। बीस साल की उम्र में अचानक एक दिन घर लौट आए। घर के अन्य लोग तो खुश थे, मगर दादी की खुशी का ठिकाना न था। रात हुई, सब सोने चले। घर में दो ही कमरे थे। एक में विचित्तर सिंह के पिता थाउजैंडा सिंह और उनकी पत्नी सोते और एक में विचित्तर सिंह की दादी।...थाउजैंडा सिंह का असली नाम तो हजारा सिंह था, मगर जब से वे इंग्लैंड होकर लौटे, उन्होंने अपना नाम थाउजैंडा सिंह कर लिया था।...दादी ने कहा कि लड़के को तो मैं अपने साथ सुलाऊंगी। थोड़ी देर बाद विचित्तर सिंह ने दादी को प्यार करना प्रारंभ किया। दादी ने सोचा कि बहुत दिनों बाद आया है, प्यार उमड़ रहा होगा। मगर विचित्तर सिंह तो बढ़ता ही गया। आखिर जब वह हद से बढ़ने लगा, तो दादी चिल्लाई, अरे-अरे, यह क्या कर रहा है ! मगर विचित्तर सिंह तो दादी की छाती पर बैठ गया। तभी चिल्लाहट सुन कर थाउजैंडा सिंह कमरे में घुसे। सारी बात पलक झपकते ही वे समझ गये और क्रोध से दहाड़े--अरे हरामजादे ! विचित्तर सिंह ने खिड़की से छलांग लगायी और भाग निकले। उसी रात से पिता कमर में कृपाण लटकाए आग-बबूला हुए लड़के को तलाशते फिरते रहे।

बहुत दिनों बाद उन्होंने उसे शहर में हाकी का मैच देखते हुए धर दबोचा। और

लगे शुद्ध पंजाबी में लड़के की ऐसी-तैसी करने ! भीड़ इकट्ठी हो गयी। लोगों ने बहुत पूछा कि बात क्या है, मगर थाउजैंडा सिंह तो गालियां देते ही जा रहे थे और कृपाण निकाले हुए थे। तभी विचित्तर सिंह लपक कर एक ऊंचे स्थान पर खड़े होकर बोले, भाइयो और बहनो, इंसाफ करो ! मैं बताता हूं कि बात क्या है। मेरा कसूर कुल इतना है कि मैं एक बार इनकी मां पर चढ़ बैठा। जबकि ये सज्जन पिछले पच्चीस सालों से मेरी मां पर चढ़ रहे हैं। आप ही बताओ कि किसको सजा मिलनी चाहिए ?

ऐसे-ऐसे अद्भुत लोग !

मगर कृपाणें खिंचेंगी। बोलै सो निहाल, सत श्री अकाल। चलेंगे पंजाब भी ! इस पूरे देश को ही बिगाड़ना है। एक कोने से शुरू कर रहे हैं—कच्छ से—फिर धीरे-धीरे बिगाड़ते चलेंगे। सभी को बचाना जरूरी है।...सुरेन्दर हैं पंजाब से। सरदार थे, अब हो गये हैं संन्यासी। सो स्वभावत: उनके मन में इच्छा उठती होगी कि अब पंजाब का भी छुटकारा किसी तरह करवाना चाहिए।...मामला तो कठिन होगा, लेकिन कोशिश करने में कोई हर्ज नहीं। मामला तो हमेशा कठिन है।

कठिनाई तो स्वाभाविक है। मेरे काम में कठिनाई तो सुनिश्चित ही है।

दिल में....
दिल में इक चीज बड़ी बेसबहा मांगी है
हुश्ने-मगरूर की फितरत से वफा मांगी है
मस्लहत है....
मस्लहत है, कि तवज्जो है कि या साजिश है
इक दुश्मन ने मेरे हक में दुआ मांगी है

दिल में एक चीज बड़ी बेसबहा मांगी है
हुश्ने-मगरूर की फितरत से वफा मांगी है
मस्लहत है, कि तवज्जो है कि या साजिश है
इक दुश्मन ने मेरे हक में दुआ मांगी है

हसीनाने जहांने किसको चाहें, किसको ठुकरायें
हर इक सूरत कलेजे से लगा लेने के काबिल है
हजारों दिल मसलकर पांव से ठुकराके वो बोले :
लो पहचानो : तुम्हारा इन दिलों में कौन सा दिल है
जल नहीं उठते जहीरों को न जाने क्या हुआ....
जल नहीं उठते जहीरों को न जाने क्या हुआ
फिर वही चीखें अमीरों को न जाने क्या हुआ

फिर वही चीखें अमीरों को न जाने क्या हुआ....
खैर मकतब हो रहा है हर नये सैय्याद का....
खैर मकतब हो रहा है हर नये सैय्याद का
अहले गुलशन के जमीरों को न जाने क्या हुआ
अहले गुलशन के जमीरों को न जाने क्या हुआ....

जब कूचये कातिल में हम लाये गये होंगे....
जब कूचये कातिल में हम लाये गये होंगे
परदे भी दरीचों के सरकाये गये होंगे
जब शीशमहल कोई तामीर हुआ होगा....
जब शीशमहल कोई तामीर हुआ होगा
दीवारों में दीवाने चुनवाये गये होंगे
जब शीशमहल कोई तामीर हुआ होगा....
दीवारों में दीवाने चुनवाये गये होंगे

जब इशरते-शाही को कुछ ठेस लगी होगी....
जब इशरते-शाही को कुछ ठेस लगी होगी
सूली पर कई सरमद लटकाये गये होंगे
जब इशरते-शाही को कुछ ठेस लगी होगी....
सूली पर कई सरमद लटकाये गये होंगे
तो यारो :
यारो किसी कातिल से कभी प्यार न मांगो....
यारो किसी कातिल से कभी प्यार न मांगो
खुद अपने कलेजे-लिये तलवार न मांगो
गिर जाओगे तुम अपने मसीहा की नजर से
मरकर भी इलाजे दिले-बीमार न मांगो
खुद अपने कलेजे-लिये तलवार न मांगो
तो यारो :
यारो किसी कातिल से कभी प्यार न मांगो

उस चीज का क्या जिक्र जो मुमकिन ही नहीं है....
उस चीज का क्या जिक्र जो मुमकिन ही नहीं है
सहरा में कभी सायाये-दीवार न मांगो
सहरा में कभी सायाये-दीवार न मांगो....
खुद अपने कलेजे-लिये तलवार न मांगो

तो यारो :
यारो किसी कातिल से कभी प्यार न मांगो

खुल जायेगा इस तरह निगाहों का भरम भी. . . .
खुल जायेगा इस तरह निगाहों का भरम भी
कांटों से कभी फूल की महकार न मांगो
कांटों से कभी फूल की महकार न मांगो. . . .
खुद अपने कलेजे-लिये तलवार न मांगो
तो यारो :
यारो किसी कातिल से कभी प्यार न मांगो

सच बात पै मिलता है सदा जहर का प्याला. . . .
सच बात पै मिलता है सदा जहर का प्याला
जीना है तो फिर जुर्रते-इजहार न मांगो
जीना है तो फिर जुर्रते-इजहार न मांगो. . . .
खुद अपने कलेजे-लिये तलवार न मांगो
तो यारो :
यारो किसी कातिल से कभी प्यार न मांगो
ये भी है गनीमत जो मिले कोई खरीदार. . . .
ये भी है गनीमत जो मिले कोई खरीदार
मिट जाओ मगर कीमते-ईसार न मांगो
मिट जाओ मगर कीमते-ईसार न मांगो. . . .
खुद अपने कलेजे-लिये तलवार न मांगो
तो यारो :
यारो किसी कातिल से कभी प्यार न मांगो

उभरेगा न धड़कन से कभी अब कोई नग्मा. . . .
उभरेगा न धड़कन से कभी अब कोई नग्मा
टूटी हुई पांजेब से झनकार न मांगो
टूटी हुई पांजेब से झनकार न मांगो. . . .
तो यारो :
यारो किसी कातिल से कभी प्यार न मांगो

मेरा काम तो मुश्किल है। क्योंकि मैं टूटी हुई पांजेब से झनकार मांग रहा हूं। पांच हजार साल से यह पांजेब टूटती ही चली गयी है। कुछ बचा नहीं है। इस देश से ज्यादा रिक्त, आत्महीन इस पृथ्वी पर आज कोई भी नहीं ! बाईस सौ वर्ष की

लंबी गुलामी, और पांच हजार वर्ष की दकियानूसी--पांजेब बुरी तरह टूट गयी है ! मगर मैं उसी से झनकार मांग रहा हूं। कोशिश तो करनी है ! आशा तो रखनी है !

उभरेगा न धड़कन से कभी अब कोई नग्मा
टूटी हुई पांजेब से झनकार न मांगो

लेकिन मैं आशा नहीं छोड़ता हूं। मुझे तो लगता है, अभी भी नग्मा उठ सकता है। अभी भी धड़कन वापिस लौट सकती है। अभी भी टूटी पांजेब से झनकार उठ सकती है। कठिन तो बहुत है !

ये भी है गनीमत जो मिले कोई खरीदार. . . .

आज सत्य को लेने कौन राजी है ! आज सत्य को खरीदने कौन राजी है !

ये भी है गनीमत जो मिले कोई खरीदार
मिट जाओ मगर कीमते-ईसार न मांगो

मैं मिटने को तैयार हूं। मेरे साथ जो मिटने को तैयार हैं, वे ही मेरे संन्यासी हैं खरीदार को खोजना तो है ! खोजा जा सकता है। मैं निराशा में भरोसा नहीं करता।

सच बात पै मिलता है सदा जहर का प्याला. . . .
सच बात पै मिलता है सदा जहर का प्याला
जीना है तो फिर जुर्रते-इजहार न मांगो

जहर का प्याला तो संभव है। मिलेगा ! मगर सत्य के लिए जहर का प्याला भी पी लेना सौभाग्य है ! वे धन्यभागी हैं, जिन्होंने सत्य के लिए जहर का प्याला पी लिया है !

उस चीज का क्या जिक्र जो मुमकिन ही नहीं है
सहरा में कभी सायाये-दीवार न मांगो

मगर मैं वही कर रहा हूं। मैं अंधविश्वासियों से, पाखंडियों से, धर्म के झूठे ठेकेदारों से यही आशा कर रहा हूं जैसे कोई सहरा में दीवार खोज रहा हो कि उसकी छाया में बैठ सके।

सहरा में कभी सायाये-दीवार न मांगो
उस चीज का क्या जिक्र जो मुमकिन ही नहीं है

लेकिन मैंने अभी ऐसा नहीं माना कि वह चीज मुमकिन नहीं। अभी भी मुमकिन है। इस राष्ट्र की आत्मा पर कितनी ही राख जम गयी हो, मगर कहीं अंगारा अभी-भी मौजूद है। राख झड़ा देने की जरूरत है--और अंगारा फिर प्रगट हो सकता है ! और छोटी-सी चिनगारी भी हो तो पूरे जंगल में आग लगा दे सकती है। यह जंगल में आग लगाने का उपाय ही है मेरा संन्यास। ये वस्त्र वसंत के ही प्रतीक नहीं हैं, आग के भी प्रतीक हैं। ये अग्नि के भी प्रतीक हैं, ये आग्नेय हैं।

जब शीशमहल कोई तामीर हुआ होगा
दीवारों में दीवाने चुनवाये गये होंगे

तैयारी करनी जरूरी है। दीवाना होना है, दीवानगी का मजा लेना है, तो दीवारों में चुने जाने की तैयारी चाहिए।

जब इशरते-शाही को कुछ ठेस लगी होगी

और जब भी स्थापित स्वार्थों को कोई ठेस लगती है--

जब इशरते-शाही को कुछ ठेस लगी होगी

सूली पर कई सरमद लटकाये गये होंगे

तैयारी रखनी है, सरमद होने की,...गरदन कट सकती है! संन्यास एक अभियान है, एक अभीप्सा है इस देश को--और इस देश को ही नहीं, इस देश के माध्यम से सारे जगत को पुनरुज्जीवन देने की। कच्छ भी हमारा है, कैलिफोर्निया भी हमारा है; पंजाब भी हमारा है, और पाकिस्तान भी हमारा है--सारी पृथ्वी हमारी है। इसलिए, सुरेन्द्र, जगाना तो सबको है! मगर मुझे कहीं एक जगह तो बैठना होगा। लेकिन वहीं से किरणें फैलायी जा सकती हैं। सूरज को हर घर पर जाने की जरूरत भी नहीं है।

आज इतना ही।

८ अक्तूबर १९८०; श्री रजनीश आश्रम, पूना

सतां हि सत्य
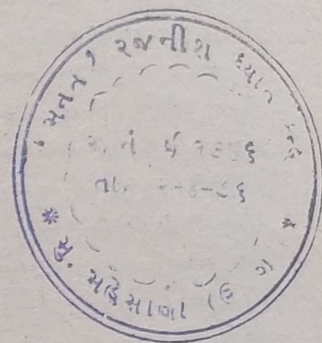
पहला प्रश्न : भगवान,

सत्यं परं परं सत्य।

सत्येन न स्वर्गाल्लोकाच् च्यवन्ते कदाचन।

सतां हि सत्य।

तस्मात्सत्ये रमन्ते।

अर्थात सत्य परम है, सर्वोत्कृष्ट है, और जो परम है वह सत्य है। जो सत्य का आश्रय लेते हैं वे स्वर्ग से, आत्मोत्कर्ष की स्थिति से च्युत नहीं होते। सत्पुरुषों का स्वरूप ही सत्यमय है। इसलिए वे सदा सत्य में ही रमण करते हैं।

भगवान, श्वेताश्वतर उपनिषद के इस सूत्र को हमारे लिए विशद रूप से खोलने की अनुकंपा करें।

चैतन्य कीर्ति,

सत्यं परं परं सत्य।

परम का अर्थ सर्वोत्कृष्ट नहीं होता। वैसा भाषान्तर भूल भरा है। सर्वोत्कृष्ट तो उसी श्रृंखला का हिस्सा है। सीढ़ी का आखिरी हिस्सा कहो, मगर सीढ़ी वही है। पहला पायदान भी सीढ़ी का है और सबसे ऊंचा पायदान भी सीढ़ी का है। सर्वोत्कृष्ट में गुणात्मक भेद नहीं होता, केवल परिमाणात्मक भेद होता है। परम का अर्थ सर्वोत्कृष्ट नहीं है।

परम का अर्थ है: जो श्रृंखलाओं और श्रेणियों का अतिक्रमण कर जाए। जिसे किसी श्रेणी में और किसी कोटि में रखने की सम्भावना न हो। जो स्वरूपतः अनिर्वचनीय है। जिसके सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कहा जा सकता। जिसके सम्बन्ध में कुछ भी कहो तो भूल हो जाएगी।

लाओत्सू का प्रसिद्ध वचन है : सत्य को बोला कि बोलते ही सत्य असत्य हो जाता है। बोलते ही। क्योंकि सत्य है विराट आकाश जैसा और शब्द बहुत छोटे हैं, आंगन से भी बहुत छोटे हैं, शब्दों में सत्य का आकाश कैसे समाए ?

और हमारी कोटियां हमारे मन के ही विभाजन हैं। इसे कहते पदार्थ, इसे कहते चेतना, लेकिन कौन करता है निर्णय ? कौन करता है भेद ? भेद करने की प्रक्रिया तो मन की है। और सत्य है मनातीत, मन के पार। इसलिए सत्य को मन की किसी कोटि में नहीं रखा जा सकता। सर्वोत्क्रुष्ट कहने की भूल में मत पड़ जाना। सबसे ऊंचा भी हो तो भी नीचे से ही जुड़ा होगा। वृक्ष कितना ही आकाश में ऊपर उठ जाए, तो भी उन्हीं जड़ों से जुड़ा होगा जो गहरी जमीन में चली गयी हैं।

फ्रेड्रिक नीत्शे का प्रसिद्ध वचन है कि अगर किसी वृक्ष को आकाश के तारे छूने हों, तो उसे अपनी जड़ें पाताल तक भेजनी होंगी। और वृक्ष एक है। पाताल तक गयी जड़ें, स्वर्ग को छूती हुई शाखाएं अलग-अलग नहीं हैं; एक ही जीवनधारा दोनों को जोड़े है। तुम्हारे पैर और तुम्हारा सिर अलग-अलग नहीं हैं। यह अलग-अलग होने की भ्रांति ने बड़ा पागलपन पैदा कर दिया।

मनस्मृति कहती है : ब्राह्मण ब्रह्मा के मुख से पैदा हुए। क्यों ? क्योंकि मुख सर्वोत्क्रुष्ट। और शूद्र ब्रह्मा के पैरों से पैदा हुए। क्योंकि पैर अत्यन्त निक्रुष्ट। वैश्य जंघाओं से पैदा हुए। शूद्रों से जरा ऊपर ! मगर फिर भी निम्न का ही अंग। क्योंकि आदमी को दो हिस्सों में बांट दिया। कमर के ऊपर जो है, वह श्रेष्ठ और कमर के नीचे जो है, अश्रेष्ठ। कैसा मजा है ! एक ही रक्त की धार बहती है, कहीं कोई विभाजन नहीं है, हड्डियां वही हैं, मांस वही है, रक्त वही है, सब जुड़ा हुआ है, सब संयुक्त है, लेकिन इसमें भी विभाजन कर दिया। फिर क्षत्रिय हैं, वे बाहुओं से पैदा हुए। और थोड़ा ऊपर। और फिर ब्राह्मण है, वह मुख से पैदा हुआ।

लेकिन शूद्र हो या ब्राह्मण, अगर पैर और मुंह से ही जुड़े हैं, तो उनमें कुछ गुणात्मक भेद नहीं है। गुणात्मक भेद हो नहीं सकता। क्योंकि वे एक ही शरीर के अंग हैं।

मेरी परिभाषा में तो सभी व्यक्ति शूद्र की तरह पैदा होते हैं। और जो व्यक्ति मन की सारी श्रृंखलाओं के पार चला जाता है, जो उस अज्ञात और अज्ञेय में प्रवेश कर जाता है जिसे कहने के लिए न कोई शब्द है, न कोई सिद्धान्त, जिसे कहने का कोई उपाय नहीं, जिसे जानने वाला गूंगा हो जाता है, गूंगे का गुड़ है जो, वही ब्राह्मण है। ब्राह्मण वह है : जिसने ब्रह्म को जाना। जिसने जीवन के परम सत्य को जाना, वह ब्राह्मण है। पैदा सभी शूद्र होते हैं। फिर कोई ध्यान की प्रक्रिया से समाधि तक पहुंच कर, मन के पार होकर ब्राह्मण हो जाता है। ब्राह्मण होना उपलब्धि है। जन्म से कोई ब्राह्मण नहीं होता है।

यह सूत्र प्यारा है :

सत्यं परं. . . .

सत्य परम है। मगर फिर याद दिला दूं, तुमने परम का अर्थ किया है : सर्वोत्क्रुष्ट। नहीं, वह तो अहंकार की ही भाषा है। सर्वोत्क्रुष्ट ! सबसे ऊपर। तो जो सबसे ऊपर है, वह किसी को नीचे दबाएगा, वह किसी की छाती पर चढ़ेगा।

मैं कल ही श्री मोरारजी देसाई का एक वक्तव्य देख रहा था। किसी ने उनसे पूछा एक पत्रकार सम्मेलन में कि यदि लोग आपसे कहें पुनः प्रधानमंत्री हो जाने के लिए, तो आप राजी होंगे ? उन्होंने कहा, निश्चय ही ! प्रधानमंत्री तो क्या, अगर लोग मुझसे गधे पर बैठने को कहें तो भी मैं राजी हो जाऊंगा। मैं थोड़े सोच-विचार में पड़ गया। लोग कौन हैं ? पहले गधे से भी तो पूछो ! गधा भी इनको बिठालने को राजी होगा !

और तब मुझे याद आया--

सेठ चंदूलाल का बेटा उनसे पूछ रहा था, पापा, दूल्हा को लोग घोड़े पर क्यों बिठालते हैं, गधे पर क्यों नहीं बिठालते ? तो चंदूलाल ने कहा, बेटा, घोड़े पर इसलिए बिठालते हैं ताकि पता चलता रहे कौन दूल्हा है और कौन घोड़ा है। गधे पर बिठाल दें तो कैसे पता चलेगा कौन दूल्हा है, कौन गधा है ? वरमाला किसके गले में पहनाएगी ? वधू बड़ी मुश्किल में पड़ जाएगी, किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाएगी। एक गधे पर दूसरा गधा चढ़ा बैठा है ! इसलिए घोड़े पर बिठालते हैं।

ये मोरारजी देसाई गधे पर बैठने को राजी हैं। मगर कोई गधा इनको बिठालने को राजी है ? और लोग कौन हैं, जो इनको कहें कि तुम गधे पर बैठ जाओ। गधे का हक सिर्फ गधे को है। मगर कोई गधा इतना गधा नहीं है कि इनको बिठालने को राजी हो जाए। मगर क्या आतुरता है किसी के ऊपर बैठने की ! चलो, गधा ही सही, मगर ऊपर बैठ जाएं !

ऊपर बैठने की जो आकांक्षा है, वह अहंकार है। सत्य और अहंकार का कोई संबंध नहीं। जहां अहंकार गिर जाता है, वहां सत्य है। जब तक तुम हो, तब तक सत्य नहीं। जब तुम नहीं हो, तब सत्य है। तुम्हारी शून्यता की सुगंध सत्य है। तुम्हारी राख पर खिलता है फूल सत्य का। तुम खाद बन जाते हो। तब, केवल तब ही सत्य की अनुभूति शुरू होती है। जब तक तुम हो, तब तक सत्य के सम्बन्ध में विचार कर सकते हो, लेकिन सत्य को न जान पाओगे। और सत्य के संबंध में कितना ही जानो, वह सत्य को जानना नहीं है। कोई लाख जान ले प्रेम के सम्बन्ध में, अगर प्रेम का नाद उसके प्राणों में न छिड़ा हो, तो सारे शास्त्र पढ़ डाले प्रेम के संबंध में, फिर भी प्रेम से वंचित ही रह जाएगा। कोई प्रकाश के सम्बन्ध में सब पढ़ ले, सब गुन ले, मगर अगर आंखें न हों उसके पास, या आंखें भी हों और बंद हों, तो प्रकाश को न जान सकेगा।

इस भेद को ख्याल में रखना, प्रकाश को जानना और प्रकाश के सम्बन्ध में जानना दो अलग बातें हैं। प्रकाश के सम्बन्ध में जानना दर्शनशास्त्र है और प्रकाश को जानना : धर्म।

सत्य के सम्बन्ध में जाना जा सकता है। बहुत जाना जा सकता है। सारे विश्व के पुस्तकालय भरे पड़े हैं, पटे पड़े हैं। मगर वह सत्य को जानने की व्यवस्था नहीं है। सत्य को जानने की प्रक्रिया तो ठीक उलटी है। सब कोटियां तोड़ देनी होंगी, सब शृंखलाएं विसर्जित कर देनी होंगी, सारी धारणाओं को नमस्कार कर लेना होगा—आखिरी नमस्कार ! हिंदू की धारणा, मुसलमान की, ईसाई की, जैन की, बौद्ध की, सिक्ख की, पारसी की, सारी धारणाओं को विदा कर देना होगा। क्योंकि जब तक तुम्हारी धारणाएं हैं, जब तक तुम्हारे पक्षपात हैं, जब तक तुम कुछ मान कर चल रहे हो, तब तक तुम उसे न जान सकोगे जो है। तुम्हारी मान्यता उस पर आरोपित हो जाएगी। तुम्हारी आंखों पर चश्मा लगा है तो उसका रंग तुम्हें भ्रांति देगा क्योंकि उसका रंग तुम्हारे चारों तरफ हावी हो जाएगा। और क्या हैं हिंदू होना और मुसलमान होना और जैन होना ? चश्मे हैं। अलग-अलग रंग के। और जिस रंग से तुम देखोगे, वही रंग सारे अस्तित्व का दिखाई पड़ने लगेगा।

अस्तित्व को देखना हो तो चश्मे उतार देना जरूरी है। शास्त्रों के बोझ से मुक्त हो जाना जरूरी है। और जब तुम्हारे भीतर कोई भी ज्ञान नहीं रह जाता तब निर्दोषता का जन्म होता है। तब तुम्हारे भीतर वही हृदय होता है, जो तुम बच्चे की तरह लेकर आए थे। वही सरलता, वही उत्सुकता, वही जिज्ञासा, वही जानने की आतुरता।

पंडित में जानने की आतुरता नहीं होती। वह तो जाने ही बैठा है !

एक मित्र ने प्रश्न पूछा है . . . प्रमोद पंडित उनका नाम है . . . कि आपको समझना इतना कठिन क्यों है ? मुझे समझना कठिन नहीं है, मैं तो बहुत सीधी-सादी भाषा बोल रहा हूं, लेकिन वह जो प्रमोद के साथ 'पंडित' जुड़ा है उस 'पंडित' ने उपद्रव कर दिया है। वह 'पंडित' नहीं समझने देगा। पांडित्य ने कभी किसी को नहीं समझने दिया। जीसस को किसने सूली पर चढ़ाया ? पंडितों ने। यहूदी धर्म के पंडित थे वे। पुरोहित थे। किसने मंसूर के हाथ-पैर काटे, गर्दन काटी ? मुसलमान पंडितों ने। मौलवियों ने, इमामों ने, अयातुल्लाओं ने। वे उनके पंडित थे। मंसूर से चूक गये, जीसस से चूक गये। बुद्ध को किसने इनकार किया इस देश में इस? देश से कैसे बुद्ध की अद्‌भुत सुगंध तिरोहित हो गयी ? पंडितों का जाल ! उनके बर्दाश्त के बाहर हो गया।

और कारण है उनके बर्दाश्त के बाहर होने का। पंडित का एक स्वार्थ है, बहुत गहरा स्वार्थ है। उसका ज्ञान खतरे में है। अगर वह बुद्धों की सुने, तो उसे पहली तो बात यह करनी होगी कि ज्ञान को छोड़ने का साहस जुटाना होगा। और ज्ञान को

छोड़ना यूं है जैसे कि कोई उससे प्राण छोड़ने को कह रहा हो। वही तो उसकी सम्पदा है। वही उसकी धरोहर है। उसी के बल पर तो उसके अहंकार में सजावट है, शृंगार है। वही तो उसका आभूषण है। वही तो है उसके पास, और तो कुछ भी नहीं है। वह शास्त्रों का बोझ ही तो उसे भ्रम दे रहा है—जानने का।

लेकिन जानना बड़ी और बात है, जानने का भ्रम और।

अज्ञान से आदमी नहीं भटकता इतना, जितना जानने के भ्रम से भटक जाता है। क्योंकि अज्ञानी कम-से-कम इतना तो अनुभव करता है कि मुझे पता नहीं। इतनी तो उसमें प्रामाणिकता होती है कि मुझे पता नहीं। लेकिन पंडित में यह प्रामाणिकता भी नहीं होती। पता तो नहीं है, मगर उसे ख्याल होता है मुझे पता है। उसने बिना जाने मान लिया है कि जान लिया। अब कैसे जानेगा ? उसके जानने की दीवार बीच में खड़ी हो गयी। ज्ञान से नहीं जाना जाता सत्य, सत्य ध्यान से जाना जाता है। और ध्यान का अर्थ होता है : मन का अतिक्रमण। मनातीत हो जाना।

नानक ने उसे अ-मनी दशा कहा है। मन से मुक्त हो जाना। नीचा और ऊंचा, ऐसा और वैसा, ये सब मन के ही खेल हैं। जहां मन बिलकुल चुप हो गया, जहां एकदम सन्नाटा छा गया, वहां सत्य का अवतरण होता है। सत्यं परं परं सत्य। और तब तुम जानते हो पहली बार विराट को। तब तुम जानते हो पहली बार उसको, जो है। वह निश्चित ही परम है।

परम का अर्थ : उसे जानने वाला सब जान लिया जो जानने योग्य है। परम का अर्थ : उसे जिसने पी लिया, अमृत पी लिया। परम का अर्थ : उसने परमात्मा को जान लिया, उसने आत्मा की आत्यन्तिक सुगन्ध पहचान ली। उस सुगन्ध के जीवन में आ जाते ही क्रान्ति हो जाती है। उस क्रान्ति को ही स्वर्ग कहते हैं।

स्वर्ग कोई भौगोलिक अवस्था नहीं है।

सत्येन न स्वर्गाल्लोकाच् च्यवन्ते कदाचन।

जिसने सत्य को जाना, जिसने सत्य को जीआ, वह स्वर्ग में प्रविष्ट हो गया। और ऐसे स्वर्ग में, जहां से कोई पतन नहीं होता। जहां से कभी कोई गिरता नहीं।

तुम जिस स्वर्ग की बातें करते हो, वहां से तो लोग गिरते हैं। वहां तो वही भय है; वहां तो वही राजनीति है। तुम्हारे पुराण कथाओं से भरे पड़े हुए हैं। वे सब कथाएं झूठ हैं। झूठ इसलिए हैं कि जिस स्वर्ग की बात की गयी है, वह भौगोलिक है। और जिस स्वर्ग की बात की गयी है, वह वह स्वर्ग नहीं है जिसकी यह उपनिषद चर्चा कर रहा है। नहीं तो इन्द्र को क्या भय हो सकता है ? कोई ऋषि, कोई मुनि ध्यान करे, समाधि के निकट पहुंचने लगे, तो इन्द्र का आसन क्यों डावांडोल हो जाता है ? इन्द्र को क्या भय होने लगता है ? क्या घबड़ाहट होने लगती है ? घबड़ाहट होती है, पुराण कहते हैं, कि कहीं मेरा सिंहासन न छिन जाए। सत्य कहीं छिना है ! और जो छिन जाए,

वह सत्य नहीं है। जो छिन सकता है, वह छिन ही गया। उसका कोई मूल्य नहीं है, वह दो कौड़ी का है। तुमने तिनके का सहारा पकड़ा है। तुम सोच रहे हो कि तुम बच जाओगे। तुम भी डूबोगे और तुम्हारे साथ तिनका भी डूबेगा। तिनके को पकड़ कर कोई बचा है? मगर कहावत है : डूबते को तिनके का सहारा। आशा लगा रखता है। तिनके ही से आशा लगा लेता है। तिनके को ही पकड़ लेता है। आंख बंद कर लेता है कि दिखाई न पड़े कि तिनका है।

ये तुम्हारे इन्द्र तुम्हारी कल्पनाएं हैं। ये तुम्हारे देवी-देवता तुम्हारी कल्पनाएं हैं। यह तुम्हारा स्वर्ग तुम्हारी अधूरी आकांक्षाओं का प्रक्षेपण है। जो तुम वहां नहीं पूरा कर पाए हो--चाहा तो था कर लेना पूरा, मगर नहीं पूरा कर पाए। क्योंकि जिंदगी में सभी इच्छाएं कैसे पूरी हों? इच्छाएं अनंत हैं और जीवन छोटा-सा। यह सत्तर साल की छोटी-सी जिंदगी और इच्छाओं का तो कोई अंत ही नहीं। और एक-एक इच्छा भी दुष्पूर है। और अनंत इच्छाएं! बहुत कुछ अधूरा रह जाता है। सभी कुछ अधूरा रह जाता है। हर आदमी अधूरा ही मर जाता है।--तो अब इस अधूरी इच्छाओं के लिए कुछ तो आशा चाहिए, कि आगे कहीं पूरी हो जाएंगी। स्वर्ग तुम्हारी इन्हीं अधूरी इच्छाओं की आधारशिला पर खड़ा है।

यहां तुमने सुंदर स्त्रियां चाही थीं, नहीं मिलीं। यहां तुमने सुंदर पुरुष चाहे थे, नहीं मिले। यहां सौन्दर्य मृगमरीचिका है। दूर से देखो तो स्त्री सुन्दर मालूम होती है, पुरुष सुन्दर मालूम होता है, पास आओ और फूल कांटों में बदल जाते हैं, यह समझ में भी नहीं आता! प्यारे-प्यारे ओंठ और कैसे-कैसे कठोर शब्द बोलने लगते हैं! प्यारी-प्यारी आंखें और कैसे दग्ध अंगारे बन जाती हैं! सुन्दर-सुन्दर देहें, किस तरह जंजीरें बन जाती हैं! यह तुम सबका अनुभव है। और तब आदमी आशा के फूलों की मालाएं पिरोने लगता है। स्वर्ग में अप्सराएं होंगी--उर्वशी होगी, मेनका होगी--स्वर्ण उनकी काया होगी, कंठ उनके कोकिलकंठ होंगे, उनके जीवन में सुवास-ही-सुवास होगी. . .पसीना भी नहीं बहता स्वर्ग में अप्सराओं को! अप्सराएं बूढ़ी भी नहीं होतीं!

मुल्ला नसरुद्दीन एक स्त्री के प्रेम में था और कहता था कि सदा तुझे प्रेम करूंगा। स्त्रियों को ऐसी बातों पर भरोसा नहीं आता। सुन लेती हैं, इनकार भी नहीं करतीं--क्योंकि इनकार करने का मन नहीं होता--मगर भरोसा नहीं आता। बहुत बार सुन चुकी तो एक दिन उसने पूछा कि तुमसे सच पूछती हूं, ईमान से कहो, खाओ परमात्मा की कसम, छाती पर हाथ रख कर कहो, सदा मुझे प्रेम करोगे? जब मैं बूढ़ी हो जाऊंगी, जीर्ण-जर्जर हो जाऊंगी, तब भी तुम मुझे प्रेम करोगे? जब मैं बीमार हो जाऊंगी, रुग्ण हो जाऊंगी, हड्डी-मांस सूखने लगेगा, तब भी तुम मुझे प्रेम करोगे? मुल्ला नसरुद्दीन थोड़ा झिझका। उसने नहीं सोचा था कि बात यहां तक पहुंचेगी।

उसने कहा, हां-हां, जरूर प्रेम करूंगा! और फिर कुछ सोच कर कहा, लेकिन एक बात बताओ, तुम अपनी मां जैसी तो नहीं मालूम होने लगोगी?

मां जैसी तो मालूम होने ही लगेगी। इतनी शर्त उसने बचा ली, कि इतना भर ख्याल रखना कि मां जैसी मालूम मत होने लगना!

लोग प्रेम में जो बातें कह देते हैं, फिर पीछे पछताते हैं। इस जगत में धन इकट्ठा हो जाता है, निर्धनता नहीं मिटती। महल बन जाते हैं, मगर मौत सब छीन लेती है। तो स्वर्ग की कल्पना की है। वह स्वर्ग और उपनिषद के ऋषियों का, द्रष्टाओं का स्वर्ग बड़े भिन्न हैं। तुम्हारे पुराण कपोलकल्पनाएं हैं। कचरा हैं। लेकिन उपनिषद मणि-माणिक्य हैं।

यह सूत्र कोहिनूर जैसा है। यह सूत्र कह रहा है : सत्य में जीना स्वर्ग है। यह बात और हो गयी। इसका भूगोल से नाता न रहा। यह बात आध्यात्मिक हो गयी। इसका बाहर से कोई सम्बन्ध न रहा, बात भीतर की हो गयी। सत्य में जीना स्वर्ग है। समाधि में जीना स्वर्ग है। मन के पार होना स्वर्ग है। और तुम्हारा स्वर्ग तो मन की ही आकांक्षाएं है, मन की ही एषणाएं है। वह तो हारे-थके मन की ही आखिरी आशा है कि चलो, यहां नहीं तो मौत के बाद। चलो, यहां नहीं तो आगे। कहीं-न-कहीं मिलेगा। और आदमी आशा के बल जीए चला जाता है। हजार तरह के दुख झेले चला जाता है। पहाड़ जैसे बोझ ढोए चला जाता है। आशा बनी रहती है कि आगे।

तुमने कहावत सुनी है कि आशावादी व्यक्ति जब रेलगाड़ी के पहाड़ों के बीच में खुदे हुए बोगदों में से देखता है, तो उसे दूर उस पार किनारे पर रोशनी दिखाई पड़ती है। और वह चल पड़ता है, मीलों लंबे अंधेरे बोगदे में, इस आशा में कि वह दूर जो रोशनी दिखाई पड़ रही है, अभी नहीं कल, कल नहीं परसों, परसों नहीं तो नरसों. . . .! और इसी आशा में तो हमने अनेक जन्मों की कथा गढ़ ली है। क्योंकि एक जन्म में तो भरोसा नहीं लगता कि यह बोगदा पार होगा, यह अंधेरा पार होगा। तो चौरासी करोड़ योनियों की हमने कल्पना की है। सोचो तुम जरा, चौरासी करोड़ योनियां! इसका मतलब यह है कि कभी-न-कभी तो यह अंधेरा पार होगा! कभी-न-कभी तो यह रात कटेगी, सहर होगी, सुबह होगी!

मगर अक्सर यह होता है कि अंधेरा तो कटता नहीं और वह जो प्रकाश बोगदे के उस किनारे पर दिखाई पड़ता है, वह किसी ट्रेन के आने का प्रकाश सिद्ध होता है। आ तो जाता है, मगर तुमको कुचलता हुआ निकल जाता है। तुम्हारी हड्डी-पसली तोड़ता हुआ निकल जाता है।

तुम्हारी सब आशाएं दुराशाएं सिद्ध होती हैं। तुम्हारी हर आशा हताशा में परिणित हो जाती है। मगर आदमी फिर नयी-नयी आशाएं संजो लेता है, फिर सोचने लगता है, फिर सपने देखने लगता है।

पुराणों में जिन स्वर्गों की चर्चाएं हैं, वे चाहे हिंदुओं के हों, चाहे मुसलमानों के, चाहे ईसाइयों के, वह सिर्फ मनुष्य की एषणाओं का ही विस्तार है। लेकिन उपनिषद जिस स्वर्ग की बात कह रहा है, वह बात ही और। सत्य में जीना स्वर्ग है। और निश्चित ही जिसने सत्य में जीना जान लिया, वहां से कोई कैसे च्युत हो सकता है? उस आलोक से, उस आनंद से, उस छंद से कोई कैसे नीचे गिर सकता है? वह संगीत मिला एक बार, तो मिला सदा को।

बुद्ध ने कहा है: दुख का कोई प्रारम्भ नहीं है, अंत है, और आनंद का प्रारम्भ है, अंत नहीं। बहुत गहरी बात कही! तुम्हारे दुख का कोई प्रारम्भ नहीं है, अनंत काल से तुम दुख भोग रहे हो। प्रारम्भ खोजने निकलोगे, मिलेगा नहीं। जैसा खोदते जाओगे, उतना और आगे, और आगे, पता चलेगा कि जड़ें और भी पीछे चली गयी हैं, और भी पीछे चली गयी हैं। दुख का कोई प्रारम्भ नहीं है, बुद्ध कहते हैं, लेकिन अंत है। चाहो तो अभी अंत हो जाए। चाहो तो यहीं अंत हो जाए। इसी क्षण अंत हो जाए। दुख का अंत है, क्योंकि मन के पार होने का उपाय है।

बुद्ध ने चार सत्य कहे हैं। पहला सत्य: दुख है। अधिकतर लोग तो इसको अंगीकार ही नहीं करते। इसको झुठलाते हैं, छिपाते हैं, दबाते हैं। तुम किसी से पूछो, कैसे हो? वह कहता है: बड़े मजे में हैं। और इसकी आंखों में देखो, इसके चेहरे पर देखो, कहीं कुछ मजा दिखाई पड़ता है! जो देखो वही मुसकरा कर कहता है: प्रभु की बड़ी कृपा है! सब ठीक-ठाक चल रहा है। तुम भी यही कहते हो। कहीं कुछ ठीक-ठाक नहीं चल रहा है! सारी पृथ्वी उदासी से भरी हुई है, दुख से भरी हुई है, नर्क बनी हुई है—और हर आदमी कह रहा है: सब ठीक-ठाक चल रहा है! प्रभु की बड़ी कृपा है! आनंद-ही-आनंद है! झूठ ही लोग बोल रहे हैं। एक दिखावा है। और दिखावे का भी कारण है। क्या सार है अपने घाव दूसरों के सामने प्रगट करने से? अपनी मवाद किसी के सामने उघाड़ने से सार क्या है? कौन बंटा लेगा? तो छुपाए ही रखो! मवाद है, घाव हैं, फूल ले आओ बाजार से खरीद कर, उनके ऊपर फूल सजा दो। लोगों को तो फूल दिखने दो।

तुम भी लोगों को देख कर मुसकुराते हो, वह भी मुसकुराते हैं, न तुम्हारे भीतर मुसकुराहट है, न उनके भीतर मुसकुराहट है। तुम्हारे भीतर भी आंसू भरे हैं और उनके भीतर भी आंसू भरे हैं। मगर एक चेहरा बना कर रखना पड़ता है। इसको लोग कहते हैं: शिष्टाचार, सभ्यता, संस्कृति। एक पाखंड बना कर रखना पड़ता है।

बुद्ध कहते हैं: पहले तो स्वीकार करो कि दुख है। क्योंकि अगर तुम दुख को स्वीकार ही न करोगे, तो फिर आगे तो यात्रा चलेगी ही नहीं।

फिर दूसरी बात बुद्ध कहते हैं: समझने की कोशिश करो कि दुख के कारण हैं। अकारण तो कोई दुख नहीं होता। मत टालो भाग्य पर! भाग्य तो बहाना है। कारण

से बचने का बहाना है। मत कहो विधाता ने लिख दिया है! मत कहो कि किसी और की जिम्मेवारी है। कारण हों तो तुम हो। कारण हैं तो तुम्हारे भीतर हैं, तुम्हारी मूर्च्छा में हैं। अब क्रोध करोगे तो दुख न होगा तो क्या होगा? और लोभ करोगे तो दुख न होगा तो और क्या होगा? दूसरों को दुख दोगे, सताओगे, तो क्या तुम सोचते हो तुम्हारे जीवन में सुख की वीणा बजेगी? तुम जो दूसरों को दोगे, वही तुम पर लौट आएगा। यह जगत तो प्रतिफलन करता है। यह जगत तो यूं है कि तुम जो इसे देते हो, उसी को हजार गुना करके लौटा देता है। सब तुम पर ही आ जाता है वापिस। जो गड्ढे तुम औरों के लिए खोदते हो, एक दिन सिद्ध होता है कि तुम्हारे लिए ही, तुम्हारी ही कब्रें बन जाती हैं।

तो कारण हैं।

लेकिन हम कारणों को भी बचाते हैं। पहले तो हम दुख है, यह मानने को राजी नहीं होते। अपने से भी छिपाते हैं, औरों से भी छिपाते हैं। यूं भ्रांति बनाए रखते हैं, ऐसा भरम बनाए रखते हैं कि सब ठीक है। भीतर आग जलती रहती है, ज्वालामुखी उबलता है और बाहर एक मुखौटा ओढ़े रखते हैं। फिर दूसरे अगर यह हम स्वीकार भी कर लें कि दुख है, तो हम सदा कारण दूसरों पर थोपते हैं। पति अगर दुखी है तो पत्नी के कारण। पत्नी अगर दुखी है तो पति के कारण। बाप अगर दुखी है तो बेटे के कारण। बेटा अगर दुखी है तो बाप के कारण।

मुल्ला नसरुद्दीन का बेटा फजलू परीक्षा में असफल हो गया सो घर से भाग गया। अखबारों में विज्ञापन निकलवाए: तुम्हारी मां दुखी हैं, तुम्हारे पिता दुखी हैं, बेटा घर लौट आओ! तुम्हारे बिना मर जाएंगे। मगर फजलू न लौटा सो न लौटा। आखिर फजलू की मां ने एक रामबाण विज्ञापन छपवाया। कि बेटा अब एकदम आ जाओ! तुम इसी डर से भाग गये हो कि परीक्षा में उतीर्ण नहीं हुए। अब घबड़ाओ मत; तुम्हें डर था कि तुम्हारे पापा मारेंगे-पीटेंगे, तुम्हारे पापा भी अपने डिपार्टमेंट की परीक्षा में असफल हो गये हैं—अब तुम घर आ जाओ! और फजलू उसी दिन घर आ गया।

एक-दूसरे से घबड़ाहट है! एक-दूसरे पर टाले हुए हैं! एक-दूसरे पर हटा रहे हैं!

और जो व्यक्ति कारण दूसरों पर छोड़ देता है, उसने फिर बचाव का उपाय खोज लिया। वह कहने लगा कि मैं करूं तो करूं क्या! समाज बुरा, समाज की व्यवस्था बुरी, यह परिवार का ढांचा बुरा, यह अर्थनीति बुरी, यह राजनीति बुरी। मैं अकेला आदमी इस भवसागर में फंसा हूं! कैसे हो छुटकारा? कूल दिखाई पड़ता नहीं, किनारे का कुछ पता नहीं। और हरेक जान लेने को तत्पर है।

यूं तुम बच जाते हो, मगर यह कुछ बचना न हुआ। यह अपने हाथ से फांसी लगा लेना हुआ। कारण तुम्हारे भीतर हैं।

इसलिए बुद्ध ने दूसरा आर्य-सत्य कहा--पहला : दुख है, और दूसरा कि दुख के कारण हैं, कारण तुम्हारे भीतर हैं। और तीसरा कारणों को काटने के उपाय हैं। हताश मत हो जाना! विधियां हैं, जिनसे कारण उखाड़े जा सकते हैं। एक बार पता चल जाए कि जड़ कहां है, तो गड्ढे खोदे जा सकते हैं, घास-पात उखाड़ी जा सकती है, काटी जा सकती है। उसी विधि का नाम धर्म है, ध्यान है, योग है, तंत्र है। अलग-अलग नाम हैं, मगर प्रक्रिया एक ही है। प्रक्रिया है : किसी भी तरह अपने को मन का साक्षी बना लेना। जैसे ही साक्षी तुम्हारे भीतर हुआ, अतिक्रमण हो जाता है। तुम परम अवस्था को उपलब्ध हो गये। और बुद्ध ने कहा : चौथा आर्य सत्य है कि कारण व्यर्थ नहीं हैं और उपाय भी व्यर्थ नहीं जाते, वह अवस्था भी है जहां दुख बिलकुल समाप्त हो जाता है, शून्य हो जाता है। वह परम आनंद की अवस्था भी है। उसका मैं गवाह हूं। बुद्ध ने कहा : उसका मैं गवाह हूं। मैंने जाना है, इसलिए तुमसे कहता हूं।

सत्य में जो जीएगा, उस जीवन से फिर गिरना असंभव है। सत्य में जो जीएगा, वह कैसे असत्य में गिर सकता है?

सतां हि सत्य।

और फिर सत्य क्या है? सत्पुरुषों का स्वरूप ही सत्य है। सतां हि सत्य। उनकी जो सत्ता है, वही सत्य है। सत्य कोई सिद्धांत नहीं, कोई निष्कर्ष नहीं, प्रबुद्ध-पुरुषों के भीतर जो आभा है, जो उनका अस्तित्व है, जो उनका स्वरूप है, उनके भीतर जो कलकल नाद हो रहा है, उनके चारों तरफ जो किरणें विर्कीर्ण हो रही हैं, जो गंध उड़ चली है, वही सत्य है। तो सत्य कुछ ऐसा नहीं है जैसे गणित के सत्य होते हैं कि दो और दो चार। सत्य कुछ ऐसा नहीं है जैसे विज्ञान के सत्य होते हैं, जिनको प्रयोग-शालाओं में प्रयोग करके पाया जाता है। सत्य तुम्हारे जीवन की आत्यंतिक अनुभूति है। तुम क्या हो, इसकी अनुभूति सत्य है। तुम्हारा स्वरूप क्या है, तुम्हारा वास्तविक होना क्या है, इस सत्य को न वेदों से पाया जा सकता है, न कुरानों से, न बाइबिलों से। इसे पाना हो तो अपने भीतर ही उस आखिरी गहराई में डुबकी मारनी जरूरी है। जिन खोजा तिन पाइयां। जिन्होंने खोजा, जरूर पाया है।

जिन खोजा तिन पाइयां गहरे पानी पैठ। कबीर ठीक कहते हैं। मगर बड़ी गहराई में बैठना होता है, ताकि तुम अपनी आधारभूमि को खोज लो, अपने स्वरूप को खोज लो। और तुम्हारे स्वरूप पर बहुत-सा कचरा लाद दिया है दूसरों ने, उस सबको काटना पड़ेगा, हटाना पड़ेगा। न-मालूम कितने पत्थर तुम्हारे ऊपर रख दिये हैं! तुम्हारा स्वरूप तो न-मालूम कहां खो गया है, पत्थर पर पत्थर रख दिये हैं। कि तुम हिन्दू हो! बच्चा पैदा हुआ नहीं कि जल्दी से इसका यज्ञोपवीत करो! बच्चा पैदा हुआ नहीं कि इसका खतना करो, इसको मुसलमान बनाओ! बच्चा पैदा हुआ नहीं कि इसका बपतिस्मा करो, इसको ईसाई बनाओ। रखने लगे लोग पत्थर! चढ़ाने

लगे चट्टानें तुम्हारे ऊपर! तुमसे कहने लगे, तुम ईसाई हो।

जब भी कोई बच्चा पैदा होता है, न तो ईसाई होता है, न हिन्दू होता है, न जैन होता है। बच्चा तो सिर्फ एक शुद्ध चेतना, एक कोरी किताब की तरह पैदा होता है। मगर लोग बैठे हैं स्याही में अपनी-अपनी कलमें डुबोए हुए कि इधर बच्चा पैदा हो कि वे उसकी कोरी किताब पर लिखावट शुरू करें! कोई लिख देगा गीता को, कोई लिख देगा कुरान को, कोई लिख देगा बाइबिल को। कर दी खराब उसकी कोरी किताब! उसे मौका ही न दिया कि वह अपने को पहचान लेता। इसके पहले कि वह अपने को पहचानता, तुमने उसके ऊपर धारणाएं थोप दीं। कि तुम भारतीय हो, कि तुम चीनी हो, कि तुम जर्मन हो। तुम लादने लगे, कि तुम ब्राह्मण हो, कि तुम क्षत्रिय हो, कि तुम वैश्य हो, कि शूद्र हो। और फिर वर्गों में वर्ग बंटे हुए हैं। शूद्र भी सभी अपने को समान नहीं मानते। शूद्रों में भी नीचे शूद्र हैं और ऊंचे शूद्र हैं।

मैं एक चमारों की सभा में बोलने गया। रैदास की वह जयन्ती मनाते थे, तो उन्होंने मुझसे कहा कि आप आएं, रैदास पर कुछ कहें। तो मैं गया। वहां देखा कि बस थोड़े-से चमार इकट्ठे हैं। मैंने कहा कि इस गांव में इतने शूद्र हैं--भंगी हैं, कुम्हार हैं--वे सब कहां हैं? चमारों ने कहा, क्या आप कहते हैं! हम भंगियों के साथ बैठें! मैंने कहा, फिर मैंने गलती की जो मैं तुम्हारे साथ बैठा। मुझे यह पता नहीं था कि तुम्हारे भीतर भी वर्ग हैं, श्रेणियां हैं। चमार अपने को ऊंचा मानता है भंगी से। भंगी के साथ कैसे बैठ सकता है! उन्होंने ब्राह्मणों को निमंत्रण दिया था, मगर ब्राह्मण कैसे आएं? मैंने उनसे पूछा कि तुमने मुझे किसलिए बुलाया? उन्होंने कहा, हमने आपको इसलिए बुलाया कि आपको सुनने वाले इतने लोग हैं, वे सब कम-से-कम आएंगे, मगर वे कोई नहीं आए। मैंने कहा, वे तुम्हारे साथ कैसे बैठें? जब तुम भंगियों साथ बैठने को राजी नहीं हो, तो हद हो गयी, यह मुझे पता नहीं था अब तक कि शूद्रों में भी श्रेणियां हैं! उसमें भी ऊंचे शूद्र हैं, नीचे शूद्र हैं।

आदमी सिर्फ आदमी है। क्यों उस पर भूगोल लादते हो? क्यों इतिहास लादते हो? क्यों उस पर जमाने भर की गंदगियां लादते हो? मगर ये लाद दी गयी हैं। और जिस व्यक्ति को खोजना हो, अपने स्वरूप को, उसे इस सारी गंदगी को काटना होगा। इस कूड़े-करकट को अलग करना होगा--इसको आग लगा देनी होगी! इतना साहस न हो, तो कोई सत्य को उपलब्ध नहीं हो सकता है।

सतां हि सत्य। तुम्हारा स्वरूप सत्य है। और स्वरूप के ऊपर बहुत पर्तें जम गयी हैं, बहुत धूल जम गयी है। दर्पण पर इतनी धूल जम गयी है कि दर्पण का पता ही नहीं चलता। यह सारी दर्पण साफ करनी है।

कष्टपूर्ण है।

क्योंकि किसी से भी कहो कि तुम्हारा हिन्दू होना बाधा है स्वरूप को जानने,

में, या मुसलमान होना, या जैन होना, वह झगड़ा करने को तैयार है। वह मरने-मारने को तैयार है। क्योंकि वह यह नहीं सोचता कि ये थोपी गयी चीजें हैं, यह उसका स्वरूप नहीं है, ये विकृतियां हैं, यह धार्मिकता नहीं है। धार्मिक व्यक्ति सिर्फ धार्मिक होता है। उसमें कोई विशेषण नहीं होते। धार्मिक व्यक्ति की कोई राष्ट्रीयता नहीं होती। धार्मिक व्यक्ति न गोरा मानता अपने को, न काला मानता। क्योंकि वह अपने को शरीर ही नहीं मानता। वह अपने को चेतना मानता है। धार्मिक व्यक्ति न अपने को पुरुष समझता, न स्त्री। क्योंकि चेतना कहीं स्त्री और पुरुष होती है! आत्मा भी कहीं स्त्री और पुरुष होती है!

मगर क्या-क्या पागलपन हैं! जैनों की धारणा है कि स्त्री की देह से मोक्ष नहीं। मोक्ष क्या देह का होता है? देह तो यहीं पड़ी रह जाती है--पुरुष की हो कि स्त्री की हो। मोक्ष अगर होगा तो आत्मा का होगा। और मोक्ष अगर होगा तो साक्षीभाव में होगा। तो पुरुष की आत्मा देखेगी कि मेरे चारों तरफ पुरुष का शरीर है और स्त्री की आत्मा देखेगी कि मेरे चारों तरफ स्त्री का शरीर है। मगर आत्मा थोड़े ही स्त्री है! आत्मा तो साक्षी है। दोनों की। एक-सी साक्षी है। हां, गोरे आदमी की आत्मा देखेगी कि मेरे चारों तरफ गोरी चमड़ी है और काले आदमी की देखेगी कि मेरे चारों तरफ काली चमड़ी है, लेकिन आत्मा चमड़ी नहीं है। लेकिन हम बस न-मालूम किन-किन बातों में आत्मा को गंवा बैठे हैं! धन गंवा दिया है, कंकड़-पत्थर इकट्ठे कर लिये हैं। स्वरूप को खो बैठे हैं, शास्त्रों से लद गये हैं। सत्य का तो कोई बोध नहीं है, लेकिन सिद्धांतों में बड़े हम प्रवीण हो गये हैं।

सतां हि सत्य।
और सत्य है तुम्हारा स्वरूप।
तस्मात्सत्ये रमन्ते।

इसलिए रमो सत्य में। इसलिए जीओ सत्य में। और सत्य में जो जीता है, वही संत है। इसलिए मैं तुमसे यह कहना चाहता हूं कि अगर संत कहे कि मैं हिन्दू हूं, तो समझ लेना कि संत नहीं है। अगर संत कहे कि मैं जैन हूं, तो समझ लेना कि संत नहीं है। संत तो वही है जो सत्य में जीता है। और सत्य न हिन्दू है, न मुसलमान है; न जैन है, न ईसाई है। सत्य न तो मंदिरों में है, न गिरजों में, न गुरुद्वारों में। सत्य तुम्हारे भीतर है। सत्य आत्मान्वेषण है।

यह सूत्र प्यारा है! यह सूत्र जीने योग्य है!

दूसरा प्रश्न: भगवान, मैं तो विवाह में फंस कर नर्क भोग रहा हूं। आप विवाह से कैसे बच गये? यह भी बताएं कि क्या मेरे लिए अब भी बचने का कोई उपाय है? मैं अपना नाम नहीं लिख रहा हूं, क्योंकि मेरी पत्नी भी यहीं मौजूद है। पर आप उत्तर जरूर देना! थोड़ा लिखा, ज्यादा समझना।

थोड़ा लिखा, वह तो ज्यादा समझूंगा, जो नहीं लिखा, वह भी समझ लिया।

पहली तो बात तुम पूछते हो: आप विवाह से कैसे बच सके? अरे, जाको राखै साइयां मार सकै न कोय! और तुम पूछ रहे हो: मैं विवाह में फंस कर नर्क भोग रहा हूं। नहीं, तुमको नर्क भोगना होगा, इसलिए विवाह में फंसे होओगे। उल्टी बातें न करो! तुम दोष दे रहे हो विवाह को। जैसे कि विवाह ने तुम्हें कर लिया। अरे, तुमने विवाह किया है! तुम्हीं घोड़े पर चढ़े होओगे, मोर-मुकुट बांध कर! देखते हो, मोरारजी देसाई गधे तक पर चढ़ने को तैयार हैं! तुम घोड़े पर चढ़े होओगे, दूल्हा राजा बने होओगे! क्या मजा है, एक दिन के लिए राजा बना देते हैं आदमी को, फिर जिंदगी भर का गुलाम--जोरू का गुलाम! और क्या गहरी तुम्हारी गुलामी है कि अपना नाम भी नहीं लिख रहे हो! क्योंकि पत्नी यहीं मौजूद है।

मैं समझा तुम्हारी तकलीफ!

पति का अर्थ ही है: जिसकी इति हो गयी। कि जिसमें अब कुछ न बचा। और पत्नी का मतलब है: सदा रहे तनी-तनी। वह बैठी होगी तुम्हारे बगल में और तनी-तनी। और तुम यह मत समझना कि तुमने नाम नहीं लिखा है तो वह नहीं पहचानेगी। अरे, जब तुमने कम लिखा और मैं ज्यादा समझ रहा हूं, तो तुम्हारी पत्नी तुम्हारा नाम न पहचान लेगी? नहीं लिखा पहचान लेगी। अभी भी हुद्दे मार रही होगी तुमको! कि घर चलो, घर चल कर दिखाऊंगी तुम्हें!

मैंने सुना है, एक जोड़ा मर कर स्वर्ग के द्वार पर पहुंचा--और भी बहुत लोग मर कर पहुंचे थे। रोज ही इतने लोग मरते हैं कि भीड़ लगी रहती है वहां। स्वर्ग के दरवाजे पर दो तख्तियां लगी थीं। एक तख्ती लगी थी कि जोरू के गुलाम यहां से प्रवेश करें। और जो अपनी जोरू के गुलाम नहीं हैं, उनके लिए एक दूसरा दरवाजा था; वे यहां से प्रवेश करें। सारी भीड़ वहीं थी, जोरू के गुलाम जहां तख्ती लगी थी। सिर्फ एक आदमी, एक दुबला-पतला सा आदमी--शायद तुम्हीं रहे होओ--डरा-डरा उस दरवाजे पर खड़ा था--अकेला ही--जहां से उनके लिए प्रवेश था जो जोरू के गुलाम नहीं हैं। जो राजदूत पहरा दे रहा था--रहे होंगे हमारे संत महराज जैसे--उसने आकर उस आदमी को एक धक्का दिया और कहा, तू यहां क्या कर रहा है? तू समझता है तू जोरू का गुलाम नहीं! चल, लग 'क्यू' में, जहां बड़े-बड़े पहलवान खड़े हैं! तू यहां क्या कर रहा है? उसने कहा, मैं क्या करूं? मैं यहां से नहीं हट सकता! राजदूत ने कहा, क्यों नहीं हट सकता, क्या तकलीफ है तुझे? उसने कहा, मेरी पत्नी ने कहा कि तू यहीं खड़ा रह! भगवान भी मुझे हटाएं तो मैं हटने वाला नहीं हूं, जब तक मेरी पत्नी न कहेगी। उसने कहा है, तू इस दरवाजे से

प्रवेश कर। मैं इसी से प्रवेश करूंगा। मैं कभी उसकी आज्ञा के खिलाफ नहीं जा सकता।

तुम कहते हो, मैं विवाह में फंस कर नर्क भोग रहा हूं। फंसे क्यों? नर्क भोगना होगा, इसलिए। और नर्क भोग रहे हो, क्योंकि भोगना चाहते हो। जरा गौर से अपने भीतर कारण खोजो। कारण दूसरे पर मत टालो! और तुम अकेले ही थोड़े भोग रहे होओगे नर्क, तुम्हारी पत्नी भी भोग रही होगी। क्योंकि नारकीय प्राणियों के साथ कोई स्वर्ग भोग सकता है? जब तुम नर्क में हो, तो तुम्हारी पत्नी क्या स्वर्ग में हो सकती है? इतना फासला हो तो तुम निकल ही न भागो। वह भी तुम्हारे बगल में ही बैठी है—यहां भी बैठी है! तो साथ-ही-साथ भोग रहे होओगे। एक-दूसरे का नर्क बना रहे होओगे, यह हो सकता है। नहीं तो किसी भी क्षण नर्क के बाहर हुआ जा सकता है। कोई रोकने वाला नहीं है। क्या बेचारी पत्नी की हैसियत हो सकती है!

पत्नी से पति इतने डरे क्यों होते हैं? डरने का कारण उनके ही भीतर होता है। कारण अपने भीतर खोजने की कोशिश करो! और तुम तत्क्षण पहचान लोगे कि कहां अड़चन है। तुम पत्नी के सामने एक रूप प्रगट कर रहे हो अपना, जो तुम्हारा असली रूप नहीं है। इससे तुम्हें डर है। झूठ हमेशा डर लाता है। असत्य के साथ भय आएगा ही।

सेठ चंदूलाल एक रात सपने में जोर से बोल गये: कमला! प्यारी कमला!! और पत्नी का नाम है: निर्मला। और पत्नियां तो नींद में भी सोतीं नहीं। ध्यान तो रखती हैं कि पति क्या सपना देख रहा है। सपने में पता नहीं कुछ गड़बड़ कर रहा हो। कमला! यह कमला कौन है! उसने उसी वक्त हिलाया चंदूलाल को कि कौन है यह कमला? यह कलमुंही कौन है? नींद में थे, एकदम घबड़ा भी गये! कि अचानक कमला का मामला कहां से आ गया? उन्हें तो पता ही नहीं कि सपने में क्या बर्रा रहे थे! उसने कहा, मैं कुछ समझा नहीं। कि जरा मुझे हाथ-मुंह तो धो लेने दो, बात क्या है? कौन कमला? उसने कहा, अभी तुमने नींद में दो दफे कहा, कमला, कमला। तब तक उन्होंने अपना हिसाब बिठा लिया था। उन्होंने कहा, अरे कुछ भी नहीं है, एक घोड़ी का नाम है—रेसकोर्स की एक घोड़ी का नाम है कमला, उस पर मैंने दांव लगाया है। उसकी याद आ गयी होगी।

मगर यूं कोई पत्नी को धोखा तो दे नहीं सकता। दोपहर को जब सेठ चंदूलाल दुकान पर बैठे थे, पत्नी का फोन आया कि घर आ जाओ जल्दी, क्योंकि वह घोड़ी तुमसे मिलने आयी है। और ऐसी घोड़ी मैंने पहले नहीं देखी, बिलकुल स्त्री जैसी मालूम होती है!

कहां तक बचोगे?

जहां झूठ बोले, जहां असत्य किया, वहां भय आया। सत्य हो तो भय नहीं है।

सत्य अभय लाता है। तुम भयभीत हो अपनी पत्नी से इतने ज्यादा कि नाम नहीं लिख सकते! यह तो हद हो गयी! अरे कच्छ केसरी, अचल गच्छाधिपति, जोरू के गुलाम सूरीश्वर महराज, कुछ तो अपने को समादर दो! कुछ तो अपनी आत्मप्रतिष्ठा रखो! ऐसे क्या बिलकुल भीगी बिल्ली बने हो! कारण खोजो कि इतना भय क्या है? क्यों इतने डरे हुए हो?

सेठ चंदूलाल के बेटे ने पूछा, पापा, यह बकरा में-में क्यों करता है? चंदूलाल ने कहा, बेटा, इसे कसाइयों ने पकड़ लिया है। दो-चार घड़ी का मेहमान है यह। इसको झटका देकर मार कर इसका मांस बाजार में बेचा जाएगा। बेटा बोला, बस इतनी-सी बात के पीछे में-में कर रहा है! अरे, मैं तो समझा कि लोग इसका विवाह करने ले जा रहे हैं!

चंदूलाल का बेटा देखता है अपने बाप की दुर्गति दिन-रात, स्वभावतः उसने सोचा कि इसका भी विवाह हो रहा है दिखता है। जो हमारे बाप पर गुजर रही है, वही इस पर गुजर रही है।

तुम्हारे बच्चे भी जानते हैं।

एक घर में बच्चों में शांति रहे, सुव्यवस्था रहे तो बच्चों की मां ने कहा सबको इकट्ठा करके कि सुनो, ... भारतीय परिवार, कोई डेढ़ दर्जन बच्चे! एक ही चीज का उत्पादन हम जानते हैं: बच्चे! ...सबको इकट्ठा कर लिया। सबको वह एक जैसे कपड़े पहनाती थी। कई दफा उससे पूछा भी लोगों ने कि सबको एक जैसे कपड़े क्यों पहनाती है? पहले उसके तीन-चार ही बच्चे थे, उनको भी एक जैसे कपड़े पहनाती थी। तब वह कहती थी कि कहीं खो न जाएं, इसलिए। और अब दस-पन्द्रह बच्चे हैं, अब भी एक से कपड़े पहनाती है तो लोग पूछते हैं: अब क्यों? तो वह कहती है कि इनमें कोई दूसरा आकर न मिल जाए! नहीं तो पता ही नहीं चलेगा, महीने-दो महीने तो पता ही नहीं चलेगा। इतनी भीड़-भड़क्का है! तो घर की तुम हालत समझ सकते हो!

सबको इकट्ठा करके उसने कहा कि अब मैंने एक नियम बनाया है कि हर सप्ताह पुरस्कार बांटा जाएगा। जो सबसे ज्यादा आज्ञाकारी होगा, उसको पुरस्कार मिलेगा। सब बच्चों ने कहा कि हमें इसमें कोई रस नहीं है। उसने कहा, क्यों? बच्चों ने कहा कि हमें मालूम है कि पुरस्कार किसको मिलेगा। पिता जी को मिलेगा। आज्ञाकारी होना है, यह हमेशा पुरस्कार पिता जी को जाएगा, इसलिए हमें इसमें कोई रस नहीं है।

क्यों इतने तुम डरे हुए हो? इतना भय का क्या कारण है? आखिर पत्नी कोई जंगली जानवर तो नहीं है! कारण तुम्हारे भीतर होंगे। तुम पत्नी के सामने सरलता से अपनी प्रामाणिकता की उद्घोषणा करो! तुम जैसे हो वैसे ही खोल कर अपने को

रख दो ! एक दफा झंझट होगी । तुम आज यहां आकर भी अपना नाम नहीं लिख रहे हो ! और पत्नी तो पता लगा लेगी ! उसे तो पता लग ही गया होगा कि कौन सज्जन हैं ये !

'एक जैसी सैकड़ों भैंसों में से तुमने अपनी भैंस को कैसे पहचान लिया ?'––जज ने एक फरियादी महिला से पूछा ।

उसकी भैंस खो गयी थी और उसने सैकड़ों भैंसों में से अपनी भैंस को खोज लिया।

वह महिला बोली, 'इसमें कौन-सी बड़ी बात है, मालिक ! अरे, आपकी कचहरी में सैकड़ों काले कोट पहने हुए वकील खड़े हैं, भैंसों जैसे ही लगते हैं, लेकिन मैं अपने वकील को फिर भी पहचान ही रही हूं या नहीं ? इसी तरह अपनी भैंस को मैंने पहचान लिया ।'

तुम्हारी पत्नी तुम्हें पहचानती होगी । अरे, अपनी भैंस को कौन नहीं पहचानता ! तुम नाम लिख ही देते तो कम-से-कम ईमानदारी शुरू तो होती–– यहीं से ईमानदारी शुरू करो ! और नहीं तो बात तो पकड़ी जाएगी ! अब तुम चोरी-छिपे घर जाओगे । अब तुम डरते हुए, कंपते हुए घर जाओगे । यही भय का कारण है । हमेशा प्रामाणिक होने से भय के कारण विनष्ट हो जाते हैं । और जब तुम भयभीत रहोगे, तो देर-अबेर पकड़े जाओगे । और तब तक बात और बिगड़ जाती है ।

स्विमिंग पूल में तैर रहे सेठ चंदूलाल की भेंट एक सुंदरी से करायी गयी । उससे कुछ देर बात करने के बाद वे घर लौटने लगे, तब उस सुंदरी से कहा कि बाई, एक बात का ख्याल रखना, इस मुलाकात की कहीं चर्चा मत करना !

करीब एक माह बाद किसी पार्टी में सेठ चंदूलाल अपनी पत्नी के साथ गये, तो वही सुंदरी फिर मिल गयी । उसने दो-एक मिनट चंदूलाल की ओर गौर से देखा, फिर नमस्कार करके बोली : 'क्षमा कीजिएगा, आज आप कपड़े पहने हैं, इसलिए पहचानने में थोड़ा समय लग गया ।'

अब फंसे ! अब बुरी तरह फंसे !! ठीक ही है, देखा होगा स्विमिंग पूल पर नहाते हुए, लंगोटी लगाए हुए । अब किसी को लंगोटी लगाए देखो और फिर कपड़ों में देखो तो बहुत फर्क पड़ ही जाता है !... जैसे महावीर स्वामी तुम्हें मिल जाएं पेंट-कोट-टाई पहने हुए, तो मैं नहीं सोचता एक भी जैन मुनि पहचान पाएगा ! सिर्फ मैं पहचान सकूंगा, बाकी कोई नहीं पहचान पाएगा । अब जिनको नंग-धड़ंग देखा, अब उनको कैसे पहचानोगे पेंट-कोट-टाई पहने हुए ? . . . मगर फंस गये । अब बुरी तरह फंसे । अब बचाव भी न रहा ।

अपने भय के कारण खोजो ! पत्नी पर मत थोपो ! पत्नी का क्या कसूर है ? तुम डरते हो, इसलिए डरवाती है । एक दफा अपने सब मुखौटे अलग कर दो–– अरे बहुत होगा तो बेलन चलाएगी तो वैसे ही चलाती है !––एक दफा जो होना है हो

जाए, लेकिन एक दफा अपने सारे ताश के पत्ते सीधे करके रख दो ! मगर एक बार निपटारा कर लो ! कह दो कि मैं ऐसा आदमी हूं, यह मेरी स्थिति है, अंगीकार हो तो ठीक, न अंगीकार हो तो ठीक ।

और मेरी अपनी समझ यह है––लाखों स्त्रियों का अध्ययन करने के बाद मैं यह कह रहा हूं––मेरी अपनी समझ यह है कि स्त्रियां अगर उनको धोखा न दिया जाए तो पुरुषों से बहुत ज्यादा प्रेमपूर्ण हैं । मगर जो उन्हें धोखा दे रहा हो, उसके प्रति उनकी कठोरता गहन हो जाती है । स्त्रियां बदला ले रही हैं सदियों का तुमसे । सदियों से आदमी ने स्त्रियों को इस तरह सताया है ! और कोई उपाय भी नहीं छोड़ा तुमने । सब द्वार-दरवाजे बंद कर दिये हैं । उनके लिए कोई स्वतंत्रता नहीं छोड़ी । उनके लिए जीवन का कोई आयाम नहीं छोड़ा । तुम उन्हें कहीं अकेला जाने न दोगे, किसी से मिलने न दोगे, किसी से मैत्री न बनाने दोगे, उनके जीवन में किसी रुचि का विकास न होने दोगे, उनको-सब तरह से घर में बंद कर दिया है, अगर उनका क्रोध उबल आता हो––और फिर तुम्हीं मिलते हो, और तो कोई है भी नहीं, तो किस पर अपना क्रोध फेंके ?

तुम्हीं हो जिम्मेवार उनकी गुलामी के । उनको स्वतंत्रता दो !

अपनी पत्नी को तुम वस्तु मत समझो । क्योंकि तुम जिस पत्नी को वस्तु समझोगे वह भी तुम्हें रस्ते पर लगाएगी ! वह भी तुम्हें वस्तु बना कर बताएगी ! कोई भी व्यक्ति, चाहे स्त्री हो, चाहे पुरुष, परतंत्र नहीं होना चाहता है । लेकिन पुरुषों ने स्त्रियों को तो परतंत्र बना लिया है और खुद चाहते हैं कि स्वतंत्र बने रहें । यह असंभव । यह सौदा नहीं हो सकता । इसका दुष्परिणाम हुआ है ।

यहां मेरे आश्रम में तो कोई पुरुष संन्यासी किसी स्त्री से डरा हुआ नहीं है । कोई कारण नहीं है । कोई वजह नहीं है । चीजें साफ-सुथरी हैं । और चीजें साफ-सुथरी होनी चाहिए । प्रामाणिक जीवन की यही तो शुरुआत है । तो किसी दिन शायद तुम परम सत्य को भी उपलब्ध हो सको । अगर तुम जीवन के इन छोटे-छोटे मामलों में भी असत्य हो, तो आशा ही छोड़ दो सत्य की ।

मुल्ला नसरुद्दीन से मैंने पूछा, 'नसरुद्दीन, क्या तुम्हारी और तुम्हारी पत्नी की राह कभी एक भी हुई है ?'

नसरुद्दीन ने कहा. 'हां, केवल जीवन में एक बार, जब हमारे घर में आग लगी थी तब हम दोनों ने एक ही साथ आगे के दरवाजे से निकलने की सोची थी ।'

पत्नी के साथ थोड़ी मैत्री बनाओ ! लेकिन मैं नहीं देखता किसी पति की अपनी पत्नी से मैत्री हो । कि वह अपने हृदय की बातें उससे कहता हो । पति-पत्नी बातें करते ही नहीं । असल में पति बात ही करने में डरता है कि कहीं बात में कोई और बात न निकल आए । पत्नी को देखा कि एकदम अखबार पढ़ने लगता है––वही अख-

बार जो तीन दफे दिन भर में पढ़ चुका है, फिर पढ़ने लगता है। जल्दी से रेडियो खोल लेता है। या बातें भी करता है तो इधर-उधर की करता है, जिसमें पत्नी को कोई रस नहीं। जिसमें उसको भी कुछ रस नहीं, सिर्फ समय काटने के लिए बातें करता है। सिर्फ ऐसी बातें करता है जिनमें कोई झगड़े का उपाय न हो। और वही-वही बातें फिर रोज करता है। पत्नी भी ऊब जाती है उसकी बकवास सुन-सुन कर।

मैत्री साधो ! प्रेम तो दूर की बात है, कम-से-कम मैत्री तो साधो ! और मैत्री सधे तो शायद कभी प्रेम भी सध जाए।

कभी पत्नी के साथ बैठ कर ताश खेलते हो ? कभी पत्नी के साथ बैठ कर शतरंज खेलते हो ? कभी चौपड़ बिछाते हो ? कभी पत्नी के साथ बैठ कर गपशप करते हो ? कोई संबंध नहीं तुम्हारा मैत्री का। पति और पत्नी के बीच मैत्री असंभव मालूम होती है। तो फिर दुश्मनी ही बच रहती है। फिर बचा क्या ? एक ही नाता बच रहा फिर और वह दुश्मनी का।

और तुम कहते हो : स्त्री धन है। तुम ऐसी कहावतें बनाए हुए हो——

जर, जोरू, जमीन
झगड़े के घर तीन

तुमने जोरू को भी जमीन और जर के साथ जोड़ दिया। इस सारे अपमान का बदला किससे लिया जाए ? तो यह विस्फोटक स्थिति है।

सेठ चंदूलाल अपनी पत्नी से बोले, 'देख बाई, तू बात-बात में लड़ा नहीं कर। घर में थोड़ी शांति रहने दे। कृपा कर !' उनकी पत्नी गुलाबो ने बेलन उठाकर कहा, 'तुम्हें यह इलज़ाम लगाते शर्म नहीं आती ? मैं कहां लड़ती हूं ? ऐसे गलत इलज़ाम लगाए तो याद रखना, ऐसा मारूंगी कि नानी की याद आ जाएगी !'

पति और पत्नी के बीच एक तनाव है। और वह तनाव तुम झुठलाने की कोशिश करते हो, लीपापोती करते रहते हो, मगर उस तनाव को हल करने की कोशिश नहीं करते। तुम सरलता से स्वीकार करो कि पत्नी की भी अपनी स्वतंत्र आत्मा है। उसका अपना व्यक्तित्व है, अपनी निजता है। और तब वह भी तुम्हें मौका देगी स्वतंत्र होने का और निज होने का। और स्वतंत्रता के लिए सब कुछ न्यौछावर किया जा सकता है। विवाह कुछ इतनी मूल्यवान चीज नहीं है कि उसके लिए तुम्हें अपना जीवन न्यौछावर करना पड़े। और एक बार पत्नी को यह समझ में आ जाए कि तुम स्वतंत्रता को इतना प्रेम करते हो कि अगर विवाह भी खत्म हो तो तुम फिकिर न करोगे, लौट कर न सोचोगे, तो पत्नी पुनर्विचार करेगी पूरी स्थिति पर। लेकिन तुम डरे रहे तो डराए जाओगे।

बिल्लू गुरु बैठकखाने में दोस्तों से बातें कर रहे थे। उनकी बात सुन रहे उनके बेटे ने भाग कर मां को सूचना दी : 'मां, मां, डैडी कह रहे हैं कि पति और गधे म

अंतर नहीं होता। क्या वे गधे हैं ?'

मां बोली, 'बड़ों की बात में अविश्वास नहीं करना चाहिए। वे जो कहते हैं, सही ही कहते हैं।'

पति-पत्नी के बीच एक मैत्री का नाता चाहिए। अन्यथा क्या बच रहता है फिर ? पत्नी नौकर हो गयी तुम्हारी। खाना बनाए, बच्चों को पाले, दिन भर घर साफ करे, तुम्हारे कपड़े धोए और फिर उसका शरीर है तुम्हारे लिए, उसका तुम रात उपयोग करो। और बदले में तुम क्या दे रहे हो ? तुमने कभी पत्नी बर्तन मल रही हो, उसके साथ हाथ बंटाया बर्तन मलने में ? वह घर साफ कर रही हो तो तुमने कभी कहा कि तू बैठ, आराम कर ले, मैं फुर्सत में बैठा हूं, मैं घर साफ किये देता हूं ? तुम थोड़ी मैत्री बनाना शुरू करो, तो यह भय अपने से विसर्जित हो जाए।

और तुम पत्नी को सम्मान दो, तो ही सम्मान पा सकते हो। सम्मान के उत्तर में ही सम्मान मिलता है। तुम अपमान कर रहे हो, तो अपमान ही पाओगे। पुरुषों की यह दृष्टि है कि स्त्रियां क्या हैं ? पैर की जूतियां हैं। कैसे सम्मान पाओगे ? और साधारण लोगों की नहीं, तुम्हारे बाबा तुलसीदास जैसे लोगों की भी यही बुद्धि है। 'ढोल गंवार सूद्र पसु नारी।' सबको ढोल गंवार में गिन दिया, पशुओं में गिन दिया, शूद्रों में गिन दिया स्त्रियों को। और कभी बाबा तुलसीदास ने यह भी न सोचा कि उनकी स्त्री के कारण ही उनके जीवन में राम का पर्दापण हुआ। उसी स्त्री को धन्यवाद देना था। उसको धन्यवाद तो कभी नहीं दिया, गाली दी। जैसे बदला लिया।

खुद तो कामी और अंधे थे। और इतने अंधे कि पत्नी गयी थी मायके तो भरी बरसात की रात में चोरी से पहुंच गये। नदी पार कर ली एक मुर्दे को पकड़ कर, यह सोच कर कि लकड़ी का कोई बड़ा भारी झाड़ बहा जा रहा है। ऐसे अंधे रहे होंगे ! वासना सदा अंधी होती है। फिर घर के पीछे से गये——बाहर से तो जाने का उपाय न था। क्या कहते पत्नी के मां-बाप। कि अभी दो दिन तो उसे आए नहीं हुए और तुम चले आए ! और आधी रात ! यह कोई वक्त है आने का ? कोई खबर भी न की ! तो घर के पीछे से——बरसात के दिन थे, एक सांप लटक रहा था छज्जे से, उसको पकड़ कर चढ़ गये। वासना तो बिलकुल अंधी है, वे समझे कि रस्सी लटक रही है। होश ही कहां था ?

पत्नी ने जब यह सब देखा, ऊपर जब पहुंचे, तो उसने कहा कि यह तुम क्या करते हो ? अगर इतना प्रेम तुम्हारे मन में परमात्मा के प्रति होता, तो तुम परमात्मा को पा लेते। और यह अंधापन, यह मोह से आविष्ट दशा सुंदर तो नहीं है !

इसी चोट को खा कर तुलसीदास के जीवन में परिवर्तन आया। धन्यवाद देना था ! रामचरितमानस को इसी स्त्री को समर्पित करना था ! मगर समर्पण की तो बात दूर, स्त्रियों की गिनती शूद्रों में, ढोल में, गंवारों में। और ढोल को क्यों जोड़

दिया इसमें ? इसलिए जोड़ दिया कि ढोल को मारो तो ही बजता है। ' ये सब ताड़न के अधिकारी। ' इनका एक ही अधिकार है कि इनको सताओ। तो ही जैसे ढोल बजता है मारने से, ऐसे ही स्त्री के जीवन में तुम्हारे प्रति आदर होगा--अगर सताओगे, तो--सम्मान होगा।

यह तो बिलकुल ही मूढ़तापूर्ण बात है।

स्त्री को सम्मान दो, आदर दो। तुमने बहुत अपमान किया है। तुमने ही नहीं, तुम्हारे तथाकथित महात्माओं ने बहुत अपमान किया है। स्त्री को नर्क का द्वार कहा है। स्त्री की जितनी गर्हित आलोचना हो सकती है, की है। स्वभावत: यह सब स्त्री के भीतर इकट्ठा हो गया है। यह उस जगह आ गया है जहां विस्फोट होता है।

और अगर हमें एक बेहतर मनुष्यजाति को जन्म देना हो, तो इस कूड़े-कचरे को साफ कर देना चाहिए। स्त्री को सम्मान दो, वह तुम्हारी कोई गुलाम नहीं है। अगर तुमने उसे गुलाम बनाया, तो वह तुम्हें गुलाम बनाकर रहेगी। और तुमने अगर उसे भी स्वतंत्रता दी, तो तुम्हें भी स्वतंत्रता मिल सकती है।

लेकिन अच्छा हुआ कि यहां आ गये। शायद कुछ हो जाए। मेरी बातों को धैर्य-पूर्वक समझने की कोशिश करना। और पहला काम तो यह करना, जा कर पत्नी को कह देना कि मैंने ही प्रश्न पूछा था। इसी से शुरुआत होगी। साफ उससे कह देना कि मैंने ही प्रश्न पूछा था। और यह मेरी ही भ्रांतियां और मेरे ही भय आधारभूत हैं। अपने हृदय को खोल कर रख देना--निष्कपट। जब भी आ गये, भला। देर से आए तो भी भला। सुबह का भूला सांझ भी घर आ जाए तो भी भूला नहीं कहाता।

देर लगी आने में तुमको....
देर लगी आने में तुमको
शुक्र है फिर भी आए तो
देर लगी आने में तुमको
शुक्र है फिर भी आए तो....
आस ने दिल का साथ न छोड़ा....
आस ने दिल का साथ न छोड़ा
वैसे हम घबराये तो
आस ने दिल का साथ न छोड़ा
वैसे हम घबराए तो
देर लगी आने में तुमको....

शफक धनक मेहताब घटायें

तारे नभ में बिजली फूल
इस दामन में क्या-क्या कुछ है
दामन हाथ में आए तो
शफक धनक मेहताब घटायें
तारे नभ में बिजली फूल
इस दामन में क्या-क्या कुछ है
दामन हाथ में आए तो
देर लगी आने में तुमको....

झूठ है सब तारीख हमेशा
अपने को दोहराती है....
झूठ है सब तारीख हमेशा
अपने को दोहराती है
अच्छा मेरा ख्वाबे-जवानी
थोड़ा-सा दोहराये तो....
अच्छा मेरा ख्वाबे जवानी
थोड़ा-सा दोहराये तो
देर लगी आने में तुमको....

चाहत के बदले में हम तो
बेच दें अपनी मर्जी भी....
चाहत के बदले में हम तो
बेच दें अपनी मर्जी भी
कोई मिले तो दिल का गाहक
कोई हमें अपनाये तो
कोई मिले तो दिल का गाहक
कोई हमें अपनाये तो
चाहत के बदले में हम तो
बेच दें अपनी मर्जी भी
कोई मिले तो दिल का गाहक
कोई हमें अपनाये तो
देर लगी आने में तुमको
शुक्र है फिर भी आए तो
आस ने दिल का साथ न छोड़ा

वैसे हम घबराये तो
देर लगी आने में तुमको . . . .

कोई चिंता नहीं। विवाह हो गया, उलझ गये जाल में, लेकिन कितनी ही देर हो गयी हो, अभी भी क्रांति घट सकती है। और अच्छा ही हुआ कि इस अनुभव से गुजर गये। बिना इस अनुभव से गुजरे भी मुश्किल थी। न विवाह करते तो सोचते जिन्होंने विवाह किया है, अहह, कैसे मजे में हैं! जैसा अभी सोच रहे हो कि जिन्होंने विवाह नहीं किया, अहह, कैसे मजे में हैं! जो मिल जाता है, उससे आदमी अतृप्त हो जाता है और जो नहीं मिलता, उसमें आशा लगी रहती है। अच्छा ही हुआ कि एक झंझट से मिट गये, एक उपद्रव मन से शांत हो गया। यह तो अकल आ गयी। इतनी अकल विवाह ला दिया, यही कोई कम बात है! इतना होश आ गया कि फंस गये, नर्क में पड़ गये, मगर अपने हाथ से पड़े हो, तो बाहर निकल सकते हो, यह अनुभव कीमती हो सकता है। और जिस स्त्री को तुमने अपनी पत्नी बनाया है, खुद भी निकलो, उसे भी निकालो। इतना तो कर्तव्य है ही। जैसे तुम नर्क में गिरे हो और उसे भी गिराया है, ऐसे ही तुम भी निकलो और उसे भी निकालो। और मैं कहता हूं कि तुम अगर निकलो, तो वह भी निकल आएगी।

मैंने सदा अनुभव किया है कि स्त्रियों के पास ज्यादा सूझ-बूझ है, स्पष्ट। क्योंकि स्त्रियां बुद्धि से नहीं सोचतीं, हृदय से सोचती हैं। तर्क से नहीं सोचतीं, लेकिन उनका प्रेम पर्याप्त है उनको अन्तर्दृष्टि देने में। अगर वह देखेगी तुम्हारा उज्ज्वल रूप, तुम्हारा ध्यानस्थ रूप, तुम्हारा उठता हुआ प्रकाश, तुम्हारा खिलता हुआ फूल, तो तुमसे पीछे नहीं रह जाएगी। तुमसे आगे भी जा सकती है।

अकेले मुक्त होने की चेष्टा तो बहुत लोगों ने की है--भाग गये जंगल--मगर मैं उनको भगोड़े मानता हूं, कायर मानता हूं। कोई भागने की जरूरत नहीं है। जहां हो वहीं मुक्त भी होओ और वहीं दूसरों को भी मुक्ति देने का उपाय करो। और तुम्हारे मुक्त होने से उनके लिए भी मार्ग खुलेगा। मगर अगर तुम डरे, तुम अगर भयभीत रहे, तो तुम खुद भी बंधन में रहोगे और तुम दूसरे को भी बंधन में रखोगे।

आखिरी प्रश्न : भगवान, मैं प्रेम में पराजित होकर आपके पास आया हूं।

. . .सुनते हो, कच्छ-केसरी, अचल गच्छाधिपति! तुम विवाह में फंस कर यहां आ गये हो और पूछ रहे हो नर्क से कैसे छूटूं और यह प्रश्न सुनो--

मैं प्रेम में पराजित होकर आपके पास आया हूं। आत्मघात करने का विचार उठता है। अब जीना नहीं चाहता हूं। मैं क्या करूं क्या न करूं?

अविनाश! दो ही उपाय हैं। या तो समझने की चेष्टा करो। उसके लिए बहुत

प्रगाढ़ बुद्धि चाहिए। ध्यान से निखारो अपनी बुद्धि की तलवार को। ताकि तुम देख सको कि जिनको प्रेम में सफलता मिल गयी है, उनको क्या मिला है? कच्छ-केसरी से मिलो! और यहां एक-से-एक कच्छ-केसरी मौजूद हैं। कुछ ऐसा नहीं कि तुम्हें खास उन्हीं से मिलना जरूरी है। अरे, किसी भी विवाहित पुरुष से मिलो! उसकी कथा सुनो, उसकी व्यथा सुनो। और तब तुम कहोगे, मैं धन्यभागी हूं, कि परमात्मा की कृपा है कि मैं बच गया। तब तुम यह न कहोगे कि मैं प्रेम में पराजित होकर आपके पास आया हूं। और तुम जिस स्त्री के साथ जीना चाहते थे, जरा पता तो लगाओ कि वह जिसके साथ जी रही है, उस पर क्या गुजर रही है? वह पागल हो गया, कि भाग कर त्रिदंडी साधु हो गया, कि जैन मुनि हो गया--कुछ पता तो लगाओ, उस पर क्या गुजर रही है! अपने ही आंसुओं में मत डूबे रहो! जरा आंखें खोलो!

तुम कहते हो कि पराजित हो कर आपके पास आया हूं। आत्मघात करने का विचार उठता है। यह विचार प्रेम में पराजित व्यक्तियों को भी उठते हैं और प्रेम में जो जीत गये, उनको भी उठते हैं। आत्मघात का ही विचार।

मुल्ला नसरुद्दीन फांसी लगा रहा था। भूल से दरवाजा खुला छोड़ दिया। कमरे के भीतर जाकर कोई और चीज तो उसको मिली नहीं, टाई थी उसकी, सो उसने गले में टाई बांधी और सेंडेलियर से बांध कर लटकने ही जा रहा था कि पत्नी पहुंच गयी। और पत्नी ने कहा, यह क्या कर रहे हो? अरे, यह तुम्हारी सबसे कीमती टाई है! मरना ही हो तो कोई और मैं रस्सी ला दूं, यह टाई तो खराब न करो, किसी और के काम आएगी! यह सुनते ही कि किसी और के काम आएगी, वह फौरन नीचे उतर आया। उसने कहा, हमें नहीं मरना। कौन है वह जिसके काम आएगी?

इन विचारों में क्या रखा है!

फिर एक दफा आत्महत्या कर रहा था। तो उसने दरवाजा बंद कर लिया, क्योंकि पहली दफा पत्नी ने आकर गड़बड़ कर दी थी। उसने टाई का सवाल उठा दिया। कि टाई तो खराब न करो! अरे, मरना है तो मर जाओ! . . .स्त्रियों का तो गणित ही अलग। उसको फिक्र पड़ी है टाई की कि अभी तो खरीदी है, नई की नई टाई! अरे, आदमी का क्या है, आदमी तो हजार मिल जाते हैं, मगर टाई! यह नाहक खराब कर रहा है!

सो दरवाजा बंद कर लिया था। बहुत उसने दरवाजा पीटा और मुल्ला कहे कि नहीं खोलेंगे। हमने तो मरने का पक्का विचार कर लिया है। . . .विचार करना पड़ता है मरने का! अरे, जिसको मरना है वह मर जाता है! तुम यहां आते, अविनाश, पूछने! इतनी दूर की यात्रा करते हो! जिस ट्रेन में आए, उसी के नीचे लेट गये होते! न-मालूम कहां से चले आ रहे हो, कितनी दूर से यात्रा करके, कितने मौके बीच में आए होंगे--पहाड़ियां पड़ी होंगी, कुएं मिले होंगे, ट्रेनें मिली होंगी, बसें मिली

होंगी, और एक-से-एक पहुंचे हुए सरदार ट्रक चलाए जा रहे हैं--कितने अवसर चूक कर तुम इधर आए ! विचार से कुछ नहीं होता, भइया, कुछ करके दिखाना पड़ता है ! विचार तो बहुत लोग करते हैं।

मनोवैज्ञानिक कहते हैं, ऐसा आदमी खोजना कठिन है जिसने कम-से-कम जिंदगी में चार बार मरने का विचार न किया हो। मगर विचार विचार है। अच्छा विचार है, नेक विचार है, मगर विचार का कोई परिणाम तो होता नहीं। लोग सोचते ही रहते हैं। सोचने से राहत मिलती है कि अहह, कैसे गजब का विचार किया ! प्रेम में पराजित हो गये हैं, देखो मजनूं को पराजित कर दिया, आत्महत्या का विचार कर रहे हैं ! कि देखो फरहाद को पानी पिला दिया; आत्महत्या का विचार कर रहे हैं, अब और क्या चाहिए ! इतनी बड़ी कुर्बानी ! किया-धरा कुछ नहीं है अभी, सोच रहे हैं।

सो मुल्ला नसरुद्दीन, तीन घंटे उसकी पत्नी दरवाजा पीटे, वह कहे हम विचार करते हैं, हम तो मरेंगे। वह मेरे पास आयी। मैंने कहा, तू बिलकुल पागल है ! कोई तीन घंटे लगते हैं मरने में--सोचने में, विचार करने में ? सातवीं मंजिल पर रहते हो, कूद ही पड़ता। छोड़ो फिकिर ! मगर वह बोली कि नहीं, एक दफा तो मैंने बचा लिया था, अब कहीं कुछ कर ही न बैठे ! फिर से करने लगा है।

तो मैं गया।

तो मैंने दरवाजा खटखटाया, मैंने कहा कि दरवाजा खोलो ! तुम्हें चार घंटे हो गये, अभी तक तुम कोई उपाय नहीं खोज पाए, तो मैं तुम्हें रस्ता बताए देता हूं कि कैसे मरना ! यह उसने नहीं सोचा था कि कोई रस्ता बताने आएगा मरने का। जो भी आए थे, मुहल्ले-पड़ोस के लोग, उन्होंने कहा, भाई, ऐसा मत करो ! अरे, बाल-बच्चों का ख्याल करो, पत्नी का ख्याल करो ! . . . और पत्नी-बाल-बच्चों के कारण ही तो वह मरने जा रहे हैं, इनका क्या ख़ाक ख्याल करे ! वे उसको और जोश चढ़ा रहे थे। और जले पर नमक छिड़क रहे थे। . . . मैंने कहा कि तुम्हें मरना है, बहुत अच्छी बात है। मरने में कोई बुराई नहीं है। जरूर मर जाओ। मगर कोई ढंग से ! तीन-चार घंटे लगा रहे हो, इतने में पुलिस आ जाएगी, कुछ भी, पकड़ गये, झंझट में पड़ोगे--आत्महत्या जुर्म है ! कोई शीघ्र व्यवस्था करनी चाहिए। मैं तुम्हें रस्ता बताता हूं। दरवाजा खोलो !

अब मुझे वह कैसे कहे कि दरवाजा नहीं खोलते, कि हमें तो मरना है ! दूसरों से कह सकता था। मैं तो रस्ता ही बता रहा था ! उसने दरवाजा खोला। देखा मैंने कि क्या रहा था वह। दोनों कंधे में उसने रस्सी बांध ली थी। टाई तो पत्नी ने उसी दिन से सब उठा कर अलग रख दी थीं। मैंने कहा, कंधों में रस्सी बांध कर तुम सेंडेलियर से लटका कर फर्श पर खड़े हो, कैसे मरोगे ? मैंने कहा, गले में बांध, पागल !

उसने कहा, मैंने पहले गले में बांधी थी मगर उससे बड़ा जी घुटता है।

जी तो घुटेगा ही। जब आत्महत्या करोगे, तो जी नहीं घुटेगा !

तुम पूछते हो, अविनाश, कि मैं प्रेम में पराजित होकर आपके पास आया हूं। आत्मघात का विचार उठता है। मैं अब जीना नहीं चाहता हूं। और फिर भी पूछ रहे हो : 'मैं क्या करूं, क्या न करूं?' अरे, अब जब जीना ही नहीं है, तो अब क्या पूछना ! अभी जिनको जीना है, उनको पूछने दो। अब जैसे ये कच्छ-केसरी हैं। अभी इनको जीना है, इनको पूछने दो। तुम्हें तो जीना ही नहीं है, अब पूछ कर क्या करोगे ? और पूछना ही हो तो मरने के बाद कोई मिल जाए, उससे पूछ लेना।

नहीं, मरना वगैरह तुम्हें नहीं है। तुम सिर्फ अपने अहंकार को पोषित कर रहे हो कि देखो, मैं प्रेम पर मरने के लिए तैयार हूं। और अगर तुम यहां मरने के लिए ही आए हो, तो मैं जरूर तुम्हें मरने की ऐसी कला बताता हूं कि फिर जन्म लेना ही न पड़े ! क्योंकि नहीं तो मरे, फिर जन्म लेना पड़ेगा। फिर कोई उपद्रव होगा। जन्म हुआ तो उपद्रव की शुरुआत है। कुछ-न-कुछ होगा। प्रेम में असफल होओगे, कि सफल होओगे, हर हाल में मरने की बात उठेगी। धन मिलेगा तो फांसी लगेगी, नहीं मिलेगा तो फांसी लगेगी। जनम हो गया कि फिर उपद्रव है। इसीलिए तो इस देश ने सदियों-सदियों में यह निचोड़ निकाला कि आवागमन से छुटकारा चाहिए। मगर ख्याल रखना, पहले आना, उससे छुटकारा हो तब जाने से छुटकारा होता है। जाने के लिए तो कोई भी उत्सुक है, मगर फिर आ जाओगे। कुछ ऐसा उपाय होना चाहिए, जिससे कि फिर आना ही न पड़े। उसको ही मैं संन्यास कहता हूं, ध्यान कहता हूं। वह असली मरना है। अहंकार का मरना असली मृत्यु है।

आत्मा तो मर सकती नहीं। तुम लाख उपाय करो, आत्मा को तो कोई कभी मार सका नहीं। कृष्ण ठीक कहते हैं : न हन्यते हन्यमाने शरीरे। शरीर को मिटा डालो, तो भी वह नहीं मिटती है। जला डालो, वह नहीं जलती है। छेद डालो अस्त्र-शस्त्रों से, वह नहीं छिदती है। आत्मा तो अमर है। इसलिए उसको तो मारने का कोई उपाय नहीं है। लेकिन अहंकार मारा जा सकता है। वही जन्म लेता है, वही मरता है। वही आवागमन है। वही तुम्हें भरमाए रखता है, भटकाए रखता है।

अभी भी तुम कहते हो कि मैं प्रेम में पराजित होकर लौटा, मगर तुम गलत कह रहे हो। तुम अहंकार में पराजित हुए हो। प्रेम तुम क्या ख़ाक जानोगे ! प्रेम तुम जानोगे कैसे ? और जिसने प्रेम जाना है, वह कभी पराजित हुआ ही नहीं। क्योंकि प्रेम को कोई उपाय ही नहीं है हराने का। तुमने किसी को प्रेम किया, यह तुम्हारा हक था। उसने स्वीकार किया या नहीं किया, यह उसका हक है। तुम्हारे प्रेम करने को कहां रुकावट है ? तुम चांद को प्रेम करते हो, इसका मतलब यह थोड़े ही है कि चांद को जेब में रखना पड़ेगा तभी प्रेम जाहिर होगा। तुम फूलों को प्रेम करते हो, इसका यह

मतलब थोड़े ही है कि उनको तोड़ कर और गुलदस्ता बनाना पड़ेगा तभी प्रेम जाहिर होगा।

जार्ज बर्नार्ड शा के पास एक मित्र फूलों का एक गुलदस्ता बना कर ले आया। जार्ज बर्नार्ड शा ने कहा, क्षमा करें, मैं यह स्वीकार नहीं करूंगा। उसने कहा, मैं तो सोचा कि आप सौन्दर्य के पारखी हैं, इतने बड़े कलाविद, आपको फूलों में रस होगा, ये बड़े फूल हैं गुलाब के, बड़े सुंदर फूल हैं, इसीलिए तो इनका मैं गुलदस्ता बना लाया हूं कि आपकी टेबल पर सजा दूं। बर्नार्ड शा ने कहा कि मुझे छोटे बच्चे भी प्यारे लगते हैं, इसका क्या मतलब उनकी गर्दनें काटकर गुलदस्ता बना लूं? अगर तुम फूलों को प्रेम करते हो तो तुम काट कैसे सके, पहले यह मुझे जवाब दो! तुम प्रेम वगैरह नहीं करते हो। प्रेम किया होता तो फूल जिंदा था वृक्ष पर, उसे तोड़ने का कोई सवाल न था। फिर फूल को जिसने प्रेम किया, क्या जरूरत है कि वह फूल तुम्हारी बगिया में ही खिले तभी तुम प्रेम करोगे! वह किसी की भी बगिया में खिले। वह खिले, प्रेम की यही आकांक्षा होगी।

मगर प्रेम कब्जा चाहता है, मालकियत चाहता है। मालकियत प्रेम नहीं है, अहंकार है। हां, तुम चाहो तो अहंकार के जहर पर प्रेम की थोड़ी-सी पतली शक्कर की पर्त जमा दो, वह बात और है। मगर भीतर जहर भरा हुआ है। पराजित होने की भाषा प्रेम की भाषा ही नहीं है। प्रेम ने कभी पराजित होना जाना ही नहीं है। प्रेम तो सदा जीता हुआ है। और जो प्रेम में जीआ है, वह जीत ही जीत में जीआ है। उसकी कोई हार नहीं है। हारता है अहंकार। क्योंकि अहंकार जीतना चाहता है। प्रेम तो जीतना ही नहीं चाहता, हारेगा कैसे? जहां जीत की आकांक्षा नहीं है, वहां हार कैसे हो सकती है?

प्रेम तो जिसे प्रेम देता है, उसे स्वतंत्रता देता है। अगर तुमने किसी स्त्री को चाहा और उस स्त्री ने किसी और को चाहा और वह उसके साथ आनंदित है, तो तुम प्रसन्न होओगे कि वह आनंदित है। तुम उस पर अपने को थोपोगे नहीं। लेकिन हम बड़े अजीब लोग हैं। हम हमेशा थोपने के लिए आतुर हैं। और ऐसा नहीं है कि प्रेमी प्रेमिकाओं पर थोप रहे हैं, प्रेमिकाएं प्रेमियों पर थोप रही हैं, हर कोई हर दूसरे पर थोप रहा है। मां-बाप भी बच्चों पर थोपते हैं। अगर तुम्हारा बेटा किसी लड़की के प्रेम में पड़ जाए, बस, खतरा हो गया। लड़की तुम्हें चुननी चाहिए। तुम जिस लड़की को चुनो, उसे तुम्हारा बेटा प्रेम करे। लड़का चुने या तुम्हारी लड़की चुने, बस, चोट लगी! चोट किसको लग रही है? तुम लड़के और लड़की की खुशी में उत्सुक हो या अपने अहंकार की यात्रा में? यहां सब अपने अहंकार को सजाने में लगे हुए हैं। नाम कुछ भी दो, असलियत कुछ और है। तुम अभी प्रेम जानते ही नहीं। तुमने अगर प्रेम जाना होता तो आत्मघात का प्रश्न ही नहीं उठता था। जिसने

प्रेम जाना, उसके जीवन में तो जीवन की अमरता, जीवन का अमृत स्वरूप प्रगट होने लगेगा।

मगर एक लिहाज से तुम ठीक जगह आ गये, क्योंकि मैं तुम्हें यहां असली आत्मघात सिखा सकता हूं। अहंकार मर जाए, यह असली आत्मघात है। क्योंकि फिर इस जगत में आना नहीं होता। लेकिन तुम्हें तो कठिनाई होगी। तुम तो इस कवि से राजी होओगे——

मेरे हमनफस, ...
मेरे हमनफस, मेरे हमनवा, ...
मेरे हमनफस, मेरे हमनवा
मुझे दोस्त बनके दगा न दे. . . .
मेरे हमनफस, मेरे हमनवा
मुझे दोस्त बनके दगा न दे
मैं हूं सोजे-इश्क से जांबलब
मुझे जिंदगी की दुआ न दे
मेरे हमनफस, मेरे हमनवा. . . .
मैं हूं सोजे-इश्क से जांबलब
मुझे जिंदगी की दुआ न दे
मेरे हमनफस, मेरे हमनवा. . . .

मेरे दागे-दिल से है रौशनी. . . .
मेरे दागे-दिल से है रौशनी
इसी रौशनी से है जिंदगी
मुझे डर है ये मेरे चारागर. . . .
मुझे डर है ये मेरे चारागर
ये चराग तू ही बुझा न दे
मेरे हमनफस, मेरे हमनवा. . . .

मैं गमे-जहां से निढाल हूं. . . .
मैं गमे-जहां से निढाल हूं
कि शरापादर्द-मलाल हूं
जो लिखे हैं मेरे नसीब में. . . .
जो लिखे हैं मेरे नसीब में
वो अलम किसी को खुदा न दे
मेरे हमनफस, मेरे हमनवा. . . .

कभी जाम लब से लगा दिया....
कभी जाम लब से लगा दिया
कभी मुस्कुराके हटा दिया....
कभी जाम लब से लगा दिया
कभी मुस्कुराके हटा दिया
तेरी छेड़छाड़ ये साकिया....
तेरी छेड़छाड़ ये साकिया
मेरी तिश्नगी को बुझा न दे....
तेरी छेड़छाड़ ये साकिया
मेरी तिश्नगी को बुझा न दे
मेरे हमनफस, मेरे हमनवा....

मुझे छोड़ दे मेरे हाल पर....
मुझे छोड़ दे मेरे हाल पर
तेरा क्या भरोसा है चारागर
ये तेरी नबाजिशे-मुख्तसर....
ये तेरी नबाजिशे-मुख्तसर
मेरा दर्द और बढ़ा न दे
मेरे हमनफस, मेरे हमनवा....

मेरा अज्म इतना बुलंद है
कि पराये शोलों का डर नहीं
मुझे खौफ....
मुझे खौफ आतिशे-गुल से है....
मुझे खौफ आतिशे-गुल से है
ये कहीं चमन को जला न दे
मेरे हमनफस, मेरे हमनवा....

वो उठे हैं लेके गुमो शुबू....
वो उठे हैं लेके गुमो शुबू
अरे ओ 'शकील'....
अरे ओ 'शकील' कहां है तू
तेरा जाम लेने को बज्म में....
तेरा जाम लेने को बज्म में
कोई और हाथ बढ़ा न दे

मेरे हमनफस, मेरे हमनवा
मुझे दोस्त बनके दगा न दे....
मुझे दोस्त बनके दगा न दे
मैं हूं सोजे-इश्क से जांबलब....
मैं हूं सोजे-इश्क से जांबलब
मुझे जिंदगी की दुआ न दे
मेरे हमनफस,....
मेरे हमनफस, मेरे हमनवा

मैं तो तुम्हें अमृत जीवन का ही आशीष दे सकता हूं। तुम तो आत्मघात का विचार कर रहे हो, मैं तुम्हें अमृत की कीमिया ही दे सकता हूं मैं तुम्हें ऐसे जीवन का द्वार दिखा सकता हूं, जो शाश्वत है। और ऐसे प्रेम का द्वार दिखा सकता हूं, जो पराजय नहीं जानता। लेकिन तुम्हें अपनी व्यर्थ की धारणाओं से, जो तुमने मूर्च्छा में पकड़ रखी हैं, मुक्त हो जाना होगा।

पहली तो बात अभी समझो कि तुमने प्रेम किया नहीं। प्रेम करना साधारण बात नहीं है। प्रेम वही कर सकता है जो पहले अहंकार को गिरा दे। जहां अहंकार है, वहां कैसा प्रेम! अहंकार के साथ प्रेम असंभव है। दोनों का सह-अस्तित्व न कभी हुआ है, न हो सकता है। प्रेम करना है? पहले अहंकार को गिराओ। और अहंकार को गिराने की तलवार ध्यान है। काट डालो अहंकार का सिर ध्यान से। और फिर तुम्हारे जीवन में प्रेम के झरने फूटेंगे। और वे झरने कभी पराजित नहीं होते हैं। और वे झरने तुम्हारे भीतर ऐसी हताशा न भरेंगे, निराशा न भरेंगे। वे झरने तुम्हारे भीतर ऐसा उल्लास भर देंगे, जिसकी कोई सीमा नहीं है। वे तुम्हारे जीवन को उत्सव में रूपांतरित कर देंगे।

अगर आत्मघात तक की तैयारी है, तो कम-से-कम संन्यास की तो हिम्मत करो! अरे, जब मरने को ही तैयार हो, तो इतना तो करो कि संन्यास में उतर जाओ! जो मरने को तैयार है, अब उसे क्या डर? मरता क्या न करता! इतना तो कर लो! संन्यासी हो जाओ, अविनाश! और मैं तुम्हें सच में ही अविनाश होने का मार्ग दे सकता हूं।

मगर इन टुच्ची बातों में न पड़ो कि प्रेम में पराजित हो गये, आत्मघात का विचार उठ रहा है, मरना चाहते हो, जीने की इच्छा न रही! अभी जाना क्या है तुमने? अभी जीवन को पहचाना कहां? अभी प्रेम से परिचय नहीं है। इस सब के लिए कुछ जीवन की कला सीखनी होती है। जीवन को कुछ निखार देना होता है। जीवन हमें मिलता है ऐसे जैसे अनगढ़ पत्थर। फिर उस पर छेनी उठा कर बहुत-से व्यर्थ हिस्से पत्थर के काट डालने पड़ते हैं। तब उसमें कभी बुद्धत्व की मूर्ति प्रगट

होती है।

हम सब अनगढ़ पत्थर की तरह पैदा होते हैं, मगर अगर चाहें तो बुद्ध होकर विदा होते हैं। जो बुद्ध होकर विदा होता है, वह अनंत में विलीन हो जाता है। यह उपनिषद का सूत्र उसी बुद्धत्व के लिए सही है :

सत्यं परं परं सत्य।

सत्य है परम और परम है सत्य।

सत्येन न स्वर्गाल्लोकाच् च्यवन्ते कदाचन।

जो उठ गया उस परम सत्य तक, पा लिया उसने स्वर्ग जहां से गिरना असंभव है।

सतां हि सत्य।

वैसे व्यक्ति का अस्तित्व ही सत्य है। वैसे व्यक्ति की श्वास-श्वास सत्य है। वैसे व्यक्ति का जीवन भागवत है। वह बोले तो भगवद्‌गीता। वह चुप रहे तो उसके मौन में भी संगीत है।

तस्मात्सत्ये रमन्ते।

वह उठता है तो सत्य, बैठता है तो सत्य, सोता है तो सत्य। वह सत्य में ही रमण करता है।

आज इतना ही।

९ अक्तूबर १९८०; श्री रजनीश आश्रम, पूना

जैसा हूं, परम आनंदित हूं

पहला प्रश्न : भगवान, एक पत्रकार-परिषद में भारत के भूतपूर्व प्रधानमंत्री श्री मोरारजी देसाई ने कहा है : 'आचार्य रजनीश के आश्रम को कच्छ में आने की अनुमति नहीं दी जा सकती है, क्योंकि आचार्य रजनीश का आंदोलन अत्यंत खतरनाक और घातक ही नहीं, वरन भारतीय धर्म और संस्कृति को बदनाम करने वाला भी है।' श्री देसाई ने गुजरात के मुख्यमंत्री श्री माधवसिंह सोलंकी के इस वक्तव्य के विरुद्ध अपनी तीखी प्रतिक्रिया की है कि 'किसी भी धार्मिक नेता को भारत जैसे लोकतांत्रिक देश में कहीं भी आश्रम बनाने की स्वतंत्रता है' और उन्होंने कहा कि 'बुरे कामों को बढ़ावा देने के लिए इस स्वतंत्रता का उपयोग नहीं किया जा सकता है। मैंने तो अपने शासन-काल में आचार्य रजनीश की गतिविधियों की जांच का भी आदेश दिया था।' श्री देसाई ने यह भी कहा कि 'आचार्य रजनीश कभी भी कच्छ में अपना आश्रम स्थापित नहीं कर सकेंगे, यदि कच्छ की जनता इकट्ठी होकर उनका विरोध करने का साहस करे।'

और अंत में श्री देसाई ने कहा कि 'आचार्य रजनीश मुझे काम-दमित मानते हैं और मेरी आलोचना लगातार करते रहते हैं, परन्तु मैं उनकी यह आलोचना आशीर्वाद की तरह लेता हूं।'

भगवान, क्या आप श्री मोरारजी देसाई के इस प्रलाप पर कुछ कहने की कृपा करेंगे!

सत्य वेदान्त! पहली बात, श्री मोरारजी देसाई को ऐसी भ्रांति है जैसे गुजरात उनकी कोई बपौती है। कुछ ही दिन पहले उन्होंने कहा कि 'जब तक मैं जिन्दा हूं, तब तक गुजरात में शराबबंदी के नियम को शिथिल नहीं किया जा सकता है।' जैसे एक व्यक्ति का आग्रह सारी जनता पर थोपना अनिवार्य है! श्री मोरारजी देसाई

कौन ह, जो कहें कि मुझे कच्छ में आने की अनुमति नहीं दी जा सकती ! उनसे अनुमति मांग भी कौन रहा है ! अपने मुंह मियां मिट्ठू ! उनकी अनुमति की मुझे जरूरत है कच्छ आने के लिए ! !

और इस तरह की भाषा बोलना शुद्ध फैसिज्म है । यह भाषा लोकतंत्र के प्रति समादर नहीं है, स्वतंत्रता के प्रति समादर नहीं है । यह भाषा तानाशाही की भाषा है ।

उन्होंने कहा कि 'आचार्य रजनीश का आंदोलन अत्यंत खतरनाक है ।' यह सच है । यह आंदोलन खतरनाक है । और इसीलिए तो दकियानूसियों की जड़ें हिल गयी हैं । यह निश्चित खतरनाक है ! क्योंकि भारत की जड़ता को तोड़ने वाला और कोई आंदोलन नहीं है । यह खतरनाक है कि भारत में जो सड़ी-गली लाशें वर्षों से इकट्ठी हो रही हैं, हजारों वर्षों से, उनको जब तक हम जला कर राख न कर दें, तब तक भारत में जीवन का अंकुरण नहीं हो सकता है । यह वैसे ही खतरनाक है जैसे किसी व्यक्ति को दवा देना निश्चित ही उन कीटाणुओं के लिए तो खतरनाक है जो बीमारी पैदा कर रहे हैं । लेकिन उस व्यक्ति के लिए औषधि है । उसके जीवन की संभावना उसी औषधि में है ।

तो भारत के धर्मगुरुओं, पोंगापंथियों, दकियानूसी परंपरावादियों--इन कीटाणुओं के लिए जरूर मैं जो कह रहा हूं वह खतरनाक है । लेकिन यही कीटाणु तो भारत के प्राण खाए जा रहे हैं । यही तो भारत का कैंसर हैं । इन्होंने ही तो इस देश को इतना दीन, दुर्बल, पतित, सारे जगत में अपमानित, अनादृत कर दिया है । और स्वभावतः वे सब एकजुट हो कर मेरा विरोध करेंगे । उनका विरोध समझ में आता है । लेकिन वे थोड़े-से ही लोग हैं--न्यस्त स्वार्थ--उनको खतरा है । अगर मैं सच हूं, अगर जो मैं कह रहा हूं वह सच है, तो निश्चित ही अंधेरे की मौत आ गयी ।

उन्होंने कहा कि 'खतरनाक और घातक ही नहीं, वरन भारतीय धर्म और संस्कृति को बदनाम करने वाला है ।' जैसे कि धर्म भी भारतीय होता है । तो अगर धर्म भारतीय होगा, तो फिर अधर्म अभारतीय होगा । तो फिर जो भारत में नहीं है, वह सब अधर्म है । और फिर जो भारत में है, वह सब धर्म है । जैसे संस्कृति भारतीय होती है !

सभ्यता बांटी जा सकती है भूगोल में, क्योंकि सभ्यता बाह्य आचरण की व्यवस्था है । लोगों के कपड़े पहनने का ढंग, लोगों के भोजन का ढंग, लोगों के उठने-बैठने का सलीका, शिष्टाचार--यह सभ्यता है । . . . 'सभ्यता' शब्द को ख्याल में रखना, उसका अर्थ होता है : सभा में बैठने की योग्यता । दूसरों के साथ बैठने की योग्यता । इसलिए हम किसी संस्था के सदस्य को सभ्य कहते हैं । सभ्य का अर्थ है : वह इस योग्य है कि चार लोगों के बीच बैठ सके । . . .सभ्यता बाहरी नाता है । संस्कृति

आत्मिक परिष्कार है ।

संस्कृत व्यक्ति तो थोड़े-से ही हुए हैं दुनिया में । बुद्ध, महावीर, कृष्ण, मुहम्मद, नानक, कबीर, जीसस, जरथुस्त्र, लाओत्सू--थोड़े-से ही लोग सुसंस्कृत हुए हैं । अभी पृथ्वी इतनी धन्यभागी कहां हुई ! हो सकती है, मगर मोरारजी देसाई जैसे लोग बाधा हैं ।

इस भेद को स्पष्ट समझ लो--

सभ्यता भौगोलिक होती है--होगी ही !--लेकिन संस्कृति आध्यात्मिक होती है । और अध्यात्म के लिए कोई नक्शे पर बंधी हुई रेखाएं काम नहीं आतीं । अध्यात्म का कोई नक्शा नहीं । अध्यात्म की कोई राजनीति नहीं । भारत में नमस्कार करते हैं, दोनों हाथों को जोड़ कर नमस्कार करते हैं । पश्चिम में लोग नमस्कार करते हैं, हाथ को एक-दूसरे के पकड़ कर नमस्कार करते हैं । अफ्रीका का एक कबीला जब नमस्कार करता है तो एक-दूसरे से जीभ मिला कर नमस्कार करते हैं । यह सभ्यता है । यह, इसका कोई आध्यात्मिक मूल्य नहीं है कि तुम हाथ मिलाते हो, कि हाथ हिलाते हो, कि जीभ मिलाते हो, कि नाक रगड़ते हो--नाक रगड़ने वाले लोग भी हैं । बर्मा में एक कबीला जब मिलता है तो एक-दूसरे से नाक रगड़ता है । इतना तय है कि जब दूसरे से हम मिलते हैं तो कहीं से बात शुरू करनी पड़ेगी । फिर कहां से तुम तय करते हो, यह भूगोल से तय होता है, मौसम से तय होता है, वातावरण से तय होता है, परंपरा से तय होता है ।

लेकिन संस्कृति बात और है ! बुद्ध को नानक के साथ बिठाओ, कि कबीर के साथ, कि बहाउद्दीन के साथ, कि संत फ्रांसिस के साथ, कि इकहार्ट के साथ, वे सभी एक तरह के लोग होंगे । उन सबके भीतर का कमल खिला है । उन सब के भीतर सुगंध उड़ रही है--एक ही परमात्मा की सुगंध । उस सुगंध का नाम संस्कृति है । वह संस्कृति भारतीय और अभारतीय नहीं होती । और उस संस्कृति को पाने की प्रक्रिया और विज्ञान का नाम धर्म है । इसलिए धर्म न हिन्दू होता है, न मुसलमान होता है, न ईसाई होता है । धर्म तो सिर्फ धर्म होता है । जैसे विज्ञान सिर्फ विज्ञान होता है ।

तुम सौ डिग्री पर पानी गरम करो तो पानी भाप बनता है; यह वैज्ञानिक नियम है । इसमें कोई अपवाद नहीं है । फिर सिक्ख करे गरम, कि जैन करे गरम, कि बौद्ध करे गरम, इससे कुछ फर्क न पड़ेगा, पानी सौ डिग्री पर ही भाप बनेगा । ब्राह्मण करे कि शूद्र करे, कि क्षत्रिय करे कि वैश्य करे, कुछ पानी अपना नियम नहीं बदलेगा । पानी का नियम प्राकृतिक है । वह तुम्हारी इन मूढ़ताओं में न फंसेगा कि तुम ब्राह्मण हो तो जरा जल्दी गरम हो जाऊं । कि ब्राह्मण देवता गरम कर रहे हैं, कि जल्दी भाप बन जाऊं ! कि शूद्र गरम कर रहा है, क्या जल्दी पड़ी है, दो सौ डिग्री पर भाप बनूंगा,

शूद्र है, इसकी क्या फिक्र करनी ! न वेद जानता है, न उपनिषद जानता है, छूने योग्य भी नहीं है यह, इसकी मुझे क्या पड़ी ! नहीं, प्रकृति का नियम किसी के लिए अपवाद नहीं है; सबके लिए एक जैसा है ।

विज्ञान प्रकृति का नियम खोजता है और धर्म आत्मा का नियम । जब प्रकृति का नियम भी एक होता है, तो क्या तुम सोचते हो चेतना के नियम अलग-अलग होंगे ? असंभव ! जब पदार्थ का नियम तक एक होता है, तो परमात्मा का नियम अलग-अलग होगा ! हां, भाषा अलग हो सकती है । जीसस बोलेंगे तो अरेमैक भाषा में बोलेंगे, और बुद्ध बोलेंगे तो पाली में बोलेंगे, और महावीर बोलेंगे तो प्राकृत में, और याज्ञवल्क्य बोलेंगे तो संस्कृत में; और नानक अपनी भाषा, कबीर अपनी भाषा, सब अपनी भाषा में बोलेंगे । मगर जो बोला जा रहा है, वह एक है । अंगुलियां अलग-अलग, लेकिन जिस चांद की तरफ इशारा किया जा रहा, वह एक । इक ओंकार सतनाम । उसमें कुछ भेद नहीं है ।

इसलिए ध्यान रखना, जो व्यक्ति धार्मिक है, न तो हिन्दू है, न मुसलमान है, न सिक्ख है, न ईसाई है । जो व्यक्ति धार्मिक है, उसका धार्मिक होना पर्याप्त है । ये विशेषण व्यर्थ हो गये । वह इनके, विशेषणों के पार जा चुका । ये विशेषण बहुत पीछे छूट गये । इनका अब कोई मूल्य नहीं रहा । ये सब बाहर व्यवहार के नाते-रिश्ते हैं । अंतरात्मा में कौन हिन्दू है, कौन मुसलमान है, कौन ईसाई है ? जब तुम समाधि की गहराई में पहुंचोगे और तुम्हारे भीतर ध्यान का दीया जलेगा, तो उस रोशनी में क्या भारतीय बचेगा ? कि जापानी बचेगा, कि चीनी बचेगा ?

मैं धर्म की बात कर रहा हूं और इसीलिए श्री मोरारजी देसाई जैसे लोगों को खतरा मालूम होता है । क्योंकि इनकी बुद्धि तो बाहर से बंधी है । इन्हें भीतर का तो कुछ पता नहीं । जिंदगी भर कौड़ियां जुटाने में गंवायी है । जिंदगी भर पद-लिप्सा में भटके रहे हैं । इन्हें कुछ भीतर के परमपद का तो कोई अनुभव नहीं है । ये क्या खाक समझेंगे धर्म ! और क्या खाक समझेंगे संस्कृति ! मगर शब्दों को तो कोई भी सीख लेता है । तोते भी सीख लेते हैं ! और प्यारे-प्यारे शब्द दोहराने लगते हैं । गायत्री बोलते हैं, नमोकार मंत्र बोलते हैं । जपुजी सिखा दो ! तोता तो कुछ भी बोलने लगेगा ।

और ये मोरारजी देसाई एक तोते से ज्यादा नहीं हैं । इनका कोई अनुभव नहीं है । इन्हें ध्यान का ही कोई अनुभव नहीं है ।

कुछ ही दिन पहले इन्होंने स्वीकार किया था कि मैंने आचार्य रजनीश से ध्यान की प्रक्रिया पूछी थी । प्रक्रिया वही पूछता है जिसको ध्यान का पता नहीं है । और यह भी स्वीकार किया था अपने वक्तव्य में कि उन्होंने जो प्रक्रिया बतायी थी, मैं कर नहीं सका, क्योंकि अब मेरी उम्र काफी हो गयी । . . . प्रधानमंत्री बनने के

लिए उम्र काफी नहीं हुई है ! अभी फिर से प्रधानमंत्री बनने को तैयार हैं ! और ध्यान करने के लिए उम्र काफी हो गयी । आदमी भी क्या-क्या बहाने खोजता है ! कैसे-कैसे अपने को धोखा देता है !

जवानों से कहो तो वे कहते हैं कि ध्यान बुढ़ापे में करेंगे, क्योंकि अभी तो हम जवान हैं । अभी क्या ध्यान करना ! शास्त्रों में ही कहा है कि धर्म और ध्यान का समय तो चौथी अवस्था है—चौथा आश्रम । पचहत्तर साल के बाद करेंगे । और जब मोरारजी देसाई से मेरी ध्यान के संबंध में बात हुई थी, तो वे पचहत्तर साल के ही थे । और मैंने उनसे कहा भी कि यही तो वक्त है । जवानों से कहता हूं तो वे बहाना खोजते हैं कि पचहत्तर साल के बाद शास्त्रों में कहा हुआ है । पचहत्तर साल के बाद ध्यान, समाधि, धर्म, संन्यास । और आप कहते हैं कि अब मेरी उम्र न रही ! बूढ़े कहते हैं, अब हम कैसे ध्यान करें, उम्र न रही; जवान कहते हैं, अभी तो उम्र है, हम कैसे ध्यान करें ? ध्यान किसी को भी नहीं करना है । जिसको ध्यान करना है, उसके लिए उम्र का कोई सवाल ही नहीं उठता है ।

अगर मोरारजी देसाई कब्र में भी पड़े हों और खबर आ जाए कि फिर से प्रधानमंत्री बनना है, तो उठकर खड़े हो जाएंगे । एकदम अपना चूड़ीदार पाजामा चढ़ाने लगेंगे, गांधी टोपी सम्हालकर लगा लेंगे, चर्खा उठा लेंगे—कि राजी हूं ! लेकिन ध्यान ? तो उम्र नहीं । और जब तुमने ध्यान ही नहीं जाना, तो तुम क्या धर्म जानोगे ! ध्यान का ही तो आत्यंतिक अनुभव धर्म है । धर्म यानी स्वयं के जीवन की आंतरिक अनुभूति । धर्म शास्त्रों में नहीं है, स्वयं में है । धर्म है भीतर का स्वभाव । और उस स्वभाव को जिसने जान लिया, वही सुसंस्कृत है । क्योंकि तब क्रांति घट जाती है । तब उसे अपने आचरण को सम्हालना नहीं पड़ता । तब उसका आचरण अपने से सम्हल जाता है । तब उसे सोच-सोच कर नहीं चलना पड़ता कि क्या ठीक है और क्या गलत है । फिर तो वह जो कहता है, वही ठीक होता है । फिर उसे कभी पश्चात्ताप नहीं होता ।

उपनिषद के इस बचन को समझो ! तैत्तिरीय उपनिषद में यह प्यारा वचन है—

> यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह ।
> आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न बिभेति कुतश्चन ।।
> एत हि वाव न तपेति ' किम् अहम् साधुनाकरवम् ।
> किम् अहं पापम् अकरवम् ' इति ।।

वह लोक है धर्म का लोक जहां पहुंच पाने से मन के साथ वाणी लौट आती है । ध्यान में तो मन को छोड़ देना होता है, क्योंकि अ-मनी दशा ध्यान है । नानक का शब्द है : अ-मनी । मन के पार हट जाना होता है, मन से ऊपर उठ जाना होता है; मन को पीछे छोड़ देना होता है । और मन छूटा तो वाणी छूट जाती है, क्योंकि मन

की ही प्रक्रिया है वाणी। मौन आया तो ध्यान आया। न वहां मन है, न वहां वाणी है।

लेकिन जब कोई ब्रह्म को अनुभव कर लेता है, तो पुनः मन लौट आता है और वाणी लौट आती है। क्योंकि अब जो जाना है, उसे दूसरों से संवादित करना होगा, निवेदन करना होगा। फिर मन को नया काम मिलता है। फिर वाणी को नयी व्यवस्था मिलती है। फिर गीता फूटती है, कुरान जन्मता है। फिर धम्मपद उठता है। जिस मन को छोड़ दिया था, जिस वाणी को पीछे छोड़ दिया था, अब उसको फिर नया काम मिलता है। पहले मन मालिक था, अब मालिक आत्मा है, मन गुलाम है। पहले वाणी तुम्हारे बस में न थी, विचार तुम्हारे ऊपर हावी थे, तुम कहो कि बंद हो जाओ तो बंद न होते थे, तुम कहो कि चलो तो चलते न थे, उनकी मौज थी, वे तुम्हीं को घसीटते थे, तुम्हारी कोई लगाम न थी, अब तुमने अपनी मालकियत पा ली, तुम अपने स्वामी हुए। अब तुम वापिस मन का उपयोग कर सकते हो, अब वाणी का उपयोग कर सकते हो। लेकिन अब मन संसार न बनाएगा। अब मन सत्य की उद्घोषणा करेगा। अब मन से उठे हुए विचार विक्षिप्तता न लाएंगे, बल्कि तुम्हारी विमुक्ति को गुनगुनाएंगे; तुम्हारी विमुक्ति का संदेश पहुंचाएंगे।

सूत्र प्यारा है—

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।

'उस परम ज्ञान में पहुंच जाने के बाद मन के साथ वाणी लौट आती है। उस ब्रह्म के आनंद का जो अनुभव कर लेता है, वह किसी से डरता नहीं।' डरने का कारण ही नहीं रह जाता।

हम डरते क्यों हैं?

हम डरते इसलिए हैं कि हमने अभी अपने को शरीर समझा है—और शरीर की मृत्यु हो सकती है—और मृत्यु है तो डर है। अभी हमने अपने को मन समझा है। और मन का क्या भरोसा? अपने ही मन का भरोसा नहीं है। लाख कसम खाओ कि क्रोध न करूंगा, फिर क्रोध आ जाता है। लाख नियम लो ब्रह्मचर्य का, नियम टूट-टूट जाता है। लाख प्रयास के बाद भी मन फिर-फिर हावी हो जाता है। अभी न तो अपने मन पर कोई काबू है, न अभी अनुभव है अपने भीतर किसी अमृत तत्त्व का। तो भय तो होगा। मौत आ रही है! प्रतिपल आ रही है! कब आ जाए पता नहीं! और कितना ही उपाय करो, आएगी ही। कितने ही भागो, आएगी ही।

एक सूफी कहानी है प्यारी।

एक सम्राट का नौकर भागा हुआ आया। उसका बहुत प्यारा नौकर था। उसका बड़ा स्वामिभक्त नौकर था। अपनी जान भी दे दे मालिक के लिए। भागा हुआ आया; बाजार गया था, ऐसा घबड़ाया आया! जवान था, स्वस्थ था, सुंदर था। अभी बाजार गया था तो सब बात और थी। अभी लौटा तो यूं जैसे अचानक वसंत खो गया और पतझड़ आ गयी। उसके जीवन का पत्ता एकदम पीला पड़ गया। चेहरा पीला, जैसे सारा रक्त निचुड़ गया हो। सम्राट ने पूछा, तुझे हुआ क्या? उसने कहा, देरी न करें मालिक! मैं गया था बाजार में, वहां एक काली छाया ने मेरे कंधे पर हाथ रखा। मैंने लौटकर देखा, मैंने पूछा, तू कौन है? उसने कहा, मैं तेरी मौत हूं। और आज शाम को तैयार मिलना। सूरज डूबने के वक्त, ठीक सूरज डूबने के वक्त तैयार मिलना, मैं आ रही हूं। तो मैं घबड़ा गया हूं। आज सांझ, आज ही सांझ मौत आ रही है। क्या करूं, क्या न करूं! एक ही बात सूझती है कि आपके पास तो एक से एक तेज चलने वाले घोड़े हैं, अपना सब से तेज घोड़ा मुझे दे दें, मालिक, मैं जितनी दूर निकल जाऊं इस नगर से उतना अच्छा।

बात मालिक को भी समझ में आयी। बात तर्कपूर्ण थी, अर्थपूर्ण थी। मौत यहीं आएगी। भाग जाने दो! उसका प्यारा नौकर था। उसने अपना सबसे तेज घोड़ा दे दिया और कहा कि यह तुझे सैकड़ों मील दूर ले जाएगा सूरज डूबते-डूबते। उस दिन उस नौकर ने न तो भोजन लिया, न पानी पीया। रुका ही नहीं। भागता ही गया घोड़े पर, भागता ही गया घोड़े पर! और घोड़ा अद्भुत था, वह सैकड़ों मील दूर लेकर पहुंच गया।

सांझ जब सूरज डूबता था, उसने दूर एक बगीचे में जाकर घोड़े को एक वृक्ष से बांधा, घोड़े की पीठ थपथपायी और कहा, प्यारे घोड़े, तू सच में ही अद्भुत है! तू तीर की चाल से चला। तू मुझे इतने दूर ले आया। मैं तेरा धन्यवाद करता हूं।

और तभी फिर वही काली मौत उसके कंधे पर हाथ रखी और उसने कहा, धन्यवाद मैं भी करती हूं तेरे घोड़े का, तू ही नहीं। क्योंकि मैं परेशान थी; क्योंकि तेरी मौत इस झाड़ के नीचे होनी थी और मैं चिंतित थी कि तू समय पर पहुंच पाएगा या नहीं। लेकिन तू आ गया। घोड़ा तेज है!

कहीं भागो, कितनी ही तेजी से भागो, बच न पाओगे। जब तक मौत है तब तक भय है। लेकिन जिसने ब्रह्म को जाना, उसने जाना अमृत को। अमृत को जानते ही भय विदा हो जाता है। क्योंकि उसे इस बात का पश्चात्ताप करने का मौका ही नहीं मिलता। इसलिए भी भय विदा हो जाता है कि अब उसके जीवन में कोई पश्चात्ताप नहीं रह जाता।

तुम एक काम कर लेते हो, फिर पछताते हो। नहीं करते तो भी पछताते हो। तुम्हारी दुविधा बड़ी है। तुम्हारा द्वंद्व बड़ा मुश्किल भरा है। करो तो मुसीबत, न करो तो मुसीबत। अगर क्रोध नहीं करते हो तो पछताते हो। इसलिए पछताते हो कि लोग क्या सोचेंगे कि उसने मुझे गाली दी और मैं जवाब भी न दिया! लोग मुझे सोचेंगे कमजोर हूं, कायर हूं, नपुंसक हूं। अगर जवाब देते हो, क्रोध करते हो, तो फिर ग्लानि पकड़ती है कि यह मैंने क्या किया! यह कैसा मैंने पागलपन किया! यह

कैसा मैं क्षुद्र व्यवहार किया ! लोग क्या कहेंगे !

तुम जो भी करते हो, पश्चात्ताप आता है। लेकिन ब्रह्मज्ञानी को, जिसने धर्म को अनुभव किया है, उसे कोई पश्चात्ताप नहीं। कोई मौका ही नहीं पश्चात्ताप का। क्योंकि मैंने यह काम शुभ किया, यह भी उसे खयाल नहीं, कि मैंने यह काम अशुभ किया, यह भी उसे खयाल नहीं। कि मुझसे यह पाप हो गया, यह भी चिंता नहीं, कि मुझसे यह पुण्य हो गया, यह भी अहंकार नहीं। असल में धर्म की उस परम ज्योति में व्यक्ति तो विलीन हो जाता है, तिरोहित हो जाता है, मैं-भाव तो बचता नहीं, इसलिए भयभीत कौन हो ? परमात्मा ही शेष रह जाता है। अब उसकी जो मर्जी, करे ! शुभ करे, अशुभ करे, मुझे क्या लेना-देना है !

धर्म को जानने वाला व्यक्ति जो करता है, वही आनंद से करता है; क्योंकि वह स्वयं तो करने वाला होता ही नहीं, उसके भीतर परमात्मा ही करता है।

मोरारजी देसाई का यह कहना कि 'भारतीय धर्म और संस्कृति को मेरा काम बदनाम करने वाला है' निहायत पागलपन की बात है। उन्हें पता ही नहीं कि धर्म और संस्कृति भारतीय नहीं होते। और जो भारतीय है, वह जितने जल्दी गिर जाए उतना अच्छा। क्योंकि मैं चाहता हूं एक ऐसी मनुष्यता--एक ऐसी पृथ्वी, जिस पर भारत न हो, पाकिस्तान न हो, चीन न हो, जर्मनी न हो, अमरीका न हो। बहुत हो गया उपद्रव इन नामों पर। मैं चाहता हूं एक ऐसी मनुष्यता, जहां धार्मिकता तो हो और धर्म न हों। मैं चाहता हूं एक ऐसा आदमी, जो कुरान में भी रस ले सके और गीता में भी रस ले सके और गुरुग्रंथ में भी रस ले सके और समभाव से रस ले सके। और समभाव से समझ सके। जो उपनिषदों को भी आनंदमग्न होकर गुनगुनाए, जो लाओत्सू को भी समझे, जो जेन्द अवेस्ता को भी समझे। जिसके भीतर बुद्ध भी बोलें और महावीर भी बोलें और कृष्ण भी बोलें और जिसके भीतर कोई विरोध न रह जाए।

तो जो भारतीय है वह तो गिर ही जाना चाहिए। मैं कोई भारतीयता का पक्षधर नहीं हूं। मैं किसी तरह के विभाजन का पक्षधर नहीं हूं। मैं अविभाज्य मनुष्यता के पक्ष में हूं। और मैं एक पृथ्वी चाहता हूं जो अखंड हो। जब तक पृथ्वी अखंड नहीं है तब तक आदमी परेशानी में रहेगा। आज यह युद्ध, कल वह युद्ध। आज यह जेहाद, कल वह जेहाद।

और कैसे-कैसे अद्भुत लोग हैं। कच्छ के जैन मुनि कच्छ-केसरी अचल गच्छाधिपति, उन्होंने अपने वक्तव्य में जेहाद शब्द का प्रयोग किया है, कि मेरे खिलाफ जेहाद छेड़ना है। जैन मुनि जेहाद की बातें कर रहा है ! हां, कोई मुसलमान मौलवी करता तो समझ में भी आ जाता। जेहाद ! धर्मयुद्ध ! आह्वान किया है कि युवकों, तैयार हो जाओ रक्त बहाने के लिए। और रक्त बहाने की बात तो तभी उठती है,

जब रक्त बहाने की आकांक्षा हो, इच्छा हो। और ये जैन मुनि ! 'अहिंसा परमो धर्मः' की बात करते थकते नहीं ! जिनका चौबीस घंटा 'अहिंसा परमो धर्मः' में गुजर रहा है ! रक्त बहाने को तैयार हो जाओ ! मरने-मारने के लिए तैयारी करो ! जेहाद छेड़ दो !

धर्म के नाम पर यही मूढ़ता होती रही है। यह धार्मिकता नहीं है, विक्षिप्तता है। और यह तब तक जारी रहेगी, जब तक आदमी को हम मंदिर और मस्जिद में बांटेंगे, गिरजे में और गुरुद्वारे में बांटेंगे। गिरजा भी अपना, मंदिर भी अपना, मस्जिद भी अपनी, गुरुद्वारा भी अपना। जहां शांत हुए, वहीं तीर्थ। जहां मौन होकर बैठे, वहीं मंदिर। और जहां तुम्हारे प्राणों में प्रार्थना जगी, वहीं मस्जिद। और जहां तुम मस्ती में डोलने लगे, वहीं गिरजा, वहीं गुरुद्वारा। धार्मिक व्यक्ति जहां चलता है वहां तीर्थ बन जाते हैं; जहां बैठता है वही भूमि पवित्र हो जाती है।

लेकिन हमें ये पुरानी धारणाएं छोड़नी होंगी।

इसलिए एक अर्थ में तो उनकी बात सच है कि मेरा आंदोलन खतरनाक है और घातक है। खतरनाक उनके लिए, जो पुरानी विक्षिप्तता को बचाना चाहते हैं; घातक उनके लिए, जिनके स्वार्थ पुराने से जुड़े हैं। लेकिन उनके लिए नहीं, जो मनुष्य के भविष्य को उज्ज्वल करना चाहते हैं; उनके लिए नहीं जो चाहते हैं कि सुबह हो। हां, उनके लिए जरूर घातक है, जो रात को ही बनाए रखना चाहते हैं। उल्लुओं के लिए और उल्लू-पट्ठों के लिए घातक है, क्योंकि उनकी रात गयी और सूरज निकला कि उनके लिए अंधेरा हो जाएगा। बाकी सबके लिए दिन होगा, मगर कुछ उल्लू के पट्ठों को अंधेरा हो जाएगा। उनकी तो रात में ही जिंदगी थी। उनका तो मजा रात में था, अंधेरे में था। तो जो अंधेरे का शोषण कर रहे हैं, जो आदमी को अंधेरे में रखना चाहते हैं, उनके लिए जरूर खतरनाक है और घातक है। अन्यथा जिसको भी थोड़ा-सा जीवन का अनुभव होगा, वह मेरी बात सुनकर आह्लादित होगा, आनंदित होगा। क्योंकि मैं वही कह रहा हूं जो सदा जानने वालों ने कहा है। उसमें जरा भी भेद नहीं है।

'श्री देसाई ने गुजरात के मुख्य मंत्री श्री माधवसिंह सोलंकी के इस वक्तव्य के विरुद्ध अपनी तीखी प्रतिक्रिया की कि 'किसी भी धार्मिक नेता को भारत जैसे लोकतांत्रिक देश में कहीं भी आश्रम बनाने की स्वतंत्रता है' और उन्होंने कहा कि बुरे कामों को बढ़ावा देने के लिए इस स्वतंत्रता का उपयोग नहीं किया जा सकता।'

निर्णायक कौन होगा कि कौन-सा काम बुरा है और कौन-सा अच्छा ? श्री मोरारजी देसाई निर्णायक हैं ? तो तो स्वमूत्र पीना अच्छा काम हो जाएगा। यह देखते हो मोरारजी भैया को, कलियुगी कृष्ण कन्हैया को, स्वमूत्र-बिहारी, गोबर-गिरधारी ! तब तो इनका जो करना है, इनका जो जीवन है, वह शुभ हो जाएगा ? तब तो और

सब अशुभ हो जाएगा। इनसे कोई निर्णय होगा ?!

निर्णय कौन करेगा ?

जैनों से पूछो तो रात्रि-भोजन पाप है, बुरा काम है। लेकिन सारी दुनिया, जैनों को छोड़कर, रात्रि-भोजन करती है। अगर जैनों को निर्णय करना हो तो भारत में उन लोगों के रहने का कोई हक नहीं है जो रात्रि-भोजन करते हैं। मतलब तीस-पैंतीस लाख जैनों को छोड़कर सत्तर करोड़ भारतवासियों को हिंद महासागर में फेंक देना चाहिए, क्योंकि ये रात्रि-भोजन करते हैं और यह महापाप है !

निर्णय कौन करेगा ? जो भी निर्णय करेगा वह अपने को ठीक मान कर चलेगा और दूसरे को गलत। स्वतंत्रता का अर्थ ही क्या होता है फिर ? स्वतंत्रता का अर्थ यह होता है : जिन संबंधों में कोई निर्णय नहीं हो सकते, उन संबंधों में प्रत्येक व्यक्ति को अपने ढंग से जीने की स्वतंत्रता है, जब तक वह दूसरे के ऊपर अपने को आरोपित नहीं करता।

मैं किसी के ऊपर अपने को आरोपित नहीं करता। मैं तो अपने आश्रम के द्वार के बाहर भी नहीं निकलता। हां, जिसको उत्सुकता हो वह मुझे सुनने आता है। मैं तो किसी को सुनाने भी नहीं जाता, आरोपण करने की तो बात दूर। मुझे तो जिसे सुनना है, उसको भी फीस चुका कर सुनना पड़ता है। मुझे सुनने के बाद प्रसाद भी नहीं बंटता। मुझे तो सुनने के लिए कुछ शर्तें पूरी करनी होती हैं तो तुम सुन सकोगे। मैं किसी पर अपने को आरोपित नहीं कर रहा हूं। जिसको सुनना हो, सुन ले, और जिसको जीना हो, जी ले !

स्वतंत्रता का अर्थ क्या है ? अगर हम किसी के द्वारा निर्णय करवाएं, तो स्वतंत्रता उसके लिए बचेगी, बाकी सब के लिए तो परतंत्रता हो जाएगी। अगर हम मांसाहारियों से पूछें तो मांसाहार शुभ है; कुछ भी अशुभ नहीं। क्योंकि मांसाहारियों के हिसाब से परमात्मा ने पशु-पक्षियों को बनाया ही इसलिए कि आदमी उनको खाए। यह तो उनके धर्मशास्त्रों में लिखा हुआ है, कि मनुष्य के लिए ही परमात्मा ने सब कुछ बनाया। तो यह शुभ है, इसमें कुछ अशुभ नहीं है। तो अगर मांसाहारी सही हैं, तो फिर गैर-मांसाहारियों को भारत में रहने का कोई अधिकार नहीं।

जीसस तो शराब पीते थे। इसलिए ईसाइयों में शराब पीना कोई पाप नहीं है। जब जीसस तक शराब पीते हैं तो शराब पीना तो पवित्र हो गया, पुण्य हो गया। तो अगर ईसाइयों को माना जाए तो मोरारजी देसाई को भारत में जीने का कोई हक नहीं है, क्योंकि ये शराबबंदी के पक्ष में हैं। तो भारत में जितने लोग शराब नहीं पीते, वे सब गलत काम कर रहे हैं।

निर्णय कौन करेगा ? स्वतंत्रता का अर्थ ही क्या है ? स्वतंत्रता का यही अर्थ है : जीवन में ऐसी बातें हैं, जिनका कोई निर्णय नहीं कर सकता, कोई निर्णायक नहीं हो सकता। और इसलिए प्रत्येक व्यक्ति को अपनी दृष्टि और अपने प्रकाश के अनुसार जीने का हक है। हां, रुकावट तब डालनी चाहिए जब वह व्यक्ति अपने को दूसरे पर आरोपित करने लगे; जब वह दूसरे के साथ जबरदस्ती करने लगे।

और यह जबरदस्ती है। मोरारजी देसाई का यह कहना है कि मुझे कच्छ में आने की अनुमति नहीं दी जा सकती, यह जबरदस्ती है। यह मेरे साथ जबरदस्ती है और कच्छ के लोगों के साथ जबरदस्ती है। यह दोहरी जबरदस्ती है। क्योंकि अगर कच्छ के लोग मुझे चाहते हैं तो मोरारजी देसाई कौन हैं ? और निश्चित ही कच्छ के लोग मुझे चाहते हैं। यह मोरारजी देसाई के वक्तव्य से ही साफ होता है। उन्होंने अपने वक्तव्य में कहा है--चोर की दाढ़ी में तिनका होता है न, ऐसे उनके वक्तव्य में तिनका है--उन्होंने कहा कि 'आचार्य रजनीश कभी भी कच्छ में अपना आश्रम स्थापित नहीं कर पाएंगे, यदि कच्छ की जनता. . . 'यदि' पर ध्यान देना. . . यदि कच्छ की जनता इकट्ठी होकर उनका विरोध करने का साहस करे।' कच्छ की जनता इकट्ठी है और विरोध करने का साहस भी रखती है, मगर विरोध, मोरारजी देसाई, आपका करेगी। इसके इतने स्पष्ट प्रमाण हैं जिसका हिसाब नहीं। रोज कच्छ से लोग यहां आ रहे हैं और मुझसे प्रार्थना कर रहे हैं कि आप जल्दी करें, हम प्रतीक्षा कर रहे हैं।

गुजरात सरकार के पास पैंसठ संस्थाओं ने मेरा विरोध किया है और तीन सौ साठ संस्थाओं ने मेरा समर्थन किया है। तो निर्णायक कौन है फिर ? और जिन लोगों ने मेरा विरोध किया है, उनमें संस्थाएं केवल बीस हैं। उन बीस में भी अठारह जैनियों की हैं। और बाकी जो पैंतालीस हैं, वे संस्थाएं नहीं हैं, व्यक्तियों के पत्र हैं। एक-एक व्यक्ति ने पत्र लिख दिया है। और मेरे मित्रों ने गुजरात में जाकर और कच्छ में जाकर उन मित्रों से पूछताछ की कि तुमने यह पत्र लिखा, तो उनमें से अनेकों ने कहा, हमें पता ही नहीं किसने हमारे नाम से पत्र लिख दिया। बम्बई के पांच-सात राजनैतिक गुंडे इस सारे काम को कर रहे हैं। और ये पांच-सात आदमी जब मांडवी पहुंचे तो मांडवी के लोगों ने इनकी पिटाई की और इनको निकाल बाहर गांव के फेंक दिया।

कच्छ की जनता तो इकट्ठी है। मगर मोरारजी देसाई के पक्ष में इकट्ठी नहीं है। वक्तव्य साफ है। 'यदि' बता रहा है कि मामला क्या है। 'यदि कच्छ की जनता इकट्ठी होकर उनका विरोध करने का साहस करे', . . .! कच्छ की जनता क्यों विरोध करे ? और जिन लोगों ने, जिन तीन सौ साठ संस्थाओं ने मेरे पक्ष में समर्थन किया है, उनमें ऐसे भी पत्र हैं, एक-एक पत्र में सोलह सौ लोगों के दस्तखत हैं। जिन्होंने विरोध किया, उनमें एक आदमी का दस्तखत है--वह भी संदिग्ध है कि उस आदमी ने किया है या नहीं !

जिस व्यक्ति ने सोलह सौ लोगों के दस्तखत करवा के भेजे हैं, उसकी भी गिनती एक संस्था की तरह हो रही है और जिसने एक पत्र लिखा है, एक आदमी ने, उसकी भी गिनती एक संस्था की तरह हो रही है।

कच्छ की जनता को अगर विरोध करना है, तो कच्छ की जनता करेगी, मोरारजी देसाई को क्या पड़ी है ? मोरारजी देसाई क्यों कच्छ के आसपास चक्कर लगा रहे हैं इधर तीन महीने से ? क्या उनको बेचैनी हो रही है ?

लेकिन अनजाने भी सत्य निकल जाते हैं।

एक ईसाई पादरी—वर्षा नहीं हुई थी और गांव भर के किसानों ने उससे प्रार्थना की कि वर्षा के लिए अब कुछ करो, तो उसने एक रविवार को प्रार्थना का आयोजन किया। सारे गांव के लोग इकट्ठे हों और परमात्मा से प्रार्थना की जाए, जरूर वर्षा होगी। सारे गांव के लोग इकट्ठे हुए। सिर्फ एक छोटा-सा बच्चा छाता लिए हुए पहुंचा। जो मिला उसे रास्ते में, उसीने कहा, अरे मूरख, छाता किसलिए ले जा रहा है ? वर्षा तो हो नहीं रही, आकाश में बादलों का पता नहीं, और तू छाता लेकर निकला है ! और छाता कहीं गंवा मत देना रास्ते में ! उसके मां-बाप ने भी कहा कि छाता किसलिए ले जा रहा है ? और जब पादरी रास्ते में मिला तो उसने भी कहा कि अरे, तू छाता किसलिए लाया ? उस लड़के ने कहा, बड़ी मुश्किल ! मैं तो सोचा जब प्रार्थना होगी तो वर्षा होगी ! तो आप प्रार्थना करवाने जा रहे हैं और बाकी लोग प्रार्थना करने जा रहे हैं, मगर किसीको विश्वास नहीं कि वर्षा होगी। तो भाड़ में जाए ऐसी प्रार्थना, मैं अपने घर चला ! सार ही क्या, एक आदमी छाता नहीं लाया, पादरी खुद ही छाता नहीं लाया, पादरी ही पूछ रहा है इस लड़के से कि छोकरे, यह छाता किसलिए ले जा रहा है ? किसी को भरोसा नहीं है वर्षा का ! वह छाते की गैर-मौजूदगी बता रही है कि करने जा रहे हैं प्रार्थना, लेकिन सब जानते हैं कि कुछ होना है क्या !

अगर कच्छ की जनता को विरोध करना है तो कच्छ की जनता विरोध करेगी—मोरारजी देसाई कोई कच्छी नहीं हैं। इनको क्या पड़ी है ? इनको क्या परेशानी हो रही है ? इनके क्यों प्राण निकले जा रहे हैं ?

और कच्छ की जनता को क्या कायर समझते हो ? क्योंकि जो उन्होंने गुजराती में शब्द उपयोग किया है, वह यह है कि अगर कच्छ की जनता में 'दम' हो, . . . मतलब भड़काने की कोशिश है। दम मारो दम ! . . . कच्छ की जनता में अगर दम हो तो विरोध करे। कोई विरोध कर नहीं रहा है, तो अब जबरदस्ती विरोध को खड़ा करने की कोशिश की जा रही है।

क्यों कच्छ की जनता के पीछे पड़े हो ? तुम्हीं विरोध करो न ! तुम तो अनशन करने में कुशल हो। मेरे खिलाफ अनशन करो तो तुमको पता चलेगा ! मैं कोई गांधीवादी नहीं हूं कि तुम्हारे अनशन से कुछ परेशान हो जाऊंगा। मेरे खिलाफ आमरण अनशन करो ! और मर जाओगे तो हम उत्सव मनाएंगे। कोई मेरी तरफ से नहीं कहने आएगा कि अनशन तोड़ो। कोई संतरे का जूस लेकर तुम्हारे पास हाजिर नहीं होगा। ठीक है, जिसको मरना है उसको मरने की स्वतंत्रता है। जिसको उपवास करके मरना है वह उपवास करके मरे।

यह गांधीवादियों ने खूब इस देश में उपद्रव कर रखा है ! एक गांधीवादी आमरण अनशन कर देता है, दूसरा गांधीवादी संतरे का रस ले कर पहुंच जाता है ! यह षड्यंत्र चलता रहता है। दो-तीन दिन उपवास हो गया, अखबारों में चर्चा हो गयी, अखबारों में फोटो छप गये, फिर संतरे का रस तो तैयार ही है ! कोई मरता ही नहीं। आमरण अनशन कितने होते हैं, कोई मरता ही नहीं।

मेरे खिलाफ आमरण अनशन करो तो तुमको पता चलेगा, कि मैं आशीर्वाद दूंगा कि तुम्हारा अनशन जरूर पूरा हो ! अरे, सभी का काम पूरा होना चाहिए ! तथास्तु ! और मैं देखूंगा कौन तुम्हें रस पिलाता है ? क्योंकि मैं रस पिलाने वालों का विरोध करूंगा। क्योंकि रस पिलाने वाले बेईमान हैं। वे तुम्हारे ही चट्टे-बट्टे हैं, जो पहले ही से रस निकाल कर तैयार रखते हैं। अनशन शुरू होता है, उसके पहले ही रस तैयार हो जाता है। मैं रस भी नहीं पीने दूंगा। मेरे संन्यासियों का जत्था भी तुम्हारे चारों तरफ भजन-कीर्तन करेगा कि कोई रस रात को अंधेरे में एकांत में पिला न जाए। और ग्लूकोज भी पानी में पिला कर पीने नहीं दूंगा। महात्मा गांधी भी ग्लूकोज पीते रहे पानी में मिला कर। वह कोई उपवास है ! किसको धोखा दे रहे हो ?

कच्छ की जनता की दम की फिक्र छोड़ो, मोरारजी देसाई, तुम में कुछ दम हो तो आमरण अनशन कर लो ! यूं भी अब मरने के करीब हो, नाम रह जाएगा कि आमरण अनशन में मर गये !

और उन्होंने कहा कि मैंने तो अपने शासन-काल में आचार्य रजनीश की गतिविधियों की जांच का आदेश दिया था। वह तो तुमने दिया था और मुझ पर बहुत मुकदमे भी तुमने चला रखे थे, परिणाम क्या हुआ, यह सवाल है ! तुम्हारी जांच-पड़ताल से मिला क्या ? तुम्हें हाथ क्या लगा ? तीन साल तुम सत्ता में थे, देश के प्रधान मंत्री थे और तीन साल तुमने जी-जान तोड़ कोशिश की कि तुम्हें कुछ मिल जाए, तुम्हें कुछ भी तो हाथ नहीं लगा। जांच-पड़ताल का आदेश देने से क्या होता है ? यह तो किसी के भी खिलाफ दे सकते हो। जिसके हाथ में सत्ता हो, वह किसी के भी खिलाफ जांच-पड़ताल का आदेश दे सकता है। तुम्हें मिला क्या जांच-पड़ताल से ?

और मैं तो सत्ता में नहीं हूं। लेकिन मैं तुमसे कहता हूं कि मैंने बिना जांच-पड़ताल के तुम्हारे बाबत बहुत-सी बातें पता लगा रखी हैं। कि तुम्हारा एक मुसलमान औरत से नाजायज संबंध रहा है। सिद्ध करो कि नहीं रहा ! हालांकि मैं इसको कुछ बुरी बात

नहीं मानता । यह तो हिंदू-मुसलिम एकता ! अल्लाह-ईश्वर तेरे नाम ! यही तो गांधी जी का संदेश है ! और उससे नाजायज बच्चा भी पैदा हुआ, उससे लड़का भी पैदा हुआ । और उसको पाकिस्तान भगाया । और जब मोरारजी देसाई सत्ता में थे, तो बेगम आयी भी थी घूमने भारत । उसको भारत के सब सर्किट हाउसों में ठहराने की व्यवस्था की गयी थी । दिल्ली में भी विशेष जहां सरकारी मेहमान ठहरते हैं वहां ठहराया गया था । किसी पाकिस्तानी को सभी जगह जाने की आज्ञा नहीं होती । उसको सीमा होती है कि वह एक जगह जाए या दो जगह जाए, उससे ज्यादा कहीं जा नहीं सकता । लेकिन इस बेगम को खुला पासपोर्ट दिया गया था ।

उस नाजायज बच्चे को स्वीकार करो ! और अच्छा लक्षण है ! हिंदू-मुसलमान के मेल से जो पैदा हो...'सन्मति मोरारजी देसाई !' 'सबको सन्मति दे भगवान !'...। ऐसा उसका कुछ नाम रखो ! या 'अल्लाह-ईश्वर', दोनों मिला कर नाम रख लो ।

तुम्हें मिला क्या मेरे खिलाफ जांच-पड़ताल करवाने से ? तीन साल मैं प्रधान-मंत्री रहूं तो तुम्हारी बखिया उधेड़ दूं ! तुम्हारी खटिया खड़ी कर दूं ! तुमने कर क्या लिया ? तीन साल कोशिश करते रहे कि किसी तरह मुझे अदालत में खींच कर खड़ा कर दो, वह भी तुम न कर पाए !

और अंत में श्री देसाई ने कहा कि आचार्य रजनीश मुझे कामदमित मानते हैं और मेरी आलोचना लगातार करते रहते हैं, परंतु मैं उनकी यह आलोचना आशीर्वाद की तरह लेता हूं । झूठ बोलने में भी थोड़ा संकोच तो होना चाहिए । इतने सस्ते में संत न हो जाओगे । न महात्मा हो जाओग । अगर सच में इसमें ईमानदारी है कि तुम मेरी आलोचना में आशीर्वाद लेते हो, तो फिर मेरा विरोध क्यों कर रहे हो कच्छ आने का ? अरे, आशीर्वाद देने वाले व्यक्ति का तो स्वागत करना चाहिए ! पलक-पांवड़े बिछा कर स्वागत करना चाहिए ! अरे, फूल नहीं तो फूल की पांखुरी—जैसे गुजराती कहते हैं । तुम्हें तो स्वागत के लिए झंडा ले कर खड़ा होना चाहिए—अगर मैं आशीर्वाद दे रहा हूं और तुम्हें आशीर्वाद मिल रहे हैं ।

मगर यहां सस्ते में संत हो जाने की चेष्टा चलती है । यह वे अपनी बहादुरी दिखला रहे हैं, संतत्व दिखला रहे हैं । मुझको तुम धोखा न दे सकोगे ! अगर मेरी बातों में आशीर्वाद लगता है, तब तो फिर मुझे गुजरात ही बुला लेना चाहिए । मेरे लिए फिक्र करो कि मैं जल्दी से जल्दी वहां आ जाऊं; जितने पास रहूंगा उतने ज्यादा आशीर्वाद दूंगा । और यहां आ कर बैठो तो रोज आशीर्वाद दूं ।

लेकिन थोथी बातें ! अच्छी बातों के नाम पर थोथी बातें चलती हैं ।

और काम-दमित तो आप हो ही; इसमें आलोचना कुछ भी नहीं है । मैं तो सिर्फ तथ्य की बात करता हूं, आलोचना में मुझे क्या रस ? और मोरारजी देसाई की

आलोचना करके मुझे क्या लेना ! मैं तो दो कौड़ी भी मूल्य नहीं मानता इस तरह के लोगों का । लेकिन तथ्य को मैं तथ्य की तरह कह देना चाहता हूं ।

एक राजनेता ने कुम्हार को डांटा । क्योंकि कुम्हार अपने गधे को इस तरह कसकर पकड़े हुए खड़ा था रास्ते पर कि गधा तड़फ रहा था । कुम्हार भी पसीने-पसीने हो रहा था । राजनेता ने कहा, गधे को तुमने इस तरह कसकर पकड़ रखा है, अरे नालायक, उसे छोड़ता क्यों नहीं ? इस तरह तो वह रस्ता भी पार नहीं कर सकता है । तू भी बिलकुल गधा मालूम होता है—कुम्हार से कहा राजनेता ने—अरे, अपने भाई का कुछ तो ख्याल रख ! कुम्हार बोला, हुजूर, मैंने इसको इसलिए कसकर पकड़ रखा है कि कहीं राजनीति में भरती न हो जाए । आप जो निकल रहे हैं ! आपके डर से इसको कसकर पकड़ रखा है । क्योंकि सत्संग का असर तो होता ही है । और गधा गधा ही है ! बुद्धि कहां है इसमें ! हो जाए राजनीति में भरती ! बाकी सब गधे हो ही गये हैं । गधों की कमी पड़ रही है, क्योंकि सब गधे दिल्ली चले गये हैं । और मेरा कुम्हार का धंधा मिटा जा रहा है ।

इन गधों की आलोचना करके मुझे करना क्या है ?

आलोचना नहीं, मैं तो जो सत्य है उसे वैसा ही कह देता हूं ।

एक राजनेता नदी में डूब रहा था । मुल्ला नसरुद्दीन ने उसे बड़ी मुश्किल से बचाया । बड़ी अपनी जान भी जोखम में डाली । बाहर आकर राजनेता ने बड़ी हिम्मत करके दो रुपये का नोट निकालकर दिया और कहा कि भइय्या, एक रुपया तू रख ले मुझे बचाने का और एक रुपया मुझे वापिस लौटा दे । मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा, नेताजी, यहां तो कोई दूकान भी नहीं कि नोट कहीं भुनाया जाए, आप इसे अपने पास ही रख लीजिए, जब आप दुबारा डूबें तो मुझे दो का नोट दे दीजिए । वैसे अगर मुझसे पूछें तो आपकी कीमत आठ आने से ज्यादा नहीं । इसलिए मैं तो आपको दो रुपये में चार बार भी बचा सकता हूं ?

इनकी कीमत क्या है ? इनकी आलोचना करने से मुझे प्रयोजन क्या है ? लेकिन मैं तथ्य जरूर देश के सामने रख देना चाहता हूं । क्योंकि दो कौड़ी के राजनीतिज्ञ देश की छाती पर सवार हो गये हैं, मूंग दल रहे हैं, देश को बरबाद कर रहे हैं ! इनकी मूढ़ताओं के कारण इस देश के जीवन में कोई क्रांति नहीं हो पा रही है । क्योंकि ये देश की पूरी की पूरी चित्तदशा को व्यर्थ की बातों में उलझाए रखते हैं । जीवन की कोई समस्या सुलझने नहीं देते । सुलझे कैसे, ऐसी समस्याएं खड़ी कर देते हैं जो समस्याएं ही नहीं हैं और उन पर लोगों का ध्यान बंटाते हैं । व्यर्थ की बातें खड़ी कर देते हैं—शराबबंदी होनी चाहिए । जैसे शराबबंदी होने से देश की गरीबी मिट जाएगी । जैसे शराबबंदी होने से देश में धन बरस जाएगा । जैसे शराबबंदी हो जाने से देश में एकदम सोने की खदानें खुल जाएंगी । मगर लोगों का ध्यान आकर्षित करने

के लिए व्यर्थ की कोई भी बकवास ! कि शराबबंदी हो जाए। कि लोगों को चरखा चलाना चाहिए। कि लोगों को खादी पहनना चाहिए।

जीवन की असली समस्याओं से बचने के लिए क्या-क्या तरकीबें निकालते हैं ! जिनसे कुछ भी हल होनेवाला नहीं है।

जीवन को विज्ञान दो !––अगर बाहर की समृद्धि लानी है तो। और धर्म दो अगर भीतर की समृद्धि लानी है तो। मैं दोनों का पक्षपाती हूं। बाहर के जीवन के लिए विज्ञान चाहिए, भीतर के जीवन के लिए धर्म चाहिए। तुम विज्ञान से भी वंचित कर रहे हो देश को––अवैज्ञानिक और व्यर्थ की बातें सिखाकर, ...

अभी कुछ दिन पहले मोरारजी देसाई ने कहा, चिकित्सकों की एक कान्फ्रेंस में, कि कैंसर का इलाज छः सप्ताह के भीतर सिर्फ अंगूर का रस लेने से हो सकता है। चिकित्सक भी थोड़े चौंके ! उन्होंने कहा कि जरा विस्तार से समझाइए। अगर आप कैंसर का मामला हल कर दें, तब तो गजब हो जाए। और छः ही सप्ताह का मामला है। और अभी तक हम तो कोई खोज नहीं पाए कि कैंसर का कैसे इलाज हो।

तो मोरारजी देसाई ने कहा कि छः सप्ताह–– पानी भी नहीं पीना है, सिर्फ अंगूर का रस। तो उन्होंने कहा कि ठीक है, यह कोई बहुत बड़ी बात नहीं है। छः सप्ताह अंगूर के रस पर रखा जा सकता है; फिर मरीज बचेगा ? तो उन्होंने कहा, नहीं, बचेगा तो नहीं, मगर बड़ी शांति से मरेगा।

वह मरेगा ही शांति से ! छः सप्ताह में ऐसे ही मर जाएगा। क्या गजब के लोग हैं ! क्या-क्या समाधान बता रहे हैं ! शांति से मरेगा ! अरे, अशांति के लायक शक्ति भी बचेगी छः सप्ताह में ? एक तो कैंसर मार रहा है और तुम पानी न पीने दोगे, भोजन न करने दोगे, दवा न लेने दोगे; अंगूर का रस पिला-पिला कर कुछ बचा-खुचा होगा तो वह भी मार डालोगे। छः सप्ताह में अपने-आप शांत हो जाएगा––ठंडा हो ही जाएगा। क्या गजब का इलाज बताया !

चिकित्सक तो पहले सोचे थे कि इलाज मिल गया। तब अपना सिर ठोंक लिया होगा ! कि मरेगा तो निश्चित ही, बचाया तो जा नहीं सकता, तो फिर इलाज कैसा है यह ? बात ऐसी की थी जैसे इलाज खोज लिया। और परिणाम क्या निकला ?

इस देश के नेताओं की अगर बातें तुम सुनो, तो पहाड़ खोदो और चूहा भी न निकले। पुरानी कहावत थी कि पहाड़ खोदा और चूहा निकला। अब चूहा भी नहीं निकलता। पहाड़ खोद कर तुम्हीं खतम हो जाओगे, चूहा वगैरह कुछ नहीं निकलेगा। यह देखा––छः सप्ताह अंगूर का रस! कैंसर का इलाज खोज लिया इन्होंने! फिर होश आया होगा कि इसमें तो फंसेंगे कि छः सप्ताह में, कोई बड़ी बात तो है नहीं, छः सप्ताह अंगूर के रस पर आदमी को रखा जा सकता है––और कैंसर ठीक न हुआ तो फिर क्या होगा ! तब तत्क्षण उन्होंने बदल दिया। दांव बदल दिया। अरे, राजनेता को बदलने में क्या देर लगती है ! वह तो मौसम की तरह बदलता है––गिरगिट की तरह बदलता है। 'मरेगा तो मरीज जरूर, लेकिन शांतिपूर्वक मरेगा। उसकी मौत बड़ी शांत होगी।'

क्या-क्या दलीलें लोग खोज लेते हैं !

सर्कस के एक मैनेजर से एक दर्शक ने पूछा, 'आप कैसे कह सकते हैं कि आपके सर्कस का बौना संसार का सबसे छोटा बौना है ?'

'वह तो है'––मैनेजर बोला––'जब उसके पांव में दर्द होता है तो वह समझता है कि सिर में दर्द हो रहा है।'

देखते हैं, क्या गजब के लोग ! अरे, कितना ही बौना हो, बिलकुल चींटी भी हो, तो भी पैर में दर्द होगा तो सिर में दर्द थोड़े ही समझ लेगा !

एक लड़का झूठ बोल रहा था। उसके राजनेता पिता ने कहा, 'देख बेटा, झूठ मत बोल। बंद कर झूठ बोलना, नहीं तो तेरे सिर पर सींग निकल आएंगे।'

लड़का बोला, 'ओह बापू, मुझे झूठ से डराने के लिए आपको कितना बड़ा झूठ बोलना पड़ रहा है ! और आपके अभी तक सींग नहीं निकले ! राजनीति में रह कर और सींग नहीं निकले ! और मैं जरा-सा झूठ बोलूंगा और सींग निकल आएंगे !'

एक बेटा लौटा स्कूल से। एकदम भागा आया, हड़बड़ाया। अपने राजनेता पिता से उसने कहा, 'बापू, रास्ते में एक शेर मिल गया। अरे, शेर बब्बर ! बड़ा भयानक शेर ! और मेरे पीछे पड़ गया।'

बाप ने कहा कि देख, तुझसे मैं अरबों-खरबों बार कह चुका हूं कि झूठ मत बोल। . . . अरबों-खरबों बार ! . . . कि झूठ मत बोल, अतिशयोक्ति मत कर ! सड़क पर कहां का शेर बब्बर मिल जाएगा ! कहां है वह शेर बब्बर ?

उस लड़के ने कहा, 'है, वह बाहर खड़ा है। खिड़की में से आप खुद ही देख लो।'

देखा, एक मरियल कुत्ता कि अब मरा तब मरा, वह खड़ा था। बाप ने कहा, 'मुझे पता ही था। तू जा ऊपर और भगवान से प्रार्थना कर, क्षमा मांग, कि अब अतिशयोक्ति कभी नहीं करूंगा; झूठ नहीं बोलूंगा।'

लड़का ऊपर गया। मगर राजनीतिज्ञ का बेटा, पहले ही से गणित सीखना शुरू कर देता है। अब जब यह बाप ही खुद कह रहा है कि अरबों-खरबों बार तुझसे कह चुका ! अरबों-खरबों बार कहने का मतलब कम-से-कम एक लाख बार रोज कहो, तब कभी अरबों-खरबों बार हो सके। अभी बेटे की उम्र ही कितनी है ! खुद ही अतिशयोक्ति कर रहा है। खुद ही झूठ बोल रहा है।

बेटा थोड़ी देर में वापिस आया। बाप ने कहा, 'तूने प्रार्थना की परमात्मा से ? क्षमा मांगी ?'

उसने कहा, 'मैंने मांगी; मगर परमात्मा क्या बोला, आपको मालूम ?' बाप

और चौंका, बोला कि अब परमात्मा भी बोला ! 'क्या बोला ?' 'परमात्मा ने कहा, --बेटा कहने लगा--' कि तू चिंता मत कर । तेरी कोई भूल नहीं । अरे, पहले जब मैंने कुत्ते को देखा था तो मैं भी यही समझा था कि शेर बब्बर है । वह तो जब मेरे बाप ने मुझे डांटा, तब मैं समझा कि कुत्ता है । तेरी कोई गलती नहीं । मुझे भी धोखा हो गया था ।'

झूठ में तो फिर पंख लगते जाते हैं । एक झूठ से दूसरा झूठ निकलता आता है ।

अब मोरारजी देसाई सत्य बात को छुपाने के लिए झूठ पर झूठ बोल जाते हैं । सत्य बात कुल इतनी है कि मेरा गुजरात आना, गुजरात में जो किसी तरह की ठेकेदारी लिए बैठे हैं--चाहे धर्म की ठेकेदारी हो, चाहे राजनीति की--उनके प्राण खलबली में पड़ गये हैं । क्योंकि मैं वहां आऊं तो उन्हें पक्का पता है कि उनकी पुरानी ठेकेदारी उखड़ जाएगी । वह बात तो कहेंगे नहीं । संस्कृति और धर्म को खतरा है ! और जनता को उकसाने की कोशिश, भड़काने की कोशिश ! यह गुंडागर्दी है सीधी और कुछ भी नहीं । चाहे इसको गांधीवादी गुंडागर्दी कहो--कुछ फर्क नहीं पड़ता--मगर सब गुंडागर्दी है । अगर तुम सत्य हो तो इतना क्या डर है तुम्हें ? मैं आऊंगा, आमना-सामना हो लेगा । तुम अपना सत्य लोगों को कह देना, मैं अपना सत्य लोगों को कहूंगा । और मैं तो कहीं घूम कर कहूंगा भी नहीं । मैं तो अपनी जगह बैठ कर कहूंगा, जिसको सुनना होगा, आएगा । तुम घूम-घूम कर लोगों को समझाना । अगर तुम्हारी बात में कुछ बल होगा तो लोग जरूर मान लेंगे । क्या इतने घबड़ाते हो ? मैं तो तुमसे नहीं घबड़ाया । मैं तो तुमसे नहीं डरा हुआ हूं । मुझे तो किसी का कोई भय नहीं है । मुझे जो कहना है, वही कह रहा हूं । और वही कहता रहूंगा ।

और क्या तुम सोचते हो, पूना भारत के बाहर है, कच्छ भारत के भीतर है ? पूना ही से बरबाद कर दूंगा तुम्हारी संस्कृति को । अरे, बरबाद ही करना है तो कहीं से भी कर दूंगा । और तुम्हारे धर्म को उखाड़ ही फेंकना है तो यहीं से उखाड़ फेंकूंगा । उसके लिए कच्छ आने की खास क्या जरूरत है ! लेकिन सब ठेकेदार अपने-अपने अड्डे बांधे हुए हैं । उनकी सीमा के भीतर उनको डर लगता है । बाहर उन्हें क्या प्रयोजन है ? गुजरात मैं न आ जाऊं, वह भय है !

और उनको इस बात का भी भय है कि गुजरात के पास इस देश की प्रबुद्धतम जनता है । . . . मैं सारे देश में घूमा हूं । मुझे गुजरात से निश्चित रूप से प्रेम है । और मेरे प्रेम का कारण है, कि गुजरात में मैंने सबसे ज्यादा विचारशील वर्ग देखा । और इसलिए मैं जानता हूं कि मेरा वहां पहुंचना गुजरात में एक हवा पैदा करेगा, एक क्रांति ले आने वाला है । और ये सब झूठे सिक्के एकदम चलन के बाहर हो जाएंगे । उस बात को छिपाने के लिए क्या-क्या ऊंची बातें हो रही हैं ! सीधी बात कहो न कि तुम्हारे झूठे सिक्कों को घबड़ाहट हो रही है कि कहीं चलन के बाहर न हो जाएं ! और

एकाध को ही नहीं हो रही, इस तरह के और लोग भी हैं । एक तरफ राजनेता हैं, दूसरी तरफ धर्मगुरु हैं । यह दूसरा प्रश्न इस बात को स्पष्ट करेगा--

भगवान, एक समाचार में श्री शंभू महराज ने आप को चुनौती दी है कि आप गुजरात आ कर मेरे साथ खुला विवाद करें । आप जनता के सामने बाहर क्यों नहीं आते ? उन्होंने कहा कि जैसी हालत दुखी और भूखी गायों की है, वैसी ही भारत की साठ प्रतिशत जनता की है । तो क्या रजनीश जी के सिद्धान्त के अनुसार गायों की तरह जनता की भी हत्या कर देनी चाहिए ?

श्री शंभू महराज ने यह भी कहा कि गीता भारती आश्रम में उनका सात दिन तक प्रवचन हो रहा था तो आप अहमदाबाद आए थे और स्वामी अतुलानंद की अगवानी में अहमदाबाद के साधु-संत इकट्ठे हुए थे और उन्होंने आपको चर्चा करने के लिए आमंत्रण दिया था, तब आप चर्चा करने के लिए नहीं आए । इसलिए शंभू महराज का कहना है कि रजनीश जी में ज्ञान का घमंड होने के कारण पागलपन दिखायी देता है । राजा रावण का भी ज्ञान के घमंड के कारण सर्वनाश हुआ था । जिसका पतन होने वाला होता है उसे ऐसी ही दुर्बुद्धि घेर लेती है ।

उन्होंने यह भी कहा है कि संत विनोबा भावे ने गोवध बंद करने के लिए अनशन किया था तो क्या वे मूढ़ हैं ?

भगवान, निवेदन है कि श्री शंभू महराज के इस वक्तव्य पर कुछ कहें ।

चैतन्य सागर !

पहली तो बात, जो चुनौती दे, उसे आना चाहिए । अगर शंभू महराज मुझे चुनौती देते हैं तो उन्हें आना चाहिए । यह तो सीधा चुनौती का नियम है । मैं क्यों आऊं ? चुनौती वे दें और जाने का कष्ट मैं लूं ! चुनौती दी है तो आने की हिम्मत करो ! यह तो चुनौती की सामान्य प्रक्रिया है । शंकराचार्य ने चुनौती दी थी तो सारे देश में घूम-कर उनको जिन-जिन को चुनौती दी थी, उनसे विवाद करने जाना पड़ा था । अगर मुझे चुनौती देते हैं तो मैं तैयार हूं ! जरूर आ जाएं, स्वागत है ! मजा आ जाएगा !

और वे कहते हैं, 'आप जनता के सामने बाहर क्यों नहीं आते ?' मैं कोई राज-नेता नहीं हूं । जनता से मुझे क्या लेना-देना है ? जिसको मुझसे कुछ लेना-देना हो, वह मेरे पास आए । मैं क्यों किसी के पास जाऊं ? कुआं प्यासे के पास नहीं जाता, जिसको प्यास लगी हो वह कुएं के पास आता है । जिसको प्यास लगी हो, वह मेरे पास आए । मेरे जाने का कोई सवाल नहीं उठता । और जनता को कोई मैं मूल्य नहीं देता हूं । जनता का अर्थ होता है : भेड़ों की भीड़ ।

मेरे लिए मूल्य है व्यक्ति का, जनता का नहीं। मेरे लिए मूल्य है आत्मा का, भीड़ का नहीं। एक-एक व्यक्ति का मेरे मन में सम्मान है, लेकिन भीड़ का मेरे मन में कोई सम्मान नहीं है। भीड़ इकट्ठी ही होती है उनकी जिनके पास व्यक्तित्व नहीं होता। जिनके पास अपनी निजता नहीं होती, वही भीड़ में खड़े होते हैं। सिंहों के नहिं लेहड़े। पुरानी कहावत है कि सिंह कोई भीड़-भाड़ में नहीं चलते; भेड़ें चलती हैं। और भेड़ें क्यों चलती हैं भीड़-भाड़ में? क्योंकि अकेले में उनको डर लगता है, भय लगता है।

एक स्कूल में एक शिक्षक ने अपने एक विद्यार्थी से पूछा कि तेरे घर में तो भेड़ें हैं, एक सवाल का जवाब दे। अगर बाड़े में दस भेड़ें बंद हों और एक भेड़ बाड़े से बाहर निकल जाए, तो कितनी पीछे बचेंगी? उस लड़के ने कहा, एक भी नहीं बचेगी। उसने कहा, तू कुछ होश की बातें कर! मैं कह रहा हूं एक भेड़ बाहर निकले और दस भेड़ें बंद हैं! तूने प्रश्न सुना कि नहीं? उसने कहा, मैंने प्रश्न सुना। तो उसके शिक्षक ने कहा, तुझे गणित आता है कि नहीं फिर? इतना भी गणित नहीं आता सीधा-सा कि जब एक भेड़ बाहर निकलेगी तो कितनी पीछे बचेंगी? उसने कहा, गणित की फिक्र करूं कि भेड़ों की फिक्र करूं! मेरे घर में भेड़ें हैं। यह प्रश्न आप किसी से पूछना जिसके घर में भेड़ें न हों; तो वह कहेगा, नौ बचेंगी; क्योंकि वह सिर्फ गणित को समझ कर चलेगा। मेरी मजबूरी यह है कि मैं भेड़ों को जानता हूं। अगर एक बाहर कूद गयी, तो बाकी नौ भी कूद जाएंगी। भेड़ें तो अंधी होती हैं, भीड़ में चलती हैं। एक भेड़ चल गयी कि बाकी भेड़ें चल पड़ीं।

जनता भेड़ों से भरी हुई है। जनता से मुझे क्या लेना-देना है! मुझे व्यक्तियों से संबंध है। भेड़ क्या समझेगी? भीड़ क्या समझेगी? वह भीड़ तो दकियानूसी है, वह तो पुरातनपंथी है। उसे तो बंधी-बंधायी बातें ही समझ में आने वाली हैं।

एक दूसरे वक्तव्य में उन्होंने कहा है कि मैं आचार्य रजनीश को अपना गुरु स्वीकार कर सकता हूं, अगर वे स्वयं को गोपाल सिद्ध करें, कृष्ण सिद्ध करें। उनको शायद पता नहीं है कि वे क्या कह रहे हैं! हां, जनता भी प्रसन्न होगी, क्योंकि भेड़ें हैं, उनको कुछ समझ में नहीं... इनको भी कुछ समझ नहीं कि क्या कह रहे हैं! कृष्ण की सोलह हजार पत्नियां थीं और दूसरों की विवाहित स्त्रियों को भगा लाए थे। क्या शंभू महराज तब मुझे अपना गुरु स्वीकार करेंगे जब मैं दूसरों की स्त्रियां भगा कर सोलह हजार स्त्रियां इकट्ठी खड़ी कर दूं? सिर्फ शंभू महराज को शिष्य बनाने के लिए इतना उपद्रव करूं! अरे, एक ही स्त्री तो नर्क ले जाने के लिए काफी है, सोलह हजार! और वे भी दूसरों की भगायी गयी स्त्रियां; जिनसे उनका विवाह भी नहीं हुआ था!

और इस दुराचरण को जनता तो माने चली जाती है। इसको कहती है, यह भगवान की लीला! और अभी कोई यह लीला करे, तो फौरन उसको कारागृह में डालो। क्या तुम चाहते हो शंभू महराज कि मैं झाड़ों पर बैठ कर स्त्रियों के कपड़े चुराकर और लीला करूं! तब तुम मेरे शिष्य बनोगे? एक शिष्य बनाने के लिए क्या-क्या उपद्रव मुझे करने पड़ेंगे! और तुम्हें शिष्य बना कर क्या करूंगा? फिर तुमसे भी मुझे यही काम लेना पड़ेगा——अरे, जो गुरु करेगा, वही शिष्य से करवाएगा ——कि भइय्या जाओ, स्त्रियों के कपड़े चुराओ, नदियों के किनारे बैठो, झाड़ों पर चढ़ो, दूसरों की स्त्रियां भगाओ! अगर गुरु ने सोलह हजार भगायीं, तो तुम कम-से-कम थोड़ी तो भगाओ, सोलह सौ सही! करोगे क्या? तुम्हें रख कर क्या करूंगा और?

कृष्ण ने इस देश में महाभारत का युद्ध करवाया। जो लोग शास्त्रों का हिसाब-किताब लगाते हैं, वे कहते हैं कोई एक अरब से ले कर सवा अरब लोगों की हत्या हुई। और ये शंभू महराज, गो-हत्या बंद होनी चाहिए, इसका आंदोलन चलाते हैं। मेरे खिलाफ हैं वे इसीलिए की उन्होंने मुझसे कहा था कि मैं आपका शिष्य हो सकता हूं अगर आप भी गो-हत्या बंद हो, इसका आंदोलन चलाएं। मैं भी इनकी मूढ़ताओं में सम्मिलित होऊं तो मैं इनका गुरु होऊं!

मेरे सामने बड़े सवाल हैं। गो-हत्या हो या न हो, यह कोई सवाल नहीं है।

और तुम कौन हो? तुम लोगों को समझाओ कि मत खाओ गो-मांस, यह बात समझ में आती है। लेकिन सरकार जबरदस्ती करे लोगों के साथ कि गो-मांस मत खाओ, यह बात समझ में नहीं आती। अगर तुम्हारी बात सच है तो फैलाओ, समझाओ; लोगों के मन को बदलो। लेकिन वह तो बनता नहीं! क्योंकि कौन मुसलमान तुमसे राजी होगा?

और भारत में तुम क्या सोचते हो सब शाकाहारी हैं? यह भ्रांति छोड़ दो! यहां मुश्किल से दो-तीन प्रतिशत लोग शाकाहारी हैं। अधिकतर लोग मांसाहारी हैं। सारी दुनिया मांसाहार पर जी रही है। अगर मांसाहार सारी दुनिया में बंद हो जाए, तो आदमी की मौत हो जाए।

कृष्ण ने एक अरब से ले कर सवा अरब लोगों की हत्या करवा दी——और अर्जुन को दलील क्या दी थी? और ये मुझसे कहते हैं, अगर मैं गोपाल हो जाऊं तो ये मेरे शिष्य हो जाएंगे। एक अरब, सवा अरब लोगों की हत्या करवाऊं, तब ये मेरे शिष्य होंगे! और दलील क्या थी उनकी, उस दलील को तो सोचो! दलील यह थी कि शरीर के मरने से आत्मा नहीं मरती। अरे, शंभू महराज, इतना ही समझो कि गौ के शरीर के मरने से गौ की आत्मा नहीं मरती, बात खत्म हो गयी, गीता तुम्हें समझ में आ गयी। जब आदमी के शरीर के मरने से आत्मा नहीं मरती, तो गो-वध कैसा?

फिर किसको बचाने में लगे हो?

और कृष्ण ने गीता में यह भी कहा——जिसके ये भक्त हैं; और ये जगह-जगह

श्रीमद्भागवत सप्ताह करवाते फिरते हैं––कृष्ण ने यह भी कहा कि परमात्मा जिसको मारना चाहता है, उसको मार ही चुका है, अर्जुन, तू तो निमित्त मात्र है। तो बेचारे ये कसाई, जो जगह-जगह गो-हत्या कर रहे हैं, ये भी निमित्त मात्र हैं। जब परमात्मा नहीं मारना चाहेगा, तो ये मार सकेंगे ? ये ही तो शंभू महराज जैसे लोग कहते हैं कि परमात्मा की बिना मर्जी के पत्ता नहीं हिलता। और गो-हत्या हो रही है ! जरूर उसका इरादा होगा हत्या करवाने का। नहीं तो कैसे पत्ता हिलेगा ?

और कृष्ण से पूछो ! कृष्ण तो कहते हैं, जिनको उसे मारना है वह मार ही चुका, अर्जुन, तू फिक्र मत कर। तू तो निमित्त मात्र है। ये तो मर ही चुके हैं, धक्का दे दे, गिर जाएंगे। तू यह सोच ही मत कि तूने मारा।

यही गीता तो ये कसाई पढ़े बैठे हैं। पहले तो इस गीता को बदलो, अगर तुम्हें गो-हत्या बंद करवानी है। और तुम मुझसे चाहते हो कि मैं भी गोपाल जैसा हो जाऊं, कृष्ण जैसा हो जाऊं, तब, तब तुम मेरे शिष्य बनोगे !

और जनता में मेरा कोई रस नहीं है। मैं उन लोगों में से नहीं हूं जो जनता को जनार्दन मानते हैं। ये सब राजनैतिक चालबाजियां हैं जनता को फुसलाने की; उनसे मत इकट्ठे करने की चालबाजियां हैं। मैं तो अपने सत्य को, जो मैंने जाना है और जीआ है, उसको कहना चाहता हूं। और सिर्फ उनसे कहना चाहता हूं, जिनके पास इतनी प्रतिभा है कि समझ सकें। भीड़-भाड़ से मुझे कोई प्रयोजन नहीं है।

और चुनौती तुम दो और मैं गुजरात आऊं ! और ऐसे मैं गुजरात आ ही रहा हूं, तो उसका विरोध क्या है फिर ? फिर वहीं चुनौती भी निपट लेंगे। मैं गुजरात आ ही रहा हूं, बिलकुल ही आ रहा हूं, वहीं टिकूंगा। फिर तुम आ जाना मेरे कम्यून में और तुम्हें जो विवाद करना हो कर लेना।

मगर इस तरह के लोग क्या-क्या फिजूल की बातें करते हैं ! क्या दलील निकाली उन्होंने, कि 'जैसे दुखी और भूखी गायों की हालत है, वैसी ही भारत की साठ प्रतिशत जनता की है। तो क्या रजनीश जी के सिद्धान्त के अनुसार गायों की तरह जनता की भी हत्या कर देनी चाहिए ?' अगर यह दलील ठीक से लागू करनी हो, तब तो मच्छरों को भी नहीं मारना चाहिए, खटमलों को भी नहीं मारना चाहिए, चूहों को भी नहीं मारना चाहिए। और जब बीमारी हो जाए––टी. बी. हो जाए, मलेरिया हो जाए, तो इंजेक्शन नहीं लेने चाहिए, दवा नहीं खानी चाहिए, क्योंकि कीटाणु मरेंगे। सच तो यह है, श्वास ही नहीं लेनी चाहिए, शंभू महराज ! क्योंकि हर श्वास में कोई एक लाख जीवाणु मर जाते हैं। इससे बड़ा और क्या कसाईपन होगा ? एक-एक श्वास में एक लाख जीवाणु मर जाते हैं। तुम्हारे शरीर में कोई सात अरब जीवाणु हैं और प्रतिदिन उन में से लाखों जीवाणु मर रहे हैं। वे ही तो तुम्हारे बाल और नाखून बन कर निकलते हैं। वे ही तो मल-मूत्र बनकर निकलते हैं। तुम दवा लेना बंद कर दो। दवाओं का विरोध करो, क्योंकि इससे जीवाणु मर जाते हैं। सांस का विरोध करो कि कोई सांस न ले, क्योंकि इससे जीवाणु मर जाते हैं। जीने का ही विरोध करो, क्योंकि कोई जीएगा तो कोई मरेगा।

मैं तो चंडीदास के वचन में भरोसा करता हूं––'साबार ऊपर मानुस सत्य, ताहार ऊपर नाहीं।' सबसे ऊपर मनुष्य का सत्य है, उसके ऊपर कोई और सत्य नहीं। इसलिए अगर मनुष्य को बचाने की जरूरत हो, तो कीटाणुओं को भी मारना पड़े तो मारना पड़ेगा। अगर मनुष्य को बचाने की जरूरत हो, चूहों को मारना पड़े तो मारना पड़ेगा; खटमलों को मारना पड़े तो मारना पड़ेगा; मच्छरों को मारना पड़े तो मारना पड़ेगा। क्योंकि मनुष्य इस जगत में चैतन्य का सबसे ऊंचा आविष्कार है। निश्चित ही श्रेष्ठ को बचाने के लिए निकृष्ट को विदा करना होगा। हां, अगर निकृष्ट भी बच सकता हो श्रेष्ठ को बिना हानि पहुंचाए, तो मुझे कोई एतराज नहीं है।

भारत अकेला देश है जो गो-भक्त है। भारत भी पूरा नहीं, सिर्फ हिंदू। न ईसाई, न सिक्ख, न जैन, न मुसलमान, न पारसी––इन सब को छोड़ दो। सिर्फ हिंदू। और हिंदू ही सिर्फ भारत नहीं हैं, हिंदुओं की संख्या तो बीस करोड़ है, बाकी पचास करोड़ लोग और भी इस देश में हैं। यह हिंदुओं की धारणा को बाकी पचास करोड़ लोगों के ऊपर थोपने का किसको अधिकार है ?

और विनोबा भावे ने जो अनशन किया था, उसको मैं हिंसा मानता हूं। वह जबरदस्ती है। वह हिंदुओं की जबरदस्ती है। फिर जिन्ना ठीक ही कहता था कि अगर भारत एक रहा, तो हिंदू जबरदस्ती करेंगे। वह जबरदस्ती दिखाई पड़ती है। फिर तो जिन्ना ठीक था और गांधी गलत थे। अच्छा किया उसने कि पाकिस्तान तोड़ लिया। फिर तो सिक्ख भी ठीक हैं, उनको भी सिक्खिस्तान तोड़ लेना चाहिए। फिर तो ईसाई भी ठीक हैं, उनको भी कहना चाहिए हमें ईसाइस्तान अलग कर दो। और जैनियों को अपना जैनिस्तान अलग कर लेना चाहिए। और पारसियों को कहना चाहिए––बंबई हमारी ! फिर हिंदू अपनी गो-रक्षा करें, जो उनको करना हो ! सब गौवों को ले जाएं और रक्षा करें, जो उन्हें करना है, करें !

यह देश सबका है, इसमें हिंदू धारणाओं को जबरदस्ती नहीं थोपा जा सकता। हिंदू धारणा थोपनी है, मगर बातें ऊंची कर रहे हैं। बातें अहिंसा की कर रहे हैं और हिंसा करने का आग्रह है। यह क्या है विनोबा का अनशन करना कि मैं मर जाऊंगा अगर गो-हत्या पर निषेध नहीं लगाया गया ? यह हिंसा की धमकी है। किसी को मारने की धमकी दो या मरने की धमकी दो, बात तो एक ही है। किसी की छाती पर छुरा रख दो या अपनी छाती पर छुरा रख लो और कहो कि मैं मर जाऊंगा––यह बात तो एक ही है, इसमें कुछ भेद नहीं है; इसमें कुछ अहिंसा नहीं है। यह शुद्ध

हिंसा है और जबरदस्ती है । और एक आदमी जबरदस्ती करे और सारे देश पर अपने इरादे को थोप देना चाहे, यह कैसा लोकतंत्र है ?

हिंदुओं को गऊ बचानी है, बचाएं ! कौन मना करता है ? कल मुसलमान कहने लगेंगे सबका खतना होना चाहिए । वे भी खतने के लिए आधार खोज सकते हैं । यहूदियों ने खोज लिए हैं, शंभू महराज ! यहूदियों ने किताबें लिखी हैं कि खतने के बड़े फायदे हैं । उन फायदों में एक फायदा उन्होंने यह गिनाया है कि जब व्यक्ति का खतना किया जाता है तो उसकी बुद्धि विकसित होती है । और उनके दावे हैं कि दुनिया में सब से ज्यादा नोबल प्राइज यहूदियों को मिलती है, क्यों ? क्योंकि उनके खतने होते हैं । और खतना जल्दी करना चाहिए––जितनी जल्दी हो उतना फायदा । इसलिए मुसलमान का खतना तो जरा देर से होता है, उसको यहूदी नहीं मानते । यहूदी तो मानते हैं, बच्चा पैदा हो, जितनी जल्दी खतना हो उतना अच्छा । क्योंकि उसकी ऊर्जा जननेंद्रिय से हटकर एकदम मस्तिष्क में प्रवेश हो जाती है । क्योंकि जब उसकी जननेंद्रिय की चमड़ी काटी जाती है तो ऊर्जा एकदम सरक जाती है जननेंद्रिय से मस्तिष्क में और प्रतिभा पैदा हो जाती है ।

अगर इस तरह की बेवकूफियों को एक-दूसरे पर थोपने का आग्रह शुरू हो जाए, तब तो बड़ी मुश्किल हो जाएगी ।

गो-हत्या नहीं होनी चाहिए । क्यों ? क्योंकि जीव-दया ! तो मच्छर क्यों मारते हो ? और यह कैसी जीव-दया है ? दया करनी हो तो मच्छर पर करो, तो कुछ पता चले ! क्योंकि गऊ का तो तुम शोषण करते हो । उसके बछड़ों के लिए जो दूध है, वह खुद पीते हो । और कहते हो कि गऊ-भक्त हूं मैं । गऊ को माता कहते हो और उसके असली बेटों को वंचित करते हो, उसके असली बेटों को भूखा मारते हो । शंभू महराज दूध पी रहे हैं और नंदी महराज भूखे बैठे हैं ! और असली बेटा नंदी महराज है, शंभू महराज नहीं । नंदी महराज बैठे देख रहे हैं कि यह क्या हो रहा है ! जरा नंदियों से तो पूछो; तो वे कहेंगे कि बाबा, यह दूध हमारे लिए है ! अगर तुम्हारी गऊ-भक्ति इतनी बड़ी है तो अपनी स्त्रियों का दूध बछड़ों को पिलाओ, तो समझ में आएगी गऊ-भक्ति है । यह कैसी गऊ-भक्ति कि दूध पी रहे हैं उनका, चूस रहे गउओं को और बातें कर रहे गऊ-भक्ति की !

फिर तुम मच्छड़ों की भक्ति करो; मच्छड़-भक्त हो जाओ ! क्योंकि मच्छड़ तुम्हारा खून चूसते हैं––तब पता चलेगा भक्ति का ! लेट जाओ खाटों पर नंग-धड़ंग, चूसने दो मच्छड़ों को, खटमलों को पिलाओ खून और कहो कि ये. . .तब मैं कहूंगा कि यह भक्ति है। क्योंकि भक्ति में कुछ तुम दो तो भक्ति है । यह कैसी भक्ति है कि उल्टा ले रहे हो !

गउओं से तो पूछो कि तुमने उनकी क्या गति कर दी है। सारी दुनिया में गउओं

की हालत बेहतर है, भारत को छोड़कर । भारत अकेला देश है जहां गउओं की सबसे दयनीय दशा है । हड्डी-हड्डी हो रही है; मांस सूख गया है और लोग दूध खींचे जा रहे हैं, निचोड़े जा रहे हैं । निकलता भी नहीं कुछ । दो पाव निकल आए तो बहुत । सेर भर निकल आए तो गजब !

स्वीडन में एक गाय उतना दूध देती है जितना भारत में चालीस गायें देती हैं । और स्वीडन में कोई लोग गऊ-भक्त नहीं हैं । स्विट्ज़रलैंड में कोई गऊ-भक्त नहीं हैं ।

अब यहां मेरे पास संन्यासी हैं, सारी दुनिया से आए हुए । ' विवेक ' मुझसे बार-बार कहती है कि अगर आप एक दफा पश्चिम की गाय का दूध पी लें तो फिर गाय का दूध, भारत का दूध तो पीने जैसा ही नहीं है । न इसमें स्वाद है । क्योंकि वह मुझे कह रही थी कि हमने तो कभी सुना ही नहीं था पश्चिम में कि दूध में और शक्कर मिलायी जाती है । दूध खुद ही इतना मीठा होता है । उसमें शक्कर मिलाने की बात ही बेहूदी है । और दूध इतना गाढ़ा होता है, इतना पौष्टिक होता है ! और ये कोई गऊ-भक्त देश नहीं हैं ! लेकिन कारण है उसका । उतनी ही गउएं बचाते हैं वे, जितनी गउओं को ठीक पोषण दिया जा सके, ठीक जीवन दिया जा सके, सुविधा दी जा सके ।

तुम गउओं को क्या दे रहे हो ? और तुम बातें दया की कर रहे हो ! यह ज्यादा दयापूर्ण होगा कि ये मरती हुई गउओं को सड़कों पर सड़ने के बजाय, ' पिंजड़ा पोलों ' में सड़ने के बजाय मुक्त कर दो, इनकी सड़ी-गली देह से इनको मुक्त कर दो ! यही मैंने कहा था । उससे उनको अड़चन हो गयी है, बेचैनी हो गयी है । मैंने इतना ही कहा था कि भारत उतनी ही गउएं बचा ले जितनी गउएं बचा सकते हैं हम । जब ज्यादा बचा सकेंगे तो ज्यादा बचा लेंगे । यह दया का काम होगा ।

लेकिन उन्होंने क्या तरकीब निकाली ! उन्होंने यह तरकीब निकाली : ' इसका तो मतलब यह हुआ कि भारत में फिर चालीस प्रतिशत लोगों को छोड़ कर साठ प्रतिशत तो दीन-हीन हैं, तो इनकी भी हत्या कर दी जाए ? ' मैं नहीं कहूंगा कि इनकी हत्या कर दी जाए । लेकिन अगर तुमको गउएं बचानी हैं तो इनकी हत्या हो जाएगी । तुम इसके लिए जिम्मेवार होओगे । अगर भारत में थोड़ी वैज्ञानिक बुद्धि का उपयोग किया जाए तो भारत की साठ प्रतिशत जनता भी सुखी हो सकती है, आनंदित हो सकती है ।

और अगर मेरी बात न सुनी गयी और शंभू महराज जैसे लोगों की बातें सुनी गयीं, तो वह साठ प्रतिशत जनता––मैं तो नहीं कहता कि मारी जाए––लेकिन प्रकृति मार डालेगी । अकाल में मरेगी, भूख में मरेगी, बाढ़ में मरेगी, बीमारियों में मरेगी । इस सदी के अंत में तुम देख लेना, इस सदी के पूरे होते-होते भारत

में दुनिया का सबसे बड़ा अकाल पड़ने वाला है। सारी दुनिया के वैज्ञानिक घोषणा कर रहे हैं। क्योंकि इस सदी के पूरे होते-होते भारत की संख्या चीन से आगे निकल जाएगी, एक अरब का आंकड़ा पार कर जाएगी। और एक अरब का आंकड़ा पार करते ही तुम्हारी क्या हालत होगी! अभी ही तुम अधमरी हालत में हो, एक अरब का आंकड़ा पूरा हुआ कि भारत में महाभयंकर बीमारियां और अकाल फैलने वाला है। प्रकृति मारेगी। मुझे मारने की कोई जरूरत नहीं, मुझे कुछ कहने की जरूरत नहीं, परमात्मा मारेगा।

अगर उस घटना के पहले कुछ कर सकते हो, तो समझने की कोशिश करो। भारत के मन को व्यर्थ की उलझनों में न उलझाओ! कि गऊ-हत्या बचानी है, और शराब-बंदी करवानी है, और चरखा चलवाना है; इन पागलपन की बातों में न उलझो! बड़े उद्योग बनाओ। विज्ञान ने पूरे साधन खोज दिये हैं, उन साधनों को लाओ। चरखे में मत अटके रहो। उतनी ही गउएं बचा लो जितनी तुम अभी बचा सकते हो। हां, कल जब हम ज्यादा बचा सकेंगे तो ज्यादा बचाएंगे। पहले आदमी को बचाओ, फिर दूसरी बात है। साबार ऊपर मानुस सत्य, ताहार ऊपर नाहीं। सबसे ऊपर मनुष्य का सत्य है, उसके ऊपर कुछ भी नहीं। अगर मनुष्य को बचाने के लिए और सब भी नष्ट करना पड़े तो मैं करने को तैयार हूं। लेकिन मनुष्य को बचाना जरूरी है। क्योंकि मनुष्य बच जाए तो शेष सबको फिर से पुनरुज्जीवित किया जा सकता है। लेकिन अगर मनुष्य मर जाए, तो कौन तुम्हारी गउएं बचाएगा और कौन तुम्हारी भैंसें बचाएगा? और कौन तुम्हारी धर्म और संस्कृति और महानतम बातों को बचाएगा? कौन तुम्हारे वेद, उपनिषद, गुरुग्रंथ को बचाएगा? ये पागलपन की बातें छोड़ो। ये पागलपन की बातों को मैं सीधा पागलपन की बातें कह देता हूं, इससे उनको एकदम आग लग जाती है!

फिर झूठ बोलने में भी इन लोगों को कोई लाज-शर्म नहीं! अब यह बात सरासर झूठ है। मैंने तीन महीने के पहले तो कभी शंभू महराज का नाम ही नहीं सुना था। यह तीन महीने में ही नाम सुना, क्योंकि वे मेरे कच्छ आने का विरोध करने लगे, तो मुझे पता चला कि यह सज्जन भी कहीं हैं। नहीं तो मैंने इनका कभी नाम ही नहीं सुना था। और जिन अतुलानंद का उन्होंने नाम लिया है, यह तो पहली दफे मैंने सुना है––उनके वक्तव्य में। मुझे कभी कोई निमंत्रण नहीं मिला अतुलानंद या शंभू महराज की तरफ से अहमदाबाद में। और यह बिलकुल सरासर झूठ बात कह रहे हैं कि 'अतुलानंद की अगवानी में साधु-संत इकट्ठे हुए थे और उन्होंने आपको चर्चा करने के लिए आमंत्रण दिया, तब आप चर्चा के लिए क्यों नहीं आए थे?' न मुझे कभी आमंत्रण मिला। मैंने इनका नाम ही नहीं सुना इन लोगों का। लेकिन झूठ भी बोलने में इन तथाकथित धार्मिक आदमियों को कुछ भी नहीं लगता।

'इसलिए शंभू महराज का कहना है कि रजनीश जी में ज्ञान का घमंड होने के कारण पागलपन दिखायी पड़ता है।' ज्ञान तो मुझमें है ही नहीं, घमंड कैसे होगा? मैं तो महा अज्ञानी हूं। तब तो देखो ऐसी-ऐसी अज्ञान की बातें कर पाता हूं! कोई ज्ञानी कहेगा? शंभू महराज कहें! मोरारजी देसाई कहें! ये कौन हैं श्री अतुलानंद, ये कहें! करपात्री महराज कहें! पुरी के शंकराचार्य कहें! कोई ज्ञानी कहे तो! मैं तो अज्ञानी हूं, इसलिए ऐसी बातें कह पाता हूं।

ज्ञान के घमंड का तो कोई सवाल ही नहीं उठता। मैंने तो ज्ञान को कचरा समझ कर छोड़ दिया। अब क्या उसका घमंड करूंगा? कचरे का कोई घमंड करता है! मैं तो महा अज्ञानी हूं, जैसे सुकरात ने कहा कि मैं इतना ही जानता हूं कि कुछ भी नहीं जानता। बस इतना ही मैं भी जानता हूं कि कुछ भी नहीं जानता। इसीलिए तो जी खोल कर जो दिल में आता है, कहता हूं। अरे, जब कुछ जानता ही नहीं हूं तो अब अड़चन क्या है!

और तुमने उपनिषद का वचन देखा अभी? 'जिसने स्वयं को जान लिया, उसके लिए फिर न कुछ ठीक है, न कुछ गलत है' मुझे भी कुछ न ठीक है न गलत है। मैं हूं ही नहीं तो कौन पश्चात्ताप करे? कौन फिक्र करे? परमात्मा को जो बोलना हो, बुलवा ले; जो करना हो, करवा ले; जहां उलझवाना हो, उलझवा दे। मैं तो गया––जमाना हो गया तब से गया! अब कौन है यहां घमंड करने को?

और वे कहते हैं कि राजा रावण का भी ज्ञान के घमंड के कारण सर्वनाश हुआ था। मेरा तो सर्वनाश हो चुका! अब क्या होगा! मैं तो उस दिन मर गया जिस दिन अहंकार मरा। उस दिन के बाद तो परमात्मा है; अगर सर्वनाश उसका ही होना हो, वह जाने! उस दिन के बाद मैं हूं नहीं। पच्चीस साल हो गये मुझे मरे हुए। अब तो मैं सिर्फ बांस की पोंगरी हूं, जो गीत उसे गाना हो गा ले। फिल्मी धुन बजानी हो, फिल्मी धुन बजाए; और भगवद्गीता गानी हो, भगवद्गीता गाए; मैं कौन हूं जो बीच में बाधा दूं? मैं तो जा चुका।

और राजा रावण का किसलिए हुआ था सर्वनाश, मुझे कुछ पता नहीं। मैं कोई ज्ञानी होता तो पता होता। अज्ञान की कहो तो कुछ बातें कह दूं! राजा रावण का सर्वनाश इसलिए हुआ––गद्दार विभीषण के कारण। और किसी कारण नहीं। और चूंकि राम उस गद्दार के कारण जीते, उस गद्दार को उन्होंने पुरस्कार भी खूब दिया। लंका का पूरा राज्य दे दिया। और तुम देखते हो, ये राम के भक्तों में से एक ने भी नहीं कहा कि विभीषण ने गद्दारी की। अपने भाई को धोखा दिया। इससे बड़ा गद्दार दुनिया में दूसरा नहीं हुआ। अगर रावण जीत गया होता तो विभीषण की निंदा सदियों तक होती। लेकिन चूंकि राम जीत गये––उसकी गद्दारी के कारण जीते; क्योंकि जब भाई ने ही सूत्र दे दिये, राज बता दिये, तो रावण की हार सुनिश्चित थी।

और रावण अहंकारी नहीं था। यह भ्रांति भी छोड़ दो। यह ख्याल गलत है! रावण के साथ धोखा राम ने किया। क्योंकि जब सीता का स्वयंवर रचा जा रहा था, तो यह बात जाहिर थी कि रावण इतना शक्तिशाली है कि वह सीता को ले जाएगा। और वह शिव का भक्त था और शिव का धनुष तोड़ना था। वह उसका हकदार था तोड़ने का। उसने तोड़ दिया होता। तो एक चालबाजी की गयी।...चालबाजी वहां शुरू होती है, बेईमानी वहां शुरू होती है, राजनीति वहां शुरू होती है।... इसमें राम जिम्मेवार हैं इस सारे उपद्रव में, रावण नहीं। चालबाजी यह की गयी कि झूठी खबर दी गयी उसे कि रावण, तेरी लंका में आग लग गयी है। तुझे जल्दी बुलावा आया है। तू भाग! तेरी लंका जल रही है, सोने की लंका जल रही है।

रावण भागा। अब जब लंका में आग लगी हो तो कोई स्वयंवर में रुका रहे! कोई विवाह के लिए तैयारी करे! यह कोई समय है? वह भागा लंका गया। यह झूठ थी बात। लंका में आग नहीं लगी थी। जब तक वह लौटा, तब तक स्वयंवर समाप्त हो चुका था। तब तक राम ने सीता को वरण कर लिया था। इसका ही बदला देने के लिए—और इसका बदला देना जरूरी था, क्योंकि यह बेईमानी की गयी थी, यह सीधा षड्यंत्र था—इसका बदला देने के लिए उसने सीता को चुराया। मगर सीता के साथ उसने जो सद्व्यवहार किया, वह राम ने भी कभी नहीं किया। सीता को तीन साल तक कारागृह में रख कर भी उसने सारी सुविधाएं दी थीं। जंगल में नहीं रख दिया था, किसी जेलखाने में नहीं बंद कर दिया था, उसके पास जो सुन्दरतम वाटिका थी—सुन्दरतम बगीचा था अशोकवाटिका, वहां रखा था। और उसने कभी भी कोई जबरदस्ती नहीं की, कोई बलात्कार नहीं किया। सीता को छुआ भी नहीं, स्पर्श भी नहीं किया। तो वह आदमी अपने किस्म का प्रामाणिक आदमी था, ईमानदार आदमी था। और राम से बदला लेना था, सीता से क्या बदला लेना था! सीता का तो कोई कसूर था नहीं। इसलिए सीता को उसने कोई परेशानी नहीं दी।

राम ने सीता के साथ दुर्व्यवहार किया। पहले तो उसकी अग्नि-परीक्षा ली। जिस पति को अपनी पत्नी पर संदेह है, उसको प्रेम नहीं। संदेह तो तभी उठता है जब प्रेम न हो। जहां प्रेम है वहां कैसा संदेह? जहां प्रेम है वहां भरोसा है, श्रद्धा है, आदर है, सम्मान है। पहला तो अपमान यह किया कि सीता की अग्नि-परीक्षा ली।

और बेईमानी देखो।

खुद भी अग्नि-परीक्षा दे देनी थी, तो भी समझ में आता; तो दोहरे मापदण्ड न हो पाते। क्योंकि तुम भी तीन साल अलग रहे थे। और ऐसे शोधकर्ता हैं, जिनका कहना है कि राम का शबरी से प्रेम था। तुम शोधकर्ताओं की किताबें खोज कर देखो। रामलीला में तुमने शबरी को देखा होगा, वह झूठ है बात कि शबरी हमेशा बूढ़ी औरत दिखायी जाती है। वह सिर्फ बताने के लिए बुढ़ापा दिखाया जाता है

उसका। शबरी जवान स्त्री थी। और जंगल की सुंदरतम स्त्री थी।

प्रोफेसर नावलेकर ने एक अद्भुत किताब लिखी है—'न्यू एप्रोच टू रामायणा।' रामायण के प्रति एक नया दृष्टिकोण। और उसमें उन्होंने सिद्ध करने की कोशिश की है कि शबरी जवान थी, सुंदर थी—अतिसुंदर थी और राम उसके प्रेम में थे। असल में प्रेमी ही एक-दूसरे की जूठी चीजें खा सकते हैं। और कोई खा भी नहीं सकता। तुम जरा किसी की जूठी चीज तो खाओ! कोई ऐसा बेर काट कर मुंह में तुमको दे, तुम एकदम थू-थू कर दोगे कि पागल हो गये हो तुम? वह तो प्रेम के पागलपन में चल जाता है। प्रेम के पागलपन में क्या नहीं चल जाता! प्रेयसी अगर जूठा करके दे दे तो अहा, अमृत है! हालांकि थूक कोई अमृत नहीं होता।

शबरी से राम का प्रेम था, यह नावलेकर ने सिद्ध करने की कोशिश की है। और मजबूत दलीलें दी हैं।

तो राम को भी परीक्षा दे देनी थी। दोनों साथ ही गुजर जाते अग्नि-परीक्षा से। और मेरा मानना है कि अगर अग्नि-परीक्षा से दोनों गुजरते, तो राम जलते, सीता बाहर निकलती। सीता तो बाहर निकली ही। मगर शक फिर भी न गया। और स्त्री के प्रति अपमान फिर भी न गया। और फिर भी सीता को किसी धोबी के कहने पर बनवास दे दिया।

रावण ने जो दुर्व्यवहार नहीं किया था, वह राम ने किया है।

अब मैं किस जनता को समझाने जाऊं, तुम थोड़ा सोचो! और मेरी बात तुम्हारी भीड़ को समझ में पड़ेगी? सुन सकेंगे वे? उनकी आंखें अंधी हैं पक्षपातों से। वे पुनर्विचार कर सकेंगे शांतिपूर्वक?

रावण में मुझे कोई भ्रांति नहीं दिखायी पड़ती, कोई भूल नहीं दिखाई पड़ती। रावण बहुत सीधा-साफ आदमी है। राम मुझे चालबाज दिखाई पड़ते हैं। और राम के जो वशिष्ठ वगैरह, ऋषि-मुनि जिनको तुम कहते हो, वे सब एजेंट थे। जैसे ईसाई मिशनरी एजेंट होते हैं न। नाम तो लेते हैं बाइबिल का, आते हैं इरादा कुछ और रख कर। वे राम के एजेंट थे। वे जो ऋषि-मुनि दक्षिण में जाकर उपद्रव खड़ा कर रहे थे। उन्हीं एजेंटों को बचाने के लिए सारा आयोजन किया गया था।

और इस गद्दार विभीषण को सम्मान देना, और इसको वापिस राज्य दे देना—गद्दारी का सम्मान हो गया, बेईमानी का सम्मान हो गया, धोखेधड़ी का सम्मान हो गया। और सीता जैसी निष्कलुष स्त्री को, गर्भवती स्त्री को जंगल में छुड़वा देना, बिना कहे कि कहां भेजा जा रहा है उसे—यह स्त्रीजाति का बड़ा से बड़ा अपमान हो गया।

और राम ने शंबूक नाम के शूद्र के कानों में सीसा पिघलवा कर भरवा दिया था, क्योंकि उसने वेद के मंत्र सुन लिए थे।

मैं राम को भगवान का अवतार नहीं मान सकता हूं । क्योंकि भगवान के अवतार को क्या शूद्र और क्या ब्राह्मण ? भगवान के अवतार को इतनी भी दृष्टि नहीं है कि वह देख सके कि सीता पवित्र है ! इतनी भी दृष्टि नहीं है कि देख सके कि धोबी गलत है । और अगर यह भी था कि धोबी ने जो बात कही थी, हो सकता है वह और लोग भी कह रहे हों, तो फिर खुद भी राज्य छोड़ देना था । तो चले जाते वे भी सीता के साथ जंगल में । यूं भी चौदह साल रहने के अभ्यासी थे, कोई नयी तो बात थी नहीं । फिर जंगल में साथ ही चले जाते । लेकिन राज्य को तो बचा लिया, पत्नी को छोड़ दिया । पद को बचा लिया, पत्नी को छोड़ दिया । पद प्रेम से बड़ा साबित हुआ ।

राम राजनैतिक पुरुष हैं । मेरे लिए कोई धार्मिकता उनमें दिखायी नहीं पड़ती ।

'और उन्होंने कहा कि जिसका पतन होने वाला होता है, उसे ऐसी ही दुर्बुद्धि घेर लेती है ।' मैं तो हूं ही नहीं तो पतन क्या होगा ? मैं तो हूं ही नहीं, दुर्बुद्धि क्या घेरेगी ?

और आना हो शंभू महराज को तो स्वागत है ! लेकिन यहां आना होगा । मैं तो कहीं आता-जाता नहीं हूं । मुझे कोई रस नहीं है——न शंभू महराज में, न गउओं में । मैं कोई गो-भक्त नहीं हूं, और न मैं गोपाल होने के लिए उत्सुक हूं । मैं तो अपने होने से पूरी तरह राजी हूं——जैसा हूं, परम आनंदित हूं ।

आज इतना ही ।

१० अक्तूबर १९८०; श्री रजनीश आश्रम, पूना
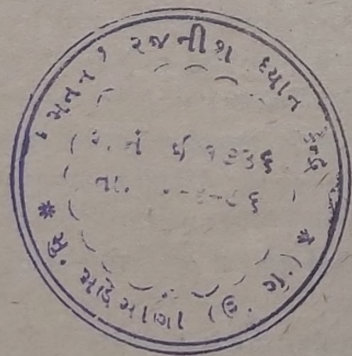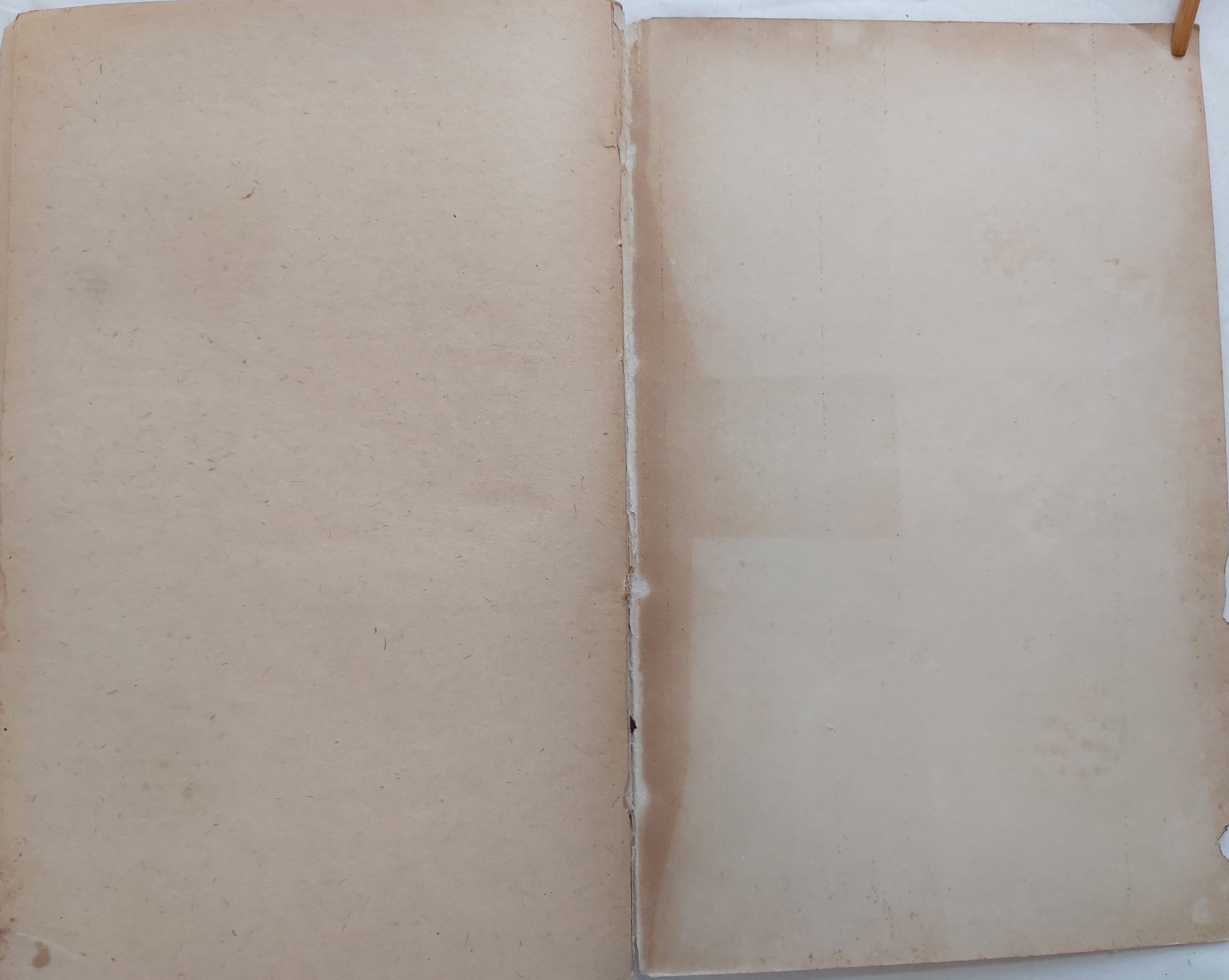
पलटू अंधियारी मिटी, बाती दीन्हीं बार।

जल गया दीया, अंधियारा मिट गया। और कैसे यह अंधियारा मिटा, कैसे यह दीया जला? दीपक बारा नाम का!

इस शब्द को, 'नाम' को ठीक से समझ लेना। इससे बड़ी भ्रांति हो सकती है। सूफियों ने परमात्मा को सौ नाम दिये हैं। लेकिन जब तुम उनकी फेहरिस्त पढ़ोगे तो तुम चकित होओगे, फेहरिस्त में केवल निन्यानबे नाम हैं। कहते हैं कि सौ नाम दिये, मगर जब फेहरिस्त की गिनती करोगे तो हमेशा निन्यानबे पाओगे। क्यों? क्योंकि सौवां 'नाम'। असली नाम तो बोला नहीं जा सकता। है वहां मौजूद, मगर उसे पढ़ना हो तो पंक्तियों के बीच में पढ़ना होगा, शब्दों के बीच में झांकना होगा। कोरे कागज पर पढ़ना होगा; लिखे कागज पर उसे पढ़ा नहीं जा सकता। निन्यानबे नाम उन्होंने दिये, वे कामचलाऊ हैं। मतलब बिना नाम कैसे चले, तो रहीम कहो, रहमान कहो! ये सब परमात्मा के गुण हैं। करुणा, दया, प्रेम, आनंद, चैतन्य—जो भी नाम देना चाहो, ये उसके गुण हैं; इससे एक पहलू जाहिर होता है मगर अनंत पहलू छिपे रह जाते हैं। अगर सारे परमात्मा को प्रगट करना हो तो वह सौवां नाम ही काम आता है, वह तो केवल शून्य है, निराकार है, कुछ कहा नहीं गया, कुछ लिखा नहीं गया। उसी को संतों ने 'नाम' कहा है।

नाम दिया नहीं, सिर्फ 'नाम' कहा।

राम कहो तो यह नाम दे दिया, अल्लाह कहो तो यह नाम दे दिया, रहमान कहो तो यह नाम दे दिया, उस सौवें को सिर्फ नाम कहा है, कुछ नाम दिया नहीं। सिर्फ इशारा किया है उस सौवें की तरफ, शून्य की तरफ।

'दीपक बारा नाम का'। इसे यूं पढ़ना : शून्य का दीया जलाया। शब्दातीत, शास्त्रातीत, अनिर्वचनीय, समाधि का दीया जलाया। न वहां कुछ कहने को है, न कुछ समझने को है, न कुछ सुनने को है; वहां गहन मौन है, समग्र मौन है। जरा भी चहल-पहल नहीं। जरा भी शोरगुल नहीं।....

—भगवान श्री रजनीश